हिन्दी नाटकों पर पांश्चात्य प्रभाव

हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव

श्रीपति शर्मा, एम० ए०
(हिन्दी तथा अंग्रेजी) सहायक प्रोफेसर
हिन्दी-विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण—१९६१
मूल्य १२.५०

मुद्रक—
राजकिशोर अग्रवाल
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस
बाग मुजफ्फर खाँ, आगरा

माता जी
को

आमुख

भारतीय तथा पाश्चात्य नाटकों और नाट्यशास्त्र के विशाल तथा समृद्ध-शाली साहित्य को देखने के पश्चात्, यह कहना पड़ता है कि इस दृष्टि से हिन्दी नाट्य जगत अभी बहुत पीछे है। हिन्दी नाटक तथा नाट्य परम्परा को ध्यान में रखकर लिखे गये गम्भीर आलोचनात्मक ग्रन्थों की संख्या बहुत थोड़ी है। इधर नाटक सम्बन्धी कुछ शोध के प्रबन्ध अवश्य प्रकाशित हुए हैं, जो विद्वानों के ठोस पांडित्य तथा गहन अध्ययन के परिचायक हैं। ये प्रबन्ध प्रायः दो प्रकार के हैं। कुछ में तो हिन्दी नाटकों की उत्पत्ति तथा विकास का इतिहास दिया गया है और कुछ प्रबन्धों में हिन्दी के प्रतिभासम्पन्न नाटककारों की कृतियों का शास्त्रीय अध्ययन किया गया है, परन्तु पाश्चात्य नाट्यादर्शों और परम्पराओं की कसौटी पर, अभी तक, हिन्दी नाटकों को विद्वानों ने परखने की चेष्टा नही की है। प्रस्तुत प्रबन्ध इसी दिशा में प्रथम प्रकाशित प्रयत्न है।

हिन्दी का प्राचीन साहित्य संस्कृत साहित्य के आदर्शों पर पल्लवित तथा पुष्पित हुआ, परन्तु आधुनिक हिन्दी साहित्य के काव्य, कहानी, उपन्यास, आलोचना तथा नाटक पर पाश्चात्य साहित्य तथा विचारधारा का कितना स्पष्ट प्रभाव पड़ा है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्य आदर्शों को ध्यान में रखकर इधर हिन्दी साहित्य के विद्वानों द्वारा उपर्युक्त अंगों की खोज और उनका गम्भीर तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा रहा है। डा० विश्वनाथ का 'हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव'

नामक प्रामाणिक प्रबन्ध सन् १६५० ई० में लिखा गया है। प्रयाग विश्व-विद्यालय द्वारा अंग्रेजी विभाग के डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा का 'हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव' नामक ग्रन्थ भी सन् १६५६ ई० में प्रकाशित हुआ है। डा० धर्म-किशोर लाल का शोध प्रबन्ध "अंग्रेजी नाटकों का हिन्दी नाटकों पर प्रभाव" जो अभी तक अप्रकाशित है अंग्रेजी नाटको तथा नाट्य शैलियों को ही विशेष महत्व देकर लिखा गया है। परन्तु पाश्चात्य नाटकों तथा नाट्य परम्पराओं को ध्यान में रखकर अभी तक हिन्दी नाटकों का अध्ययन सम्यक् रूप से नहीं हुआ है। स्वतन्त्र भारत मे आज जब हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है, और उसके विविध अंगो पर शोध-कार्य तथा विशाल साहित्य का निर्माण हो रहा है, ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि हिन्दी नाटकों के ऊपर पाश्चात्य प्रभाव किस रूप में पड़ा, इस पर भी विस्तृत रूप से विचार किया जाय। इसी दृष्टिकोण से यह प्रबन्ध लिखा गया है।

इस प्रबन्ध का शीर्षक है 'हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव। पाश्चात्य प्रभाव को मैंने दो वर्गो में विभाजित किया है—

(१) पाश्चात्य नाटकों, नाट्य सिद्धान्तों और शैलियो का प्रभाव,

(२) पाश्चात्य वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा विद्वानों के विचारों का प्रभाव।

प्रथम वर्ग में अंग्रेजी नाटकों तथा सिद्धान्तों के अतिरिक्त, पाश्चात्य देशों के नाटकों और नाट्य परम्पराओं की व्याख्या विस्तार से की गई है। जब तक इन परम्पराओं और शैलियों की आधारभूमि को हम हृदयंगम न करेंगे, तब तक उनका हिन्दी नाटकों पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसे भी समझने मे असमर्थ होंगे। इसलिए इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे संस्कृत तथा पाश्चात्य देशो के नाटकों की उत्पत्ति उनके प्रमुख तत्व तथा विकास दिखाने के अतिरिक्त, ग्रीक नाटकों से लेकर आधुनिक युग के करीब ढाई हजार वर्षों की पाश्चात्य देशों की नाट्य परम्परा और शैलियों को संक्षेप मे रखने की चेष्टा की गई है। इस प्रकार का विवेचन किसी पूर्ववर्ती विद्वान द्वारा नही हो सका है, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है।

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों तथा वादों पर विचार करते समय इस बात की चेष्टा की गई है कि केवल मुख्य विचारधाराओं का ही विवेचन किया जाय जिनका हिन्दी नाटकों से सम्बन्ध है। पाश्चात्य नाटकों के विकास के इतिहास में उलझकर समय नष्ट नहीं किया गया है।

दूसरे वर्ग में पाश्चात्य नाटकों तथा उनकी रचना शैलियों के अतिरिक्त हिन्दी नाटक साहित्य पर पश्चिम के अनेक दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, विद्वानों

तथा मनस्तत्ववेत्ताओं की विचारधारा का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है, जिनमे से डार्विन के विकासवाद, बेन्थम और मिल के उपयोगितावाद, इब्सन और शा के बुद्धिवाद, मार्क्स और लेनिन के साम्यवाद, टालस्टाय और रस्किन के शांति और अहिंसा तथा फ्रायड, एडलर और युग के मनोविश्लेषण सम्बन्धी खोजों और सिद्धान्तो का भी हिन्दी नाटको पर प्रभाव पड़ा है। इसका कारण यह था कि हमारा देश सदियों से अंग्रेजों के शासन मे रहा है। अंग्रेजी भाषा प्रारम्भ से लेकर आज तक हमारी शिक्षा का माध्यम रही है। विजेता के साहित्य और सस्कृति का प्रभाव सदा से विजित जाति पर पड़ता आया है। फलतः हमारे देश के विद्वानों ने भी अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अतिरिक्त यूरोपीय देशों के अन्य साहित्यो तथा विचारो के सम्पर्क मे आने का पूर्ण प्रयत्न किया हैं। जनतंत्रवाद के प्रसार तथा अंतर्राष्ट्रीयता की वृद्धि के कारण आज संसार के सभी राष्ट्रो के साहित्य तथा संस्कृति के परस्पर सम्पर्क की संभावना दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। अत: हिन्दी नाटको पर भी पाश्चात्य वैज्ञानिकों तथा विचारको के सिद्धान्तो का प्रभाव पड़ना असम्भव नहीं है। यह मेरा ही कथन नही, वरन् इसे हिन्दी के अनेक नाटककारों ने भी स्वीकार किया है, जिससे इस प्रबन्ध का प्रतिपाद्य और भी तर्कसम्मत और पुष्ट हो जाता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

अंग्रेजो के भारत मे आने के पश्चात्, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा भारत के अन्य बड़े-बडे नगरो मे यूरोपीय जातियों ने अनेक नाट्यशालाएँ खोलीं, जिनमे पाश्चात्य विशेषकर शेक्सपीयर के नाटकों का अभिनय किया जाने लगा। कलकत्ते में सबसे पहले इस प्रकार की नाट्शाला की स्थापना लेवडफ नामक एक रूसी यात्री ने की जिसका उल्लेख यथास्थान इस प्रबन्ध में किया गया है। इन नाट्यशालाओं में शेक्सपीयर के अतिरिक्त दो एक फ्रेंच नाटक भी अभिनीत हुए, परन्तु प्रारम्भ में बंगला साहित्य पर शेक्सपीयर का आकर्षण विशेष रूप से पड़ा, इसे भी दिखाया गया है। अत: बंगला नाटकों पर सबसे पहले शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव पडा। बंगला नाटककारों में माइकेल मधुसूदन दत्त, गिरीशचन्द घोष, रवीन्द्रनाथ टैगोर, द्विजेन्द्रलाल राय तथा क्षीरोदप्रसाद सेन इत्यादि लेखको ने विषय तथा शैली, विचार धारा तथा टेकनीक दोनों दृष्टियों से शेक्सपीयर के नाटकों का अनुकरण किया, इसकी व्याख्या अत्यन्त विस्तार के साथ इस प्रबन्ध में की गई है। इस प्रकार का विस्तृत विवेचन हिन्दी के किसी ग्रन्थ मे नहीं हुआ है।

अत: हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव सबसे प्रथम बङ्गला नाटकों के

माध्यम से आया तथा इसके अतिरिक्त शिक्षा संस्थाओं, पारसी कम्पनियों के शेक्सपीयर के अनुवादों तथा अंग्रेजी के मूल नाटको के माध्यम से भी पड़ा। भारतेन्दु काल में नवोत्थान काल की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियां, पाश्चात्य देशों के नवोत्थान काल से बहुत कुछ मिलती जुलती थी भारतीय नवोत्थान युग जो अंगरेजों के आने के बाद प्रारम्भ हुआ और जिसने इस देश में एक सामाजिक, सांस्कृतिक तथ राजनीतिक चेतना का स्फुरण और पुनर्जागरण किया, पाश्चात्य नवोत्थान सागर की ही एक बढ़ती हुई लहर थी। प्रारम्भ में हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव शेक्सपीयर के नाटकों और उसकी नाट्य शैलियों तक ही सीमित था। ज्यों ज्यों वैज्ञानिक आविष्कारों के साथ जनतंत्रवाद, राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास हुआ, त्यों त्यों इंग्लैंड के अतिरिक्त फ्रांस, जर्मनी, रूस, नार्वे, बेलजयम, इटली तथा अमेरिका के नाटकों तथा नाट्य-परम्पराओं का भी अध्ययन किया गया। फलतः हिन्दी नाटकों पर उपर्युक्त देशों के नाटकों तथा उनकी शैलियों का भी प्रभाव पड़ा है। हिन्दी के अनेक लेखकों द्वारा उपर्युक्त देशों के नाटकों का अनुवाद भी किया गया है, इस पर भी पूर्णरूप से विचार किया गया है।

यहाँ पर यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि हिन्दी नाटककारों ने पाश्चात्य देशों के नाटकों और नाट्यशैलियो का प्रभाव केवल अंग्रेजी के माध्यम से ही ग्रहण किया, इस भ्रम के निराकरण के लिये, यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी नाटको पर भी पाश्चात्य यथार्थवाद, अभिव्यंजनावाद, तथयातिरेकवाद तथा प्रतीकवाद आदि नाट्यपरम्परा संबंधो सिद्धाता, जिनका प्रचलन इंगलैंड के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशों से हुआ, प्रभाव पड़ा है। जब अंग्रेजी नाटक साहित्य स्वयं विषय तथा शैली की दृष्टि से इटली, फ्रांस, जर्मनी, नार्वे तथा अमेरिका के नाटककारों तथा उनके सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ है, तो हिन्दी नाटक साहित्य पर केवल अंगरेजी नाटकों का ही प्रभाव है, यह कैसे कहा जा सकता है? इतना ही नहीं अंगेजी माध्यम के अतिरिक्त फ्रेंच तथा जर्मन नाटकों के अनुवाद भी मूल भाषाओ के माध्यम से हिन्दी के नाटककारों द्वारा हुए हैं, इसकी भी दिखाने की चेष्टा इस प्रबन्ध में की गई है। भारतेन्दु काल से ही शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद प्रारम्भ हो गया था जिसका सूत्रपात भारतेन्दु जी ने स्वयं किया था। लाला सीताराम, गोपीनाथ पुरोहित तथा अन्य विद्वानों ने शेक्सपीयर के प्रायः सभी नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत किया। द्विवेदी युग में मोलियर के अनेक नाटकों का अनुवाद कई हिन्दी विद्वानों द्वारा हुआ, जिनमें जी०पी० श्रीवास्तव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। फ्रांस के मौलियर

के अतिरिक्त नार्वे के इब्सन, आयरलैंड के शा तथा रूस के टालस्टाय, जर्मनी के लैसिंग, गेटे तथा शीलर तथा बेलजियम के मेटरलिंक के अनेक नाटकों के अनुवाद हिन्दी मे किए गए है, जो इस बात के स्पष्ट परिचायक हैं कि हिन्दी नाटककारों का ध्यान शेक्सपीयर के अतिरिक्त यूरोप के विभिन्न देशो के नाटकों और नाट्यशैलियों की ओर विशेष रूप से जा रहा था। फलतः हिन्दी नाटकों पर शेक्सपीयर की स्वच्छन्दतावादी शैली, मोलियर की हास्य प्रहसन शैली, इब्सन तथा शा की यथार्थवादी शैली, मेतरलिंक तथा स्ट्रिन्ड वर्ग और जो नील की प्रतीकवादी तथा अभिव्यंजनावादी नाट्यशैली का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है।

भारतेन्दु ने अपने नाटकों के निर्माण मे संस्कृत नाट्यशैली का विशेष अनुसरण करते हुए भी उसका अन्धानुकरण नहीं किया। प्रत्युत बगला तथा अंग्रेजी नाट्यशैली को भी ग्रहण करके अपना स्वच्छन्द तथा मोलिक प्रतिभा का परिचय दिया। उनके 'नाटक, नामक निबन्ध से यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य नाटकों तथा नाट्यशैलियो से उनका पूर्ण परिचय था। हिन्दी नाटकों के विकास के लिये, संस्कृत नाट्यशैली की जटिल नियमों का पूर्ण अनुसरण करना, वे एक बाधास्वरूप समझते थे अतः यत्रतत्र अपने नाटकों में उन्होंने संस्कृत नाट्य नियमों की अवहेलना भी की। इसके अतिरिक्त समाज सुधार, नवजागरण तथा सांस्कृतिक चेतना के विकास के लिए उन्होने पाश्चात्य नाटकों के यथार्थवादी परम्परा को आदर्श रूप में ग्रहण किया। उनके युग के अन्य नाटककारों में उनका ही अनुसरण किया गया। आपेरा का सूत्रपात पाश्चात्य नाट्यादर्शों पर भारतेन्दु जी ने ही किया जा। ट्रैजेडी का भी सूत्रपात उन्होंने 'नीलदेवी' और 'भारत दुर्दशा' द्वारा किया, जिसका प्रौढ़ रूप लाला श्रीनिवासदास के 'रणधीर प्रेममोहिनी, में प्राप्त होता है। इस युग मे उपर्युक्त नाटकों के अतिरिक्त और भी कई दुखान्त नाटकों का निर्माण हुआ। इसकी भी चर्चा इस प्रबन्ध में की गई है। लाला श्रीनिवास दास के समकालीन केशवराम भट्ट से अपने 'सज्जात सम्बुल, और 'समशाद शौसन, मे डारविन के विकासवाद की भी चर्चा की है।

द्विवेदी युग में हिन्दी नाटकों के क्षेत्र मे किसी नवीनता का सूत्रपात न हो सका, अतः भारतेन्दुकालीन नाट्य परम्परा का ही अनुसरण किया गया हाँ, अनुवादों को संख्या भारतेन्दु काल से भी अधिक इस युग में रही बंगला के डी०यल० राय तथा टैगोर के नाटकों के रूपान्तर हुए तथा पाश्चात्य नाटककारों में मौलियर, लैसिंग, गेटे, शीलर तथा टालस्टाय के नाटकों के हिन्दी

अनुवाद हुए। इनमें से कुछ अनुवाद अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से तथा कुछ मूल (फ्रेंच तथा जर्मन) भाषाओं द्वारा हुए। ये अनुवाद इस तथ्य के स्पष्ट परिचायक थे कि अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय नाटकों और नाट्यशैलियों की ओर हिन्दी नाटककार कितने प्रबल रूप से आकर्षित हो रहे थे।

जी. पी. श्रीवास्तव ने मौलियर के अनूदित नाटकों के अतिरिक्त, अपने मौलिक नाटकों मे भी, मौलियर के ही आधार पर भारतीय सामाजिक रूढ़ियों तथा परम्पराओं की खिल्ली उड़ाई। उनके 'हास्य रस' नामक पुस्तक से स्पष्ट है कि मौलियर के अतिरिक्त अरस्तू, बेनजानसन, कांट, हैजलिट तथा बर्गसां के हास्य संबधी सिद्धान्तों से भी वे परिचित है।

पारसी रंगमंचों के सस्ते नाटकों के प्रतिक्रियास्वरूप प्रसाद जी ने अपने नाटको के निर्माण मे शेक्सपीयर की स्वच्छन्दतावादी नाट्यशैली को अपनाया। उन्होंने संस्कृत तथा पाश्चात्य दोनों नाट्य शैलियो का समन्वित रूप ग्रहण है। कवि होने के नाते उन्होने संस्कृत नाटको से रस सिद्धान्त का उपयोग किया तथा शेक्सपीयर के नाटकों से शील-वैचित्र्य, मानसिक संघर्ष, नियतिवाद तथा स्वगत कथनों का प्रयोग किया। युद्ध, आत्महत्या तथा मृत्यु के दृश्य जो भारतीय रंगमंच पर वर्जित थे, उनको आवश्यकतानुसार अपने नाटकों मे दिखाकर प्रसाद जी ने अपनी स्वतन्त्र तथा स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का परिचय दिया। प्रसाद युग के अन्य नाटककारों पर भी पश्चिमीं विचारों की झलक दिखाई पड़ती है। प्रेमी जी के नाटकों पर, पश्चिमी साम्यवाद गांधीवाद तथा वर्ग संघर्ष की भावना की छाप है। उनके हिन्दी-मुस्लिम एकता की भावना पर गांधीवाद के माध्यम से पाश्चात्य मानवतावाद तथा टाल्सटाय के शान्ति तथा अहिंसावाद का प्रभाव पड़ा है। गोविन्दवल्लभ पंत के रोमान्टिक नाटको पर शेक्सपीयर के रोमांटिक नाटकों की छाप है। शैली की दृष्टि से इस युग के नाटकों में पाश्चात्य टेकनीक का पूर्ण अनुसरण किया गया है, जिनमे सरल रंगमंच-विधान, संस्कृत नाट्य परम्परा की अवहेलना, पांच के स्थान पर तीन या चार अंकों की नाटकों में योजना तथा ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रो के स्थान पर सामाजिक पात्रों का नियोजन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रसादोत्तर युग में इब्सन, शा, हाप्टमैन, सण्डरमेन आदि नाटककारों के प्रभाव से यथार्थवादी समस्या तथा विचारप्रधान नाटकों का सूत्रपात तथा विकास हिन्दी नाट्यजगत में हुआ। इस प्रकार के नाटकों का प्रौढ़ और विकसित रूप लक्ष्मीनारायण मिश्र की कृतियों में प्राप्त होता है। इन नाटको

में विषय की दृष्टि से, उन्मुक्त प्रेम, दहेज, विवाह, नास्तिकता, बुद्धिवाद, व्यक्तिगत समानता तथा नारी स्वातन्त्र्य आदि समस्याओं का चित्रण किया जाने लगा। लक्ष्मीनारायण मिश्र के बुद्धिवाद पर पश्चिम की छाप है, इसे उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है। सेठ गोविन्ददास के नाटकों में गांधीवाद तथा टालस्टाय के अहिंसावाद का प्रभाव है। पाश्चात्य नाट्यशैली की अनेक विशेषताओं को भी सेठ जी ने अपने नाटकों में ग्रहण किया है। उदाहरण के लिये प्रोलोग तथा एपीलोग के स्थान पर उपक्रम तथा उपसंहार का प्रयोग इब्सन तथा स्ट्रिन्डवर्ग के आधार पर समस्या नाटकों में प्रतीक शैली का प्रतिपादन, मूक अभिनय तथा मोनोलाग की परम्परा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस युग के अन्य नाटककारों पर भी पाश्चात्य विचारों की झलक मिलती है।

विषय तथा शैली दोनों दृष्टियों से हिन्दी के आधुनिक नाटककारों ने पाश्चात्य विचारधारा तथा नाट्यशैलियों को पूर्ण रीति से अपनाया है। इब्सन और शा के पश्चात् का यूरोपीय नाट्य जगत विभिन्न शैलियों तथा प्रयोगों का क्षेत्र रहा है, जिनमें प्रकृतिवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद, अतियथार्थवाद मनोविश्लेषणवाद तथा अस्तित्ववाद विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी शैलियों और विचारधाराओं को आधुनिक हिंदी नाटककारों ने किस रूप में ग्रहण किया है, इसकी विस्तृत व्याख्या सोदाहरण इस प्रबन्ध में की गई है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात यूरोपीय नाट्य साहित्य में बेकारी, निराशा, मानसिक कुंठा, अवसाद तथा दुख का चित्रण अधिक हुआ है। सार्त्र के अस्तित्ववाद से इन कलाकारों को विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई है। युद्ध का वही प्रभाव भारत पर भी पड़ा है। अंग्रेजों के जाने के बाद हमारे देश में भी बेकारी, अनैतिकता, चोर बाजारी, मुनाफाखोरी, निराशा, नास्तिकता तथा अवसाद का वातावरण फैल गया है। फलतः यूरोप की देखादेखी हमारे देश के उपन्यास और नाटक साहित्य में भी इसका चित्रण होने लगा है। उपेन्द्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती, जगदीशचन्द्र माथुर, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, चिरंजीत, विनोद रस्तोगी, भारत भूषण अग्रवाल तथा अन्य अनेक नाटककारों की कृतियों में अनैतिकता, धार्मिक अनास्था, आत्महत्या, मृत्यु तथा पागलपन का चित्रण इटली के पेरेन्डेलो, अमेरिका के ओ नील और काफमैन की परंपरा में हो रहा है। उक्त पाश्चात्य नाटककारों के आधार पर हिन्दी नाटकों में दोहरे व्यक्तित्व तथा बहुव्यक्तित्व वाले चरित्रों का भी चित्रण होने लगा है। फ्रायड, एडलर तथा युंग के मनोविश्लेषण सम्बन्धी खोजों का प्रभाव शायद ही किसी आधुनिक नाटककार पर न पड़ा हो। इन खोजों के आधार पर

हिन्दी नाटककारों ने सेक्स सम्बन्धी मनोविकारों, मानसिक ग्रन्थियों तथा इनसे उत्पन्न रोगों का भी चित्रण अपने नाटकों में किया है ।

आधुनिक एकांकी पूर्णतः पश्चिम की देन है । संस्कृत नाट्य साहित्य में रूपक के दस और उपरूपक के अठारह भेदों में से एक अङ्क वाले नाटक अनेक है । पर हम उन्हें आधुनिक एकांकी का मूल स्रोत नहीं मान सकते । कारण यह है कि भारतीय नाटकों की आत्मा आदर्शवाद तथा रसनिष्पत्ति पर आधारित है । आधुनिक एकाकी की आत्मा मनोविज्ञान तथा अन्तर्द्वन्द्व है जो पाश्चात्य शैली की देन है । हिन्दो के कुछ आलोचकों ने भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों द्वारा हिन्दी एकांकी का सूत्रपात तथा विकास दिखाने की चेष्टा की है, परन्तु इस प्रबन्ध में प्रसाद के 'एक घूँट' से उसका प्रारम्भ तथा उसका प्रौढ़ और विकसित रूप डा० रामकुमार वर्मा तथा भुवनेश्वरप्रसाद के नाटकों में दिखाया गया है । पाश्चात्य एकांकियो की भाँति हिन्दी एकांकी द्वारा भी व्यक्ति तथा समाज की समस्याओं तथा अन्तर्मन के संघर्षों का चित्रण हो रहा है । कहीं कहीं स्ट्रिण्डवर्ग तथा मेटरलिंक के स्वप्न शैली का भी प्रभाव कुछ एकांकियों में प्राप्त होता है । इधर हिन्दी में पश्चिम की देखादेखी रेडियो नाटकों की भी वृद्धि हो रही है । रेडियो नाटकों के फीचर, फैन्टेसी, रिपोर्टाज और डाक्यूमेंटरी आदि अनेक रूप जिनके द्वारा हिन्दी में पर्याप्त साहित्य की वृद्धि हो रही है, पाश्चात्य नाटकों के आधार पर ही है ।

गीति तथा नाट्य रूपकों की परम्परा भारतीय साहित्य मे भी थी । पर जिस रूप में आज हिन्दी में उनका पल्लवन हो रहा है, उस पर निश्चित रूप से पाश्चात्य प्रभाव दिखाई पड़ता है । विषय की दृष्टि से उसमें नवीनता चाहे प्राप्त हो जाय पर शैली पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट है । हिन्दो के आधुनिक गीति तथा नाट्य रूपक लेखको ने इसे स्वय स्वीकार किया है । पन्त जी की 'ज्योत्स्ना' पर मैटरलिक के 'ब्लू बर्ड' का स्पष्ट प्रभाव है । धर्मवीर भारती, सिद्धनाथ कुमार तथा अन्य रेडियो गीति नाट्यकार पाश्चात्य नाटकों की टेकनीक को अपनाते हुए जा रहे है. क्योंकि हिन्दी के आधुनिक गीति तथा नाट्य रूपकों का ढाँचा संस्कृत के आधार पर धार्मिक और दार्शनिक न होकर, यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक है । अतः उनमे पाश्चात्य समाजवाद, मानवतावाद, बौद्धिकता तथा विकासवाद के सिद्धान्तों की चर्चा हो रही है । धर्मवीर भारती के अन्धायुग, वाजपेयी जी की 'छलना' तथा शम्भूनाथसिंह की 'धरती और आकाश' इसके स्पष्ट उदाहरण हैं । हिन्दी समस्या नाटकों में इब्सन तथा स्ट्रिन्डवर्ग के नाटकों की तरह प्रतीकों का भी प्रयोग हो रहा है ।

भारतेन्दु काल में हिन्दी नाटकों का अभिनय बंगला तथा पारसी रंगमंचों द्वारा हुआ। प्रसाद युग के पाश्चात्य हिन्दी के नाटकों का अभिनय पाश्चात्य यथार्थवादी रंगमंच के आधार पर हुआ है। मोनो ड्रमा तथा प्रतीकवादी रंगमंच की विशेषताओं को भी आधुनिक हिन्दी के अश्क, भारती तथा अन्य नाटककारों ने अपनाया है। चलचित्रों के प्रसार से रगमंच को काफी धक्का पहुंचा है, परन्तु स्वतन्त्र भारत मे देश निर्माण की अनेक योजनाओं के साथ हिन्दी रंगमच का भी स्वतन्त्र रूप से निर्माण होगा, ऐसी आशा निकट भविष्य मे की जाती है।

अतः निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी नाटकों पर प्रारम्भ से लेकर अब तक एक ओर तो शेक्सपीयर की स्वच्छन्दतावादी शैली, मोलियर की हास्य प्रधान शैली, इब्सन तथा शा की विचार प्रधान शैली, मेटरलिक तथा स्ट्रिण्डवर्ग की प्रतीकवादी परम्परा और जो नील तथा पिरेण्डेलो की अभिव्यंजनावादी शैली का प्रभाव है, दूसरी ओर विचारों के क्षेत्र में डार्विन के विकासवाद, मिल और हक्सले के उपयोगितावाद, जनतन्त्रवाद, रूसी साम्यवाद, इब्सन और शा के बुद्धिवाद और फ्रायड, एडलर तथा युग के मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव है।

इस शोध प्रबन्ध के निर्देशक गुरुवर डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा (अध्यक्ष हिन्दी विभाग, काशी हिन्दी विश्वविद्यालय) रहे हैं, जिनके अमूल्य परामर्श तथा सुझावो के कारण ही यह प्रबन्ध लिखा जा सका है। उनके निर्देशन के बिना इस प्रबन्ध की रूपरेखा किसी भी प्रकार प्रस्तुत नही हो सकती थी। उनके प्रति किन शब्दो मे आभार प्रदर्शन करूँ, मैं कह नहीं सकता।

निर्देशक डा० शर्मा के अतिरिक्त अन्य गुरुजनों तथा लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना भी अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। इनमें काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र, अँग्रेजी विभाग के डा० रामअवध द्विवेदी तथा काशी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री ब्रजरत्नदास का विशेष आभारी हूँ। डा० रामकुमार वर्मा तथा आदरणीय डा० नगेन्द्र का मैं विशेष रूप से आभार मानता हूँ जिन्होने समय समय पर इस प्रबन्ध की रूपरेखा निर्मित करने में मुझे सहायता प्रदान की है।

इस प्रबन्ध के लिए मुझे कई वर्षों तक नागरीप्रचारिणी सभा, साहित्य सम्मेलन प्रयाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, तथा काशी विद्यापीठ के पुस्तकालयों में छानबीन करनी पड़ी है। यदि इन पुस्तकालयो से उचित सहायता न प्राप्त

हुई होती तो इस प्रबन्ध का साकार रूप उपस्थित करने में मै पूर्णतः असमर्थ होता । अतः इन संस्थाओं के प्रति भी अत्यन्त विनीत भाव से कृतज्ञता प्रकाश कर देना अपना कर्तव्य समझता हूं । उन अनेक विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना उचित है, जिनकी कृतियों से मैंने सहायता ली है । पुस्तक का प्रकाशन शीघ्रता से हो रहा है, अत विद्वान पाठकों का आभारी हूँगा, यदि कृपया वे त्रुटियो की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने का कष्ट करें ।

मातृनवमी
अह्लादपुर
गोरखपुर
१८ अक्टूबर १९६१ ई०

— श्रीपति शर्मा

विषयानुक्रम

पंचम अध्याय

छठाँ अध्याय

सातवाँ अध्याय

दसवां अध्याय

—०—

्रथम अध्याय

्य नाटकों की उत्पत्ति और विकास

में ही नाटक का बीज निहित था । कौतूहल की
त है । आदिम-वन्यावस्था में मनुष्य जब भौतिक
इधर-उधर जंगलों में घूमता रहा होगा, उसमें
त्ति प्रधान रही होगी और फिर अपने अनेक अनु-
ल-बच्चों को सुनाकर उनमें भी उसी वृत्ति को
लतः बचपन से ही अनुकरण का भाव जगा और
ा की उत्पत्ति हुई । अभिनय के इस प्रारंभिक
ं सम्मिलित हुए जो विकसित होते-होते नाटक
रण ही कला का प्राण है और यह जन्मजात
े ही लकड़ी के घोड़े या हाथी पर चढ़कर अपनी
ड़कियाँ गुड़ियों से गुड्डों का विवाह करके अपने
कल्पना करती हैं । हमारी सारी शिक्षा, ज्ञान,
ा की मूल भित्ति अनुकरण की प्रवृत्ति है, जिसमें

नाट्योत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त

भारतीय धर्म-ग्रन्थों के अनुसार सृष्टि का आरम्भ 'एकोहं बहुस्याम्' के आधार पर हुआ। ब्रह्म एक से अनेक रूपों में विकसित हुआ। इस प्रकार प्राणिजगत का विस्तार हुआ। आत्म-विस्तार की भावना भी नाटक की उत्पत्ति के मूल स्रोतों में से है। उसी से मानव सृष्टि का विकास हुआ। फलतः ग्राम, नगर, समाज और राष्ट्र बने। इसके अतिरिक्त अपने भावों के प्रकाशन तथा दूसरों के भावों के ग्रहण की भी प्रवृत्ति मानव में जन्मजात है। परिणामतया मानव को आत्माभिव्यंजन मे अतीव आनन्द प्राप्त हुआ, जिससे नाटक की प्रेरणा जागृत हुई।

हमारे यहाँ भरत मुनि नाट्य-शास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने नाटक की उत्पत्ति का आधार दैवी माना है। भरत मुनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में कहा है कि सत्ययुग के समाप्त हो जाने पर तथा त्रेता युग के आरम्भ होने पर इन्द्र, वरुण आदि देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे आनन्द प्राप्ति का कोई ऐसा साधन दें, जो दृश्य भी हो, श्रव्य भी हो और जिसमे समाज के चारो वर्ण समान रूप से आनन्द ले सकें[1]। ब्रह्मा ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार की और पंचम नाट्यवेद का निर्माण किया, जिसमे संवाद ऋग्वेद से, गीत सामवेद से, अभिनय कला यजुर्वेद से और रस अथर्ववेद से लिया। इसमें, बाद में शङ्कर जी ने तांडव और पार्वती जी ने कोमल लास्य नृत्य जोड़ा। ब्रह्मा ने नटों को शिक्षा दी, और फिर जनता के विनोद तथा आध्यात्मिक और लौकिक मनोरंजन के लिये भरत मुनि को पृथ्वी पर नाटक ले जाने का उत्तरदायित्व दिया गया।

आचार्य भरत का काल ईसा से ३०० वर्ष पूर्व माना जाता है। इससे यह निश्चित है कि हमारे यहाँ नाट्य-शास्त्र का उद्भव कितना प्राचीन है। ऋग्वेद में, जो संसार का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है, संवादों के रूप में नाटक के मूल तत्व उपस्थित हैं। मय, उर्वशी और पुरुरवा के संवाद प्रसिद्ध हैं। यही आगे चलकर नाटक के रूप में पल्लवित तथा पुष्पित हुए। इन संवादों का उद्देश्य आध्यात्मिक विवेचन तथा धार्मिक तत्वों का निरूपण था। उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में महर्षियों के आध्यात्मिक विचार-विमर्श संबधी संवाद भरे पड़े है। वैदिक काल में अभिनय बड़े-बडे यज्ञों के अवसर पर होते थे। उस समय

१—क्रीड़नीयकमिच्छामो, दृश्यं, श्रव्यं च यद्भवेत्
तत्मात्सृजा परं वेद, पंचमं सार्ववर्णिकम्।
—नाट्यशास्त्र (११,१२), आचार्य भरत, चौखम्भा प्रकाशन, १९२९।

आर्य लोग सोमरस का पान करते थे, अतः सोम यज्ञ के अभिनय का प्रसंग भी मिलता है, जिसमें यजमान, सोम विक्रेता और अध्वर्यु ये तीन पात्र मिलते है। देवासुर संग्राम के पश्चात जब इन्द्र का राज्याभिषेक हुआ तो उस अवसर पर भी देवताओं द्वारा नाटक खेला गया। भरत के नाट्य शास्त्र में त्रिपुर-दाह और अमृत-मंथन नाटकों का उल्लेख मिलता है।

पाश्चात्य विद्वानों के नाट्योत्पति सम्बन्धी सिद्धान्त

नाटकों की उत्पत्ति के विषय में पाश्चात्य समीक्षकों के अलग-अलग मत हैं। नाटकों की उत्पत्ति, जैसा ऊपर कहा गया है, वेदो की ऋचाओं और सम्वादों से हुई; इसका विवेचन प्रो० मैक्समूलर ने किया है[१]। उनका कहना है कि वैदिक यज्ञो के अवसर पर बलिदान के समय वेद की ऋचायें, संवाद के रूप में दुहराई जाती थी। इसमे विशेषकर इद्र और मरुत ये दो प्रधान चरित्र थे, जिनके संवादों मे नाटकीय कथोपकथन का प्रारम्भिक रूप वर्तमान था। प्रो० लिवी का कथन है[२] कि नाटक में सङ्गीत का समावेश सामवेद से हुआ, जो सर्वमान्य है। प्रो० हरटेल ने भी मैक्समूलर के मत का समर्थन करते हुये बताया है कि ऋग्वेद की ऋचाओ में नाटक के मूल अश निहित है[३]। परन्तु इनके विपरीत डा० रिजवे का मत है कि नाटको की उत्पत्ति का मूल आधार वीर-पूजा की प्रवृत्ति है। यूनानी लोग अपने यहाँ के मृत वीरों की समाधि पर इकट्ठे होकर, उनके सम्मान में उनके जीवन सम्बन्धी महान कृतियों को अभिनय का रूप देते है। हमारे देश में भी राम और कृष्ण की स्मृति में अनेक रूपों मे रामलीला, रास लीला तथा कृष्ण लीला का देश के कोने-कोने मे प्रचार अब तक पाया जाता है। बङ्गाल मे लोक नाट्य के रूप में यात्रा नाटकों का खूब प्रचार था[४]। ये नाटक इसी वीर पूजा की प्रवृत्ति के परिचायक है। उसी प्रकार यूनान में जनता का विश्वास था कि इन स्मृति-उत्सवों से वीरों की आत्मा को उस लोक में आनन्द मिलेगा, और उनके आशीर्वाद से जनता धन-धान्य से समृद्ध होगी। प्रो० गिलवर्ट मरे का कथन है कि यूनान

१—'द संस्कृत ड्रामा' डॉ० ए० बी० कीथ, पृ० ११।

२—वही पृ० १२।

३—वही पृ० १६।

४—"The Dramas of ritual, therefore are in a sense in the popular side, which has survived through the age in Yatras, well known in Bengal.—
'The Sonskrit Dramu in its origin and Development Theory and Practice'—Dr, A.B. Keith, 8924, Page 16.

में ट्रैजेडी की उत्पत्ति डायोनिसस देवता के उत्सवों में सहगायन तथा नृत्य के रूप में हुई। इस प्रकार के उत्सव वसंत के आगमन के समय समस्त जनता द्वारा अत्यन्त उल्लास से यूनान में मनाये जाते थे। उस समय कठिन शीत के उपरान्त जनता नवीन उल्लास की भावना से ओत-प्रोत रहती थी परन्तु ये उत्सव नव वर्ष के स्वागत में उतने नहीं होते थे, जितने नवीन वर्ष के अहङ्कार और उसके दंड का स्वरूप निश्चित करने के आशय से होते थे। वर्ष का आरम्भ गर्व की उन्नति की भावना को सूचित करता था। अतः वसंत का आगमन प्रकृति में एक नये उल्लास और नई चेतना के साथ उदय होता और वर्ष का अंत शीत की ठिठुरन के साथ उसके पतन का सूचक होता। इन दोनों भावों को साथ रखकर ट्रैजेडी की उत्पत्ति हुई।

यूनानियों का विश्वास था कि डायोनिसस ही प्रकृति में सुख और वैभव का साम्राज्य फैलाता है। उसकी पूजा के लिये एक बलिवेदी बनाई जाती थी, जिस पर देवता की पूजा के स्वरूप बलिदान, सहगायन तथा नृत्य होता था। यही ट्रैजेडी का मूल स्वरूप था। हमारे देश में भी दुर्गापूजा और होली के अवसरों पर जनता उल्लास और आनन्द से परिपूर्ण हो जाती है तथा वीरों की स्मृति में अनेक नाटकों के उत्सवों में भाग लेती है।

जर्मन विद्वान प्रो० पिशेल ने नाटकों की उत्पति कठपुतलियों के नृत्य से मानी है, इसका समर्थन डा० कीथ ने भी किया है, यद्यपि अनेक भारतीय विद्वान इस मत को नहीं मानते। क्योंकि कठपुतली नृत्य का प्रारंभ भारत में ही सर्वप्रथम हुआ। कथासरित्सागर में कठपुतलियों का प्रसंग मिलता है। सूत्रधार शब्द की व्याख्या से यह स्पष्ट है कि नाटक-व्यवस्थापक हाथ में सूत्र लेकर कठपुतलियों द्वारा अभिनय कराता था। राजपूताना, मध्यभारत, चीन और जापान में इसके कई रूप आज भी देखने को मिलते हैं। परन्तु सूत्रधार शब्द की व्याख्या दूसरे अर्थ में भी हमारे लक्षण ग्रन्थों में की गई है। नाटक के प्रारम्भ में जो पात्र नाटक के अंग प्रत्यंग, और उसकी कथा के विषय में सूत्र या संक्षिप्त रूप से परिचय करा देता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नाटकों की उत्पत्ति पूर्व और पश्चिम दोनों देशों में ऋतु परिवर्तन तथा पर्वों के अवसर पर हुई, जिनका उद्देश्य धार्मिक था। पात्रों में देवी देवताओं का अभिनय पहिले प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे उनका स्थान वीर पुरुषों और मनुष्यों ने ले लिया। हमारे देश में नाटकों का अभिनय राज्याभिषेक, पुत्र-जन्मोत्सव, दुर्गापूजा, दीपावली, विजय और धार्मिक पर्वों के अवसर पर हुआ करता था। ठीक उसी प्रकार पश्चिम में भी

ऋतु परिवर्तन, वसन्त अथवा ग्रीष्म के आगमन पर नाटकों का अभिनय होता था। इस दृष्टि से जैसा प्रो० विलसन का मत है, दोनो देशों में काफी समानता पाई जाती है।[1]

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र

भरत मुनि का नाट्यशास्त्र संस्कृत साहित्य में नाट्यसाहित्य का सर्वप्रथम लक्षण ग्रन्थ माना जाता है। नाटक की उत्पत्ति और विकास के संबंध में भरत मुनि का क्या मत है, पहिले कहा जा चुका है। भरत ने नाट्यशास्त्र में दो स्थानों पर नाटक की परिभाषा दी है। इक्कीसवें अध्याय में उन्होंने कहा है—

यस्मात्स्वभावं संहृत्य सांगोपांग गति क्रमैः
अभिनीयते गम्यते च तस्माद्‌ नाट्कं स्मृतम्‌।

अर्थात्‌ जिसमें वेद, शास्त्र, साहित्य, इतिहास, कला और दर्शन सभी अंगों और उपांगों का समन्वय और अभिनय हो उसे नाटक कहते हैं। इसका महत्व अलौकिक है। इतिहास, पुराण तथा प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का विकास नाटको द्वारा ही देखा जा सकता है। इसीलिये सभी काव्यों में नाटकों को श्रेष्ठ माना गया है।

सोलहवें अध्याय के अन्त में बड़े विस्तार के साथ भरत मुनि ने नाटक की विशेषताओं की व्याख्या की है।[2]

"जिसमें कोमल और सुन्दर पद हों, गूढ़ शब्दार्थ हों जिससे बुद्धिमानों को सुख प्राप्त हो, जिसे सुन्दर रीति से अभिनय किया जा सके, जिसमें अनेक रसों के लिये अवकाश हो, सब सन्धियाँ जहाँ ठीक हों वही श्रेष्ठ नाटक होता है।"

१—*'The Theatre of Hindus' H. H. Wilson* (Para 2, Page 4) "The dramatic entertainments of the Hindus seem to have been acted only on solemn or public occasions. Is this respect they resembled the dramatic performance of Athenians, which took place at the spring and autumn festivals. According to Hindu authorities such occasions were royal coronations, religious festivals & marriages."

२—**मृदु ललित पदार्थं, गूढ़ शब्दार्थ हीनं, बुध जन सुख योग्यं, बुद्धिमन्नृत्तयोग्यम्‌।**
बहुरस कृत मार्गं, सन्धि सन्धान युक्तम्‌, भवति जगति योग्यं, नाटकं प्रेक्ष्यकाणाम्‌॥

—नाट्यशास्त्र (१६, १२८) चौखम्भा प्रकाशन, १६२६।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आचार्य भरत ने लोकमंगल तथा रसास्वादन को नाटकों का मुख्य उद्देश्य माना है। इसीलिये नाटक के तत्वों मे केवल तीन ही प्रमुख माने गये।[1] १—वस्तु, २—नेता और ३—रस, जिनमे रस एक प्रमुख तत्व है। अभिनय इन तत्वो मे सम्मिलित था, इसीलिये उसको अलग स्थान नही दिया गया।

नाट्यशास्त्र एक वृहत ग्रन्थ है, जिसमे नाटक के अनेक अंगो की विस्तृत व्याख्या की गई है। उदाहरण के लिये इसमे नाट्यमडप, देवपूजा, नांदी, प्रस्तावना, सूत्रधार, रस, भावादि वृत्ति, अभिनय कला, नायक-नायिका भेद, छद, कथावस्तु, संधि, वृत्ति, दर्शक तथा रगमच निर्माण सबंधी उपादानो की विस्तृत व्याख्या की गई है। सबके विस्तार मे जाने की आवश्यकता यहाँ नही है, परन्तु ऐसे प्रसंगों की विशेषकर व्याख्या करनी है, जो विषय के अनुकूल है और जिनका साम्य पश्चिमी देशों के नाटको से पाया जाता है।

संस्कृत तथा पाश्चात्य नाट्य-सिद्धान्तों में समानता

सबसे प्रथम हम संस्कृत नाटकों के मगलाचरण और नान्दी पाठ को लेगे। भारतीय नाटकों का ध्येय धार्मिक और नैतिक था अतएव प्रारम्भ मे देवता या इष्ट देव की प्रार्थना गीत या गायन के साथ होती थी। नादी पाठ के उपरान्त नट और नटी नृत्य और गीत से सामयिक चर्चा करके दर्शको को नाटकों के उद्देश्य से परिचित कराते थे; साथ ही साथ अभिनेताओं को रगमच पर आने के लिये तैयार होने का अवसर भी देते थे। ध्यान देने की बात है कि यूनान मे भी नाटक का प्रारम्भ डायोनिर्सस देवता के अर्चना स्वरूप नृत्य तथा सहगायन (कोरस) से प्रारम्भ होता था। ग्रीक नाटकों मे गीत तथा नृत्य की इतनी प्रधानता थी, कि सैकड़ों वर्ष तक नाटक का मूल रूप इन्ही तत्वों पर आधारित था। सम्वाद तथा चरित्र-चित्रण तो बहुत बाद में धीरे-धीरे विकसित हुए।

भारतीय नाटकों के प्रारम्भ में प्रस्तावना की भी महत्ता है। प्रस्तावना में नाटक और उसके निर्माता के परिचय देने की परम्परा बहुत ही प्राचीन थी। कभी-कभी नाटक की कथावस्तु और नाटक खेलने के अवसर का भी परिचय इसमें दे दिया जाता था। नाटक खेलने का उद्देश्य यही था कि दर्शक उसमें रस और आनन्द लें, उनके आध्यात्मिक और नैतिक वृत्तियों को स्फूर्ति मिले,

---

१—"वस्तु, नेता रसस्तेषां भेदक:"

—"दशरूपक", आचार्य धनंजय, प्रथम प्रकाश—१०।

(हिन्दी टीका—डा० भोलाशंकर व्यास)

परन्तु यह आनन्द और स्फूर्ति उसी समय प्राप्त हो सकती थी जब दर्शक नाटक की कथावस्तु को भलीभाँति समझ सकें, इसीलिये प्रस्तावना का स्थान महत्व-पूर्ण था। यह कार्य सूत्रधार के द्वारा किया जाता था, जो सक्षेप मे नाटक के उद्देश्य, उसके अभिनेय होने के अवसर को सूत्र रूप में दर्शकों को बतलाता था। वह इतने विस्तार में भी नही जाता था, कि नाटक की पूर्ण कथा से दर्शको का परिचय करा दे, और उनकी मानसिक जिज्ञासा और कौतूहल की वृत्ति एक दम समाप्त हो जाय। नाटक प्रारम्भ होने के पहिले कुछ और धार्मिक संस्कार होते थे, जिसे पूर्वरग कहते थे, और जिनका विधान शास्त्रीय माना जाता था। नगाड़े और मृदंग बजाकर दर्शको को अभिनय की सूचना दी जाती थी, गायक और वादक आकर गायन और वादन से देवस्तुति करके रगमच पर फूल बिखेरते थे, तत्पश्चात सूत्रधार मंगल श्लोक के पश्चात् प्रस्तावना नट या विदूषक से बातचीत करके देता था।

ध्यान देने की बात है कि जिस तरह हमारे यहाँ पूर्वरंग, प्रस्तावना और भरत वाक्य की व्यवस्था है, ठीक उसी प्रकार ग्रीक, रोमन और अग्रेजी नाटको में भी प्रोलोग (पूर्व कथन) तथा एपीलोग (उपसहार) की व्यवस्था थी।[1] यूनान मे भी नाटक का प्रारम्भ एक धार्मिक क्रिया से होता था। नाटक प्रारम्भ होने के पहले डायोनिसस देवता की पूजा की जाती थी, बलि-वेदी पर बलिदान चढ़ाया जाता था। गायक टोलियों मे आकर डायोनिसस की प्रशंसा के गीत गाते थे, और नृत्य द्वारा अपनी श्रद्धांजलि देवता को अर्पित करते थे। जिस तरह हमारे यहाँ सोम-देव की पूजा सोम रस से आर्य लोग करते थे, जिसका वर्णन वेदों मे मिलता है, उसी प्रकार यूनान मे भी सुरा के देवता बैंकस की प्रशंसा और स्तुति में सहगायन और नृत्य होता था। इन उत्सवों में जो नृत्य तथा गीत होते थे, उसे डिथिरैम्बिक डांस अथवा बकिक डांस या तन्मय नृत्य कहते थे, क्योंकि प्रमुख गायक तन्मय होकर जब नृत्य या गीत-गायन करते थे, तो उनका साथ उसी तन्मयता की दशा में लोग दिया करते थे। इन गीतों के पश्चात् ही नाटक की पूर्व कथा (या प्रोलोग) का प्रारम्भ होता था। यूरोपीडीस और प्लाउटस के नाटकों में भी ऐसी प्रस्तावना मिलती है।[2]

१—"The Sanskrit Drama in its Origin, Development, Theory & Practice"

—*Dr. A. B. Keith*, 1924, Page 339-44.

२—'In the Hindu Drama, every piece opens with a prulude or introduction in which the audience are made acquainted with the author, his work and the actors. It is simi-

वस्तु, नेता और रस भारतीय नाटक के इन तीन प्रमुख तत्वों में रस को जो प्रधानता हमारे भारतीय नाटकों में दी गई, उसका कारण यह था कि दृश्य काव्य, काव्य का सर्वोत्तम रूप माना गया था। परन्तु पश्चिम मे नाटकों में रस को स्थान नहीं दिया गया। वहाँ चरित्र-चित्रण, शीलवैचित्र्य और संघर्ष को नाटको में प्रधानता दी गई। इसीलिये वहाँ के नाटकों का दृष्टिकोण रसात्मक न होकर बुद्धिवादी हो गया।

नेता या चरित्र के चुनाव में भी दोनों देशों मे समानता पाई जाती है। परन्तु इस प्रकार की समानता करने का मेरा कदापि यह अभिप्राय नहीं है कि पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव स्वरूप हमारे यहाँ गीत, नान्दी पाठ, प्रस्तावना तथा नाटकों का संकलन किया गया है। जैसा कि अनेक यूरोपीय विद्वानों ने, यूनानी प्रभाव से ही भारतीय नाटकों को प्रोत्साहन मिला, इस कथन को सिद्ध करने के लिये भास, कालिदास के समय को इधर खींचने का प्रयत्न किया है। उन्होंने एक प्रमाण इस खींच तान में बलात लादने का दिया है। वह यह है कि भारतीय नाटकों में यवनिका का प्रयोग जो पर्दे के लिये किया जाता है यूरोपीय विद्वानों के मत से, यवन या यूनान शब्द से बना है; जो यह बतलाता है कि इस प्रकार के पर्दे का कपड़ा यूनान देश से ही आता था, परन्तु इस प्रकार का साम्य भ्रममूलक सिद्ध हो चुका है। वास्तव मे दोनो देशों की नाट्य पद्धतियाँ भिन्न थीं। दोनों की उत्पत्ति और विकास की प्रणालियाँ भी भिन्न थीं। निश्चय ही इन सब समानताओं के होते हुए भी दोनो का एक दूसरे पर किसी प्रकार का प्रभाव न था, इसको प्रारम्भ मे ही स्पष्ट कर देना चाहिए।

नाट्यशास्त्र के अनुसार नायक चार प्रकार से होते थे। १—धीरोदात्त, २—धीर ललित, ३—धीर प्रशान्त और ४—धीरोद्धत। अरस्तू ने भी अपने काव्य शास्त्र में प्रायः इसी प्रकार का विभाजन किया है। उसके अनुसार दुखान्त नाटकों के चरित्र तीन प्रकार के होते थे। १—आदर्श, २—वास्तविक, तथा ३—अधम। डॉ० कीथ के अनुसार यह वर्गीकरण भारतीय नाट्यशास्त्र के वर्गीकरण से बहुत कुछ साम्य रखता है[१]। परन्तु इस साम्य के अतिरिक्त

lar to the prologue of the ancient and modern times and they well accord the prologue of Euripidies and Plantus."
—'*The Theater of Hindus*', H. H. Wilson, page 20.

१—'The Indian Division of characters, High, Middle and Low has a certain parallelism to the Aristotelian distinction of modes of depicting characters as Ideal, Real and Inferior.
—"*The Sanskrit Drama*'; A. B. Keith, page 355.

भारतीय नाटको के नायक आदर्श देव, अभिजात कुल के वीर, त्यागी, उदार, साहसी, ज्ञानी, लोकप्रिय तथा सर्वगुण सम्पन्न होते थे। इसका कारण यह था कि हमारा भारतीय साहित्य आदर्शात्मक अधिक था, इसलिये लोक मे जो लोग प्रतिष्ठित और पूज्य हों वही इस उच्च स्थान के अधिकारी समझे जाते थे, जिससे जनता उनकी ओर आकर्षित होकर उनके गुणों का अनुकरण करके अपने चरित्र का उत्थान करे। राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, बुद्ध, शिवाजी और प्रताप आदि ही नायक के लिये उपयुक्त समझे गये, जो या तो अलौकिक दैवी शक्ति के कारण आदर्श गुणों के भडार थे, या श्रेष्ठ वीर या नेता थे।

दोनों देशो के नाट्य-सिद्धान्तों में दो एक और महत्वपूर्ण समानतायें मिलती है, जिनका लगे हाथ विचार कर लेना आवश्यक होगा। नाटक संस्कृत-नाट्य शास्त्र मे रूपक के कई भेदों मे से एक था। रूपक नाम इसलिए दिया गया कि उसमे रूप का आरोप होता था[1]। अभिनेता या नट राम या दुष्यन्त के चरित्र का आरोप अपने ऊपर करता था इसीलिये उसे रूपक कहते थे। यह आरोप अभिनय के द्वारा होता था। इसलिये अभिनय या अनुकरण दोनों देशो के नाटकों मे मूल तत्व माना गया। भरत के पश्चात संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रसिद्ध लक्षणकार धनंजय ने अपने दशरूपक में, जो नवी शताब्दी की रचना है, 'अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं', नामक कथन में अभिनय ही नाटक है, इस बात पर विशेष जोर दिया[2]। यूनान में भी नाट्य-शास्त्र के प्रथम आचार्य अरस्तू ने 'कला का मूल आधार अनुकरण है, कह कर अभिनय की ओर विशेष रूप से संकेत किया। अभिनय या अनुकरण का क्षेत्र बहुत व्यापक है। सारा विश्व ही रंगमंच है और समस्त मानव उसके अभिनेता है, जो जीवन भर अभिनय और अनुकरण करते है। जन्म से लेकर मृत्यु तक यह अभिनय चलता रहता है। शेक्सपियर ने अपने 'ऐज यू लाइक इट' नामक नाटक मे इस जीवन व्यापी विशाल विश्व रंगमंच और अभिनय का बड़ा ही हृदयग्राही चित्र खीचा है।[3] प्रो० विलसन ने भी दोनों देशों के नाटको में अभिनय तथा अनुकरण की महत्ता तथा नायकों की कुलीनता का सुन्दर

१—'तद्रूपारोपात्तु नाटकं'

२—'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' दशरूपक—आचार्य धनंजय—प्रथम प्रकाश ६-७

३—Shakespear, 'The Complete works'

—*'As You Like it.' Act 2, Scene VII*

साम्य दिखाया है[१]।

नाट्य-शास्त्र में अभिनय के भेद

भरत मुनि ने अभिनय चार प्रकार का माना है १—आंगिक, २-वाचिक, ३—आहार्य' और ४—सात्विक। जिनके द्वारा क्रमश अंग संचालन, वाणी, वेशभूषा और भाव प्रदर्शन की रीति की शिक्षा दी जाती थी। भरत मुनि के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि संस्कृत नाटको मे भी अनुकरण का क्षेत्र व्यापक और विस्तृत था और नाटककार देश, काल तथा पात्र का समुचित ध्यान रखते थे। इसके लिये विभिन्न रीतियो और शैलियों की व्यवस्था भी की गई जिससे नाटक में ध्वनि, आकर्षण और चमत्कार उत्पन्न हो।

संस्कृत नाटकों के मूल तत्व, भेद, वर्गीकरण तथा विकास

भरत के नाट्य-शास्त्र मे नाटक के अनेक अगो का कितना विस्तृत विवेचन हुआ है, इस पर पिछले पृष्ठों मे प्रकाश डाला जा चुका है। वस्तु, नेता और रस नाटक के इन तीन तत्वो का भी उल्लेख किया गया है। नेता के स्वरूप की भी व्याख्या हुई है, अब, वस्तु और रस पर थोडा और विचार कर लेना चाहिए।

कथावस्तु—नाटक के कथानक को वस्तु कहते है। इसके दो मुख्य भेद माने गये है। एक आधिकारिक कथा या मुख्य कथा, दूसरी प्रासंगिक कथा या सहायक कथा, जो मुख्य कथा से सम्बन्धित हो।

रामचरितमानस में राम की कथा तो आधिकारिक कथा है, और सुग्रीव की कथा प्रासंगिक कथा है। प्रासंगिक कथा वस्तु के भी दो भेद किये गये—एक पताका और दूसरा प्रकरी। जब आधिकारिक और प्रासंगिक कथा का प्रसंग अन्त तक चलता रहे तो उसे पताका कहते थे जैसे रामचरित मानस में सुग्रीव की कथा। जब यह कथा बीच ही में रुक जाय तो उसे प्रकरी कहते थे जैसे शकुन्तला नाटक के छठे अंक में कंचुकी और दासियों का वार्तालाप या सीता की खोज में राम द्वारा जटायु का दाह संस्कार।

१—"Like the Greek Tragedy, The Natak is to represent worthy or exalted personages only, and the hero must be a monarch like Dushyant or Ram. The action or more properly the passion should be but one the plot should be simple......In many of these characteristics the Natak presents obvious analogy to the tragedy of Greeks which was an imitation of solemn action told in pleasing language by the influence of pity or terror."

—'*The Theatre of Hindus*'; H. H. Wilson. Page 12.

अवस्थायें—हमारे यहाँ नाटकों में कार्य-व्यापार की अनेक श्रेणियाँ है, जिन्हे नाटक की अवस्थायें कहते है। यह अवस्थायें संख्या मे पाँच मानी गई है। १—आरंभ—जिसके द्वारा नायक के मन में किसी प्रकार के फल प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है, जैसे शकुन्तला नाटक मे दुष्यन्त के मन मे शकुन्तला को देखने की इच्छा। २—प्रयत्न—उस फल की प्राप्ति के लिये जो कार्य किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते है। ३—प्राप्त्याशा— इसके द्वारा फल के प्राप्त होने की आशा नायक के मन मे दिखाई देती है। ४—नियताप्ति—जब फल के प्राप्ति की आशा हो जाती है, तब विघ्न दूर होते दीखते है और फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है। ५—फलागम—जहाँ नाटक के अन्त मे फल की प्राप्ति हो जाती है, उसे फलागम कहते है।

पाश्चात्य नाटकों से तुलना

यूरोपीय नाटककारों ने भी नाटक की कथावस्तु को पाँच भागों मे विभक्त किया है—

१—आरम्भ या व्याख्या (एक्सपोजीशन)—जिसमें प्रारम्भिक सघर्ष की सूचना मिलती है, जैसे जूलियस सीजर नामक नाटक मे सीजर की महान् विजय तथा कैसियस और ब्रूटस की ईर्ष्या।

२—प्रगति या विकास (राइजिंग ऐक्शन)—जहाँ कार्य चरम सीमा की ओर बढ़ता है, जैसे जूलियस सीजर मे कैसियस, ब्रूटस तथा अन्य षड्यंत्रकारियो की हत्या करने का निश्चय।

३—चरम सीमा या आपद काल (क्राइसिस)—जहाँ संघर्ष चरम सीमा को पहुँच जाता है, जैसे जूलियस सीजर में सीजर की हत्या।

४—उतार या निगति (डिनाउमेन्ट)—जहाँ संघर्ष वाले दो दलों में एक दल की पराजय होने लगती है। जैसे 'जूलियस सीजर' में युद्ध के पहले ब्रूटस तथा कैसियस मे, रणक्षेत्र के कैम्प में पारस्परिक झगड़ा।

५—पतन या समाप्ति (कैटास्ट्रॉफी)—जहाँ कार्य का फल देखने को मिलता है। जैसे जूलिस सीजर में षड्यन्त्रकारियों की पराजय, ब्रूटस और कैसियस की आत्महत्या।

नाटक के उतार चढ़ाव की इन अवस्थाओं को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है—
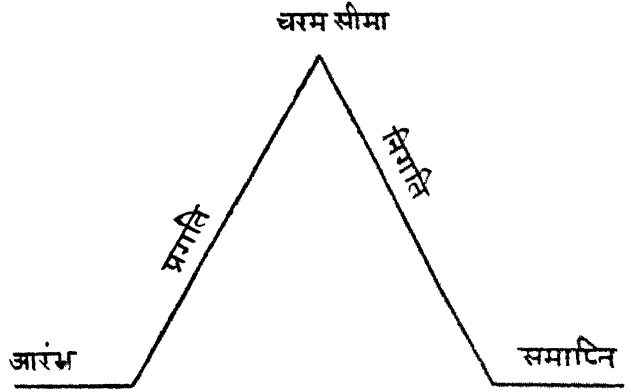
अर्थ प्रकृतियाँ

कथानक के उन आकर्षक अङ्गों को कहते है, जो कथावस्तु को फल प्राप्ति की ओर वेग से बढ़ाती है। इनकी संख्या भी पाँच मानी गई है। १—बीज, २—बिन्दु, ३—पताका, ४—प्रकरी और, ५—काय। बीज मुख्य फल का कारण होता है जो निरन्तर विकसित होता चलता है। बिन्दु कथा को आगे बढ़ाता है। पताका और प्रकरी का उल्लेख कथावस्तु के प्रसंग मे हो चुका है। कार्य उस अन्तिम फल को कहते हैं, जिसके लिये नाटक के सभी प्रयत्न और चेष्टाएँ की जायँ।

संधियाँ

अवस्थाओं और अर्थ प्रकृतियों के मेल को सन्धि कहते हैं, जो उसी क्रम से पाँच मानी गई हैं। १—मुख, २—प्रतिमुख, ३—गर्भ, ४—विमर्श और ५—निर्वहण।

संस्कृत ग्रन्थो मे दृश्य काव्य के दो मुख्य भेद किये गये हैं—रूपक और उपरूपक। रूपकों में रूप की प्रधानता रहती है, और उपरूपकों मे नृत्य और नृत की। शारीरिक अभिनय को नृत्य कहते है। जिस नृत्य में अभिनय, हाव-भाव और चेष्टाएँ न दिखाई जायं उसे नृत कहते हैं। फिर रूपक के दस और उपरूपक के अठारह भेद किये गये जिनके विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नही है।

उद्देश्य

भारतीय नाटकों का उद्देश्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति था, इसलिये उनका ध्येय आदर्शवादी था। इसीलिये हमारे यहाँ ऐसे नाटक लिखे

गये, जो सुखान्त थे। यूरोप में ग्रीक देशों की भाँति दुखान्त नाटक नहीं लिखे गये। भारतीय नाटककार पाप और पुण्य का संघर्ष दिखलाते हुये सर्वदा पुण्य की विजय और पाप की पराजय दिखलाता था, जिससे दर्शकों और जनता का नैतिक उत्थान हो। दैनिक जीवन में यह अविच्छिन्न नियम सर्वदा नहीं पाया जाता कि सदाचारी की सदा विजय ही हो, और पापी की सर्वदा-पराजय ही हो। अच्छे से अच्छे चरित्र वाले महान् पुरुष धक्के खाते रहते हैं। ईसा मसीह, सुकरात और गांधी को आदर्शवाद का पुजारी होने के कारण मृत्यु का वरण करना पड़ा ! राम को जंगल में घोर यातनाएँ सहनी पडीं। परन्तु यह सब होते हुए भी सदा विजय राम और ईसा की ही दिखाई गई। यदि भारतीय साहित्यकार रावण की विजय और राम की पराजय दिखलाता, जैसा संभव है और जैसा यूरोपीय नाटककारों ने दिखलाया है, तो समाज का महान् पतन हो जाता, सदाचार और नैतिकता से मनुष्य की आस्था और श्रद्धा उठ जाती और निराशा और पतन का साम्राज्य छा जाता। इसलिये भारतीय नाटककारों ने जीवन के आदर्शवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर उसी को अपने साहित्य का मूल आधार बनाया और इसीलिये सुखान्त नाटकों की ही रचना की।

सुखान्त नाटकों में यह बात नहीं थी कि नायक को सुख ही सुख भोगने पड़ते रहे हों। उसे युद्ध, संकट और पीड़ा के मझधार से जीवन नौका लेकर चलानी पड़ती थी, परन्तु अन्त में सदा उसी की विजय होती थी और वह एक विजयी सैनिक की भाँति जीवन-संग्राम से आनन्द और विजय का तुमुल नाद करता हुआ निकलता था। यह तुमुल नाद केवल नायक का ही नहीं, समस्त राष्ट्र या जाति का विजय घोष था, क्योंकि नायक समस्त राष्ट्र का आदर्श प्रतिनिधि था। यदि उसका पतन होता तो राष्ट्र का पतन होता, यदि उसकी पराजय होती तो राष्ट्र की पराजय थी। इसीलिये भारतीय साहित्य ने अमरत्व और आशा का संदेश दिया। कालिदास के 'शकुन्तला' की मनोमुग्धकारिणी आशावादिता और आत्मा को सदा के लिये गदगद कर देने वाली तृप्ति से गेटे का मन-मयूर नाच उठा, वह एक बार के लिये समाधिस्थ की भाँति ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता हुआ इस महान् कृति के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शन करने से अपने को रोक न सका। उसकी आत्मा ने उस चरम तुष्टि का अनुभव किया, कि उसे फिर कुछ पाना शेष नहीं रह गया[1] क्योंकि यूरोप के

1—"Wouldest thou the young years blossoms, and fruits of its decline,

दुखान्त नाटकों की अंधेरी गलियों और दूषित वातावरण में साँस लेते-लेते उसकी आत्मा आकुल हो उठी थी, वह चाहता था कि किसी सुरम्य तपोवन की शीतल और पवित्र वायु का सेवन करे और यह वायु उसे "शकुन्तला" मे कण्व के पावन आश्रम में मालिनी के तट पर प्राप्त हुई।

भारतीय नाटककार, इसीलिये नाटकों में मृत्यु, वध, युद्ध, राज विप्लव, क्रोध, शाप, शोक, विवाह, नगर, जनपद इत्यादि का घेरा और शमन, चुम्बन आदि दिखलाया जाना अनुचित बतलाता है। नाट्य-शास्त्र के बीसवें अध्याय में भरत मुनि ने इसे स्पष्ट कर दिया है। साहित्यदर्पणकार ने भी छठे अध्याय में अनेक गर्हित कार्यों की सूची दी है, जो रंगमंच पर नही दिखाना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि ऐसे कार्य जो दर्शकों या पाठकों में दुष्प्रवृत्तियों को जागृत करें, या जो निम्न रुचि के परिचायक है, उनको नाटकों में कदापि स्थान न मिलना चाहिए। क्योंकि जन मंगल की भावना के वे विपरीत पड़ते है।

परन्तु पाश्चात्य दुखान्त नाटकों में इस प्रकार के दृश्य वर्जित नहीं माने गये, न तो महान् चरित्रों या नायकों के पतन या मृत्यु को ही बुरा समझा गया। उनका कहना है कि आदर्श पात्र कल्पित और थोथे सिद्धान्तों की प्रतिमूर्ति मात्र रह जाते हैं, उनसे हमारा नैतिक सुधार नहीं होता। वे मानव न रहकर देवता बन जाते हैं, जिनसे हमारा कोई सम्पर्क नहीं रह जाता।

भारतीय नाटकों में दुख या सुख की प्राप्ति, पूर्व जन्म के कर्मों के आधार पर मानी गई है। कर्म की महत्ता को यहाँ एक स्वर से सभी स्वीकार करते हैं। जीवन में सुख और दुख जो हमें प्राप्त होते हैं, वह पिछले जन्म के कर्मों के परिणाम हैं। इस जन्म में हम जैसे कर्म करेंगे, वैसे ही परिणाम हमें भविष्य जीवन में भोगने को मिलते है। इस बात में यूनानी नाटककारों के अपराजेय भाग्यचक्र (नैमिसिस) से भारतीय कर्म सिद्धान्त विभिन्न है। डा० कीथ ने भी 'संस्कृत नाटक' नामक पुस्तक में उसका समर्थन किया है।[१]

डा० कीथ का यह भी कथन है कि संस्कृत साहित्य का दृष्टिकोण

And all by which the soul in charmed, enraptured feastad, and fed,
Woold'st thou, the earth and Heaven in one sole name combine,
I name thee O Shakuntala ? and all that once is said.'

—*Goethe.*

१— 'द संस्कृत ड्रामा'

—डा० ए० बी० कीथ, आक्सफोर्ड ऐट द क्लैरेंडन प्रेस, १६२४, पृ० २७७।

आदर्शवादी था, जिसके परिणामस्वरूप जीवन की विविध दुर्बलताओ और वास्तविकताओ का चित्रण नहीं हो सका और उसका आदर्शवादी ढांचा ही बना रहा। परन्तु उसमे दुख और सुख दोनो का मिश्रित चित्रण है। और उसमे जन समाज के कल्याण की भावना निहित है। यद्यपि दुख और शोक के यथार्थवादी चित्रण से हमारे नाटककार कभी तटस्थ नहीं रहे। उनमे दोनो का मिश्रित ताना-बाना दिखाया गया है। प्रो० विलसन ने भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन किया है[१]।

संस्कृत का नाटक साहित्य अत्यन्त समृद्धशाली है। भास, शूद्रक, कालिदास, भवभूति, हर्ष और विशाख की कृतियाँ नाट्य-जगत की अमर निधियाँ हैं, जिनकी दिव्य प्रभा से आज भी जगत आलोकित है, जिनका सदेश अमर है, चित्रण शाश्वत है और जिनका स्थान निर्विवाद रूप से संसार के नाटककारों में महान् है।

सस्कृत नाटको के आदर्शों, उनके मौलिक तत्वो तथा भेद प्रभेदों की संक्षिप्त व्याख्या हो चुकी, साथ ही साथ पाश्चात्य देशों के नाटकों के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन करने की भी चेष्टा हमने की। इस विवेचन और अध्ययन के परिणामस्वरूप हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। दोनों देशों के नाटकीय सिद्धान्तों और आदर्शो में निम्नांकित समानतायें मिलती है—

१—दोनों देशों के नाटकों की उत्पत्ति, धार्मिक पर्वों और उत्सवों के अवसर पर देवताओं और वीरो की पूजा के अवसर पर हुई।

२—अभिनय और अनुकरण की महत्ता को दोनों देशों के नाट्य-शास्त्र के समीक्षको ने स्वीकार किया।

३—दोनों देशों के नाटकों में नायक सद्वंश जात और उच्च गुणों से सम्पन्न रहते थे। चरित्रों का विभाजन भी समान था।

४—संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना और नान्दी पाठ के स्थान पर ग्रीक नाटकों मे सहगायन तथा नृत्य रखा गया।

१—'Another important difference from the classical drama and from that of the western countries is the total absence of the distinction between tragedy and comedy. The Hindu plays confine themselves neither to the crimes nor to the absurdities of mankind...They are invariably of mingled web, and hlend seriousness and sorrow with levity and laughter.

—*The 'Theatre of the Hindus'*—H. H. Wilson page 13, para 2,

५—पूर्व रंग तथा भरत वाक्य के स्थान पर प्रोलोग और इपीलोग रखा गया।

६—कार्य की एकता दोनों देशों के नाटकों में पाई जाती है।

७—स्वगत का प्रयोग दोनों देशों के नाटकों में हुआ।

परंतु इन अनेक समानताओं के होते हुए भी दोनो देशों के नाट्य सिद्धान्तों में बहुत सी विभिन्नताएं भी थीं—

१—संस्कृत नाटकों का उद्देश्य आदर्शवादी था। मनोरंजन के साथ ही लोककल्याण की भावना उनमें निहित थी।

२—संस्कृत नाटक काव्य के प्रधान अंग थे, इसलिये उनमें रस एक प्रधान तत्व माना गया। रस के अंगों, प्रत्यंगों तथा उसके निष्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों की विशेष व्याख्या की गई, जो पश्चिमी नाटकों में नहीं पाई जाती।

इन विभिन्नताओं से यह स्पष्ट है कि संस्कृत नाटकों पर ग्रीक नाटकों का प्रभाव नहीं है और उनका स्वतन्त्र ढंग से विकास हुआ है। वास्तव में दोनों देशों के नाटक अपनी-अपनी अलग परंपराओं और रूढियों को लेकर विकसित हुए। प्रो० मैक्समूलर के शब्दों में अनेक समानताओं के होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि एक का दूसरे पर प्रभाव है[1]।

पाश्चात्य देशों में नाटकों की उत्पत्ति, विकास, मूल तत्त्व तथा प्रमुख सिद्धान्त

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति और विकास के प्रसग में पिछले पृष्ठों में यह बताया जा चुका है कि ग्रीक देशों में नाटकों का आरम्भ डायोनिसस तथा वैकस देवताओं के सम्मान स्वरूप सहगायन तथा नृत्य के साथ हुआ। इन नाटकों को ट्रैजेडी कहा जाता था। ट्रैजेडी शब्द यूनानी "टेग्राम" शब्द से बना है, जिसका अर्थ बकरा होता है। डायोनिसस का धड बकरे के समान होता था, इसके अनुकरण तथा सम्मान में प्रस्तुत किये गये गीतों में करुणा और वेदना की भावना भरी रहती थी, इसलिये उन्हें ट्रैजेडी कहते है।

डायोनिसस की पूजा के निमित्त रंगमंच के बीचोबीच एक बलिवेदी बनाई जाती थी। यूनानियों का रंगमंच किसी पहाड़ी या समुद्र के किनारे

1—'In all the instances enumerated, there is no doubt similarity, but there is also essential difference such as renders independent development of Indian doctrine at least as probable as borrowing'.

—'*The Sanskrit Dram*'; Dr. A, B. Keith. page 356.

खुले स्थान पर एक वृत्ताकार घेरे के रूप मे रहता था। बीच में एक ऊँची वेदी रहती थी जो वैकस या सुरा के देवता की वेदी समझी जाती थी। वेदी धार्मिक रूप से पूज्य मानी जाती थी, और किसी को भी उसे अपवित्र करने का अधिकार न था, यदि कोई उसका असम्मान करता तो राज्य की ओर से उसे मृत्यु दंड दिया जाता। इसी वेदी के सम्मुख डायोनिसस के सम्मान मे जो गीत और नृत्य होते थे, उनमे ट्रैजेडी का मूल रूप निहित था।

जर्मन दार्शनिक नीत्से के अनुसार ट्रैजेडी ही नाटक का मूल रूप है। इस मूल रूप में दो विरोधी भावों का समन्वय है। जो यूनान के दो देवताओं के प्रतीक हैं। पहला डायोनिसस जो कल्पना, लालसा तथा आवेश का प्रतीक है। दूसरा अपोलो जो मर्यादा, प्रेम तथा शिष्टता का प्रतीक है। इन दो विरोधी भावों के संघर्ष से ही ट्रैजेडी की उत्पत्ति हुई। संघर्ष पाश्चात्य नाटकों का प्राण है। इसको अन्य पाश्चात्य समीक्षकों ने भी स्वीकार किया है[1]।

ट्रैजेडी, यूनानियों के लिये केवल मनोरंजन का साधन नहीं थी, वरन् उसमें उनके राष्ट्रीय सामाजिक तथा धार्मिक विचारों की छाप मिलती थी। यूनानी ट्रैजेडी में गीत और नृत्य का अंश पहले अधिक रहता था, और अभिनय का अंश बहुत कम। छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच में थेस्प देश के निवासी थेस्पिस ने ट्रैजडी में अभिनयात्मक तत्वो का सम्मिश्रण किया। गीत और नृत्य के साथ अभिनय तत्व भी ट्रैजेडी में जोडा गया। फिर उसका स्वरूप स्थिर हो गया। अगले डेढ सौ वर्षो में एस्किलीस, सोफोक्लीज और यूरोपिडीज आदि यूनानी दुखान्त नाटककारों द्वारा दुखान्त नाटक अत्यन्त उन्नत दशा में पहुँचाया गया। ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी के अन्त तक इस प्रकार के नाटकों का निर्माण समाप्त हो चुका था। इसके पश्चात समीक्षकों और कवियों ने इन नाटकों पर अपने विचारों और अपनी आलोचनाओं को प्रस्तुत किया। इन आलोचकों में अरस्तू का स्थान सर्वोच्च है। उसका काव्यशास्त्र पाश्चात्य नाट्य साहित्य का प्रथम प्रामाणिक और प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है।

अरस्तू का काव्य शास्त्र

अरस्तू ने अपने काव्य-शास्त्र में ट्रैजेडी और उसके स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की है। महाकाव्य तथा ट्रैजेडी की तुलना करते हुये अरस्तू ने ट्रैजेडी का स्थान महाकाव्य से अधिक ऊँचा बतलाया है। क्योंकि यह महाकाव्य की

1—'All drama ultimately arises of conflict.'
—'*Theory of Drama*'; A. Nicoll, page 92.

अपेक्षा अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। ट्रैजेडी के मूल रूप को समझने के लिये अरस्तू द्वारा दी गई परिभाषा पर भी विचार करना आवश्यक है।

"ट्रैजेडी उस कृति का अनुकरण है, जिसमे गम्भीरता के साथ, स्वरूप की स्वत: पूर्णता हो, जो अनेक प्रकार के आनन्दोत्पादक अङ्गों से सयुक्त होकर, अलंकृत भाषा में लिखी गई हो, जिसमें नाटकीय तत्वो का सम्मिश्रण हो न कि केवल विवरण या इतिवृत्तात्मक रूप मे जिसकी रचना की गई हो (जो महाकाव्य की प्रधान विशेषता है) और जो भय का प्रदर्शन करके मनोविकारों का उचित रेचन या परिष्कार कर सके।"[1]

इस परिभाषा के अनुसार अरस्तू ने ट्रैजेडी के लिये निम्नाकित तत्वो को निर्धारित किया—

१—कथावस्तु, २—पात्र, ३—भाषा शैली, ४—विचार, ५—छन्द, और ६—गीत और दृश्य।

इसमें कथावस्तु ही ट्रैजेडी की आत्मा और महत्वपूर्ण अग है। कथावस्तु से तात्पर्य उस घटना चक्र से है जिससे दर्शक परिचित न हो, अर्थात् जो लेखक के मन में हो।

इसके पश्चात पात्र, भाषा शैली, विचार, छंद और संगीत का क्रम आता है। संगीत का महत्व भी कुछ कम नहीं है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है, सरल और मिश्रित। सरल कथावस्तु में उद्देश्य की सफलता आकस्मिक परिवर्तन से नहीं होती है। मिश्रित कथावस्तु में आकस्मिक परिवर्तन को प्रधानता दी जाती है। कथा का विभाजन ऐसे कलात्मक ढंग से हो, कि उसका आदि, मध्य और अन्त पूर्ण सुगठित हो। उसके किसी भी भाग में शैथिल्य नहीं होना चाहिए।

आगे चलकर अरस्तू ने ट्रैजेडी में वर्णित चरित्र की विशेषताओं की व्याख्या की है। ट्रैजेडी का नायक सद्वंशजात् हो, परन्तु उसे साधारण मानवों के समान ही होना चाहिये। वह वैसी ही भाषा का प्रयोग करे जो उसके अनुरूप हो। महान् होते हुए भी दुर्भाग्य के थपेड़ों में पड़कर, या विरोधी

1—'A tragedy, then is the imitation of an action, that is serious, and also as having magnitude, complete in itself, in language with pleasurable acessaries, each kind brought separately in the parts of the work, in dramatic not in a narrative form,, with incidents arousing pity and f ear where with to accomplish its catharsis of such emotions.'

—*Aristotle—'Theory of poety and F ne Arts.', Prof. Butcher.*

शक्तियों के संघर्षमय दो पाटों के बीच में पडकर जब उसकी मृत्यु या पराजय होती थी तो हमारे मन मे उसके प्रति भय और करुणा तथा सहानुभूति का संचार होता था। नायक की मृत्यु या पतन का उत्तरदायित्व अंशतः, उसकी मानसिक दुर्बलता के ऊपर था। परिणामतया वह ऐसी परिस्थितियों से घिर जाता था जिसका वह ठीक सतुलन नहीं कर पाता था और अन्त में यन्त्रना और दुख को भोगते हुये मृत्यु या पतन को प्राप्त होता था। शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों मे भाग्य-चक्र की शक्ति इतनी महान् नहीं समझी गयी जितनी यूनानी दुखान्त नाटकों में। फलतः शेक्सपीयर के नायक अनेक गुणों से सम्पन्न होते हुये भी, अपनी चारित्रिक दुर्बलता या दोष के कारण ऐसी परिस्थितियो में घिर जाते थे जिससे वे असहाय और विवश हो जाते थे। परिणामतया या तो वे अकर्मण्य होकर अपने निश्चित कर्तव्य या उत्तरदायित्व से उदासीन हो जाते थे, जैसे हेमलेट : या अधिक महत्वाकांक्षी होकर ऐसे दुष्कृत्य कर डालते थे, जो उनके विनाश का साधन होते थे, जैसे मैकबेथ।

ट्रैजेडी का नायक दृढ़ प्रतिज्ञ तथा आत्मविश्वासी होता था। उसके चरित्र में स्वभावतः कोई न कोई मानवी गुण अपनी परिधि तोड़ कर उसकी आदर्श सीमा का उल्लंघन करता था। उदाहरण के लिये 'किंगलियर' का स्नेह, हेमलेट की मानवता, ब्रूटस का आदर्शवाद और ओथेलो का प्रेम सभी अपनी सीमा का उल्लंघन करते है।

संघर्ष या द्वन्द्व के अनेक रूप यूनानी दुखान्त नाटकों में प्राप्त होते है। जैसे नायक का दुर्भाग्य से संघर्ष, बाह्य परिस्थितियों से सघर्ष तथा राजनीतिक और आंतरिक परिस्थितियों से संघर्ष। "इन सघर्षों की चपेट में पड़कर नायक" की शक्तियाँ चकनाचूर हो जाती थी। यूनानी नाटककार सोफोक्लीज की प्रसिद्ध ट्रैजेडी 'ऐण्टीगान' मे ऐण्टीगान के मन में दो विरोधी भावो का बहुत ही सुन्दर संघर्ष दिखाया गया है। एक ओर कुमारी के मन में राजकीय शासन व्यवस्था के प्रति आदर है, जिसकी यह आज्ञा थी, कि वह अपने मृत बन्धु के शव की अन्त्येष्टि क्रिया न करे, दूसरी ओर उसके मन में उस स्वाभाविक कर्तव्य की प्रेरणा थी, जिसका यह आग्रह था कि वह अपने भाई का अन्तिम संस्कार करे।"[1]

शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों में भी नायकों के मन में संघर्ष का अत्यन्त मनोरम रूप दिखाया गया है। ये संघर्ष आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों में पाये जाते हैं। आन्तरिक संघर्ष नायकों के निजी मानसिक विचारों के कारण

१—'यूनानी नाट्यशास्त्र में ट्रैजेडी का स्वरूप'—डा० रामअवध द्विवेदी—'आलोचना' नाटक विशेषांक जुलाई १९५६।

होते है और बाह्य संघर्ष सामाजिक, राजनीतिक तथा पारिवारिक तथा अन्य बाह्य परिस्थितियों और विरोधी वर्गों द्वारा उत्पन्न होता है। उसके सभी दुखान्त नाटकों से इस प्रकार के संघर्षो के उदाहरण दिये जा सकते है। जैसे हेमलेट के मन मे कर्तव्य पालन और सदेह के बीच मानसिक संघर्ष चलता है। औथेलो के मन में प्रेम और ईर्ष्या के बीच, मैकबेथ में महत्वाकाक्षा या डकन की राज्यभक्ति के बीच तथा किंग लियर में पितृ प्रेम तथा सन्तान द्रोह की भावना मे सुन्दर संघर्ष दिखया गया है।

यूनानी दुखान्त नाटको में नायक का विनाश या पतन हमारे मन में करुणा और भय का संचार करता है। उससे हमारे गर्व का नाश होता है और कैथारिसिस या रेचन सिद्धान्त द्वारा हमारे भावों का परिमार्जन होता है। अरस्तू ने दुखान्त नाटकों के प्रभाव की तुलना चिकित्सा शास्त्र के विरेचन या परगेशन सिद्धान्त से की है। जिस प्रकार एक कुशल वैद्य, विरेचक औषधियों से शरीर की अस्वस्थता को ठीक करके वात, पित्त और कफ का सतुलन स्थिर करते है, उसी प्रकार दुखान्त नाटककार भय और करुणा को जागृत करके दर्शकों में भावों का परिष्कार करता है। यह सिद्धान्त अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है।[1]

भाषा और शैली की भी व्याख्या अरस्तू के काव्यशास्त्र में की गई है। उसने बताया है कि नाटक की भाषा स्वाभाविक होनी चाहिये। नाटक में कथोपकथन का विशेष महत्व है, क्योंकि उसी के आधार पर कथावस्तु और चरित्रचित्रण का विकास होता है।

अरस्तू द्वारा प्रतिपादित यूनानी ट्रैजेडी की व्याख्या अधूरी रह जायगी, यदि हम कथावस्तु के निर्माण में संकलनत्रय का क्या स्थान है, इस पर भी विचार न करें। अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र में संकलनत्रय की विस्तृत व्याख्या की है। संकलनत्रय से उसका मतलब स्थान संकलन, काल संकलन और कार्य संकलन से है। उसने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि आदि से अन्त तक सारा अभिनय किसी एक ही कार्य के सम्बन्ध में होना चाहिये; किसी एक ही स्थान का होना चाहिये और किसी एक दिन का होना चाहिये। संकलन का पालन अत्यन्त कड़ाई से यूनानी नाटकों में किया गया। इटली के नाटककारों ने भी इन पर विशेष जोर दिया। और फिर वहाँ से फ्रान्स में बहुत दिनों तक इसका पालन किया गया। नाटक में एक ही कृति का वर्णन होना चाहिए, इस सिद्धांत की महत्ता को तो सबने स्वीकार किया।

काल सकलन पर अरस्तू का यह विचार था कि नाटक में उतनी ही

१—अरस्तू का काव्यशास्त्र—डा० नगेंद्र प्र० सं०, सं० २०१४, पृ० ८७।

घटनाओं का समावेश किया जाय, जो चौबीस घन्टे के अन्दर की हों। बहुत से लोगों ने उसे तीस घन्टे के अन्दर बद्ध होना चाहिये, ऐसा भी बताया है। परन्तु श्रेष्ठ नाटकों की रचना हो ही नहीं सकती यदि काल संकलन के इस नियम का कडाई से पालन किया जाय। नाटक की घटनाएँ चाहे कितने ही समय की क्यों न हों, काल संकलन की बाधा उसमे नही डालनी चाहिये। हाँ, इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि दो घटनाओं का वर्णन कालान्तर के बाद दो अङ्कों में हुआ है या नही। नाटककार को चाहिये कि बीच में कुछ ऐसे दृश्यों की योजना करे, जिससे दर्शक को यह निश्चय समझ में आ जाय कि दूसरे अङ्क की घटना कुछ समय बाद घटित हो रही है।

स्थान संकलन का सिद्धान्त भी यूनानी नाटको के ही अनुकूल था, परन्तु उसका पालन सर्वत्र नही किया जा सकता था। स्थान सकलन का तात्पर्य यह था कि नाटक में वर्णित घटनाएँ एक ही स्थान में दिखलानी चाहिए। यूनानी रंगमंचों का ढाँचा सरल होता था, उनके नाटको के सह-गायक आदि से अन्त तक रंगभूमि ही पर उपस्थित रहते थे, और अवसर के अनुसार गीत और नृत्य किया करते थे, दृश्यों के परिवर्तन की आवश्यकता ही नहीं रहती थी। बाद में अच्छे नाटकों के विकास में इस नियम से बाधा पड़ी, क्योकि यदि किसी नाटककार को दृश्य परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती थी, तो इस सिद्धान्त के भय से वह ऐसे दृश्य लाने से बच जाता था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इन सिद्धान्तों का पालन इटली तथा फ्रांस में बहुत दिनों तक क्लासिकल नाटको में हुआ, बाद में इनका बन्धन ढीला पड़ गया। रोमान्टिक नाटको में इन नियमों की अवहेलना की गई। शेक्सपीयर तथा काल्डारान ने, जो रोमान्टिक नाटक क्षेत्र में विश्वविख्यात है, इन नियमों के परिपालन पर विशेष ध्यान नही दिया। स्पेन के प्रसिद्ध नाटककार लोप दे वेगा ने इन नियमों का विरोध करते हुये कहा था कि जब मुझे कोई नाटक लिखना होता है, तो मैं इन नाटकीय संकलन के नियमों को छः तालियों में बन्द कर देता हूँ और जनता से प्रशसा चाहने वाले लोगो की कला के अनुसार लिखता हूँ। "फ्रांस के प्रसिद्ध कामेडी लेखक मोलियर ने घोषित किया, कि क्या सब नियमों में सबसे बड़ा नियम यह नही है कि जनता को प्रसन्न किया जाय। उसने अपने नाटक के एक पात्र के मुख से कहलाया है, 'जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, जब कोई नाटक देखने पर कोई बात मुझे प्रभावित करती है, और मेरा पूर्ण मन बहलाव हो जाता है, तो मैं यह नहीं पूछता हूँ कि मुझसे भूल तो नहीं हो गई और अरस्तू के नियम 'मुझे हँसने से रोकते तो नहीं हैं।"[1]

१—'समीक्षाशास्त्र'—प० सीताराम चतुर्वेदी पृ०, ८२४।

अब विचारणीय यह है कि इन तीनों नियमो का पालन सर्वांश मे प्रत्येक नाटक मे हो सकता है या नही । यदि सच पूछा जाय तो इन नियमों की अनि-वार्यता नाटक की स्वाभाविक गति मे बाधक ही होगी, साधक नही । दूसरे प्राचीन काल के यूनानी नाटको का रंगमच बहुत ही सरल होता था, दृश्य एक ही स्थान पर दिखाये जाते थे । अतः उनमें इन नियमों का पालन हो सकता था। आधुनिक नाटकों में कड़ाई से यदि इन नियमों को व्यवहार मे लाया जाय, तो लेखक को अपनी पूरी सामग्री के उपयोग करने का अवसर नही मिलेगा । परिणामतया न तो इन नियमो का अधानुकरण ही होना चाहिए और न इनको हेय ही ठहराना चाहिए । नाटककार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कथा का निर्वाह प्रारम्भ से अन्त तक सुगठित और शृङ्खलाबद्ध रहे । उसमे कही शैथिल्य न हो । उसमे सवेदनात्मक अन्विति का प्रदर्शन उचित ढग से किया जाय ।

पाश्चात्य नाटकों के भेद, उनका विकास और उनकी विभिन्न धारायें

पाश्चात्य समीक्षकों ने नाटक के दो प्रमुख भेद माने हैं—

१—ट्रैजेडी, २—कॉमेडी ।

पाश्चात्य देशों के नाटक साहित्य में यूनानी काल से लेकर अब तक इन दोनों भेदों का किस प्रकार विकास हुआ, और उनके प्रसिद्ध लेखक कौन थे, इस पर संक्षिप्त प्रकाश डालना आवश्यक है ।

ग्रीक-ट्रैजेडी—

पिछले पृष्ठो में ग्रीक ट्रैजेडी के मूल रूप, उसके उद्देश्य और तत्वों की व्याख्या विस्तारपूर्वक हो चुकी है । अरस्तू की परिभाषा और उसके आवश्यक अंगों पर भी विचार विमर्श किया जा चुका है । ग्रीक दुखान्त लेखकों में एची-लस, सोफोक्लीज और यूरोपिडीज अधिक प्रसिद्ध हैं। इन नाटककारों की कृतियों और विशेषताओं पर यहाँ एक विहंगम दृष्टि डालना अनावश्यक न होगा ।

एचीलस—यूनान का प्रथम दुखान्त नाटककार था, जो ५२५ ई० पू० उत्पन्न हुआ था । वह एक वीर योद्धा भी था। यूनान की तरफ से उसने फारस के युद्ध में भाग लिया था । उसके नाटक राष्ट्रीय और धार्मिक है । उसके समय में नाटकों में केवल एक ही पात्र रहता था । अभिनय कम और गीत अधिक रहते थे । थियेटर का नाम सप्लाएण्ट था । पात्रों की पोशाक एचीलस स्वयं निश्चित करता था । उसके लिखे हुए ९० नाटक बताये जाते हैं, जिनमें केवल

७ उपलब्ध हैं । इन नाटकों में प्रोमीथियस अन बाउंड, आरेस्ट्रिया, पर्सियनस अधिक उल्लेखनीय है ।

सोफोक्लीज़—यह ३९७ ई० पू० उत्पन्न हुआ था । उसने बहुत अधिक ख्याति, अपने नाटको द्वारा प्राप्त की । अपने नाटको में धार्मिक तत्वों के स्थान पर अभिनयात्मक तत्वों को सम्मिलित किया । उसके नाटको में चरित्रों की सख्या तीन तक बढ़ाई गई । उसके लिखे हुए १२० नाटक बताये जाते है जिनमे से केवल ७ मिलते है । उसके प्रथम नाटक का नाम 'इलक्ट्रो' है । दूसरा नाटक 'ऐण्टीगान' है जिसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है ।

यूरोपिडीज—इसने ग्रीक रंगमंच और नाटकों मे यथार्थवाद का समावेश किया । उसके चरित्र आधिदैविक न होकर साधारण और वास्तविक गुण दोषों से युक्त रहते थे । नारी पात्रों का उसने अच्छा चित्रण किया । ईश्वर में उसका विश्वास नहीं था । अतः उस पर नास्तिकवाद का आरोप लगाया गया । सरकार की ओर से उसे देश निर्वासन का दड मिला । उसके ९० नाटकों मे केवल १८ प्राप्त है ।

रोम के दुखान्त नाटक

यूनान के पतन के बाद नाटकीय परम्परा रोम में पहुँची । रोमन लेखकों ने दुखान्त नाटकों में ग्रीक लेखकों के ही आदर्शों का पालन किया । उन्होने नाट्य रचना में कोई मौलिकता न दिखलाई । रोम लेखकों में सेनेका प्रसिद्ध है जो ईसा के चार वर्ष पूर्व उत्पन्न हुआ था । सेनेका, वेकन की भाँति प्रसिद्ध दार्शनिक और वैज्ञानिक था । उसके दुखान्त नाटकों की संख्या दस है, जिनमें 'मीडिया,' 'फोडरा', और 'अगेमेनान' अधिक प्रसिद्ध है । उसके अनेक नाटकों में मार काट, रक्तपात और निराशा के गहरे चित्र मिलते है । उसके खल नायक रक्तपात और दुष्टता के लिये प्रसिद्ध हैं । शेक्सपीयर ने अपने दुखान्त नाटकों के कथानक को सेनेका के नाटकों से ही लिया था ।

मध्ययुग के दुखान्त नाटक

रोम साम्राज्य के पतन के बाद करीब तीन-चार सौ वर्षों तक नाटक नहीं लिखे गये । नाटको का सम्बन्ध पादरियों और गिर्जाघरों से हो गया । चर्च की दीवालों पर, बाइबिल की कहानियाँ चित्रित कर दी जाती थीं । ईस्टर तथा बड़े दिन के पर्वों पर बाइबिल से कथानक लेकर, उसी कथोपकथन में लैटिन भाषा में नाटक खेले जाते थे । इन नाटकों का संचालन व्यापारी संघ किया करते थे, जो घूम-घूम कर नाटकों को खेलते थे । इन नाटकों को मिस्टरी

चक्र कहते थे । कभी कभी ईसाई सन्तों के जीवन सम्बन्धी कथानक इन नाटकों के विषय होते थे । इन नाटकों मे मिस्टरी और मारल्टी नाटक प्रसिद्ध है ।

एलिजाबेथ के समय के दुखान्त नाटक

इस समय सारे यूरोप मे रिनेसा की क्रान्ति हो रही थी । चर्च का प्रभुत्व सरकार के हाथ मे जा रहा था । परिवर्तन के इस समय मे, जनता का ध्यान नये शोधो और आविष्कारो की ओर था । विद्या का यह पुनरुत्थान पहले इटली से प्रारम्भ हुआ फिर वहाँ से सारे यूरोप मे फैल गया । अग्रेजी साहित्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पडा । परिवर्तन तथा क्रान्ति के इसी अभ्युदय काल में एलिजाबेथ के समय के नाटको का निर्माण हुआ । इनमे सबसे प्रसिद्ध शेक्सपीयर के दुखान्त नाटक हैं, जो विश्व की अमर विभूति के रूप में है । उनके अतिरिक्त मार्लो, जानसन, हेवुड तथा बेवस्टर के दुखान्त नाटक भी उल्लेखनीय हैं ।

इन दुखान्त नाटकों में विलक्षरा रचनात्मक प्रतिभा और मानव मन का सूक्ष्म अध्ययन प्राप्त होता है । सौंदर्य तथा रक्तपात, कविता, संगीत और मारकाट सभी का साथ-साथ चित्रण इन नाटको मे होता था । इस समय के दुखान्त नाटको के तीन मुख्य स्वरूप प्राप्त होते है—

१—**मारलो के दुखान्त नाटक**—जिनमें नायक महान चरित्र वाले, तथा अजेय इच्छाशक्ति वाले होते थे । 'डा० फास्टस'--टेम्बरलेन' इसी प्रकार के नायक हैं ।

२—**मारेलिटी वर्ग के नाटक**—जिनमे सत और असत प्रवृत्तियों का संघर्ष रहता था, जैसे 'मैलेथ', 'ओथेलो' आदि ।

३—**स्पेन के दुखान्त नाटकों के आधार पर लिखे गये नाटक**—जैसे किड के नाटक, जिनमे बदला लेने की प्रवृत्ति नायकों में होती थी । जैसे 'हैमलेट', 'किंग लियर', 'रिचर्ड' इत्यादि ।

डोमिस्टिक और हारर ट्रैजेडी

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में जार्ज चैपमैन, 'फिलिप मैसिंजर' और टामस मिडिल्टन के नाटक मुख्य हैं जिनमें घरेलू तथा त्रासद दुखान्त घटनाओं का वर्णन किया गया है । इन नाटकों मे जार्ज चैपमैन का 'द ड्यूक आफ मिलान' (१६२३) और टामस मिडलटन का 'द विच' तथा जान वेवस्टर का 'द व्हाइट डेविल' (१६११) प्रसिद्ध हैं ।

फ्रांस के नये क्लासिकल दुखान्त नाटक

इन नाटकों में अरस्तू के सकलनत्रय के सिद्धान्तों का कड़ाई से पालन

किया गया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी के रीतिकालीन काव्य की भाँति, नाटक का कलापक्ष तो सुरक्षित रहा, परन्तु उसका हृदय पक्ष नाटकों से गायब हो गया। इन नाटककारो मे कारनेली और रेसीन मुख्य है। कारनेली का 'द सिड' उस समय की प्रसिद्ध ट्रैजेडी है।

आधुनिक दुखांत नाटक और उनकी विशेषताएँ

इब्सन के पश्चात् आजकल जो दुखान्त नाटक लिखे जा रहे है, उनकी गतिविधि पर यदि हम ध्यान दे, तो उनमे प्राचीन दुखान्त नाटको से आकाश पाताल का अन्तर दिखाई पडेगा। इस अन्तर को समझने के लिये हमे उन परिस्थितियो को समझना है, जिनके आधार स्वरूप ये नाटक लिखे जा रहे है।

ग्रीक दुखान्त नाटको की भाँति आज के दुखान्त नाटको का उद्देश्य धार्मिक न होकर सामाजिक और घरेलू हो गया है।' क्योकि जनतंत्रवाद के कारण राजसत्ता आज राजा मे न होकर प्रजा मे है। इसलिये आजकल के नाटकों के नायक राजा और राजकुमार न होकर कुली, मजदूर, बिसाती और क्लर्क होते है। आजकल के नाटकों में व्यक्तिगत संघर्ष के स्थान पर वर्ग-गत संघर्ष दिखाई देता है। क्योकि व्यक्ति व्यक्ति नही, वरन् एक वर्ग का प्रतिनिधि है। 'गाल्सवर्दी' के 'न्याय' में फाल्डर एक वर्ग का प्रतिनिधि है। 'लायलटीज' में 'डि लेविस' यहूदी जाति का प्रतिनिधि है। 'इब्सन' के 'घोस्ट' में 'श्रीमती एलविंग' आधुनिक समाज की रूढिवादिता और बनावट के विरोध में खडी होती है।

इन नाटको के विषय-विवेचन में भी महान् परिवर्तन होगया है। इनमें घरेलू, सामाजिक और यथार्थवादी समस्याओं का चित्रण अधिक होता है। उदाहरण के लिये शादी, प्रेम, तलाक, पूँजीपति और मजदूर का संघर्ष, मक्कारी, जाल, फरेब, धूर्तता तथा व्यक्ति के बनावटी और खोखले स्तरों का चित्रण करना ही आज के दुखान्त नाटकों का विषय है।

इन नाटकों मे काव्यात्मक संवाद तथा लम्बे स्वगत भाषण नही मिलेंगे। दैनिक जीवन के अनुभवों के प्रकाशन के लिये गद्य ही यथार्थवाद का सबसे सरल माध्यम हो गया है। आधुनिक थियेटरों मे पहले की सी तड़क भड़क, और सजावट के दृश्य नहीं मिलेंगे। इनका स्थान सादगी ने ग्रहण कर लिया है। इन नाटको और रंगमंचों का उद्देश्य, ग्रीक नाटकों की भाँति धार्मिक या एलिजाबीथन नाटको की भाँति शुद्ध मनोरंजनात्मक नहीं है वरन् पूर्ण व्यावसायिक है। प्रबन्धकों का ध्यान अर्थोपार्जन की ओर अधिक रहता है। नाटकों द्वारा जनता की रुचि का कितना उत्थान और परिष्कार हुआ, इस पर उनका कोई ध्यान नही जाता।

पाश्चात्य देशों के सुखान्त नाटक और उनकी प्रवृत्तियाँ

ग्रीक सुखान्त नाटक

ट्रैजेडी की भाँति, ग्रीक कामेडी की भी उत्पत्ति धार्मिक अवसरों पर हुई। अन्तर यह था कि ट्रैजेडी शोक के अवसर पर, डायोनिसस के सम्मान मे खेली जाती थी, और कामेडी हर्ष के अवसर पर 'बैकस' या सुरा देव की प्रशसा में अभिनीत होती थी। ग्रीक कामेडी की चरम उन्नति 'एरिस्टोफेन्स' के हाथों हुई। कामेडी शब्द 'कामस' शब्द से निकला है। 'कामस' व्यक्तियों के उस समुदाय को कहते हैं जो पक्षी, मेढक या घोड़े की आकृति धारण करके प्रहसन पूर्ण तथा व्यंग्यात्मक और आलोचनात्मक अभिनय किया करते थे। आलोचना और व्यंग्य के अतिरिक्त इन नाटकों में कोई और खास कथावस्तु न थी।

रोमन काल की कामेडी

ये नाटक ग्रीक कामेडी के आधार पर ही लिखे गये। इनमें ग्रीक कामेडी का भांति सामाजिक व्यंग्य और आलोचना नहीं रहती थी। गीत भी कम थे। प्रत्युत, इन नाटकों का ढांचा यथार्थवादी जीवन से लिया जाता था। देवताओं, दानवों तथा राजाओं के स्थान पर साधारण पिता, पुत्र और स्त्री का चित्रण रहता था। इस समय के कामेडी लेखकों में 'प्लाटस' और 'टेरेन्स' प्रसिद्ध है। इन नाटककारों का स्थान, भले ही महत्वपूर्ण न रहा हो, परन्तु आगे चलकर यूरोप के नाटककारों ने इन्ही को आदर्श माना। शेक्सपीयर के कई सुखान्त नाटक 'प्लाटस' और 'टेरेन्स' के आधार पर ही लिखे गये।

मध्ययुग की कामेडी

इन नाटकों का आधार बाइबिल था, जो लैटिन भाषा में लिखे जाते थे। ये नाटक गिरिजाघर से संबंधित हो गये। 'आदम और ईव' तथा ईसा के जीवन सम्बन्धी कथानकों का चित्रण इनमें होता था। इन नाटकों को 'मिरे-किल' नाटक कहते थे। एक दूसरे प्रकार के और नाटक इस समय लिखे गये, जिन्हें 'मारेलिटी' नाटक कहते थे। इन नाटकों के पात्र धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर, सत्य, असत्य तथा पाप, पुण्य के रूप में होते थे। हिन्दी नाटक-कारों पर भी इन नाटकों का प्रभाव पड़ा है, जिसकी व्याख्या आगे चल कर की जायगी।

आपेरा और पैस्टोरल

इटली में इसी समय आपेरा लिखे गये। ये रिनेसा काल की उत्पत्ति हैं। आपेरा ऐसे नाटकों को कहते है, जिनमें गीतों की प्रधानता हो। सारे यूरोप

में ही नही संसार के देशों मे इनका प्रचार हुआ। हिन्दी मे भी इनके आधार पर आपेरा लिखे गये है। उस समय के यूरोप में राजाओं और महाराजाओं में, आपेरा रंगमच बनाने के लिये होड़ सी लग गई क्योंकि उसके तडक भड़क के दृश्य लोगो को अच्छे लगते थे, उसका सगीत भी आकर्षण का प्रधान कारण था। इटली मे आपेरा के लेखक 'गिवोवैनी वैटिसा' थे। सन १७२८ ई० में जब इनके आधार पर लदन मे, 'द बेगर्स आपेरा' खेला गया, तो उसने इंग्लैड के दर्शको को चकित कर दिया। इन्ही आपेरा नाटको का एक रूप 'पेस्टोरल' भी था, जिनमे चरागाहो मे रहने वाले गडरियों के जीवन की प्रेम सम्बन्धी घटनाओं का चित्रण किया जाता था। शेक्सपीयर ने अपने सुखान्त नाटको मे 'टेम्पेस्ट' तथा 'मिड समेर नाइट्स ड्रीम' के कथानक इन्ही नाटको से लिये थे।

'कामेडिया देल आर्ते'

इन नाटकों का सूत्रपात सबसे प्रथम सत्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ में इटली में हुआ। फिर सारे यूरोप मे इनकी धूम रही। इन नाटको में प्रकृति के सुरम्य दृश्यों मे होने वाले आनन्द तथा प्रेम की घटनाओं की चर्चा होती थी। स्पेन के 'लोप द वागा' और 'कालड्रान' ने इस प्रकार के नाटकों से बहुत अधिक ख्याति प्राप्त की।

एलिजाबेथ-कालीन कामेडी

इन नाटको को हम प्रधानतया दो वर्गों मे रख सकते है—१—शेक्सपीयर की रोमान्टिक कामेडी, जिनमे प्रेम, साहस, संगीत तथा उल्लास का वातावरण भरा हुआ है। उनका कार्यक्षेत्र कभी समुद्र के किनारे, सुन्दर जगलों मे जैसे 'टेम्पेस्ट' में, कभी चारागाहों में, जैसे 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' में, कभी द्वीपों में जैसे 'ट्वेल्थ नाइट' में दिखाया गया है। २- बेन जानसन की यथार्थवादी कामेडी, जो तीखे व्यंग्य तथा तत्कालीन यथार्थवादी चित्रण से भरी हुई है। इन नाटकों को हास्य प्रधान नाटक या 'कामेडी ऑफ ह्यूमर्स' भी कहते है। इन नाटकों में 'बालपोन' तथा 'आल्केमिस्ट' अधिक प्रसिद्ध हैं।

मोलियर के सुखान्त नाटक

सुखान्त नाटकों के क्षेत्र में, मोलियर को विश्वव्यापी ख्याति मिली है। उसके नाटकों का अनुवाद संसार की सभी प्रसिद्ध भाषाओं में हो चुका है। हिंदी में भी उसके अनेक नाटकों के अनुवाद हुए हैं, जिनकी व्याख्या आगे चल कर की जाएगी। मोलियर ने, फ्रांस के लुई चौदहवें के समय मे, अपने नाटकों को लिखा था। उसकी कृतियो को राज-प्रोत्साहन खूब मिला। प्रायः अपने नाटकों के अभिनय के लिए वह रंगमंच पर भी उतरता था। उसके सुखान्त

नाटक शेक्सपीयर के नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप थे। उसमे जगलों तथा उपवनों का दृश्य न खीचकर, तत्कालीन पेरिस के फैशनेबल समाज का चित्र खींचा। इन नाटको का हास्य बौद्धिक ढंग का था। शेक्सपीयर के नाटको की भांति भावना प्रधान न था। 'बैन्टील' और 'मिलेट' के शब्दों मे उसका हास्य विचारशील था।[1]

मोलियर ने अपने सामाजिक नाटको मे, व्यक्ति की ही आलोचना की है। क्योंकि वह समाज को निर्दोष मानता था।

रेस्टोरेशन कामेडी या 'कामेडी आफ मैनर्स'

इन नाटको का उद्देश्य पूर्ण मनोरजन तथा तत्कालीन जीवन के कृत्रिम वातावरण का चित्रण करना था। उस समय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जैसे खान-पान, बातचीत, रहन सहन तथा पहनावे में कृत्रिमता की प्रधानता थी। अवैध प्रेम तथा व्यभिचार के कथानको से ये नाटक भरे पड़े है। इनमें कथावस्तु की प्रधानता नही, वरन् शिष्ट और बनावटी संवाद की प्रधानता है। इन नाटकों का आकर्षण केवल राजाओ और उनके दरबारियों के लिये था। साधारण जनता का सपर्क उनसे न था। इन नाटको के दो-एक प्रसिद्ध उदाहरण दिये जा सकते है। 'कानग्रीव' के 'द वे आफ दी वर्ल्ड', 'शेरिडन' के 'द स्कूल फार स्कैन्डल' में इसी कृत्रिम वातावरण का चित्रण है।

अठारहवीं शताब्दी की 'सैन्टीमैन्टल' कामेडी

इन नाटकों में बनावटी अश्रुपात, कृत्रिम व्याख्यान तथा अच्छाई का बनावटी चित्रण किया गया है। इन नाटकों का स्तर बहुत ही निम्न कोटि का हो गया। झूठी नम्रता और विनय प्रदर्शन के चित्र इनमें मिलते है। इन नाटककारों में 'केली' और 'कम्बर-लैंड' अधिक प्रसिद्ध है। 'केली' का 'द वेस्ट इंडियन' और 'कम्बर लैड' का 'फाल्स डिलीकेसी' इस प्रकार के नाटकों के सुन्दर उदाहरण हैं।

आधुनिक कामेडी और इसकी विशेषताएँ

कथानक के दृष्टिकोण से आजकल की कामेडी का क्षेत्र सबसे अधिक

१—'Molier expected from his audience, not the roars of laughter like Platus and Terence, nor the delightful applause of Shakespeare song and union of lovers, nor the laughter Jonson. But he wanted to evoke the thoughtful laughter.'

—'*Art of Drama*'; Bentle & Millet, Page 81.

विस्तृत हो गया है । इसका कारण यह है कि आजकल का जीवन और उसकी जटिलताएँ भी बढ गई है । आजकल 'शा' की भाति अनेक लेखक प्रचार को कामेडी का ध्येय मान कर लिखते है । ग्रीक ढङ्ग की कामेडी को छोड़कर कामेडी के जिन छः वर्गो का चित्रण पीछे हुआ है, वे सब आजकल मिलती है ।

१—आजकल रोमन ढङ्ग की कामेडी भी लिखी गई हैं, जिनमें मारकाट और परिस्थितियों के दावपेच तथा उलझन की कथा रहती है । जैसे 'जान ड्रिंकवाटर' का 'वर्ड इन हैड ।'

२—जानसन की शुष्क व्यंग्यपूर्ण ढङ्ग की कामेडी के उदाहरण भी आजकल प्राप्त होते है । जैसे 'सिंज' का 'प्ले व्याय आफ वेस्टर्न वर्ल्ड' और 'शा' का 'द डाकरस डाइलेमा' ।

३—शेक्सपीयर के ढङ्ग की कामेडी के उदाहरण कम हैं । 'ग्रैन विल वार्कर' का 'प्रमिला' ।

४—मोलियर के ढङ्ग की कामेडी 'शा' की 'केनडिडा' है ।

५—रेस्टोरेशन कामेडी की तरह 'आस्कर वाइल्ड' का 'लेडी विंडरमौर ।

६—१८ वीं शताब्दी से सैंटिमेंटल कामेडी के उदाहरण, जैसे 'सर जेम्स वारी का 'किस फार सिनडरेला', और 'क्वालिटी स्ट्रीट' ।

कभी-कभी कामेडी के इन सभी वर्गों का मिश्रित रूप भी एक ही नाटक में आजकल देखने को मिलता है । 'शॉ' के नाटक किसी न किसी सिद्धान्त के प्रचार को लेकर चलते है । 'शॉ' ने अपने नाटकों मे उसने, 'इब्सन' के यथार्थवादी ढांचे को अपनाया है । 'आर्म्स ऑफ दि मैन' में, उसने युद्ध की मखौल उडाई है । 'मैन एण्ड सुपरमैन' में जीवन-शक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है तथा नारी के प्रेम की भर्त्सना की गई है । इन नाटकों मे चित्रण भावना प्रधान न होकर विचार प्रधान रखा गया है । क्योंकि उनमे सिद्धान्तों का प्रतिपादन है ।

मेलोड्रामा और फार्स

ट्रैजेडी और कामेडी के बिगड़े हुए परिवर्तित स्वरूप को क्रमशः मेलोड्रामा और फार्स कहते हैं । यद्यपि इनकी गणना उच्चकोटि के नाटको में नही की जाती, परन्तु इनका प्रचार विश्वव्यापी और विशाल है । आजकल के चल चित्रों के ६० प्रतिशत नाटक इन्ही दोनों कोटियो में आते है । मेलोड्रामा पहले इटली में लिखे गये । उनमें पहले संगीत की प्रधानता रहती थी । आजकल उनके कथानक सनसनीदार, विस्मयात्मक और भड़कीले होते है । उनमें न तो उच्च कोटि का अभिनय और न चरित्रों का सूक्ष्म चित्रण मिलेगा । जैसे नायिकाओं

का अपहरण साधारण रूप में इनमें मिलेगा। जीवन के कृत्रिम और असंभव उछल कूद के दृश्य, जो सनसनीखेज हैं, इनमें अधिक मिलेंगे।

फार्स भी उसी प्रकार कामेडी का एक विकृत रूप है, जिसमें उच्च कोटि के हास्य का अभाव और सस्ते हास्य का प्रदर्शन मिलेगा। जैसा आजकल के अधिकांश चलचित्रों में प्राप्त होता है। इसमें विचारों की प्रधानता नहीं मिलेगी। उदाहरण के लिये 'कानग्रीव' का 'लव फार लव'। इसमें चरित्रों के अतिरंजित चित्रण पर, हास्य निर्भर रहता है। आजकल इस तरह के निम्न स्तर के नाटकों को जनता बहुत पसंद करती है। हिंदी में भी इस ढंग के नाटकों की संख्या अधिक है जिनका वर्णन आगे चलकर किया जाएगा।

पाश्चात्य नाटकों के विभिन्न वाद, धाराएँ उनके संस्थापक और समर्थक

पाश्चात्य नाटकों के विभिन्न भेदों और उनकी विशेषताओं की व्याख्या हो चुकी। अब सक्षेप मे नाटक संबंधी विविध सिद्धान्तों, और वादों तथा उनके संस्थापकों का ऐतिहासिक विकास दिखलाया जायगा। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं[1]—

१—उदात्तवाद	या	क्लासीसिज्म
२—स्वच्छन्दतावाद	या	रोमान्टिसिज्म्
३—यथार्थवाद	या	रियलिज्म
४—स्वाभाविकतावाद	या	नेचुरलिज म
५—अभिव्यंजनावाद	या	एक्सप्रेसनिज्म
६—प्रतीकवाद	या	सिम्बोलिज्म

उदात्तवाद

इस सिद्धान्त के संस्थापक अरस्तू थे। होरेस ने भी इसका समर्थन किया। अरस्तू के काव्यशास्त्र की विस्तृत व्याख्या हो चुकी है। उसमें वर्णित संकलन-त्रय के सिद्धान्तों, ट्रैजिक नायक की विशेषताओं, कथारिसिस के सिद्धान्त का भी वर्णन हो चुका है। ग्रीक नाटककारों की भी व्याख्या हो चुकी है। इसका प्रसार और प्रभाव इटली तथा फ्रांस के लेखकों पर कितना गहरा पड़ा, इसे बताया जा चुका है।

क्लासीसिजम साहित्य और नाटक में वर्णित जीवन के प्रति एक दृष्टि-कोण का नाम है। इसमें भावना की अपेक्षा तर्क को अधिक प्रश्रय दिया जाता है। क्रमबद्धता इसका विशेष लक्षण है। हर एक वस्तु को जो अस्तव्यस्त हो

१—"योरोपियन थ्यूरीज आफ ड्रामा", बैरेट एच० क्लार्क।

सजा कर रखना, शासन के प्रति भक्ति और श्रद्धा तथा जीवन में संयम और नियंत्रण का आधिक्य इसके विशेष गुण है।

विचारों की सुस्पष्टता, भावों की एकता, आदर्शवाद से प्रेम, तथा चरित्र चित्रण की भावना इसकी शैलीगत विशेषताएँ है।

स्वच्छन्दतावाद

यह सिद्धान्त क्लासीसिज्म के प्रतिक्रिया स्वरूप निकला। इसने क्लासीसिजम की रूढ़िबद्धता, संयम तथा नियमों की कट्टरता और नियंत्रण का विरोध किया। व्यक्ति स्वातंत्र्य का भाव इसके कारण जागृत हुआ। एक आलोचक के शब्दों में सौन्दर्य प्रियता रहस्यवादिता तथा अपरिचितता रोमैन्टीसिजम के तीन प्रधान स्तम्भ हैं।[१] इसके द्वारा तर्क का विरोध और भावना को प्रश्रय मिला।

रोमेन्टिक नाटकों में संकलन-त्रय के सिद्धान्तों का ध्यान कम रखा गया। भूत, प्रेत, जादू, टोने के प्रयोग द्वारा कथानक मे रहस्यात्मक वातावरण लाया गया। इन नाटकों का चित्रण घरेलू स्थानो को छोड कर दूर प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में किया गया। शेक्सपीयर के नाटक इस बाद के संस्थापक हैं। जर्मनी में गेटे और शिलर, स्पेन में लाप द वागा तथा कालडरन, बेलजियम में मैटरलिक रोस्टैन्ड तथा इंगलैड के आस्करवाइल्ड ने रोमान्टिक नाटकों को अधिक प्रश्रय दिया। शेक्सपीयर का हेमेलेट, लियर, आथेलो, एज यू लाइक् इट आदि, मैटरलिक का 'इएरी पेलियास' और 'मैली सेन्डी', 'रोस्टैन्ड' का 'साइरैनो डी वरगेस' तथा वाइल्ट का 'सैलोम' रोमान्टिक नाटकों के उत्कृष्ट उदाहरण है।

यथार्थवाद और स्वाभाविकतावाद

रियलिज्म अथवा यथार्थवाद की उत्पति साहित्य के क्षेत्र में १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई। यह प्रवृत्ति रोमान्टिसिजम के प्रतिक्रिया स्वरूप साहित्य क्षेत्र में आविर्भूत हुई। यूरोप में उस समय औद्योगिक क्रांति के कारण तथा विज्ञान की उन्नति से कल, कारखानों की बाढ़ सी आ गई। धर्म और भावुकता का स्थान तर्क और बुद्धिवाद ने ले लिया था। पोप की शक्ति क्षीणप्राय हो चुकी थी। जनतंत्रवाद के प्रसार से राजसत्ता राजा से प्रजा में आ गई थी। भाप के इंजन, ट्राम, मोटर, हवाई जहाज के आविष्कारों ने समय और दूरी के प्रश्न को कम कर दिया था। सामन्तवादी

१—Beauty, stangeness and mystery combined together produce the sense of Romance,

व्यवस्था समाप्त हो रही थी। विलासिता और भावुकता के पंखों पर उड़कर आकाश में जाने वालों की दृष्टि धरती और उसकी समस्याओं पर पड़ रही थी। वर्डसवर्थ ने अपने 'स्काई लार्क' में कवियों से धरती की ओर देखने की बहुत पहले ही घोषणा करदी थी[1]।

उद्योग धन्धों का प्रसार तीव्रगति से हो रहा था। जनतन्त्रवाद के कारण उच्च वर्ग के पूँजीपतियों और मजदूरों में निरन्तर संघर्ष बढ़ रहा था। यातायात के साधनों से शहर और ग्राम निकट संपर्क में जा रहे थे। थियेटर घरों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ रही थी। प्रायः प्रत्येक नगर मे थियेटर घर बन चुके थे, जहाँ देहातो से अपार जनसमूह खिंचता चला आता था। इन्ही परिस्थितियो के बीच यथार्थवाद की बेल जो बहुत पहले अंकुरित हो चुकी थी, दिन प्रतिदिन फैलती गई, और धीरे-धीरे सारे यूरोप को ही नहीं, समस्त विश्व की छत पर फैल गई।

यथार्थवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, रियलिज्म की उत्पत्ति रोमान्टिसिज्म के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई। इसने आदर्शवाद का भी विरोध किया। रियलिज्म ने जीवन की सूक्ष्म जटिलताओं तथा उसकी विविध समस्याओं के चित्रण पर विशेष महत्व दिया।

यथार्थवादी लेखकों का सिद्धान्त यह था कि उपन्यास और नाटकों का क्षेत्र राजाओं, महाराजाओं और राजकुमारों तक ही सीमित नही है, वरन् समस्त विश्व की भाँति उनका चित्रण पट भी विशाल है। उनकी तूलिका जहाँ चाहे खुल खेल सकती है। अतएव विषय विस्तार तथा चरित्र संकलन के दृष्टिकोण से इन नाटकों की परिधि असीम हो गई। मध्यम तथा निम्न वर्ग के जन साधारण जीवन की जटिलतायें, पीडित वर्ग के संघर्षों, तथा दूर देहातों मे रहने वाले पिछड़े वर्ग के उपेक्षित लोगों की समस्याओं पर भी यथार्थवाद ने अपना प्रकाश डालना प्रारम्भ किया। साथ ही साथ विवाह, तथा आधुनिक समाज के यौन सम्बन्धी विकृतियों तथा असमानताओं का धुँआधार चित्रण होने लगा।

यथार्थवादी नाटकों की शिल्पविधि

१—यथार्थवाद ने भावुकता और रोमांस का विरोध किया, अतएव

1— "Type of the wise, who soar, but never roam
True to the kindred point of heavan of home."
—*To a Skylark*'; W. Wordworth.

नाटकों में पद्य तथा गीत का बहिष्कार किया गया। दैनिक जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति का साधन गद्य बनाया गया।

२—नाटक के विभिन्न तत्वों के निर्वाह में जितनी भी सरलता संभव थी, उसका व्यवहार किया गया। कथानक सरल तथा सरल और संक्षिप्त संवादों का प्रयोग किया गया। लम्बे स्वगत भाषण तथा दार्शनिक उपदेशों को एकदम हटा दिया गया।

३—इन नाटकों का संघर्ष व्यक्तिगत न होकर वर्गगत अधिक हुआ। अतः सामाजिक संघर्षों का चित्रण अधिक दिखाया जाने लगा। 'सन्डर मैन' के 'मेगडा' में कलाकार और सामाजिक परिस्थितियों के बीच ठीक वैसा ही संघर्ष है, जैसे हिन्दी में जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' नामक नाटक में है। अनेक आर्थिक वर्गों के संघर्षों का भी चित्रण नाटकों में किया जाने लगा। 'हाप्टमैन' के 'द वीवर्स' में जुलाहों के संघर्ष का, गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' में पूंजीपति और मजदूरों में तथा 'टालर' के 'द मसीन रेकर्स' में समस्त मानवता के सघर्षों का सुन्दर चित्रण है।

४—यथार्थवादी नाटकों के चरित्रों का संघर्ष बाह्य न होकर आन्तरिक दिखाया गया। अतः उनके चरित्र सरल न होकर जटिल मानसिक ग्रन्थियों से परिपूर्ण थे। इन चरित्रों और उनकी परिस्थितियों का चित्रण सूक्ष्म और स्वाभाविक किया गया। 'बेन्टिल' और 'मिलेट' के शब्दों से यथार्थबाद ने साहित्य का महान उपकार किया है। असंख्य उपेक्षित तथा असहाय नर नारियों के जीवन की करुण गाथा और उनकी समस्याओं को अपनाकर, उनके प्रति अगाध सहानुभूति दिखलाई है। मृत प्राय विशाल मानव समुदाय में चेतना, स्फूर्ति और संजीवनी शक्ति का संचार किया है।[1]

परन्तु इन सब विशेषताओं के होते हुए भी यथार्थवाद की अपनी सीमायें हैं। यथार्थवादी कलाकार जगत और जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण की गति-विधि को महत्व देता है। परन्तु कलाकार के लिये यह उचित नहीं कि वह

---

1. 'Realism has done to art and humanity, a great service in its deliberate extension of the subject matter of art to include the humble, despised and rejected, to allow the representation of all phases of modern industrial and agricultural life, and describe the customs and manners of all level of society.'

'The Art of Drama'—**B. & Millet. Page, 152.**

फोटोग्राफर का कैमरा हो जाय। उसे व्यक्तित्व और जीवन के प्रति ममता रखनी ही पड़ेगी। कला के क्षेत्र से व्यक्तित्व को निकाल देना, कला का आमूल सर्वनाश कर देना है।[1]

अतः यथार्थवादी कलाकार जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों के चित्रण में एक प्रचारवादी व्याख्यानदाता बन जाता है। नाटकीय शिल्प-विधि के निर्वाह और रक्षा का उसे उतना ध्यान नहीं रहता, जितना अपने सिद्धान्तों के उल्टे-सीधे प्रचार से है। 'शा' के अधिकांश नाटकों का दृष्टिकोण प्रचारवादी ही है। सच्ची कला में महान सृजन शक्ति भरी रहती है, यथार्थवाद गरीबों के जीवन का रोजनामचा होकर, सस्ती कला के रूप परिवर्तित हो जाता है। यही कारण है कि 'शेक्सपीयर' के 'हैमलेट', 'गेटे' के 'फासटस' के ढंग की ट्रैजेडी का दर्शन यथार्थवादी नाटक के क्षेत्र में हम नहीं पाते।

पाश्चात्य देशों में यथार्थवादी नाटकों का विकास

फ्रांस में 'आगर्स', 'यूगैन स्क्राइव' और 'ड्यूमा' तथा इङ्गलेंड में 'हेनरी जोन्स' और 'सर आर्थर पिनरो ने यथार्थवादी नाटकों का बीजारोपण किया। 'यूगेन' का 'इन इम्प्रूडेण्ट मूवमेंट' (१८१६ ई०) इस दिशा में पहला प्रयास था। यूगेन, रंगमंच की व्यावहारिक आवश्यकताओं का पारखी था। उसने अपने नाटकों में उन आवश्यकताओं की पूर्ति की।

फ्रांस में 'आगर्स' का सबसे प्रसिद्ध यथार्थवादी नाटक 'द सन इन ला आफ प्वारियर' (१८५४ ई०) में लिखा गया। 'आगर्स' का साथी 'ऐलेक्जेन्डर ड्यूमा' था, जिसने नाटकों के अतिरिक्त उपन्यासों के क्षेत्र में यथार्थवादी क्रान्ति को उपस्थित किया। ड्यूमा के चरित्र दैनिक जीवन से लिये गये थे। उसके प्रथम नाटक 'ला डमे आव सकैमेलियर' की नायिका एक वेश्या है। 'ला डेमी मान्डे' (१८५५ ई०) में दरिद्र मजदूरों की असहाय परिस्थितियों का चित्र है। 'लि फिल्स नेचुरल' (१८५८) में एक अवैध पुत्र की परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।

फ्रांस की यथार्थवादी धारा की लहर इङ्गलेंड में भी पहुँची। वहाँ पर टी० डब्लू० राबर्टसन ने सर्वप्रथम नाटक के क्षेत्र में यथार्थवाद की उत्पत्ति की। उसके 'सोसाइटी' (१८६५ ई०), 'आवर्स' (१८६६), 'कास्ट' (१८६७) तथा

1. 'To banish personalities from art, is to attempt to banish art. The realist by minute details becomes a photographer, sometimes worse, a preacher, not an artist.'
— '*The Art of Drama*'—B. & Millet Page, 152.

'स्कूल' (१८६९) प्रसिद्ध यथार्थवादी नाटक हैं। ए० डब्लू पिनरो का 'ट्रिलानी आफ.द बेल्थ' (१८९९) भी यथार्थवादी दिशा में एक सफल प्रयत्न है।

रूस में यथार्थवादी नाटकों की उत्पत्ति और उनका विकास

यूरोपीय यथार्थवाद का एक प्रबल झोंका रूस की ओर भी बढ़ा। 'अस्ट्रोवास्की' वहाँ का प्रथम नाटककार था जिसने मास्को के आसपास के ग्रामीण जीवन का व्यंग्यपूर्ण चित्रण अपने नाटकों में किया है। उसे अपना सारा जीवन रंगमंच की सेवा और उत्थान में लगा दिया। उसके दुखान्त और सुखान्त दोनों प्रकार के नाटक यथार्थवादी है। 'द थंडर स्टार्म' उसकी प्रसिद्ध ट्रेजेडी है। उसी तरह 'ए लूक्रेटिव जाब' (१८५६ ई०) में उच्च अधिकारियों की दुर्बलताओं और घूसखोरी का सुन्दर चित्रण है।

टर्गनेव का स्थान नाटक की अपेक्षा उपन्यास के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्ध है। उसके नाटकों में व्यक्ति की मानसिक ग्रन्थियों और उलझनों की आकर्षक झाँकी मिलती है। उसका सबसे प्रसिद्ध नाटक 'ए माउस इन द कंट्री' है जिसमें एक उनतीस वर्षीया युवती अपने लड़के के ट्यूटर से प्रेम-पाश में पड जाती है। 'गोगोल' एक दूसरा रूसी नाटककार है, जिसका 'द इंस्पेक्टर जेनरल' एक प्रसिद्ध नाटक है।

टर्गनेव की ही भाँति टालस्टाय और चेखोव ने भी उपन्यासों और नाटकों के द्वारा यथार्थवादी चित्रण का समर्थन किया। टालस्टाय का स्थान इस दृष्टिकोण से ऊँचा है। क्योंकि उसके चार प्रसिद्ध नाटकों में दो का अनुवाद हिंदी में भी हुआ है। उसके चारों नाटक निम्नांकित हैं :—

१—'द फर्स्ट डिसटिलर'—१८८७ ई०
२—'द पावर आफ डार्कनेस'—१८८९ ई०
३—'द लिविंग कार्प्स'— ,,
४—'एण्ड लाइट साइंस इन द वर्ल्ड ,,

अन्तिम नाटक आत्मकथात्मक है। इन नाटकों में टालस्टाय ने दीन, हीन तथा उपेक्षित रूसी किसानों की असहाय अवस्थाओं का सहानुभूति पूर्ण चित्र खींचा है।

प्रसिद्ध रूसी उपन्यास और नाटककार चेखोव ने अपनी कृतियों में सेक्स संबंधी विकृतियों और मानसिक अंतर्संघर्षों का सुन्दर चित्र खींचा है। उसके चरित्र दोहरे या बहुव्यक्तित्व (मल्टीपुल पर्सनैल्टी) के हैं। उसके नाटकों में 'द फीस्ट आव लाइफ' (१९०७ ई०) और 'फार हैपीनेस' (१९०२ ई०)

अधिक प्रसिद्ध हैं[1]। हिन्दी के अनेक आधुनिक नाटककारों पर इन रूसी उपन्यासकारों तथा नाटककारों की विचारधारा तथा टेकनीक का प्रभाव पडा है, जिसकी व्याख्या प्रसंगानुकूल की जाएगी।

इब्सन तथा यथार्थवादी कला की चरमोन्नति

आधुनिक हिन्दी के नाटकों पर इब्सन (१८२८–१९०६ ई०) तथा उसके अनुयायियों की यथार्थवादी विचारधारा तथा टेकनीक का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। इसलिए उनकी कृतियों तथा विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या यहाँ परमावश्यक है। यूरोप में यथार्थवादी नाटकों को चरम सीमा पर पहुँचाने वाला, नारवे निवासी 'हैनरिक इब्सन' था, जिसकी गणना विश्व के महान और विख्यात नाटककारों में की जाती है। उग्र प्रतिभा, ज्वलन्त कर्मठता असीम सहिष्णुता तथा महान अध्यवसाय और जीवनदर्शन की तीव्र पिपासा के लिए एक शब्द इब्सन है। इब्सन कबीर के समान महान युग प्रवर्तक तथा रूढ़ियों और प्राचीन परंपराओं के विरोधी थे। पिछली पीढ़ी के अनेक नाटककार जैसे 'शा', 'ब्रूइवस', स्ट्रीन्डवर्ग तथा अनेक यूरोपीय कलाकारों को उन्होंने प्रभावित किया :—

इब्सन का जन्म, नारवे में २० मार्च १८२८ ई० को हुआ था। जब वे ८ वर्ष के थे, तभी उनके पिता नूद इब्सन को व्यापार में घाटा देना पडा। अतः परिवार के सभी लोग शहर छोड़कर देहात में आकर गरीबी के दिन व्यतीत करने लगे। इब्सन को ११ वर्ष की उम्र में ही एक छोटी नौकरी भी करनी पड़ी। उनकी कृतियों के आधार पर हम उनके जीवन को चार भागों में बाँट सकते हैं।

१—प्रारंभिक जीवन-उनके बाल्यकाल, शिक्षा तथा नौकरी से सम्बन्धित जीवन था, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

२ व ३–रोम और जर्मनी में एक निर्वासित का जीवन--सन् १८६४ ई० में, जब डेनमार्क पर प्रसा ने आक्रमण किया तो नारवे ने उसका साथ उस समय न दिया। नारवे की इस कायरता पर क्षुब्ध होकर, इब्सन देश छोड़ कर रोम चले गए और एक निर्वासित का जीवन बिताने लगे। इस काल की रचनाओं में, 'ब्रांड', 'पियर गांट' और 'लीग आफ यूथ' हैं, जिनमें उनकी मनोहर कल्पना का दर्शन मिलता है। १८७७ ई० ई० में, जब वे जर्मनी

१—'स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म'–जार्ज लूकाज—१९५० ई०
—लन्दन हिल वे पब्लिशिंग क० पृ० १०२।

से रोम लौटे उस समय उनके प्रसिद्ध नाटक लिखे गये, जिनमें 'पिलर्स आफ सोसाइटी' (१८७७ ई०) 'डाल्स हाउस' (१८७९ ई०) 'घोस्ट्स' (१८८१), 'देश भर का दुश्मन' (ऐन एनमी आफ द पिपुल) 'द वाइल्ड डक्स', 'रोसरशोम' (१८८६ ई०), 'द सी ओमैन' (१८८८) और 'हैडा गैबलर' (१८९० ई०) प्रसिद्ध नाटक हैं। इन्ही नाटकों ने इब्सन को विश्वप्रसिद्ध कलाकार बना दिया।

४—उनके जीवन का चौथा काल—१८९१ से १८९९ ई० तक है, जब उनके प्रतीकवादी यथार्थ परम्परा के नाटक लिखे गये। इन नाटकों में 'जॉन गैब्रियल बोर्कमैन' (१८९६ ई०) तथा 'ह्वेन वी डेड अवेकेन' (१८९९ ई०) या (जब हम मुर्दे जग पड़ते हैं)—प्रसिद्ध हैं।

उनके 'पियर गांट','गुड़िया का घर' तथा 'घोस्ट' और 'वाइल्ड डक्स' के प्रकाशन से ही उनकी कीर्ति सारे यूरोप मे फैल गई।

जैसा कि इब्सन ने स्वयं कहा है कि 'पूर्णतया मुझे जानने के लिये, नार्वे को जानना आवश्यक है। १९ वीं शताब्दी के नार्वे की दशा ठीक वही थी, जो इस समय भारत की है। उस समय नार्वे दस लाख मल्लाहों, मछुओं तथा छिटके हुए कृषकों का एक देश था। वकील, डाक्टर, उद्योग-धंधे वाले तथा नये ढंग के व्यवसाय का वहाँ स्फुरण हो रहा था। जनतंत्र के विकास के युग में उस समय नार्वे की वही समस्यायें थीं जो आज हमारे देश की हैं। अपने नाटको में इब्सन ने उन समस्याओं का सफल चित्रण किया। उसके रग-रग में मातृभूमि के प्रति सहानुभूति थी। 'द पिलर्स आप सोसाइटी' (समाज के स्तंभ) मे नार्वे की आत्मा साकार हो उठी है। इसमें अवसरवादी रंगे सियारों तथा मक्कारों की क्या दुर्गति होती है, इसका सुन्दर चित्रण मिलता है। 'डाल्स हाउस' (गुड़िया का घर) तथा 'घोस्ट' (जिन्नात) मे पारिवारिक जीवन की रूढ़ियों और असत्यों का रहस्योद्घाटन किया गया है। पति-पत्नी के अनमेल समन्वय ने वैवाहिक जीवन को कितना विषाक्त और कटु बना दिया है, इसका अमर चित्र 'गुड़िया के घर' में मिलता है। उसी प्रकार 'घोस्ट' में पति-पत्नी के अवांछित संबंध की विशद व्याख्या है। 'देश भर के दुश्मन' में नागरिक जीवन के कपट तथा असत्य से पूर्ण नेतागिरी की पोल खोली गई है। सारांश यह है कि इब्सन के नाटकों में मौलिकता तथा क्रान्ति की चिनगारी भरी हुई है। उसके चरित्र क्रान्ति की ज्वाला अन्तस्तल में छिपाए हुए हैं, जो परिस्थितियों में आकर विस्फोट और विनाशकारी सर्वनाश का प्रदर्शन करते है।

मौलिक तथा क्रान्तिकारी विचारों के चित्रण के साथ ही साथ इब्सन ने अपने नाटकों द्वारा नाटकीय शिल्पविधि तथा रंगमंचीय टेकनीक में महान

परिवर्तन उपस्थित किया। नाटक के तत्वों के विकास में उसने अत्यन्त सरल तथा संक्षिप्त शिल्पविधि का प्रदर्शन किया। वह पहला लेखक था, जिसने पाँच अंक वाले नाटकों की परंपरा को तोड़ कर उसे तीन अंकों के परिधि में बांध दिया। रंगमंच के निर्देश (स्टेज डायरेक्शन) का सूत्रपात उसी ने किया। बर्नार्ड शा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द क्रिट एशेन्स आफ इब्सनिजम' में इब्सन की यथार्थवादी कला की बड़ी प्रशंसा की है। वह स्वयं इब्सन का सच्चा अनुयायी था।

जार्ज बर्नार्ड शा (१८५६-१९५० ई०)

विचार-प्रधान यथार्थवादी नाटकों को चरम सीमा पर पहुँचाने का श्रेय जिन अनेक नाटककारों को है उनमें 'शा' का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। वह आयरलैड का निवासी था। इब्सन की भाँति तर्कवाद का समर्थक तथा रूढियों और प्राचीन परम्पराओं का वह महान शत्रु था। अपने नाटकों के प्रारम्भ में अपने सिद्धान्तों के समर्थन के लिए, उसने लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ दी हैं, जो अनेक आलोचकों की राय में, उसके नाटकों से भी सुन्दर बन गई हैं। उसके नाटकों मे उसके सिद्धान्तों का प्रचार किया गया है। प्रचार की मात्रा इस सीमा तक चली गई है कि उनमें नाटकीय तत्वों के सफल निर्वाह पर ध्यान नहीं दिया गया है। उसके चरित्र उसके बौद्धिक विचारों के प्रतीक हैं। 'मिसेस वैरेन्स प्रोफेशन' में वेश्या वृत्ति की परिस्थितियों का चित्रण है। 'बैक टु मैथुसला'[1] और 'आर्म्स एण्ड द मैंन' (१८९४) में युद्ध की भयंकारताओं का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है। 'मैन और सुपर मैन' में उसके 'शेवियन' विचारधारा का चित्रण है। 'कैंडिडा' उसका सर्वश्रेष्ठ नाटक है, जिसमें विवाह तथा नारी की समस्या का तर्कपूर्ण चित्रण हैं। उसका एक प्रसिद्ध नाटक 'टू टू टु बी गुड' (१९३२ ई०) में लिखा गया। इसमें एक चरित्र के द्वारा उसने स्वयं अपने सिद्धान्तों को व्यक्त किया है।

आवेरी—"मैं जन्म से एक प्रचारक हूँ। नेता नहीं, मैं अपना विरोध नहीं पसंद करता, मेरे लिए सबसे उपयुक्त स्थान रंगमंच है। मेरी प्रतिभा ईश्वरीय है। उसमें सुस्पष्टता तथा वाक्पटुता की छाप है। मैं प्रत्येक विचार को किसी को समझा सकता हूँ, और ऐसा करना मुझे अत्यन्त रुचिकर है। मैं

१—इस नाटक का हिंदी अनुवाद 'सृष्टि का प्रारम्भ' नाम से प्रेमचंद जी ने किया है। इसकी व्याख्या आगे की जाएगी।

इसे अपना कर्त्तव्य मानता हूँ, बशर्ते कि मेरा सिद्धान्त सुन्दर हो ।"[1]

आधुनिक हिंदी के अनेक नाटककारों पर शा की विचारधारा तथा उसके टेकनीक का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है जिसकी व्याख्या आगे चलकर हम करेंगे। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि उसके नाटक विचार प्रधान नाटकों में उत्कृष्ट कोटि में गिने जाते हैं ।

इंगलैन्ड के यथार्थवादी नाटककार

यथार्थवादी धारा के प्रारम्भिक चित्रण में इंगलेंड के 'सर आर्थर विंग' 'पिनरो' और 'हेनरी जोन्स' का नामोल्लेख हो चुका है । इस धारा को इंगलैड मे गाल्सवर्दी तथा ग्रैनविल बारकर ने आगे बढ़ाया । गाल्सवर्दी में यथार्थवादी कला पराकाष्ठा को पहुँचती दिखाई देती है । उसके नाटकों में सामाजिक संघर्षों की सुन्दर झाँकी है । उसके प्रथम नाटक 'सिलवर बाक्स' (चाँदी की डिबिया) १८७६, मे उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग के संघर्ष का चित्रण है। 'जस्टिस' (न्याय) १६१०, में न्याय की धाँधलीबाजी का चित्रण है। 'द स्ट्राइफ' में वर्गसंघर्ष का सुन्दर चित्र खीचा गया है । हिंदी के अनेक नाटककारो पर गाल्सवर्दी की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है ।

ग्रैनविल बारकर के 'वेस्ट' (१६०७ ई०)तथा 'मद्रास हाउस' में (१६१०) यथार्थवादी जीवन का सफल चित्रण है । आर्थर जोन्स के 'माइकेल एंड हिज़ लास्ट एंजिल' में एक पादरी के जीवन की कठिनाइयों का चित्र खींचा गया है। इस नाटक का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है । आयरलेंड के आस्कर वाइल्ड नामक नाटककार ने 'कला के लिये कला' के सिद्धान्त का समर्थन और प्रतिपादन अपने नाटकों के किया, जिनमें नग्न यथार्थवाद का सुन्दर चित्र मिलता है । हिन्दी मे भी उनके नाटकों का अनुवाद हो चुका है और अनेक कलाकारों पर उनकी विचारधारा स्पष्ट प्रभाव पड़ा है ।

स्वभाविकता या नेचुरलीज्म

स्वाभाविकता, यथार्थवाद की ही एक शाखा है । स्वाभाविकतावादी कला-

1. 'Aubrey—I am a born preacher, not pleader. I greatly dislike being contradicted, and the only place safe for it, is pulpit. My gift is divine. It is a gift of lucidity and eloquence. I can explain anything to any body, and I love doing it. I feel I must do it, if only the doctrine is beautiful'—"Too True to be Good"—B. Shaw.
—'*World Drama*'—A. Nicoll, Page' 747.

कार फोटोग्राफर के कैमरे की भाँति, यथार्थ जीवन और जगत के सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्रण का समर्थन करता है। 'बेंटिल' और 'मिलेट' के शब्दों मे वह आदर्शवाद का घोर विरोधी होता है।[1]

एमिले जोला जो फ्रांस का कलाकार था, इस वाद का प्रधान प्रवर्तक था। उसने अपने नाटकों में, जीवन की विषादपूर्ण स्थितियों का गहरे से गहरा चित्रण किया है। उसके उपन्यास और नाटक इस क्षेत्र मे महत्वपूर्ण हैं। जोला ने समाज के भीतर ही भीतर सड़ते हुए घावों को नश्तर लगाकर साफ करने की चेष्टा की है।

स्वाभाविकतावादी नाटकों की विशेषताएँ

स्वाभाविकतावादी नाटकों में कथानक का कम से कम प्रयोग होता है। संवाद अस्तव्यस्त तथा उखड़े हुए रहते हैं। कभी-कभी देशी भाषा का भी प्रयोग किया जाता है जो यथार्थ जीवन के अनुभवों के प्रकाशन के लिए अत्यन्त उपयुक्त माध्यम है। जीवन के जघन्य से जघन्य, तथा गन्दे से गन्दे दृश्यों का इसमें चित्रण होता है। उदाहरण के लिए आत्म हत्या, अपराध, रक्तपात, अवैध प्रेम, आडम्बर, मक्कारी तथा अपहरण आदि बातें इस प्रकार के नाटकों के कथानक हैं। समाज में क्या विकृति या दोष है, यही नाटककार का मुख्य विषय होता है। अच्छाई की ओर तो उसका ध्यान जाता ही नहीं। इस प्रकार के अनेक नाटककारों के उदाहरण, पाश्चात्य देशों के आधुनिक नाटक साहित्य से दिए जा सकते हैं। जैसे जर्मनी के 'संडर मैन' तथा हाप्टमैन', रूस के 'गोर्की तथा 'चेखोव', फ्रांस के 'ब्रुइवस' तथा इटली के 'पिरेन्डोलो' और अमेरिका के 'यूगेन' ओर 'नील' आदि प्रसिद्ध हैं।

सण्डर मैन के नाटकों के कथानक, अनुचित प्रेम के संघर्षों से भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए उसके, 'द वेल आफ कन्टेन्ट' (१८९६ ई०) में एक हैड मास्टर के अनुचित प्रेम की कथा है। दूसरे नाटक 'द बैटिल आफ बटर फलाइज' (१८९५) में एक विधवा के प्रेम का संघर्षपूर्ण चित्रण है।

---

1. 'The difference between realism and naturalism is one of degree, and not of kind. The Naturalist is that variety of realist, who accepts without qualification all the implications of the scientific view of life. Like the scientist, he stands for the complete freedom in the choice of his study, and complete objectivity in painting things.'

—'*The Art of Drama*'—B. & Millet, Page, 147.

हाप्ट्स्मेन, दूसरा प्रसिद्ध जर्मन नाटकार है जिसने स्वाभाविकतावादी टेकनीक को पूर्णता की ओर मोड़ा। वह भाषा का महान पंडित था, अतः उसके संवादों में विशेष आकर्षण भरा हुआ है। पश्चिम के नाटककारों में उसका आगमन एक पुच्छल तारे की भाँति हुआ, जिसने उस समय थोड़ी देर के लिए यूरोप के नाटककारों की आँखों को चकाचौंध कर दिया। उसका, 'बिफोर सन राइज' नामक प्रसिद्ध नाटक १८८९ ई० में निकला जिसने यूरोप के बौद्धिक जगत में एक हलचल सी मचा दी। उसी कोटि का, नई शैली का उसका दूसरा नाटक 'द वीवर्स' १८९२ ई० में निकला जिसमें पहली बार उसने जनता को नायक के रूप में रंगमंच पर अवतरित किया। इस नाटक में जुलाहों के संघर्ष का चित्रण है। २०वी शती के प्रसिद्ध नाटकों में इसकी गणना है। आगे चल कर हम देखेंगे कि इस प्रसिद्ध नाटक की विचारधारा का आधुनिक हिंदी के कई नाटकों पर प्रभाव पड़ा है।

रूस के प्रसिद्ध नाटककार 'गोर्की' और 'चेखोव' ने भी अपने नाटकों में स्वाभाविकतावादी कला का सफल निर्वाह किया है। 'गोर्की' के 'लोअर डेप्थ' तथा 'द नाइट्स रिफ्यूज्ड' इसी प्रकार के नाटक हैं। 'चेखोव' ने भी इस शैली में 'द सी गल' तथा 'थ्री सिस्टर्स' नामक नाटको को लिखा। 'ब्रूक्स' का 'द इस्केप' इसी शैली का एक प्रसिद्ध नाटक है। इन सभी नाटकों में जीवन की विकृतियों का सुन्दर चित्र खींचा गया है जिनमें पूर्ण मनोवैज्ञानिकता भरी है।

प्रतीकवादी नाटक और उनकी विशेषताएँ

यथार्थवादी तथा स्वाभाविकतावादी नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप, प्रतीकवादी नाटको की उत्पत्ति १८वीं शताब्दी के अन्त में पश्चिमी देशों में हुई। क्योंकि सामाजिक समस्याओं तथा व्यक्ति के मानसिक उलझनों को व्यक्त करने के लिये साधारण भाषा असमर्थ सिद्ध हुई, इसलिए नाटककारों ने प्रतीकों का सहारा लिया। प्रतीक का जीवन में बड़ा महत्व होता है। एक साधारण झंडा, राष्ट्र के करोड़ों नर-नारियों के जीवन में एक नई चेतना का प्रतीक बन कर आता है, जिसके लिये लोग प्रेम से प्राण विसर्जन करने को उद्यत हो जाते है। पश्चिम के गीत नाटककारों ने भी प्रतीकों का सहारा लिया है, क्योंकि कविता की भाषा के लिये नीरस तथा शुष्क व्यावहारिक जगत की यथार्थवादी भाषा उपयुक्त नहीं होती। इस प्रकार के नाटककारों में 'डब्लू० वी० ईट्स' 'जेम्स बारी', 'जान 'ड्रिंक वाटर', तथा टी० एस० इलियट' आदि प्रसिद्ध है।

ईट्स का 'द काउंटेस्ट कैथलीन' एक सुन्दर प्रतीकवादी नाटक है। इसमें

एक नवयुवक प्रेमी, विवाह के पूर्व अपनी प्रेमिका को छोड़कर, एक वृद्धा स्त्री के आकर्षण में खिंच जाता है। वह वृद्धा और कोई नहीं, उसकी मातृभूमि आयरलेंड का प्रतीक है। प्रतीक परम्परा के नाटकों का प्रारम्भ यूरोप में इब्सन से ही हो गया था। इब्सन का 'जब हम मुर्दे जाग पड़ते हैं' एक सुन्दर प्रतीक नाटक है। उसके पश्चात 'मैटरलिंक' प्रतीक परम्परा का महान कवि और नाटककार हुआ। 'मैटरलिंक' को बेलजियम का शेक्सपियर कहा जाता है। उसका 'ब्लू बर्ड' एक सुन्दर प्रतीकवादी नाटक है। इसका आध्यात्मिक अर्थ 'आनन्द की खोज' है। दो लड़के एक नीली चिड़िया को, जो आनन्द का प्रतीक है ढूँढ़ते हैं, परन्तु अन्त मे चिड़िया उड़ जाती है। इस नाटक का प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि किसी वस्तु के ढूँढ़ने में वास्तविक आनन्द है, उसके प्राप्त करने में नहीं, और आनन्द को हम पकड़कर बन्द भी नहीं कर सकते।

प्रतीकात्मक नाटकों की अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि, रूस के 'एण्ड्रीव' और 'एवरीनाव' के नाटकों मिलती है। 'एण्ड्रीव' के नाटक निराशावादी तथा मनोवैज्ञानिक है। उदाहरण के लिए 'टु द स्टार्स' (१९०५ ई०), 'द ब्लैक मास्कर्स' (१९०८ ई०) उसके प्रसिद्ध प्रतीकवादी नाटक हैं। उसका एक और प्रसिद्ध नाटक 'द लाइफ आफ मैन' है, जिसमे यह बताया गया है कि मनुष्य अन्धकार मे जन्म लेता है और जैसे-जैसे अन्धकार में वह अपने चरण बढ़ाता है, भाग्य का प्रतीक उसके बगल में खड़ा रहता है, और अन्त मे अन्धकार में ही वह मर जाता है।

एवरीनाव दूसरा प्रसिद्ध रूसी प्रतीकवादी नाटककार है, जिसने प्रतीक परंपरा मे अनेक सुखान्त नाटकों को लिखा है। इस प्रकार के नाटको मे 'इन द विंग्स आफ द सोल' (१९१२ ई०) तथा 'द फ़ोर्थ वाल' (१९१५ ई०) प्रसिद्ध हैं। पहले नाटक में उसने दोहरे तथा बहुव्यक्तिवादी चरित्रों का चित्रण किया है। उसका कहना है कि मनुष्य का अहम् कई स्तरों से मिलकर बना है। मैं अकेला नहीं, वरन् कई मैं का समन्वित रूप है। व्यवहार में हम कह हैं कि उसके तीन प्रधान रूप है। पहला तर्क, दूसरी भावना, तीसरी शाश्वत वृत्ति है।[1] इस प्रकार की तीनों वृत्तियों का समन्वित रूप उसने अपने उपर्युक्त

1. 'A human personality is built up of numerous entities as I_1, I_2, I_3 and so on. 'I' is not 'I' because I consist of several I's. In practice we may treat 'I' as consisting of three 'I' s. Therefore $I = \frac{x}{3}$. The first is reason, the second is emotion, and the third is eternal.'

—'*World Drama*'—A. Nicoll, Page, 719.

नाटक के चरित्र में खींचा है ।

अभिव्यंजनावादी नाटक तथा उनकी विशेषताएं

अभिव्यंजनावाद का प्रचलन जर्मनी से हुआ है । यह रोमैंटीसीज़म तथा रियलीज़म दोनों का विरोधी है और दोनों की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ है इसमें चरित्र के पूर्ण जीवन का चित्रण नहीं किया जाता, वरन् उसके अवचेतन तथा अर्ध चेतन मन की घुटन, दुरूहताओं तथा कुंठाओं का चित्रण किया जाता है । सारांश यह है कि फ्रायड, एडलर तथा युंग आदि मनोविश्लेषण शास्त्र के विद्वानों के मन संबंधी खोजों का पूरा प्रयोग इस प्रकार के नाटकों में किया जाता है । परिणामतया अभिव्यंजनावादी नाटकों के अधिकांश चरित्र दोहरे व्यक्तित्व के होते है । उदाहरण के लिए यदि कोई चरित्र बाहर से देखने में वीर तथा दृढ प्रतिज्ञ है तो वह अन्दर से अत्यंत कायर और आलसी दिखाया जाता है । इस प्रकार के नाटकों में चरित्र की मानसिक ग्रन्थियों तथा उलझनों का सुन्दर चित्र खींचा जाता है । अभिव्यंजनावाद, नाटक के क्षेत्र मे एक नवीनतम प्रयोग है । इसके अनुसार नाटकों में कथानक, चरित्र और उनकी सेटिंग कम से कम होनी चाहिए । एक कुर्सी से एक कमरे का बोध कर लिया जाता है । एसाइड का प्रयोग करके पात्र के अवचेतन मन के रहस्यों का उद्-घाटन किया जाता है । हिंदी के अनेक आधुनिक नाटककारों पर इस प्रकार की विचारधारा तथा टेकनीक का प्रभाव पड़ा है ।

दृश्यों के निर्माण में अभिव्यंजनावादी नाटककार आधुनिक विज्ञान के बिजली, ध्वनिप्रसारक, फिल्म प्रोजेक्टर तथा वायरलेस आदि सभी साधनों का प्रयोग करता है । बड़े-बड़े अङ्को के स्थान पर छोटे-छोटे दृश्य, चरित्रों के संवाद टूटे और अस्तव्यस्त ढङ्ग के तथा उनके व्यक्तित्व दोहरे तथा अनेक रूपों के होते है । इन नाटकों में प्राय: यथार्थवादी चरित्रों के स्थान पर, प्रतीकात्मक चरित्रों का प्रयोग किया जाता है । व्यक्ति के स्थान पर जनता को रंगमंच पर लाया जाता है ।

अभिव्यंजनावाद का सम्बन्ध पेरिस से उत्पन्न क्यूबिजम तथा इटली से उत्पन्न फ्यूचरीज्म नामक वादों से भी है । अन्तिम वाद का प्रवर्तन १९०९ ई० में मैरिनेटी ने किया था । सबसे प्रथम जर्मनी के जार्ज कैसर के नाटकों में इस शैली के दर्शन हुए । उसके प्रसिद्ध नाटक 'गैस' मे व्यक्तिगत चरित्रों के बदले सामूहिक मानवता के आन्तरिक भावों और संघर्षों का चित्रण किया गया है । दूसरा प्रसिद्ध अभिव्यंजनावादी नाटककार, 'इरस्ट टालर' है, जिसके 'मैन एण्ड द मासेस' (१९२१ ई०) तथा 'हापला सच ए लाइफ' (१९२७ ई०)

इस प्रकार के प्रसिद्ध नाटक हैं। पहले नाटक में सामूहिक मानवता की चेतना को हिस्टीरिकल ढंग से व्यक्त किया गया है। दूसरे नाटक में जर्मनी के कुछ क्रान्तिकारियों का चित्रण है। इसमें आधुनिक रंगमंच के सभी सुलभ साधनों का प्रयोग किया गया है।

अभिव्यंजनावादी नाटककारों का यह प्रसंग इटली के 'पिरैन्डेलो' और-अमेरिका के 'ओनील' के वर्णन के बिना अधूरा माना जाएगा। आधुनिक पाश्चात्य नाटककारों में इनकी ख्याति सबसे अधिक है। पिरेन्डेलो यथार्थवाद को मानते हुए भी यथार्थवाद का विरोधी है। उसके नाटकों में रंगमंचीय पटुता तथा सृजनात्मक मौलिकता की स्पष्ट छाप मिलती है। इब्सन के चरित्र मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ होते हुए भी एक चरित्र है। 'पिरेन्डेलो' का एक चरित्र मन में अनेक परमाणुओं को रखता है, जिसमें भयानक विस्फोट की शक्ति है। इसकी व्याख्या उसने स्वयं की है। "हम में से हर एक अपने को अकेला समझता है, परन्तु यह एक विडम्बना है। क्योंकि प्रत्येक मे अनेकों रूपों का दर्शन मिलता है।[1]"

अपने इन विचारों का उपयोग उसने अनेक नाटकों मे किया है। उदाहरण के लिए 'मैन, बीस्ट ऐंड वरच्यु' (१९१७ ई०) तथा 'सिक्स कैरेक्टर्स इन सर्च आफ ऐन आथर' (१९२१ ई०) उसके इस शैली के प्रसिद्ध नाटक है। अंतिम में छः चरित्र छः रूपों के साथ रंगमंच पर आते है। १९३४ ई० में उनको नौबुल पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। 'निकॉल' के शब्दों में मानव मन के अन्तः और वाह्य स्तरों की विषमताओं का इतना स्पष्ट चित्रण, आधुनिक किसी नाटककार ने नहीं किया है। पाश्चात्य देशों का वह एक युग प्रवर्तक नाटककार है। उसके नाटकों में निराशावादी विचार भरे पड़े है। जीवन की विकृतियों का उसने बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है।[2] उसके नाटक मौन अभिनय के नाटक कहे जाते हैं। हिंदी के अनेक नाटककारों पर, 'पिरेन्डेलो' की कला का प्रभाव पड़ा है। श्री रामरतन भटनागर के शब्दों में 'पिरेन्डेलो' के सभी पात्र नकली चेहरे पहने आते हैं, परन्तु ये नकली चेहरे सच्चे चेहरों से कहीं अधिक सच्चे और प्रभावशाली है। वास्तव मे उसने निराशावाद को एक

---

1. 'Each one of us believes himself to be one; but that is false assumption. Each one of us is so many, as many as are all the potentialities of being, that are in us.'

—'*World Drama*'—A. Nicoll, Page, 715.

२—वही, पृष्ठ ७१३

कला का रूप दे दिया है।[१]' परन्तु इस निराशा के पीछे हमें उसकी विशाल मानव-सहानुभूति के भी दर्शन होते है। आधुनिक नाटक को, उसने एक नई दिशा और नया मोड़ दिया है।

यूगेन ओ नील

पिरेन्डेलो की भाँति, अमेरिकन नाटककार, यूगेन ओ नील आधुनिक युग का परम विख्यात नाटककार माना जाता है, जिसकी विचारधारा तथा नाटकीय शिल्प-विधि ने संसार की प्रायः सभी भाषाओं के नाटकों को प्रभावित किया है। उसने अपनी प्रतिभा का उपयोग आधुनिक नाटको की विभिन्न शैलियों मे किया है। उसके नाटकों में, 'द रोप','द गोल्ड', 'बियांड द हौराइजन', 'द हेयरी एप', 'स्ट्रैंज इंटरल्यूड', 'द हन्टेड ऐंड द हान्टेड' तथा 'आइस मैन कमेथ' अधिक प्रसिद्ध हैं। इन नाटकों में अतृप्त-वासना तथा यौन सम्बन्धी विकारो के दुष्परिणामों का चित्रण है। निराशा, कुंठा तथा आत्म हत्या के कथानकों से उसके नाटक भरे पड़े हैं। 'द हेयरी एप' अभिव्यंजनावादी शैली का एक सुन्दर नाटक है। वह एक ऐसे मनुष्य का प्रतीक है, जिसने प्रकृति के साथ अपना सन्तुलन खो दिया है। उसके नाटकों में फ्रायड तथा अन्य आधुनिक मनोविश्लेषण सम्बन्धी विद्वानों के विचारों का अच्छा प्रयोग मिलता है। हिंदी के कुछ आधुनिक नाटककारों ने अपने को 'ओ नील' की शैली से प्रभावित बतलाया है। आधुनिक नाटकों के प्रसङ्ग मे इसकी व्याख्या की जाएगी।

ओ नील की भाँति, एक दूसरा अमेरिकन नाटककार 'फिलिप बारी' है, जिसने हास्यप्रधान नाटकों को लिया है। उसके 'होटल यूनीवर्स (१९३० ई०) में पीड़ित आत्माओं की करुण कथा दी गई है। आधुनिक युग में इन सभी नाटककारों द्वारा मनोविश्लेषण सिद्धान्तों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

पिरेन्डेलो तथा ओ नील के अतिरिक्त आधुनिक यूरोपीय नाटकों को नवीनतम मोड़ देने वाले सात्रे, सेलेक्रा, आर्थर मिलर, टैनेसे विलियम्स, जीन काकतो, लोका और वलाउदेल हैं, जो यूरोपीय नाट्य जगत के, इस शताब्दी के महान कलाकार हैं। इन सभी नाटककारों की कृतियों में एक प्रधान विशेषता मिलेगी, वह है निराशावाद, कुंठा तथा मानसिक अवसाद का चित्रण। इन नाटककारों में सात्रे का स्थान उल्लेखनीय है, जिसका अस्तित्ववाद, यूरोपीय विचारधारा के क्षेत्र में एक नई देन है। अस्तित्ववाद के अनुसार मानव-जीवन में व्यंग्य और विरोधाभास का आधिक्य है और इसी का चित्रण करना कला

१—'आलोचना'—'नाटक विशेषांक'—जुलाई, १९५६।
लेख, 'पश्चिमी नाटक'—इब्सन और शा के पश्चात्', पृ० १८३

का कर्त्तव्य है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सार्त्र ने 'लमोचे' नामक एक अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के नाटक की रचना की है, जिसमें प्राचीन ग्रीक कथानक को नया प्रतीकात्मक परिधान पहनाया गया है। इसमें रक्तरंजित दीवालों, शोकपूर्ण नारियों के पश्चाताप की गम्भीर छाया है। हिन्दी में धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' नामक नाटक पर इसकी शैली की छाप है।

उपसंहार

संक्षेप में इस अध्याय में संस्कृत तथा पाश्चात्य देशों में नाटक की उत्पत्ति, उनके तत्व तथा विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की गई। संस्कृत तथा ग्रीक नाटकों के समान तत्वों पर भी प्रकाश डाला गया। प्रबन्ध के विषय को ध्यान में रख-कर अपेक्षाकृत पाश्चात्य नाटकों के अनेक वर्गों तथा उनके विकास पर अधिक ध्यान दिया गया है। ग्रीक नाटककार एचीलस से लेकर 'क्लाउदेल' तक तथा 'सोफ़ोक्लीज' से 'शा' और सार्त्रे तक करीब ढाई हजार वर्षों के यूरोपीय नाटक की प्रमुख धाराओं, अनेक वादों, सिद्धान्तों तथा उनकी कृतियों का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। नाटकों के विकास पर अधिक ध्यान न देकर प्रमुख वादों तथा सिद्धान्तों की व्याख्या विशेष रूप से की गई है। क्योंकि हिन्दी के नाटककारों पर प्रारम्भ से लेकर अब तक इनका प्रभाव पड़ा है, ऐसे नाटककारों की चर्चा भी की गई है जिन्होंने हिन्दी नाटक साहित्य को विषय तथा टेकनीक की दृष्टि से प्रभावित किया है। पश्चिम के महान नाटककारों में चार महान स्तम्भ के रूप में हैं, जिनमें अनेक नाटकक,र, जो उस युग में हुए, रखे जा सकते हैं। पहले स्तम्भ में ग्रीक नाटककार, दूसरे में शेक्सपीयर तथा एलिजाबेथ काल के नाटककार, तीसरे में मोलियर तथा रेशीन और चोथे में इब्सन से लेकर आज तक के नाटककार आ जाते हैं। इन नाटककारों तथा उनकी विचारधाराओं के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों के साम्यवाद, उपयोगितावाद, मानवतावाद आदि अनेक सिद्धान्तों का भी प्रभाव हिन्दी नाटकों पर पड़ा है। प्रसंगानुकूल इनकी व्याख्या अगले अध्यायों में की जाएगी। पाश्चात्य रंगमंच तथा उसकी अनेक शैलियों का भी हमारे रंगमंच पर प्रभाव पर पड़ा है, जिसका वर्णन रंगमंच वाले अध्याय में किया जायगा।

— :o: —

द्वितीय अध्याय

हिन्दी-नाटकों का प्रारम्भ—भारतेन्दु, उनके समकालीन तथा परवर्ती नाटककारों पर पाश्चात्य प्रभाव

सामाजिक तथा राजनीतिक नवोत्थान की पृष्ठभूमि

अंग्रेजों के भारत में आने के पश्चात ही भारतीय नवोत्थान युग का आरंभ हुआ। वास्तव में यह लहर, पाश्चात्य नवोत्थान की ही एक शाखा थी। यूरोपीय नवोत्थान चौदहवीं शताब्दी से इटली से प्रारम्भ होकर पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी तथा यूरोप के अन्य देशों मे नवचेतना का संचार करता हुआ, अठारहवीं शताब्दी तक रूस में जा पहुँचा। हमारे देश में यह धारा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रकट हुई, और अब तक चल रही है। जिस प्रकार शेक्सपियर तथा अन्य एलिजाबेथन काल के नाटककारों की कृतियों के अध्ययन के लिए हमें तत्कालीन नवोत्थान युग की विशेषताओं को समझना पड़ता है, उसी प्रकार भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों की कृतियों के अध्ययन के लिये भारतीय नवोत्थान की विशेषताओं को जानना आवश्यक होगा। यह नवोत्थान राष्ट्रव्यापी सामाजिक, राजनीतिक, तथा सांस्कृतिक जागरण के रूप में देश में आया। इस राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि सन् १८५७ ई० की राज्य-क्रान्ति के बहुत पूर्व ही

निर्मित हो चुकी थी। लगभग एक शताब्दी पूर्व यूरोप की फ्रांसीसी, अंग्रेज, पुर्तगाली तथा डच आदि अनेक जातियाँ भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आई। उनका यह संपर्क, मुगलों के समय से ही स्थापित हो चुका था। सन् १६०८ ई० में कैप्टन हाकिन्स जहाँगीर के दरबार में पहुँचा था। इसके पश्चात सर टामस रो १६१३ ई० में भारत आया। इन लोगों के आगमन के समय, मुगल शासन-व्यवस्था, अपनी अंतिम साँसे ले रही थी। सत्ता छोटे-छोटे राजाओं और नवाबों के हाथ बट गई थी, जिनमें पारस्परिक फूट थी। प्रारम्भ में यूरोपीय जातियों का भारत में आने का उद्देश्य केवल व्यापारिक था, क्योंकि यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के कारण कल-कारखानों की वृद्धि हो चली थी। इन कारखानों के संचालन के लिये भारत से कच्चे माल भेजने की तथा वहाँ के लंकाशायर, मैनचेस्टर तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों के बने कपड़ों और सामग्रियों की खपत के लिये, विदेशी मंडियों की आवश्यकता, यूरोप के पूँजीपतियों को हुई। फलतः भारत, व्यापार का केन्द्र बना। इन यूरोपीय जातियों में, केवल अंगरेज ही भारत में अपनी कुशल नीति के कारण सफलीभूत हुए। अंरेजों ने, यहाँ के राजाओं और नवाबों में पारस्परिक फूट तथा वैमनस्य देखकर, उसका अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा की। जब, इस प्रयत्न में उन्हें सफलता मिली, तो धीरे-धीरे उन्होंने व्यापार नीति को छोड़कर, भारत के शासक बनने की इच्छा की। सन् १७५७ ई० के, प्लासी के युद्ध में अङ्गरेजों की महान विजय हुई, जिसके फलस्वरूप भारत में अंग्रेजी राज्य का शिलान्यास हुआ। सन् १७६४ ई० के बक्सर के युद्ध ने उन्हें बंगाल तथा बिहार का शासक बना दिया और लार्ड वेलेजली तथा डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति ने उन्हें धीरे-धीरे पूरे भारत का शासक बना दिया[1]।

अपनी व्यापारिक सामग्री की खपत के लिये, सस्ते से सस्ते मूल्य में यहाँ का कच्चा माल इक्ट्ठा करने के लिये तथा राजनीतिक व्यवस्था के संचालन के लिये, अंग्रेजों ने रेल तथा तार और डाक की व्यवस्था की। आर्थिक लाभ तथा शोषण के लिये, अंग्रेजों ने भारतीय ग्रामोद्योगों को नष्ट करके, भारतीय सामाजिक जीवन की उदात्त परंपराओं को तोड़कर, हमारी सांस्कृतिक व्यवस्था पर कुठाराघात किया और सारे देश को निरीह, विपन्न तथा दरिद्र बना दिया।

१—'हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया'—डा० ईश्वरीप्रसाद और एस० के० सूबेदार—द्वितीय संस्करण, १९५१,

रेल, तार तथा डाक व्यवस्था के संचालन ने, भारत में राजनीतिक एकता का सूत्रपात किया। परिणाम यह हुआ कि जिस राष्ट्रीय एकता की अभिलाषा की पूर्ति में, अकबर तथा औरंगजेब अनेक प्रयत्नों के साथ भी असफल रहे, उस राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक जागरण के माध्यम, अङ्गरेज अनजाने ही बन गये। सन् १८५७ ई० की राज्यक्रान्ति इसी जागरण की एक भूमिका थी, जो दबाये जाने पर भी भीतर ही भीतर सुलगती रही, और सामाजिक चेतना तथा सुधारों के झोंके को पाकर अन्त में महात्मा गांधी द्वारा प्रसारित स्वतंत्रता संग्राम रूपी विशाल आँधी के रूप में परिवर्तित हो गई, जिसके फलस्वरूप आज हम भारत से अंग्रेजी साम्राज्य का विनाश देखते हैं।

शिक्षा

शासन-व्यवस्था को संचालित करने के लिये, अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा की ओर भी थोड़ा ध्यान दिया। अपनी स्वार्थवादी नीति, शासन-व्यवस्था की सुव्यवस्था तथा भारतीयों से अधिक सम्पर्क प्राप्त करने के लिये, लार्ड विलियम बैंटिंग ने, अंगरेजी को, भारतीय शिक्षा का माध्यम बनाया। सन् १८५७ ई० के बाद कलकत्ता, मद्रास और बंबई में भारतीय शिक्षा के लिये विश्व-विद्यालयों की स्थापना हुई। इसके कुछ दिनों पश्चात, सर चार्ल्स उड की शिक्षा-योजना के फलस्वरूप, भारतीय गाँवों में भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की योजना बनी। कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना बहुत पहले हो चुकी थी। सन् १८०० ई० में कम्पनी के कर्मचारियो की शिक्षा के लिये, कलकत्ते मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य कम्पनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं, इतिहास तथा हिंदू-मुसलिम न्याय व्यवस्था से परिचित कराने का था। भारतीय भाषाओं के अध्यक्ष, उन दिनों, डा० गिलक्राइस्ट थे, जिन्होंने हिंदी और उर्दू गद्य-साहित्य के विकास की ओर ध्यान दिया। हिंदी गद्य का आरम्भ इसी कालेज के संरक्षण मे लल्लू लाल, सदल मिश्र, सदासुख लाल और इंशा उल्ला खाँ ने किया था।

ईसाई मिशनरियों की हिंदी-सेवा

ईसाई धर्म-प्रचारकों और पादरियों ने खड़ी बोली गद्य की भाषा का उपयोग, बड़े ही उचित अवसर पर, अपने धर्म के प्रचार के लिये किया। सन् १८०९ ई० और सन् १८५० ई० के बीच समस्त हिंदी भाषी प्रदेश में फैलकर उन्होंने कलकत्ता, मद्रास, बंबई, पटना, आगरा, मिर्जापुर, जबलपुर तथा दिल्ली

में अपने मिशन केन्द्रों की स्थापना करके, ईसाई धर्म का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया था। सन् १८०१ ई० में डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से 'न्यू टैस्टामैन्ट' का पहली बार हिन्दुस्तानी में अनुवाद हुआ। सीरामपुर के मिशनरियों ने देश की विभिन्न चालीस भाषाओं में धर्म पुस्तकें प्रकाशित करने की व्यवस्था की, क्योंकि उन्हें मुद्रण यंत्रों की भी सुविधा प्राप्त थी। आगरा, इलाहाबाद सिकन्दराबाद तथा सीरामपुर में शासको की आर्थिक सहायता से प्रेसों को स्थापित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी अलग-अलग शिक्षा-संस्थायें भी खोल रखी थीं। इन संस्थाओं में ज्ञान, विज्ञान संबंधी अनेक पाठ्यपुस्तकों का भी प्रकाशन होने लगा। ईसाई पादरियों के अतिरिक्त शासकों ने भी इस दिशा में प्रोत्साहन दिया। मूर्ति पूजा के विरोध में उन्होंने कई पुस्तकें निकालीं; जैसे 'धर्म-अधर्म परीक्षण' (१८६१ ई०), 'मूर्ति पूजा का वृतान्त' (१८७६ ई०) तथा 'हिन्दू धर्म के वर्णन' (१८६४ ई०) नामक नामक पुस्तकों में भारतीय सामाजिक तथा धार्मिक विचारों की उन्होंने कड़ी आलोचना भी की[1]। इनके अतिरिक्त ज्ञान, विज्ञान, गणित, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, व्यापार, टेलीग्राफ, स्त्री-शिक्षा तथा ग्राम-सुधार आदि विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय, इन पुस्तकों के माध्यम से, पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क में आने लगे। इतना ही नहीं, इन धर्म प्रचारकों ने ईसा मसीह के जीवन के विभिन्न दृश्यों को कथानक तथा संवाद के सूत्रों में पिरो कर नाटकों का रूप भी दिया, जिससे भारतीय जनता पर ईसाई धर्म का प्रभाव डाला जा सके।

इन साधनों द्वारा, इन पादरियों ने भारतीय जाति-पाँति, वर्ण-व्यवस्था, छूत-छात, बालहत्या, नरबलि, बहु-विवाह, पर्दा-प्रथा, धार्मिक सांप्रदायिकता तथा स्त्रियों की अशिक्षा तथा अज्ञानता की कट्टर आलोचना करके, हिन्दुओं को उनके धर्म की ओर से उदासीन बनाया, साथ ही साथ ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया। क्योंकि इन धर्म प्रचारकों का उद्देश्य, भारतीयों को निःस्वार्थ भाव से शिक्षा देना, तथा उनमें ज्ञान-विज्ञान का प्रसार करना नहीं था, वरन् उन्हें अपने धर्म की ओर आकर्षित करना ही था।

---

1. 'The christian missionaries of that day did not recognize any thing vital and valuable in the Indian religions. For them the native faiths were a mass of unredeemed darkness and error. They had supreme contempt for the heathen religions and wished to root them out.'

'Indian Religion and Western Thought'
S. Radha Krishnan, page, 22.

पत्रकारिता का उदय

इन नवीन विचारों के प्रसार में, प्रेस का बहुत बड़ा हाथ था। सन् १८३५ ई० के पहले, प्रेस पर अंग्रेजों का नियंत्रण था, क्योंकि उसका उपयोग विदेशी शासन के संचालन में ही होता था। जन-हित तथा ज्ञान-विज्ञान के प्रसार का वह माध्यम न बन सका था। सन् १८३५ ई० में सर चार्ल्स मेटकाफ ने एक ऐक्ट बनाकर प्रेस को स्वतंत्रता प्रदान की। मेटकाफ ने भारतीयों को यूरोपीय ज्ञान, विज्ञान से वंचित करने वाली शासकों के नीति की आलोचना की, और उन्हें प्रेरित किया कि भारत, अंग्रेजी साम्राज्यवाद का एक सहायक अङ्ग उसी समय बन सकता है, जब उन्हें यूरोपीय ज्ञान और विज्ञान के संपर्क में लाया जाय। इस प्रकार की चेतना प्रेस की स्वतंत्रता के फलस्वरूप ही प्राप्त हो सकती थी।

सन् १८७८ ई० में लार्ड लिटन ने, 'वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट' बनाकर प्रेस की स्वतंत्रता छीन ली, क्योंकि १८५७ ई० के विद्रोह के पहले और बाद में, प्रेस की स्वतंत्रता ने, जनता में समाचार पत्रों द्वारा, असंतोष तथा विरोध की भावना शासकों के प्रति उत्पन्न की थी। परन्तु, फिर सन् १८८० ई० में लार्ड रिपन ने 'प्रेस ऐक्ट' की इस अनीति का अनुभव करके, प्रेस विरोधी कानून को स्थगित कर दिया।

प्रेस की स्वतंत्रता तथा मुद्रण यंत्रों के प्रसार से, देश में समाचार पत्रों की संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी। बंगाल से 'बंगाल गजट', एक शताब्दी पूर्व निकल चुका था, परन्तु दो वर्ष पश्चात, शासन सम्बन्धी आलोचना पर, उसके एक लेख के कारण वह बन्द कर दिया गया। इसके पश्चात 'इण्डियन गजट', 'बंगाल हरकारा', 'कलकत्ता गजट' आदि अनेक पत्रिकाएँ निकलीं। इन पत्रों के अतिरिक्त, जिनका उद्देश्य केवल सरकारी सूचनाओं को प्रकाशित करना था, जनहिताय और भी अनेक पत्रों का आगमन हुआ। डा० मार्शमैन ने, बहुत पहले 'कैरे' की सहायता से, बंगला का सर्वप्रथम समाचार पत्र 'दिग्दर्शन' प्रकाशित कराया था। परन्तु वास्तव में हिन्दी पत्रकारिता का जन्म कलकत्ते में पं० युगलकिशोर शुक्ल द्वारा हुआ। उन्होंने, अपने संपादकत्व में ३० मई, सन् १८२६ को 'उद्दण्ड मारतंड' नामक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की। परन्तु दो वर्ष बाद वह बन्द हो गई। सन् १८२९ ई० में 'बंग दूत' नामक पत्र निकला, जो अंगरेजी, बंगला, फारसी और हिंदी चार भाषाओं में प्रकाशित होता था। जून सन् १८४४ ई० में बनारस से राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का 'बनारस अखबार' भाषा प्रचार के उद्देश्य से प्रकाशित हुआ। जून सन् १८५४ ई० में हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक समाचार पत्र 'सुधावर्षण' कलकत्ता

से श्री श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में हिन्दी और बंगला में प्रकाशित हुआ। उसके चौदह वर्ष बाद 'भारतेन्दु हरिश्चन्द' के 'कविवचन सुधा' का जन्म हुआ, जो एक उत्कृष्ट कोटि का साहित्यिक पत्र था। सन् १८८० ई० के लगभग, इसमें एक 'मर्सिया' नामक लेख निकला था, जिसमें सरकार की आलोचना की गई थी, अतः सरकार ने उसे खरीदना बन्द कर दिया, जिसके कारण 'भारतेन्दु' जी को काफी आर्थिक हानि हुई, और कुछ दिनों के बाद यह पत्र बन्द हो गया। इसके पश्चात्, उन्होंने १८७३ ई० में 'हरिश्चन्द मैगजीन' या 'चन्द्रिका' निकाली, जिसने साहित्यिक अभ्युदय में बडी सहायता दी। इसी समय लार्ड रिपन ने 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' को जिसके कारण प्रेस के कार्यों का नियंत्रण हो गया था, स्थगित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ, कि प्रेस को स्वतंत्रता प्राप्त हुई और समस्त देश मे सामाजिक तथा राजनीतिक सुधारों और आन्दोलनों का तांता लग गया। इन आन्दोलनों के फलस्वरूप अनेक समाचार पत्रों के पनपने का अवसर मिला। 'हिन्दी पंच', 'मित्र विलास' (१८७७ ई०), 'आर्य सिद्धान्त', हिन्दी प्रदीप (१८७७ ई०), 'आनन्द कादम्बिनी' (१८८१ ई०), 'ब्राह्मण' (१८८३ ई०), 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' (१८९७ ई०) तथा 'सरस्वती' (१९०० ई०) आदि पत्रिकाएं निकलीं। इनमें साहित्यिक पत्रों की संख्या अधिक थी। इन पत्रों के लेखों और समाचारों को पढ़ने से हम सरलता से इस निर्णय पर पहुँच सकते हैं, कि उस समय, पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा के संपर्क में भारतीय जन समुदाय कितने वेग से आ रहा था, साथ ही साथ, देश में पाश्चात्य शिक्षा तथा विज्ञान के नव प्रदीप्त आलोक ने एक नवीन चेतना का प्रसार किया था।

इन पत्रों से दो-चार उद्धरणों को, जो तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक नवोत्थान की भावना की परिचायक है। देना आवश्यक है। 'हिंदी प्रदीप' नामक पत्रिका प्रयाग से, पं० बालकृष्ण भट्ट के सम्पादकत्व में निकलती थी। उसके निम्नांकित लेख उपर्युक्त कथन को स्पष्ट करते हैं।

१—"मुल्की जोश जो हिन्दुस्तान में उठ रहा है, अंग्रेजी शिक्षा से पैदा हुआ है। अब पुराने ढर्रे पर चलने से कोई लाभ की आशा नहीं।" (हिंदी प्रदीप, मई १९०७ ई०)।

२—"जब से अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार इस देश में हुआ, तब से हमारे शिक्षित सज्जनों को देशानुराग या पैट्रियाटिजम की उमंग ऐसी छाई हुई है, कि जहाँ देखो नवयुवकों में इसी की चर्चा हुआ करती है। लड़के मदरसों में जब से ग्रीस, रोम तथा इंगलैंड का इतिहास पढ़ना आरम्भ करते है, तभी से

उन पर देशानुराग का भूत सवार हो जाता है।" (हिन्दी प्रदीप, फरवरी सन् १८९२ ई०) ।

३—"सारांश सब का यही है कि हमारी तरक्की की आशा, हमें तभी होगी, जब पुरातन और सनातन की ओर से तबियत हट, नूतन की कदर, हमारे चित्त में स्थान पावेगी, और अपनी हर एक बातों में नये-नये परिवर्तन का प्रचार कर, सभ्य देश और सुसभ्य जाति के समूह में गिनती के लायक हम अपने को और अपने नवाभ्युत्थान को सफल करेंगे।" (हिंदी प्रदीप, अक्तूबर, नवम्बर १८९६ ई०) ।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलन

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भली-भाँति स्पष्ट है कि पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार, प्रेस तथा समाचार पत्रों के विकास से सारा देश एक नई चेतना से ओतप्रोत हो रहा था। इस नवीन चेतना के फलस्वरूप कुछ सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन हुए, जिनके कारण देश के वातावरण में आमूल परिवर्तन हो गया। इन आन्दोलनों मे, ब्राह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफी, रामकृष्ण मिशन, तदीय समाज, अरविन्द तथा टैगोर के बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विचार, सामाजिक आन्दोलन तथा गाँधी जी द्वारा स्थापित सत्याग्रह और स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन हैं।[1]

ब्राह्म समाज

इस सुधारवादी संस्था की स्थापना, राजा राममोहन राय ने सन् १८२३ ई० में बंगाल में की थी। वे संस्कृत, फारसी के अतिरिक्त अंगरेजी साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दू धर्म के बाल-विवाह, सती प्रथा, पर्दा तथा मूर्ति पूजा आदि कुरीतियों का विरोध करके एक समन्वयवादी संस्कृति तथा धार्मिक सहिष्णुता की भावना को जागृत करने के लिए, उन्होंने इस समाज की स्थापना की थी। वे ईसाई धर्म की अच्छाइयों को ग्रहण करना चाहते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात ब्राह्म समाज के अनुयायी महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर हुए। आगे चलकर इसमें दो दल हो गये, जिनमें एक का संचालन केशवचंद्र सेन द्वारा हुआ। ब्राह्म समाज में सती प्रथा, तथा मूर्ति पूजा का विरोध किया गया तथा इसके द्वारा स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन मिला।

१—'ऐन ऐडवान्स हिस्ट्री आफ इंडिया'—आर० सी० मजूमदार, चौधरी, काली किंकरदत्त, द्वितीय संस्करण, पृ० ८७६-८८२। अध्याय-सामाजिक और धार्मिक सुधार।'

आर्य समाज

इसके संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती थे, जो वेदों के महान पंडित थे। सदियों से मुसलमानी शासन के फलस्वरूप तथा अंग्रेजों के आगमन से, हिन्दू-धर्म निराशा और अन्धकार मे रास्ता टटोल रहा था। स्वामी दयानन्द ने वेदों की महत्ता की ओर हिन्दुओं का ध्यान आकर्षित करके, वैदिक धर्म की स्थापना की। स्वामी जी ने, मूर्ति पूजा, बाल विवाह तथा बहुविवाह का विरोध करके विधवा विवाह का समर्थन किया। शुद्धि-आन्दोलन द्वारा हिन्दुओं को विजातीय बनने से रोका। स्त्री-शिक्षा का प्रचार किया तथा देश की धार्मिक रूढ़ियों और अन्ध परम्पराओं का नाश किया। अपने मतों के प्रचार के लिये उत्तरी भारत के सभी नगरों में, उन्होंने शिक्षा केन्द्र खोले, जो आज भी वर्तमान हैं। अपनी इन सेवाओं के कारण, स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्थान, हिंदू धर्म के उन्नायकों में अमर रहेगा।

थियोसोफी

इस आन्दोलन का सूत्रपात मैडम ब्लेवेट्स्की द्वारा सन् १८८६ ई० में भारत में हुआ। इसकी प्रधान संचालिका श्रीमती एनीवेसेन्ट थीं, जिनके उद्योग के फलस्वरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। थियोसोफी के द्वारा भारतीय जनता में, धार्मिक सहिष्णुता तथा समन्वय का दृष्टिकोण फैला।

रामकृष्ण मिशन

इसकी स्थापना श्री रामकृष्ण परमहंस द्वारा उसी समय हुई। इसके द्वारा धार्मिक ~~समन्वय तथा~~ समाज की निःस्वार्थ सेवा की भावना का प्रचार हुआ। श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रधान शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका जाकर भारतीय दर्शन का अमर-संदेश सुनाया तथा प्राच्य तथा पाश्चात्य विचारधारा के समन्वय की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। अपने इन नवीन विचारों के प्रकाशन में स्वामी विवेकानन्द प्रसिद्ध यूरोपीय दार्शनिक कामटे के 'पाजिटिव' दर्शन से प्रभावित हुए थे।[1]

प्रार्थना समाज की स्थापना महादेव गोविन्द रानाडे द्वारा महाराष्ट्र में हुई थी, इसका मूल उद्देश्य धार्मिक एकता की स्थापना करना था। इसके द्वारा स्त्रियों को शिक्षा तथा समानाधिकार की भावना का प्रोत्साहन मिला था।

श्री अरविन्द घोष ने अपने बौद्धिक विचारों से भारतीय मनीषा को

---

१ 'हिन्दी कविता पर आंग्ल प्रभाव'—रवीन्द्रसहाय वर्मा—पृ० ३८।

विशेष रूप से प्रभावित किया। उन्होंने पांडिचेरी में अपने आश्रम की स्थापना करके पूर्व और पश्चिम के समन्वय से, एक नई विचार पद्धति की स्थापना की जो आज भी एक प्रभावशाली सिद्धान्त के रूप में चल रहा है।

विश्व कवि श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर को 'गीतांजलि' की रचना के कारण नौवल पुरस्कार प्राप्त हुआ। वे भारत की स्वतन्त्रता के महान समर्थक थे। अपने काव्यों तथा नाटकों में, उन्होंने इन विचारों को अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। प्राचीन गरुकुलों के आधार पर, उन्होंने कलकत्ते के पास 'विश्वभारती' नामक संस्था की स्थापना की, जिसमें सी० एफ० ऐन्ड्रूज जैसे विचारक शिक्षक रूप के में आए जिनके द्वारा सांस्कृतिक समन्वय का संदेश भारत में फैला।

महात्मा गाँधी का अकेला व्यक्तित्व ही एक युग है और उनका जीवन एक महाकाव्य है। अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति के विरोध में अफरीका, फिर भारतवर्ष में उन्होंने सत्याग्रह तथा अहिंसा आन्दोलन को बड़े वेग से संचालित किया, जिसके फलस्वरूप देश के सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण में महान परिवर्तन उसस्थित हुआ। महात्मा गाँधी के विचारों पर पाश्चात्य देशों के 'रसकिन' तथा 'टालस्टाय' आदि विचारकों के सिद्धान्तों की स्पष्ट छाप पड़ी है, ऐसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। इन विचारकों के सिद्धान्तों की व्याख्या आगे चलकर की जायगी। महात्मा गांधी इन पाश्चात्य विचारकों के सपर्क मे आकर, पश्चिम की ही भाँति अपने देश में भी स्वतन्त्रता लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने देशव्यापी आन्दोलन किया, काँग्रेस की स्थापना की तथा देश को राजनीतिक आन्दोलन की ओर अग्रसर किया। राजनीतिक स्वतन्त्रता संग्राम के अतिरिक्त महात्मा गांधी ने, भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के उत्थान में भी महान योग दान दिया। स्वदेशी आन्दोलन, हरिजन उद्धार, धार्मिक एकता, नारी स्वतन्त्रता तथा समानता की भावना को साकार रूप देकर उन्होंने सदियों से सोये हुए भारत को नवीन चेतना से परिपूर्ण करके स्वतन्त्रता प्रदान की।

सन् १८९३ ई० में काशी में, आर्य-भाषाओं के प्रचार तथा पुराने साहित्य की शोध के लिये, बाबू श्यामसुन्दरदास की प्रेरणा से नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई, उसी तरह प्रयाग में हिन्दी के प्रचार के लिए साहित्य सम्मेलन नामक संस्था का सूत्रपात हुआ। भारतेन्दु ने 'तदीय-समाज' की स्थापना सामाजिक सुधार के लिए तथा कविता-वर्द्धिनी सभा को साहित्यिक प्रसार के लिए जन्म दिया।

इन सुधारों के परिणामस्वरूप एक नवीन चेतना की लहर सारे देश में

फैल गई, जिसके परिणामस्वरूप एक तरफ सती-प्रथा बाल-विवाह, छूआछूत, पर्दा तथा अज्ञानता आदि संकीर्ण विचारों का विरोध हुआ, दूसरी तरफ मनुष्य मात्र की समानता, धार्मिक सहिष्णुता, स्त्री स्वतन्त्रता तथा देश भक्ति की विचारधारा का प्रबल विकास हुआ। इसमें अंग्रेजी शिक्षा का भी बहुत बड़ा हाथ था। तत्कालीन समाचार-पत्र इस वातावरण के स्पष्ट परिचायक है।[1]

इस प्रकार भारतीय नवोत्थान चेतना का विकास पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के सम्पर्क में आने से हुआ। यह सम्पर्क पाँच मुख्य साधनों द्वारा प्राप्त हुआ—

१—नवीन शिक्षा संस्थाओं की स्थापना द्वारा।

२—यातायात के साधनों द्वारा।

३—ईसाई पादरियों तथा मिशन संस्थाओं द्वारा।

४—प्रेस तथा समाचार पत्रों द्वारा।

५—सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलनों द्वारा।

हिन्दी नाटकों का प्रारम्भ

पूर्व भारतेन्दु काल

संस्कृत नाटकों की समृद्धिशाली तथा अविच्छिन्न परम्परा, मुसलमानों के आने के पश्चात् इस देश में रुक गई। मुसलमानों के आक्रमण से भारतीय जीवन क्षुब्ध तथा अशांति से परिपूर्ण हो गया। मुसलमान शासक केवल धन के ही इच्छुक न थे, वरन् भारत पर शासन करके, उसके धर्म, सभ्यता तथा संस्कृति को भी नष्ट करना चाहते थे। फलतः इस अशान्ति तथा राजनीतिक अस्तव्यस्तता के युग में, साहित्य और ललित कलाओं का विकास रुक सा गया।

इसके अतिरिक्त यवन धर्मावलम्बी ललित कलाओं के प्रति स्वयं उदासीन

१—'भारतवर्ष, यद्यपि पहले विद्यादि सर्वगुण सम्पन्न था, परन्तु बीच में बहुत दिनों तक मुसलमानों की पराधीनता में रहने के कारण, भारतवासियों का साहस, उद्यम और उद्योग सब एक बार ही ऐसा विलुप्त हो गया है कि किसी काम के नहीं रहे।...............जब से स्वाधीन प्रिय अंग्रेजों के हाथ, भारत का बड़ा साम्राज्य शासन-भार आया, तब से हमारे हिन्दुस्तानियों में से किसी-किसी को ग्रीस की स्वाधीनता, किसी को अमेरिका और किसी को इंगलैण्ड की स्वाधीनता और सभ्यता सूझने लगी है।'—'सार सुधा निधि'—जुलाई, १८८०—पृ० १८३।

थे, अतः सङ्गीत और नाटक को प्रोत्साहन किस प्रकार मिल सकता था। परन्तु इन कारणों के अतिरिक्त नाटकों के अभाव का कारण, भारतीय रंगमच का न होना तथा विचारो के प्रकाशन के लिये, गद्य के माध्यम का न होना भी था। फलतः मध्य युग के नाटको का विकास रुक-सा गया । अवध-दरबार मे 'अमानत' द्वारा लिखित 'इन्दर सभा' (१८५३ ई०) नाटक से हम कभी भी इस निर्णय पर नहीं पहुँच सकते, कि मुसलमान नाटकों के प्रेमी थे ? परिणामतया भारतेन्दु के पूर्व, चार-पाँच वर्षों तक, कुछ ऐसे नाटकों का उल्लेख मिलता है, जो या तो संस्कृत नाटको के अनुवाद थे, या उनमें नाटकीय तत्वो का अभाव था, अतः हम उन्हें नाटकीय काव्य या पद्यात्मक संवाद मात्र ही कह सकते है। इन नाटकों मे हृदयराम का 'हनुमान नाटक' यशवन्त सिंह का 'प्रबोध चन्द्रोदय' रघुराम नागर कत 'सभा-सार', निवाज कवि कृत 'शकुन्तला महाराजा विश्वनाथ सिंह का 'आनन्द रघुनन्दन,, हरिराम का 'राम जानकी नाटक', ब्रजवासीदास का 'प्रबोध चन्द्रोदय' तथा गिरधर कृत 'नहुष' नाटक हैं। परन्तु इन कृतियों मे नाटकीय तत्वो का समावेश नही मिलता, अतः हम इनके संवाद युक्त कलेवर के कारण, इन्हें आधुनिक नाटकों की कोटि मे नही गिन सकते। विद्वानों की सम्मति में इन कृतियों में से, कुछ अवश्य सुन्दर बन पड़ी हैं। अतः हम उन्हें ही भारतेन्दु के पूर्व के नाटकों की कोटि में रखते हैं। इन कृतियों में से, महाराजा विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द-रघुनन्दन' तथा गिरधरदास कृत 'नहुष' आदि नाटकों का स्थान अग्रगण्य है। अस्तु, इनकी गणना हिंदी के आरम्भिक नाटकों मे की जाती है। 'नहुष' नाटक को जिसकी पूरी प्रति नहीं मिलती, भारतेन्दु जी ने स्वयं हिन्दी का प्रथम नाटक माना है।[1]

जन-नाटक

इन साहित्यिक नाटकों के अतिरिक्त, लोक परम्परा में लोक-नाटकों का व्यापक प्रचलन बहुत पहले से चला आ रहा था। इन लोक नाटकों में रासलीला तथा रामलीला की परम्परा बहुत ही प्राचीन है। ब्रज, मथुरा, आगरा तथा उसके आसपास कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं का प्रसार रास मंडलियों द्वारा हुआ। उधर मिथिला, काशी, तथा अवध प्रान्तों में रामलीला की प्रधानता रही। इन लीलाओं में धार्मिक भावना के अतिरिक्त वीर-पूजा की प्रवृत्ति थी, जिनसे भारतीय जनता विदेशी शासन के असंतोषपूर्ण वातावरण में किसी भाँति तृप्ति और आशा का अनुभव, समय-समय पर करती रही।

१—'भारतेन्दु (नाटक)—श्री ब्रजरत्नदास पृ० ७५२। ग्रन्थावली, पहला भाग, प्रथम संस्करण, सं० २००७ वि०।

इन लीलाओं के अतिरिक्त बंगाल मे यात्रा नाटकों तथा गुजरात में भवाई नाटकों का प्रचार था, जिनका उल्लेख विदेशी विद्वानों ने भी किया है । इन लोक नाटको के अतिरिक्त नौटंकी की मडलियाँ और स्वाँग भारतीय आख्यान के गोपीचद, पूरन भगत, आल्हा-ऊदल आदि प्रसिद्ध महापुरुषों और वीरों के कथानक के साथ घूम-घूम कर दिल्ली, पजाब तथा राजपूताना आदि प्रान्तों मे जन-नाटकों का प्रदर्शन करती थी । इन नाटकों मे पद्यात्मक संवाद तथा अनावश्यक उछल कूद अभिनय के रूप में रहता था । इस प्रकार के नाटक मेलों-ठेलों तथा त्यौहारों के अवसरों पर खेले जाते थे । परन्तु इनमें उत्कृष्ट कोटि के नाटकीय तत्वों का अभाव था । स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इन नाटको की गणना उच्च कोटि के नाटकों में नहीं की थी ।

परन्तु भारतेन्दु काल के नाटकों की उत्पत्ति इन लोक नाट्य सम्बन्धी लीलाओं से नहीं हुई । उनकी परम्परा तो मध्य युग से ही चली आ रही थी । क्योंकि जन-नाट्य की यह परम्परा अत्यंत विपन्न दशा में थी, अस्तु, भारतेन्दु को हिन्दी नाटकों की प्रेरणा के लिये केवल दो ही साधन उपलब्ध थे—१० संस्कृत नाटकों के अनूदित रूप, तथा २—शेक्सपीयर के नाटकों के माध्यम से प्राप्त पाश्चात्य नाट्य स्वरूप ।

परन्तु राष्ट्रीय जागरण तथा उत्थान के इस अवसर पर जिस प्रकार सामाजिक जीवन में भारत निवासी परम्परागत रूढ़ियों और धर्मान्धता को छोड़कर पाश्चात्य देशों के खान-पान, रीति-रिवाज तथा रहन-सहन के नियमों को अपना रहे थे, ठीक उसी भाँति साहित्यिक जीवन मे भी संस्कृत नाट्यशास्त्र की जटिलता तथा नियम बद्धता को छोड़कर शेक्सपीयर के नाटकों की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था । अत संस्कृत नाटको की परम्परा के प्रति आस्था रखते हुए भी, हिंदी नाटक साहित्य, संस्कृत नाटकों की नियम बद्धता तथा नियंत्रण से मुक्ति पाने के लिये लालायित था । गद्य और कविता के क्षेत्र में भारतेन्दु काल मे रीतिकालीन परिपाठी का बहिष्कार तथा नवीन राष्ट्रीयता तथा सामाजिकता के दर्शन होते हैं । नाटकों के क्षेत्र में भी पाश्चात्य प्रभाव का शेक्सपीयर के नाटकों के माध्यम से आना स्वाभाविक था ।

अस्तु, तत्कालीन हिंदी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव अनेक साधनों द्वारा पड़ा, जो निम्नांकित है—

१—बगला के मौलिक तथा अनूदित नाटकों के माध्यम से, जिन पर शेक्सपियर के नाटकों की छाया थी ।

२—शेक्सपियर के अनूदित तथा अभिनीत नाटकों द्वारा ।

३—अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार द्वारा ।

भारतेन्दु के नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव

भारतेन्दु के कुल अठारह नाटक मिलते है, जिनमे एक 'प्रवास' नाटक अपूर्ण और अप्राप्त है। इन नाटकों का काल-कुल-क्रम निम्नांकित है—

इनमें से बहुत से नाटकों का उन्होंने विभिन्न भाषाओं से अनुवाद किया। जैसे, १--पाखंड विडम्बन (सं० १९२९), २—'धनंजय विजय' (सं० १९३०), ३—'मुद्रा राक्षस' (सं० १९३१-३२), ४—'रत्नावली' (सं० १९२५), तथा ५—'सत्य हरिश्चन्द्र' (सं० १९३२), इन पाँच नाटकों का अनुवाद संस्कृत से किया गया। 'विद्या सुन्दर' (सं० १९२५) तथा 'भारत जननी' (सं० १९३४) इन दो नाटकों का बंगला से, और 'दुर्लभ बधु' (१९३७) का अंग्रेजी से अनुवाद किया गया। इनके अतिरिक्त, उनके नौ मौलिक नाटक है, जो निम्नांकित हैं। १—'वैदिकी हिसा हिंसा न भवति' (सं० १९३०), २—'विषस्य विषमौषधम (सं० १९३३), ३—'अंधेर नगरी' (सं० १९३८), ४—'भारत दुर्दशा' (सं० १९३३), ५—'नील देवी', (सं० १९३७), ६—'प्रेम योगिनी' (सं० १९३२), 'चन्द्रावली' (सं० १९३३), ८—'सती प्रताप' (सं० १९४१) तथा ९—'प्रवास' (स० १९२५)।

पाश्चात्य प्रभाव को यदि ध्यान में रखा जाय तो उनके नाटकों को निम्नाङ्कित वर्गों में बाँट सकते हैं--

१—सामाजिक नाटक।

२—प्रहसन।

३—ऐतिहासिक।

प्रथम तीन वर्गों मे संस्कृत परम्परा का अनुसरण किया गया है तथा इन्ही तीन वर्गों में पाश्चात्य यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया है, साथ ही साथ इनमें शेक्सपीयर की नाट्यशेली का प्रभाव है।

बंगला नाटकों के अनुवाद

पाश्चात्य प्रभाव, सबसे पहले, बंगला नाटको के माध्यम से हिंदी में आया। इसलिए सर्वप्रथम, हम उन्हीं नाटकों पर विचार करेंगे, जिनका अनुवाद भारतेन्दु ने बंगला से किया था। इनमें सबसे पहला 'विद्या सुन्दर' नाटक है। यह भारतेन्दु जी की पहली रचना है। अपनी बंगाल यात्रा के समय भारतेन्दु जी ने बंगला नाटकों का अभ्युदय देखा था। अतः हिंदी नाटकों में भी वे बङ्गला नाटकों के इन गुणों लाना चाहते थे।

'विद्या सुन्दर' एक शृङ्गार रस प्रधान नाटक है। इसमें कथानक का निर्माण तीन ग्रन्थों के आधार पर है। रामप्रसाद सेन तथा भारतचन्द्र राय

गुणाकर ने संस्कृत 'विद्या सुन्दर' के आधार पर दो काव्यों को लिखा था। यतीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसी कथानक पर एक नाटक का निर्माण किया था, जैसा कि भारतेन्दु जी ने स्वयं कहा है, कि 'गुणेकर जी के काव्य का, उनके अनुवाद पर प्रभाव पडा है। कथानक के रूप में सुन्दर नामक विद्यार्थी, राजकन्या विद्या पर मोहित हो जाता है, और उस पर अपना अनुराग दिखलाता है। राजकन्या उसे राजदण्ड का भय देती है, पर अन्त मे दोनों का मिलन होता है, क्योंकि राजा, सुन्दर की विद्वता पर मुग्ध हो जाता है। इस नाटक में केवल तीन अंक है। इसकी कथा शेक्सपीयर के रोमेन्टिक नाटकों से मिलती-जुलती है। नाटकीय शिल्पविधि में अंगरेजी प्रभाव स्पष्ट है। संस्कृत के नाटकों की भाँति सूत्रधार तथा नान्दी पाठ नहीं हैं। प्रस्तावना भी नहीं है। पद्य का प्रयोग बहुत कम किया गया है। इस नाटक में धूमकेतु तथा हीरा मालिन के वार्तालाप में यथार्थवाद की अच्छी झलक मिलती है।

'नील देवी' एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसका आधार एक अंग्रेजी काव्य है। इसकी नाटकीय शैली पर शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। नाटक की कथा यह है कि अब्दुलशरीफ सूर, पंजाब नरेश सूर्यदेव पर चढ़ाई करता है, परन्तु युद्ध में परास्त हो जाता है। अन्त में, धोखे से रात मे उसे बंदी बना लेता है। बंदी पंजाब नरेश सूर्यदेव की रानी नीलदेवी, गायिका का रूप धारण करके अब्दुलशरीफ के दरबार में जाती है, वहाँ उसे मार कर पति का शव ले जाती तथा उसके साथ सती हो जाती है। यही संक्षेप में, इसका कथानक है। शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों की भाँति, इसमें संघर्ष का अच्छा चित्रण किया गया है। 'सूर्यदेव' तथा 'अब्दुल शरीफ' का संघर्ष चरम सीमा पर उस समय पहुँचाता है, जब सूर्यदेव मारा जाता है। अब्दुलशरीफ की मृत्यु दुखान्त तत्त्वों के अनुसार, पाश्चात्य नाटकीय शैली के पतन या केटास्ट्राफी का सूचक है। इस नाटक का नायक 'सूर्यदेव' है, जिसमें 'शेक्सपीयर' के दुखान्त नाटकों के नायकों के अनेक गुण पाये जाते है। 'सूर्यदेव' लोहे के पिंजरे मे मूर्च्छित पड़ा हुआ है। उस समय देवता के गीत में, निराशा के शब्द, एक विषादमय वातावरण की सृष्टि करते हैं। नील देवी का चरित्र भारतीय वीर नारी के आदर्श को सामने रखकर किया गया है। ट्रेजेडी के तत्त्वों के अनुसार भय और करुणा का संचार नायक की मृत्यु के अवसर पर किया गया है। नाटक के बीच में, चौथा दृश्य एक सराय का है, जिसमें पीकदान अली, चपरगट्टू और भटियारिन का संवाद, गंभीर वातावरण के पश्चात् हास्य को ठीक उसी प्रकार उत्पन्न करता है, जैसे 'मैकबेथ' मे 'पोर्टर सीन' या 'हेमलैट' में कब्र खोदने वालों का दृश्य।

पाश्चात्य नाटकों के और भी कई तत्वों का इसमें अनुसरण किया गया है। उदाहरण के लिए, इसमें संस्कृत के नाटको के नियमों का पूर्ण बहिष्कार है। नान्दी, सूत्रधार, प्रस्तावना और भरत वाक्य इसमें नहीं है। संस्कृत नाटकों का सा आदर्शवादी चिघण भी, इसमे नहीं हैं। इसका कारण यह है, कि संस्कृत नाट्य-शैली में पूर्ण आस्था रखते हुए तथा संस्कृत नाटकों[१] की परम्परा का अनुसरण करते हुए भी, बाद मे भारतेन्दु जी ने अनुभव किया कि हिन्दी नाटकों के स्वच्छन्द विकास के लिये, संस्कृत नाटकों के ये जटिल नियम, नाट्य संधियाँ, अवस्थाये तथा कार्य प्रकृतियाँ और नान्दी सूत्रकार तथा रस परम्परा का पालन बाधक होगा। उनके 'नाटक' नामक निबंध से यह स्पष्ट है, कि वे संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी तथा बंगला नाट्य परम्पराओं से पूर्ण परिचित थे। अतः हिन्दी में भी संस्कृत नाटकों की जटिलता को दूर करके, वे अंग्रेजी नाटकों की स्वच्छन्द तथा सरल शैली को लाना चाहते थे। अपने 'नाटक' नामक निबंध में उन्होंने अपने इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"अब नाटक में कहीं आशीः प्रवृत्ति नाट्यालङ्कार, कहीं प्रकरी, कहीं विलोभन, कहीं पंच संधि या ऐसे अन्य विषयों की आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भाँति, इनका हिंदी नाटक में अनुसंधान करना, वा किसी नाटकांग में इनका यत्न पूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है, क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा संपादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ जाता है।"

इस प्रबंध के प्रथम अध्याय में बताया जा चुका है, कि संस्कृत नाटकों के अनुसार वध, मृत्यु तथा नाटकों की समाप्ति दुखान्त रूप में, भारतीय नाटक साहित्य में नहीं होती थी। इस दृष्टिकोण से भी यदि हम 'नीलदेवी' को देखें, तो हमें पता चलेगा कि वह भारतीय परम्परा से हटकर पाश्चात्य दुखान्त नाटकों की परम्परा का अनुसरण करता है। पाश्चात्य नाटकों की एक और विशेषता इसमें मिलेगी, भारतीय नाटकों के रस परिपाक के स्थान पर. पाश्चात्य नाटकों में कार्य व्यापार की सफलता दिखलाने के लिए उत्सुकता तथा कौतूहल और चरित्र चित्रण में शील वैचित्र्य तथा अन्तर्द्वन्द्व को महत्व दिया जाता है। उस आधार पर 'नीलदेवी' में भी, नाटककार ने उत्सुकता तथा कौतूहल को पूर्ण समावेश करने की चेष्टा की है। इस नाटक का कार्य-व्यापार

१—'भारतेन्दु, 'ग्रन्थावली'—पहला भाग–ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण सं० २००७ वि० पृ० ७२२

शेक्सपीयर के "मैकबेथ' नामक नाटक की भाँति अत्यन्त क्षिप्र गति से चलता है। संकलन त्रय के सिद्धान्तों का भी पालन किया गया है। अभिनेयता के दृष्टिकोण से भी, यह भारतेन्दु जी का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जा सकता है। चौथा दृश्य हास्यात्मक संवाद से ओत-प्रोत है। पाँचवाँ दृश्य जिज्ञासा और कौतूहल को चरम सीमा पर पहुँचा देता है। सातवें तथा आठवें दृश्य में करुणा और निराशा का तीव्रतर विकास दिखाया गया है। विशेषकर, उस अवसर पर जब राजा सूर्यदेव की मृत्यु का समाचार प्राप्त होता है। अन्तिम दृश्य, इस दृष्टि से अनुपम है, क्योंकि उसमें दुखान्त नाटक के सभी गुण पाये जाते हैं।

'भारत दुर्दशा' समाज सुधार के दृष्टिकोण से लिखा गया एक प्रतीकात्मक दुखान्त रूपक है। पश्चिम के 'मारेलिटी' नाटकों की भाँति इसमें भी, सत और असत वृत्तियों को चरित्रों के रूप में दिखाया गया है। पाश्चात्य नाटकों के, विशेषकर ग्रीक नाटकों के कोरस के आधार पर इसमें भी सहगायन रखा गया है। नवोत्थान काल में भारतीय जागृति तथा अधःपतन दोनों का जितना यथार्थवादी चित्रण 'भारत दुर्दशा' में हुआ है, उतना शायद ही भारतेन्दु के किसी नाटक में मिले। राष्ट्रीय चेतना के परिपोषकों को सरकार कितनी कड़ी नजर से देखती थी, इसका परिचय 'डिस-लायल्टी' नामक पात्र से मिलता है। बंगाल सबसे पहले पाश्चात्य सभ्यता तथा शिक्षा के सम्पर्क में आया था, इसको दिखलाने के लिए, इस नाटक में भारतेन्दु जी ने बंगाली चरित्रों की भी अवतारणा की है। छठें अङ्क में, जो नाटक का अन्तिम अङ्क है, 'भारत भाग्य, भारत की विपन्न दशा पर निराश और दुखी होकर अपनी छाती में कटार मार कर मर जाता है। इस प्रकार नाटक का अन्त पाश्चात्य दुखान्त नाटकों की परम्परा में किया गया है। इस प्रकार के नाटकों की ओर भारतेन्दु जी का पूर्ण ध्यान था, इसका परिचय हम उनके 'नाटक' नामक निबंध में पूर्ण रीति से पाते हैं। उन्होंने अपने उस निबंध में 'नाटक के काव्य-मिश्र' शुद्ध-कौतुक तथा भ्रष्ट-तीन भेद किये हैं। इसके पश्चात काव्यमिश्र को उन्होंने प्राचीन और नवीन दो रूपों में बाँटा है। नवीन के सम्बन्ध में उनका कथन है—

"आजकल यूरोप के नाटकों की छाया पर, जो नाटक लिखे जाते हैं, और बंग देश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं, यह सब नवीन भेद में परिगणित है। प्राचीन की अपेक्षा, नवीन की परम मुख्यता, बारम्बार दृश्यों के बदलने में है, और इसी हेतु एक-एक अङ्क में अनेक-अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है।......ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बंटे हैं। एक

नाटक, दूसरा गीति रूपक। यह दोनों कथाओं के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं, किन्तु उनके मुख्य भेद इतने किये जा सकते हैं यथा,—संयोगान्त... तथा वियोगान्त, जिसकी कथा अंत में नायक या नायिका के मरण वा किसी आपद घटना पर समाप्त हो।[1]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है, कि भारतेन्दु जी पाश्चात्य नाटकों के विषय, स्वरूप विधान तथा उनकी अनेक शैलियों से पूर्ण परिचित थे, जिनका उन्होंने अपने नाटकों में प्रयोग किया है।

'भारत जननी' नाटक की दिशा में एक नवीन प्रयोग है। यह एक ओपेरा है, जिसका आधार बंगला का 'भारत माता' नामक रूपक है। पाश्चात्य नाटकों के विकास में, प्रथम अध्याय में यह दिखलाया जा चुका है, कि सत्रहवीं शताब्दी में, ओपेरा की उत्पत्ति इटली से हुई और थोड़े ही दिनों में, यूरोप के समस्त देशों में, इनका प्रचार इतने वेग से बढ़ा कि तत्कालीन शासकों में ओपेरा थियेटर बनवाने की होड़ सी लग गई। 'भारत जननी' पर भी बंगला के माध्यम से इन्हीं ओपेरा नाटकों का स्पष्ट प्रभाव है।

'सती प्रताप' भी उसी तरह एक गीत-रूपक है, जिसमें सावित्री-सत्यवान के प्रसिद्ध आख्यान को नाटक का रूप दे दिया गया है। पाश्चात्य नाटकीय शैली की भाँति, इसमें चुम्बन और मिलन आदि दृश्यों को दिखाया गया है, जो संस्कृत नाट्य परम्परा के प्रतिकूल हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में नान्दी, प्रस्तावना और सूत्रधार को भी इसमे नहीं रखा गया है।

'सत्य हरिश्चन्द्र' क्षेमीश्वर कृत 'चंड कौशिक' और रामचन्द्र कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' के आधार पर लिखा गया है। यद्यपि इसमें संस्कृत शैली का अनुसरण किया गया है, परन्तु उसके परिपालन में शैथिल्य का प्रदर्शन हुआ है। उदाहरण के लिये पाँच अंकों के बदले, यह नाटक चार ही अंकों में समाप्त कर दिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र की दानवीरता तथा उनके त्याग का प्रदर्शन ही, इस नाटक का उद्देश्य है। मूल ग्रन्थ की भाँति वासनामूलक दृश्य, इसमें नहीं हैं। पश्चिमी शैली के अनुसार उत्सुकता तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के अनेक उदाहरण इसमें उपस्थित है। इसीलिए यह नाटक अभिनेय है। भारतेन्दु के समय में ही इसका कई बार अभिनय हो चुका था। मरघट के दृश्य में, हरिश्चन्द्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण है। वातावरण-चित्रण शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों जैसा है। उदाहरण के लिए अंधेरी रात, श्मशान घाट की निर्जनता तथा वर्षा ऋतु की भयंकरता—सब मिलकर एक

१—'भारतेन्दु ग्रंथावली'—पहला भाग, ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, सं २००७ वि०, पृ० ७१६

भयानक वातावरण की सृष्टि करते हैं। राजा हरिश्चन्द्र की रानी शैव्या, रोहिताश्व के मृत शव को लिये हुए घाट पर आती है। बिजली के कौंधने से हरिश्चन्द्र उसे पहचान लेते हैं। उनके मन में अपार दुख होता है। कर्त्तव्य और भावना के बीच महान संघर्ष उनके मन में छिड़ जाता है। इस प्रकार की उनकी मानसिक स्थिति शेक्सपीयर के 'हैमलेट' से मिलती-जुलती है।

"हा वज्र हृदय, इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता? अरे नेत्रों! अब और क्या देखना बाकी है, कि तुम अब भी खुले हो। इससे पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने योग्य डाली खींचकर, उसमें दुपट्टा बाँधता है) धैर्य। मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया। (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंककर) गोविन्द! गोविन्द! यह मैंने क्या अधर्म, अनर्थ विचारा। भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था, कि मैंने प्राण त्याग करना चाहा।"

तत्कालीन बंगला नाटकों में, शेक्सपीयर के नाटकों के आधार पर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से पूर्ण नायकों के चित्र रखे गये हैं, जिसका उद्देश्य नायक के चरित्र को स्वाभाविक रूप और गति देना है। संस्कृत की परम्परा के अनुसार नायकों में अलौकिक गुणों का समावेश किया जाता था, परन्तु इस प्रकार के चरित्र मानव न होकर देव स्वरूप हो जाते थे। पाश्चात्य नाटकों के चरित्र अपनी संपूर्ण कमजोरियों के साथ उठाये जाते थे, जो दर्शकों के मन पर स्वाभाविकता का आभास देते थे। भारतेन्दु जी ने भी इसी प्रकार के चरित्रों को रखने का समर्थन किया है। उनके 'नाटक' शीर्षक निबन्ध के यह स्पष्ट है—

"नाटकादि दृश्य काव्य में, अस्वाभाविक सामग्रों परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मंडली को नितान्त अरुचिकर है, इसलिये स्वाभाविकी रचना ही इस काल के सभ्य गण की हृदय ग्राहिणी है, इससे अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्य काव्य प्रणयन करना उचित नहीं है।"[१]

यह कहना, यहाँ असंगत न होगा कि अलौकिक को छोड़ने की, तथा स्वाभाविक को ग्रहण करने की प्रेरणा भारतेन्दु के अनेक नाटकों में प्राप्त होती है, जो पश्चिम की ही देन थी।

भारतेन्दु के, बंगला के आधार पर लिखे गये तथा अन्य नाटकों में किस प्रकार पाश्चात्य प्रभाव है, इसकी व्याख्या हो चुकी। अब मूल अङ्गरेजी द्वारा

१—'भारतेन्दु ग्रंथावली'—पहला भाग—ब्रजरत्नदास, प्रथम संस्करण, सं० २००७ वि०, पृ० ७२२

किए गए शेक्सपीयर के 'द मरचेंट ऑफ वेनिस' के अनूदित नाटक पर विचार किया जाएगा। इस नाटक का नाम भारतेन्दु जी ने 'दुर्लभ बंधु' रखा है। मूल नाटक से, इसमें भारतेन्दु जी ने अनेक परिवर्तन किये हैं। सबसे प्रथम अंग्रेजी नामो का उन्होंने भारतीयकरण किया है। ऐन्टोनियो के स्थान पर अनंत; वैसे-नियो के स्थान पर बसंत, पोरशिया को पुरश्री तथा वेनिस के स्थान पर वंश नगर आदि हिंदी नाम दिये गये है। मूल नाटक में शेक्सपीयर ने शाँइलाक तथा एन्टोनियो को यहूदी तथा ईसाई वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में रखा है। यूरोप में सदियों से इन दोनों वर्गों में बड़ी तनातनी चल रही थी। भारतेन्दु जी ने अपने इस अनुवाद में, ईसाई को हिन्दू तथा यहूदी को जैनी के रूप मे रखा है, क्योंकि हमारे देश में भी, इन दोनों वर्गों में बहुत पहले काफी खिचाव था, परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन वांछनीय नहीं थे। इससे मूल नाटक का सौंदर्य नष्ट हो गया है। अनुवाद में संदूक वाली कथा, भारतीय स्वयंबर के आधार पर है। वातावरण का चित्रण भी, मूल नाटक के ढङ्ग का न होकर भारतीय ढङ्ग से किया गया है। मूल नाटक में न्यायालय का दृश्य, तथा पोर्शिया का करुणा सम्बन्धी भाषण शेक्सपीयर साहित्य में अमर है, परन्तु उस सौन्दर्य को लेखक लाने में सफल नहीं हुआ है।

भारतेन्दु के प्रहसनों में हास्य और व्यंग्य

भारतेन्दु जी एक हंसमुख तथा विनोदी व्यक्ति थे। उनका प्रभाव, उनके युग के तमाम लेखकों पर पड़ा है। उनकी कृतियों में एक विचित्र जिन्दादिली मिलती है। संस्कृत साहित्य में प्रहसन अलग से नहीं लिखे गये, क्योंकि समाज उन्नत दशा में था। दूसरे, नाटक की परम्परा आदर्शवादी थी, अतः संस्कृत नाटकों में प्रहसनों का अभाव है। भारतेन्दु के प्रहसनों पर पश्चिम का स्पष्ट प्रभाव है। अरस्तू के म ानुसार प्रहसनों का प्रयोग सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये किया जाता है। भारतेन्दु ने भी तत्कालीन जीवन की अन्ध-विश्वास ग्रस्त कूप मंडूकता, तथा ढोंग के ऊपर कहीं-कहीं सहानुभूति पूर्ण और प्रायः तीखा व्यंग्य किया है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में मदिरा तथा मांस खाने वालों पर तीव्र व्यंग्य किया गया है। प्रारम्भ के दोहों में हो, पुरोहित के शब्द इसको स्पष्ट करते हैं—

यहि असार संसार मे चार वस्तु है सार
जूआ, मदिरा, मांस अरु, नारी संग विहार।

विदूषक के निम्नांकित आशीर्वाद में कितना सुन्दर व्यंग्य है ।

"हे ब्राह्मण लोगो ! तुम्हारे मुख में सरस्वती, हंस सहित वास करे, और उसकी पूँछ मुँह में न अटके । हे पुरोहित ! नित्य देवी के सामने बकरा मर-वाया करो, और प्रसाद खाया करो ।"

—('वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', द्वि० अंक)

'अन्धेर नगरी' में शासन की अव्यवस्था तथा न्यायहीनता पर व्यंग्य किया गया है । 'नील देवी' में सराय के दृश्य में पीकदान अली तथा चपरगट्टू के संवादों में, हास्य का स्रोत उमड़ पड़ा है । 'विषस्य विषमौषधम्' तत्कालीन राज्य-व्यवस्था पर व्यंग्य है । 'प्रेम योगिनी' मे भी व्यंग्य के सुन्दर चित्रण प्राप्त होते हैं । दो-एक उदाहरणों को लेना आवश्यक होगा ।

"वनिता अरे गुरू, गली गली तो मेहरारू मारी फिरथीं, तोहे एहू पर रोने बना है । अब तो मेहरारू टके सेर हैं । अच्छे-अच्छे अमीरनों के घर की तो पैसा के वास्ते हाथ फैलावत फिरथीं ।

—('प्रेम योगिनी' पृ० १४३, भा० नाटकावली)

दूसरे गर्भाङ्क में 'काशी वर्णन' में अच्छा व्यंग्य किया गया है—

"देखी तुम्हरी काशी लोगो, देखी तुमरी काशी ।
आधी काशी भाट भंड़रिया, ब्राह्मन और सन्यासी ।
आधी काशी रंडी मुंडी, राड़ खानगी खाँसी ।
घाट जाओ तो गंगा पुत्तर, नोचें दै गल फाँसी ।
करें घाटिया वस्तर मोचन, दे दे के सब झाँसी ।।
काम कथा अमृत सो पीवे, समुझै ताहि विलासी ।
राम नाम मुँह से नहि निकलै, सुनतहि आवै खाँसी ।

शेक्सपीयर के नाटकों में जहाँ पागलों का प्रलाप है, वह सोद्देश्य है । ठीक उसी भाँति, भारतेन्दु के 'नील देवी' में भी पागल का प्रलाप, हास्योत्पादक होने के अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थिति का द्योतक है ।

इन प्रहसनों में ही सामाजिक यथार्थवाद का चित्रण मिलता है, जो पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव के कारण है । अराजकता, घूस, पाखण्ड, कुव्यसन, आलस्य, विश्वासघात, पण्डितों और पुजारियों की धन लोलुपता तथा उनका चरित्र भ्रष्ट होना भारतेन्दु जी ने जगह-जगह दिखाया है । इस प्रकार पतनो-न्मुखी समाज का यथार्थवादी चित्र खींचकर देश-प्रेम की भावना का उन्होंने परिचय दिया है । संस्कृत नाटकों के आदर्शवादी चित्रण को छोड़कर अंग्रेजी नाटकों की देखा-देखी, वे सामाजिक यथार्थ के चित्रण की ओर उन्मुख हुए ।

अपने 'नाटक' नामक निबन्ध में, उन्होंने इस भावना को भली-भाँति स्पष्ट किया है।

"वर्तमान समय में इस काल के कवि, तथा सामाजिक लोगों की रुचि, उस काल (प्राचीन काल) की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है। इससे सम्प्रति, प्राचीन मत अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्य काव्य लिखना युक्ति संगत नहीं बोध होता।[1]

भारतेन्दु की नाट्यकला

अपने नाटकों के निर्माण में भारतेन्दु जी ने पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों शैलियों का समन्वय किया है। संस्कृत नाट्य परम्परा में अगाध विश्वास रखते हुए, तथा उसका अनुसरण करते हुए भी, उसकी जटिलता और नियम बद्धता को धीरे-धीरे तोड़कर पाश्चात्य नाटकों की सरल तथा स्वच्छन्द नाट्य शैली को अपनाने की प्रवृत्ति उनकी रही है। उनके नाटकों के दृश्य-विधान सरल तथा अभिनेय हैं। 'नील देवी', 'अन्धेर नगरी' तथा अन्य प्रहसनों में भी पूर्ण अभिनेय तत्व मिलते है, इसका कारण यह है कि उन्होंने संस्कृत नाटकों के जटिल दृश्य-विधान को अनुपयुक्त समझा। इतना होते हुए भी उनके नाटक सुरुचि तथा शास्त्रीय ज्ञान के परिचायक हैं। पारसी कम्पनियों के कुरुचिपूर्ण तथा व्यावसायिक वृत्ति के नाटकों के वे पूर्ण विरोधी थे। 'नाटक' नामक निबन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि वे शकुन्तला नाटक के, पारसी रंगमंच पर भद्दे अभिनय को देखकर उठकर चले गये थे। अस्तु, उन्होंने हिन्दी नाटकों को जन्म देने के साथ ही साथ हिन्दी रंगमच की भी स्थापना की। उन्होंने बंगला नाटकों की तरह प्राचीन संस्कृत शैली को एक दम त्याग कर न तो अंग्रेजी परम्परा की नकल की, और न प्राचीन नाट्य शास्त्र की जटिलता में ही अपने को फँसाया। तात्पर्य यह है कि मध्यम मार्ग को ग्रहण करके, उन्होंने हिन्दी नाटकों की ग्राहिका शक्ति का विकास किया। परिणामतया वे नवोत्थान काल के सच्चे प्रतिनिधि तथा अग्रणी कलाकार के रूप में आये। उनके ही आदर्शों को परवर्ती नाटककारों ने ध्यान में रखकर नाटकों की रचना की।

भारतेन्दु के समकालीन नाटककार

लाला श्रीनिवास दास

भारतेन्दु के नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव, अधिकांश बंगला के माध्यम से

१. 'भारतेन्दु 'ग्रन्थावली'—पहला भाग—ब्रजरत्नदास, पृ० ७२१।
प्रथम संकरण, सं० २००७ वि०।

आया, परन्तु उनके समकालीन लेखकों में कतिपय ऐसे भी लेखक हैं, जिनके नाटकों में सीधे पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा मिलती दिखाई देती है। ऐसे ही लेखकों में लाला श्री निवासदास प्रमुख है। उनके नाटकों को देखने से स्पष्ट है, कि शेक्सपीयर के नाटकों को उन्होंने भली-भाँति पढा था। शेक्सपीयर के अतिरिक्त, और भी अनेक पाश्चात्य लेखकों से वे परिचित थे, इसका परिचय उनके 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास से मिलता है। इसमें जगह-जगह यूरोप के अनेक लेखकों के उद्धरण दिए गये हैं। शेक्सपीयर का प्रभाव तो प्राय: सभी अंगरेजी जानने वालों पर व्यापक रूप से पड रहा था। उसकी रचनाओं में इतना आकर्षण था तथा उसे पढने और अनूदित करने के लिए हिन्दी लेखक इतने लालायित थे, इसका परिचय तत्कालीन प्रसिद्ध समाचार पत्रों के अध्ययन से मिलता है। 'सार सुधा निधि' के संपादक पं० शंभुनाथ मिश्र के नाम, १८ अगस्त सन् १८७९ ई० में एक पत्र प्रयाग से पं० काशीनाथ ने निम्नांकित आशय का भेजा था। इसका शीर्षक था **'शेक्सपीयर कवि की नाटक रचना'**—

"श्रीयुत 'सार सुधानिधि' सम्पादक महाशय ! निवेदनमिदम्,

शेक्सपीयर कवि केवल ग्रेट ब्रिटेन देश में ही नहीं, वरन यूरोप के सब प्रदेशों में अपनी कविता और नाटक रचना के लिये प्रसिद्ध है। इसके नाटक ऐसे सुन्दर अपूर्व रीति से लिखे गये हैं, उनमें कवि ने मनुष्य के हृदय के भाव, संकल्प, विकल्प, प्रीति, भय, त्रास, चिन्ता आदि का मानो साक्षात चित्र ही चित्रित कर दिया है। उनके नाम की उन प्रदेशों में बड़ी प्रतिष्ठा है, और उनके नाटकों के तमाशे नित्य प्रति उन देशों के नाट्य भवनों मे हुआ करते हैं। चार्ल्स लैम्ब साहब ने साधारण पाठकों के चित्तविनोदार्थ, और विद्यार्थियों के उपकार के लिये इस महाकवि के नाटकों की कहानियों को बहुत ही सरल और साधु इंगलिश भाषा में लिखा है। यह बड़े मनोहर और ललित है। इस कारण मेरा विचार है कि इन सब मे जो रमणीय है, क्रम-क्रम हिन्दी भाषा में अनुवाद कर लूँ। इनमें से 'मरचेंट ऑफ़ वेनिस' (वेनिस के व्यापारी), 'ए विंटर्स टेल' (शरद ऋतु की कहानी) दो नाटको का अनुवाद हो चुका है। पहिला 'कवि वचन सुधा' में क्रम-क्रम से छप रहा है, दूसरा आज आपके पास भेज रहा हूँ। कृपा करके अपने पत्र में स्थान दीजियेगा। शेष को सावकाश मैं अनुवाद करके आपके पास भेजूँगा। यदि हमारे कृपालु पाठकों को इनके पढ़ने से आनन्द हो और चित्त प्रसन्न हो, और कुछ ज्ञान उपदेश हो, तो यह दास अपने परिश्रम को सुफल करके मानेगा। यदि आप अथवा कोई और गुण

ग्राहक, उदार चित्त महात्मा इन नाटकों को अलग ग्रन्थाकार छपवाने का प्रबंन्ध कर लेवे, तो मैं बहुत शीघ्र इन सबका अनुवाद करके भेज दूं । मुझे इस परिश्रम से धर्म उपार्जन करने की इच्छा नहीं है ।

सिरसा, जिला इलाहाबाद — आपका परम मित्र
१३ अगस्त १८७९ — काशीनाथ

उपर्युक्त पत्र के पढने मे दो बातें स्पष्ट हैं । एक तो स्कूलों और कालेजों की उच्च कक्षाओं में पाठ्य कोर्स के रूप में शेक्सपीयर के अध्ययन अध्यापन से उसका प्रचार बढ़ रहा था, दूसरा शेक्सपीयर के नाटकों को साधारण पढ़ी-लिखी जनता भी स्वान्तः सुखाय पढती थी । परिणामतया हिन्दी नाटककारों पर तो उसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था ।

लाला श्रीनिवासदास ने शेक्सपीयर के 'रोमियो और जूलियट' के आधार पर 'रणधीर प्रेम मोहिनी' (१८७७) नामक हिन्दी का प्रथम दुखान्त नाटक लिखा, इसमें पाटन के राजकुमार रणधीर और सूरत की राजकुमारी प्रेम-मोहिनी की प्रेम कथा है । पाश्चात्य नाटकों की भाँति उसमें प्रस्तावना, नान्दी पाठ इत्यादि नहीं हैं । रणधीर का साहस रोमियो की भाँति तथा जूलियट का अगाध प्रेम शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों जैसा है । प्रेममोहिनी का पिता उसके स्वयंवर के लिये उसकी प्रतिमा बनवाता है । स्वयंवर का यह दृश्य तीसरे अङ्क मे 'मरचेट ऑफ वेनिस' के 'कासकेट सीन' से मिलता-जुलता है । दृश्य के स्थान पर बँगलों की देखा-देखी गर्भांक रखा गया है । चौथे गर्भांक मे रण-धीर और प्रेममोहिनी के प्रेमालाप मे रोमियो और जूलियट के बालकनी के दृश्य की छाया है । इसमे घनानन्द के कवित्तों द्वारा श्रृङ्गार रस का वातावरण उपस्थित किया गया है । कथानक के निर्वाह में संकलन त्रय को दृष्टि में रखा गया है ।

नाटक के प्रारम्भ में जो भूमिका दी गई है, उसमें ट्रेजेडी की परिभाषा और उसके स्थायी प्रभाव की व्याख्या इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि लेखक अरस्तू के काव्यशास्त्र में दिये ट्रेजेडी की व्याख्या से पूर्ण परिचित था । 'भूमिका' में लेखक का कथन है कि 'इटली के बीच पीट्रार्क एक महाकवि था । जिस नाटक के अन्त में बखेड़ा मिट कर आनन्द हो जाय, उसे कामेडी कहते है और जिसके अंत में करुण रस बना रहे, उसे ट्रेजेडी कहते हैं । रणधीर प्रेम-मोहिनी का नाटक ट्रेजेडी है । अंग्रेजी में 'ओथेलो', 'रोमियो जूलियट', बंगला में 'कृष्णाकुमारी', 'नील दर्पण', गुजरात में जमशेद वगैरा बहुत सी भाषाओं

में ट्रेजेडी नाटक मिलते हैं। नाटक का खेल पूरा हुये पीछे ट्रेजेडी का असर बहुत देर तक देखने वालों के मन मे रहता है।[1]

लाला श्रीनिवास दास का दूसरा नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' है, जो यद्यपि संस्कृत शैली में लिखा गया है, फिर भी इसके अन्तिम दो अङ्कों मे शेक्सपीयर के 'द मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' की छाप है। संयोगिता हरण का प्रसंग जिस रूप में रखा गया है, वह 'द मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' में शाइलॉक की पुत्री 'जेसिका के अपहरण' से मिलता-जुलता है जो लारेन्जो, ग्रेशियानों द्वारा किया जाता है।

श्रीनिवास दास की अन्य दो कृतियाँ संस्कृत नाटकों के आधार पर लिखी गई है। लाला श्रीनिवास दास के पश्चात भारतेन्दु के समकालीन लेखको मे राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रतापसिह तथा महारानी पद्मावती' का स्थान है, जिसमे शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव है। 'महाराणा प्रताप' में प्रताप अरावली के जंगलों मे बाल-बच्चो के साथ विपन्नावस्था में जीवन व्यतीत कर रहे है, इस नाटक मे की पंच सधियों के अतिरिक्त पाश्चात्य नाटकों की पाँच अवस्थाओं का भी निर्वाह किया गया है। यह नाटक सस्कृत शैली को अपनाता हुआ भी, उससे स्वतंत्र होने की भी चेष्टा दिखलाता है। इस नाटक में सात अंक तथा छत्तीस गर्भाङ्क है। यह ध्यान रखना चाहिए, कि गर्भाङ्को का प्रयोग, अंगरेजी के दृश्यों के अनुसार, बंगला के माध्यम से हुआ। चरित्र चित्रण, कथोपकथन तथा अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक भारतेन्दु युग का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहा जा सकता है। कई स्थानों पर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के बडे सुन्दर चित्र रखे गये हैं। उदाहरण के लिए जंगल वाले दृश्य मे महाराणा प्रताप की कई दिन की भूखी लड़की के हाथ से, जब विलाव रोटी लेकर भाग जाता है, और वह तड़प कर, पिता की ओर, क्षुधातुर नेत्रों से देखकर, क्रन्दन कर उठती है, उस समय प्रताप के मन में कर्त्तव्य. देश भक्ति तथा संतानप्रेम के बीच का अन्तर्द्वन्द्व 'हैमलेट' के समान दिखाया गया है। राधाकृष्णदास के 'दुखिनी बाला', 'महारानी पद्मावती' और 'सती प्रताप' में भी संस्कृत के नाट्य नियमों की उपेक्षा की गई है।

---

1. Throughout the piece the author *maintains, all three* unities. The author has no doubt borrowed a number of ideas from Shakespeare, but he has so well assimilated and clothed them in beautiful and simple language that they appear entirely original.'

—'*Indian Tribune*'—Allahabad, Sat. Feb. 23. 1878.

भारतेन्दुकालीन दुखान्त नाटक

भारतेन्दु के दुखान्त नाटको की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त, लाला श्रीनिवासदास कृत 'रणधीर प्रेम मोहिनी' की भी चर्चा हो चुकी है। परन्तु इस काल में, शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों के आधार पर अनेक नाटक लिखे गये। उदाहरण के लिए **राधाचरण गोस्वामी** की 'चन्द्रावली' भी एक ट्रेजेडी है, जिसमे पाश्चात्य परम्परा का पालन किया है। उपर्युक्त नाटको के अतिरिक्त, 'कमल मोहिनी', 'गंगोत्री', 'लावण्यवती' और 'जयंत' आदि दुखान्त नाटक भी इस काल मे लिखे गए। यद्यपि अंतिम नाटकों की कला परिपक्व नहीं है, परन्तु दुखान्त नाटकों की परम्परा को उन्होंने आगे बढ़ाया, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

श्री राधाचरण गोस्वामी का 'तन, मन, धन श्री गोसाई जी के अर्पण' (१८९० ई०) तथा 'बूढ़े मुँह मुहासे' दो प्रहसन हैं, जिनमें सामाजिक समस्याओं पर व्यंग्य किया गया है।

पं० बालकृष्ण भट्ट के प्रकाशित और अप्रकाशित कुल पन्द्रह नाटक हैं, जिनमें 'पद्मावती' और 'शर्मिष्ठा' बंगला नाटककार और कवि, माइकेल मधुसूदनदत्त के नाटकों के अनुवाद है। शेष नाटक सामाजिक तथा प्रहसन हैं। 'मृच्छकटिक' तथा 'वेणु संहार' यद्यपि संस्कृत नाट्य परम्परा मे लिखे गये हैं, पर उनमें भी अंग्रेजी शैली का प्रभाव है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र के नाटक सामाजिक और प्रहसन के रूप में हैं। 'कलि कौतुकि' तथा 'चोरी और जुवारी' में वेश्यावृत्ति और मदिरा पान की आलोचना की गई है।

पाश्चात्य नाट्य शैली का स्पष्ट प्रभाव **पं० केशवराम भट्ट** के नाटकों में अवश्य मिलता है। उन्होंने बंगला नाटक 'शरत और सरोजिनी' के आधार पर 'सज्जाद सबुल' (१८७७ ई०) तथा 'सुरेन्द्र विनोदिनी' के आधार पर 'शमसाद सौसन' (१८८० ई०) नामक नाटकों की रचना की।

'सज्जाद संबुल' का प्रारम्भ एकदम पश्चिमी नाटकों की शैली पर होता है। नाटक के प्रारम्भ मे सज्जाद एक पत्र पढ़ते हुए जाता है, जिसमें यह लिखा है, कि 'अगली अंजुमन में साइंटिफिक एशोसिएशन' में एक भाषण होने वाला है जिसमे यह विचार किया जायगा कि आदमी बन्दर की संतान है।' इस भाषण मे डारविन के विचारो का स्पष्ट प्रभाव है, जिसका प्रतिनिधि वैज्ञानिक हेमचन्द्र है। नाटक में कुल छः अंक है तथा २७ झाँकियाँ है। संबुल, असहाय नारी के रूप में सज्जाद के यहाँ आश्रय पाती है, फलस्वरूप दोनों में प्रेम का उदय होता है। उपकथानक के रूप में शमसेर नामक एक रईस की प्रेमिका

गुलशन उसके दरबार से निकाल दी जाती है, जिसके साथ अब्बास प्रेम करने लगता है। परन्तु नाटक के अन्त में शमसेर मारा जाता है, और सज्जाद और संबूल तथा अब्बास और गुलशन में विवाह हो जाता है। शेक्सपियर के रोमेंटिक सुखान्त नाटकों की भाँति इसमें भी प्रेम तथा मिलन की गाथा गायी गयी है।

नाटक के सवाद सरल तथा अभिनेय है। बंगाली पात्रों के मुख से अशुद्ध हिन्दी तथा मुसलमानो के मुख से अशुद्ध भाषा का प्रयोग कराकर हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। नाटक का नायक सज्जाद अग्रेजी शिक्षा के कारण, पाश्चात्य विचारो से प्रभावित है। नायिका सम्बुल भी पर्दे की प्रथा में विश्वास नहीं करती। नाटक के बीच-बीच में अग्रेजी राज्य की प्रशंसा की गई है।

'शमसाद सौसन' में भी नायक शिक्षित तथा देशभक्त है। इस नाटक में चार अंक और सत्रह झाँकियाँ है। शमसाद और सौसन, इसमें नायक और नायिका हैं। शमसाद का कुछ रुपया, रां साहब के यहाँ है, जो शमसाद को रुपया देने से इनकार कर देता है और उसे मारकर निकाल देता है। इसका बदला सौसन का भाई केसर लेता है। केसर का प्रेम शमसाद की बहिन हमीदा से है। अन्त में दोनों प्रेमी वर्ग विवाह बंधन में बंध जाते है। इस नाटक में शेक्सपीयर के 'ट्वेल्थ नाइट्' की शैली का अनुसरण किया गया है। मजिस्ट्रेट के द्वारा अंगरेज अफसरों की खिल्ली भी उड़ाई गई है। परिणय तथा मिलन के दृश्य शेक्सपीयर के रोमेंटिक नाटकों के आधार पर हैं।

भारतेन्दुकालोन यथार्थवादी परम्परा के नाटक तथा प्रहसन

पिछले पृष्ठों में यह बताया जा चुका है कि अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क के फलस्वरूप हमारे यहाँ अनेक सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। फलत: नाटकों में भी सुधार सम्बन्धी भावना का यथार्थ रूप में चित्रण होने लगा। इन नाटकों को हम यथार्थवादी परम्परा की कोटि में ही रखेंगे। हम उन्हें, डा० सोमनाथ गुप्त के शब्दों में समस्या नाटक न कहकर सामाजिक नाटक ही कहेंगे।[1] डा० सोमनाथ गुप्त ने, समस्या नाटकों का सूत्रपात भारतेन्दु काल से ही बताया है, परन्तु हम उनके इस मत से सहमत नही हैं। इसका कारण यह है कि सामाजिक नाटको और समस्या नाटकों की शैली तथा टैकनीक में महान् अन्तर है। सामाजिक नाटकों में समाज, व्यक्ति तथा जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ आदर्श का भी समावेश रहता है। परन्तु

१. 'हिन्दी नाटक साहित्य का विकास'—डा० सोमनाथ गुप्त—पृ० सं० १६५१

समस्या नाटकों में व्यक्ति तथा समाज के संघर्षों का ही केवल चित्रण रहता है। लेखक के लिए आवश्यक नहीं है कि वह उनमें आदर्शों का समावेश करे। दूसरी बात यह है कि समस्या नाटको में पात्र व्यक्ति का नही वरन् एक वर्ग का प्रतीक बनकर आता है। अधिकांश में इस प्रकार के नाटकों में विचारों और सिद्धान्तों की प्रधानता रहती है। पात्र, कथानक तथा घटना का स्थान अत्यन्त गौण रहता है। तीसरी विशेषता समस्या नाटकों में शैलीगत होती है। सामाजिक नाटकों में व्यंग्य तथा कटूक्तियों की इतनी तीव्रता नहीं होती, जितनी समस्या नाटकों में। इसीलिए समस्या नाटकों की शैली बहुत ही प्रभावशाली होती है। भारतेन्दुकालीन नाटकों मे हम किसी सिद्धान्त या विचारधारा का प्रवर्तन करते हुए लेखक को नहीं पाते हैं, उनमें केवल सामाजिक यथार्थों का चित्रण है। इसलिए हम उन्हें समस्या नाटकों की कोटि में नहीं रख सकते। समस्या नाटकों का विकसित तथा प्रौढ रूप हिन्दी में इब्सन तथा शॉ के आदर्शों पर, लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों मे पाया गया, अतः हम समस्या नाटकों का आरम्भ उसी समय से मानते हैं।

यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है, कि देश में सुधारों के फलस्वरूप सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थवादी रूप से चित्रण बड़े वेग से नाटकों में हो रहा था। इन परिस्थितियों को जानने के लिए हमें देश के वातावरण पर भी ध्यान देना होगा।

तत्कालीन वातावरण

उस समय तक देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं। १८८५ ई० में काँग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। लार्ड रिपन के द्वारा प्रेस को स्वतंत्रता मिल चुकी थी। लार्ड कर्जन ने अपनी साम्राज्यवादी नीति को परिपुष्ट करने के लिए १९०५ में बंग-भंग का आन्दोलन चलाया, जिसके फलस्वरूप सारे देश में, विशेषकर बङ्गाल में उग्र आन्दोलन हुए। सरकार ने अपनी दमन नीति का आश्रय लेकर इसको कुचलने का प्रयत्न किया; जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप काँग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन का देश-व्यापी रूप से संचालन किया। स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हुआ। जनता मे अंग्रेजी सरकार और उसके शासन के प्रति घृणा की भावना जग उठी।

सामाजिक सुधारों में भी बाल-विवाह, बहु-विवाह, पर्दा, अशिक्षा, स्त्रियों की निरक्षरता, अन्ध विश्वास, पाखंड, रूढ़िवाद, वेश्यावृत्ति तथा कूप मंडूकता का बड़े जोर से विरोध हुआ। धार्मिक सुधारो में भी धार्मिक एकता तथा सम-

न्वय की प्रवृत्ति अधिक हुई। छूतछात के भेद-भाव को मिटाने की ओर लोगों की प्रवृत्ति गई। तत्कालीन समाचार पत्रों में इस सुधारवादी प्रवृत्ति का अच्छा परिचय मिलता है। 'हिन्दी प्रदीप' के कुछ लेखों को देखिए—'

'हम भी ऐसा बेहया लिखने वाले हैं, कि बाल्य विवाह की बुराई पर न जानिये कितना लेख लिख चुके, कोई अङ्क खाली नहीं जाता, जिसमें दो-एक लेख इस कुरीति पर खोंचा देने की भाँति न लिखते हों, किन्तु यह बुराई इतनी बद्धमूल हो रही है, कि कभी किसी की दृष्टि इस ओर पडती ही नही। पर हमने बरसों तक मनन कर यह दृढ़ निश्चय कर रखा है कि देश का उद्धार केवल इस कुरीति के उठा देने से ही होगा।

—('हिन्दी प्रदीप', सि० अक्टूबर, नवम्बर १८९५ पृ० ४७)

"इसलिये यदि संसार में सुख चाहते हो, तो इन ललना जनों को शिक्षा और स्वतंत्रता दो, उनका विश्वास कीजिये, इसमें मुल्क की तरक्की का प्रधान अङ्ग है। बिना इन ललनाओं की दशा के परिवर्तन के देश का कल्याण और समाज की उन्नति सब भाँति असंभव है।"

—('हिन्दी प्रदीप', जनवरी १८९२)

"जब तक वे पुराने लोग रहेंगे, इंडिया का रीजनरेशन नहीं हो सकता। जब तक कन्जरवेटिव छोड़ के लिबरल नहीं होंगे कुछ नही होता। थियोसोफी अब इंडिया में इंट्रोड्यूज हो गई है। अब बहुत जल्द रीजनरेशन होगा, बूढ़े मुँह मुहासे वैसे ही रहेंगे, हम लोग तो रिफार्मर हैं। पुरानी बेहूदगी को हटा कर न्यू वेस्टर्न लाइट लावेंगे। हम लोग प्रोग्रेस कर ही रहे हैं।"

—(हिन्दी प्रदीप, जुलाई १९०५)

अस्तु, इस सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण यथार्थवादी नाटकों की बाढ़ सी आगई तथा अनेक प्रहसनों की उत्पत्ति हुई है।

राष्ट्रीय चेतना संबंधी यथार्थवादी नाटक

इस प्रकार के नाटकों में तत्कालीन पराधीनता तथा उससे उन्मुक्त होने की भावना का अनेक नाटककारों ने चित्रण किया है। इस प्रकार के नाटकों का सूत्रपात भारतेन्दु ने बहुत पहले 'भारत दुर्दशा' लिखकर कर दिया था। उसी शैली पर अम्बिकादत्त व्यास का 'भारत सौभाग्य' (१८८८ ई०), शरत मुकर्जी का 'भारतोद्धार' (१८८३ ई०), खंग बहादुर मल का 'भारत आरत' (१८८५ ई०), बदरीनारायण प्रेमघन का 'भारत सौभाग्य' (१८८८ ई०), दुर्गादत्त का 'वर्तमान दशा' (१८९० ई०), गोपाल राम गहमरी कृत 'देश दशा', जगत नारायण का 'भारत दुर्दिन' (१८९५ ई०), देवकीनंदन त्रिपाठी का 'भारत

हरण' (१८९९ ई०) और प्रताप नारायण मिश्र का 'भारत दुर्दशा' (१९०२ ई०) आदि प्रधान नाटक है। प्रायः इन सभी नाटकों में संस्कृत नाट्यशैली के अनुसरण में लेखकों ने शैथिल्य प्रदर्शन किया है। उदाहरण के लिए किसी एक नाटक को लिया जा सकता है। अम्बिका दत्त व्यास का 'भारत सौभाग्य', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारत दुर्दशा' के आधार पर लिखा गया है। क्योंकि इसमें भी, भारत दुर्दशा की भाँति, भारत दुर्भाग्य, विषय भोग, मूर्खता, फूट, शिक्षा तथा एकता प्रतीकात्मक चरित्रो के रूप में रखे गये है। संस्कृत नाट्य शैली के अनुसरण मे लेखक उदासीन सा दिखाई पड़ता है। सूत्रधार यह कहते हुए रंगमंच पर प्रवेश करता है—

"आज के खेल में प्रस्तावना का काम नहीं है।[1]

इस नाटक में 'शिक्षा' नामक पात्र के द्वारा अंगरेजी सभ्यता और शासन की प्रशंसा की गई है—

"ज्ञान दृष्टि सबकी अब बाढ़ी, सब शुभ रीतिन ठानत।
हाल अमेरिका, इंगलैंड के घर बैठे अब जानत।
अँग्रेजी घर-घर में पैठी, सबको सबै सुझायो।
नाटक में सब ठौर-ठौर में, अपनो रंग जमायो।"

—('भारत सौभाग्य" —अम्बिकादत्त व्यास-पृ० ७)

अगरेजी नाटकों का हिन्दी नाटकों पर कितना व्यापक प्रभाव पड़ रहा था, उपर्युक्त पद्य के अतिम दो पंक्तियों से स्पष्ट है। इसी प्रकार इस नाटक में जगह-जगह अंग्रेजो भाषा तथा ब्रिटिश शासन की प्रशंसा की गई है। उदाहरण के लिए—

'लोह की वीथी, बनी चहु ओरन, रेलनि को धधकार छयो है।
तारनि की पुनि तार लगी, छन मात्र में आनत हाल नयो है॥
सेतु बधी अति तीखी नदीन हूँ, धार धुआंकस धूम ठयो है।
है अंगरेजी गलीन गली, अब भारत और को और भयो है॥

सामाजिक नाटक

इस काल में यथार्थवादी धारा पर लिखे गये सामाजिक नाटकों की संख्या और भी अधिक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रेम योगिनी द्वारा इस धारा का सूत्रपात बहुत पहले कर दिया था। 'प्रेमयोगिनी' में काशी की तत्कालीन हीनावस्था का बहुत सुन्दर चित्रण है। इस धारा के अन्य नाटककारों में आगे चल-

१. 'भारत सौभाग्य' —अम्बिका दत्त व्यास—अक १।

कर नारी शिक्षा, बाल विवाह, बहु विवाह, वेश्या वृत्ति तथा आर्यसमाजी विचारधाराओं का अपने नाटकों में प्रकाशन किया। नारी शिक्षा तथा अज्ञानता प्रकाशन सम्बन्धी नाटकों में बैजनाथ कृत 'वीर नामा' (१८८३ ई०), प्रतापनारायण मिश्र कृत 'कलि कौतुक रूपक', खंग बहादुर मल की 'हरि तालिका' और 'भारत ललना' (१८८७, १८८८ ई०), गणेशदत्त कृत 'सरोजिनी नाटक' (१८८७ ई०), देवराज कृत 'सावित्री नाटक' (१८८८ ई०), बालमुकुन्द पांडेय का 'गंगोत्री नाटक' (१८६५ ई०), कामताप्रसाद का कान्या संबोधिनी नाटक' (१८८८ ई०), बलदेवप्रसाद मिश्र का 'नवीन' 'तपस्विनी नाटक' (१६०२ ई०) है।[1]

इसी प्रकार विवाह संबंधी सुधारों, आदर्शों तथा वेश्यावृत्ति और उनके दुष्परिणाम पर भी अनेक नाटक लिखे गए। प्रथम में काशीनाथ खत्री का 'विधवा विवाह' तथा घनश्यामदास कृत 'वृद्धावस्था विवाह' (१८८८ ई०) दूसरे में श्री गौरीदत्त का सर्राफी (१८६७ ई०) नाटक प्रसिद्ध है।

आर्यसमाजी विचारधारा से संबंधित नाटकों में रुद्रदत्त का 'पाखड मूर्ति' जगन्नाथ भारतीय का 'समुद्रयात्रा वर्णन', तथा वर्ण व्यवस्था नामक नाटक उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त सभी नाटकों में अंगरेजी तथा संस्कृत दोनों नाट्यशैलियों का समन्वित रूप दिखाई देता है परन्तु हम इन नाटकों को शुद्ध नाटक की कोटि में, नहीं रख सकते। क्योंकि इनमें चरित्र-चित्रण, संघर्ष तथा अभिनेता की कमी तथा उपदेशात्मकता और व्याख्यानबाजी का प्रभाव अधिक है।

भारतेन्दु कालीन प्रहसन

अपने आदर्शवादी और आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण संस्कृत नाटकों ने हास्य के अवतरण बहुत थोड़े अपनाये हैं। संस्कृत नाटकों में हास्य को लेकर अलग से प्रहसन नहीं लिखे गये, किसी गंभीर वातावरण के बीच हास्य रस का एक दृश्य नाटकों में रख दिया गया। हास्य की आत्मा को परखने का मौलिक प्रयास यूनानी दार्शनिकों ने सबसे प्रथम किया।[2] एरिस्टोफेनीज के नाटकों को पढ़कर हम हँसी से लोट-पोट जाते हैं। हास्य की प्रवृत्ति जीवन के क्षेत्र में समन्वय को उत्पन्न करती है। विषमताओं को समता के रूप में परिवर्तित करती है। शेक्सपीयर के फाल्स्टाफ के प्रति हमारी सहानुभूति अब भी बनी हुई है। मोलियर के नाटक हास्य रस के क्षेत्र में अमर हैं।

१—'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास'—डा० सोमनाथ गुप्त-पृ० ७८।

२—'हास्य की रूपरेखा'—डा० एस० पी० खत्री पृ० १६०।

हिन्दी नाटकों में हास्य रस की उत्पत्ति भारतेन्दु के समय से ही हुई । भारतेन्दु के प्रहसन शिष्ट तथा उच्चकोटि के प्रहसन हैं। उनके नील देवी, पाखंड विडम्बन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, प्रेम योगिनी, विषस्य विषमौषधम्, भारत दुर्दशा, अन्धेर नगरी में हास्य के आकर्षक उदाहरण मिलेंगे। परन्तु इन सभी नाटकों को प्रहसन की कोटि में हम नहीं रखेंगे। भारतेन्दु के प्रहसन मे केवल तीन प्रमुख हैं। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अंधेर नगरी तथा विषस्य विषमौषधम्। प्रथम में मांस भक्षियों के मांस भक्षण को धर्मानुकूल सिद्ध करने की प्रवृत्ति, बंगाली के प्रलाप, यमपुरी के दृश्य, तथा पुरोहित और चित्रगुप्त के वार्तालाप में हास्य की अवतारणा की गई है। अंधेर नगरी में राज्य की कुव्यबस्था की खिल्ली उडाई गई है। वास्तव में शुद्ध प्रहसन की कोटि में इन्हीं दो नाटको को रख सकते हैं। विषस्य विषमौषधम् तत्कालीन राजनीति से सम्बन्धित है, और संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार 'भाण' का एक उदाहरण है।

भारतेन्दु के बाद श्री बालकृष्ण भट्ट ने १८७७ ई० में 'शिक्षा दान या जैसा काम वैसा परिणाम' नामक प्रहसन की रचना की, जिसमें वेश्यावृत्ति तथा नशेबाजी के दुष्परिणामों का चित्रण किया गया है। रसिकलाल नामक एक युवक कुसंगति में पड़कर कैसे अपने चरित्र को दूषित करता है, और उसकी स्त्री मालती किस प्रकार एक नाइन की सहायता से अपने पति को कुमार्ग से बचाती है, इसी का चित्रण है। 'नाइन' जब घर में छिप कर बैठती है, तो उसकी बातें हास्योत्पादन करती हैं। कहीं कहीं संवाद पूरा अंग्रेजी में चलता है, जैसे रसिक लाल और उसके चरित्र-भ्रष्ट मित्र की बातचीत।[१]

भट्टजी के 'शिक्षा दान' के पश्चात् प्रहसनों का ताँता लग गया। श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी ने अनेक प्रहसन लिखे, जिनमें 'रक्षा बन्धन' (१८७८ ई०), 'एक एक के तीन तीन' (१८७६ ई०), 'स्त्री चरित्र' (१८७६ ई०), 'वेश्या विलास' 'बैल छः टके को' तथा 'सैकड़ों में दस-दस', 'जय नार सिंह' की (१८८३ ई०) और 'कलजुगी जनेऊ' (१८८६ ई०) आदि हैं।[२] 'रक्षा बंधन' तथा 'स्त्री चरित्र में' और 'वैश्या विलास' म वेश्या-गमन तथा सुरापान के दुष्परिणाम का चित्रण है। 'बैल छः टके को' में दिखाया गया है

१—रसिक लाल Wait a little, I have bought some new bottles from kilners, this morning.

राधावल्लभ—Very well please. look sharp then.

शिक्षा दान या जैसा काम वैसा परिणाम—बालकृष्ण भट्ट, पृ० ११।

२—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास; डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० ८३।

कि मनुष्य लालची न हो, स्पष्टवादी और नम्र हो। 'जय नारसिंह की' में ओझा, जादू और टोने का वर्णन है, जिनमें निरक्षर जनता का प्रबल विश्वास है। 'सैकड़ों में दस-दस' में वेश्यागमन, जुआ तथा मद्यपान के लिये धनी व्यक्तियों को पुलिस द्वारा किस प्रकार की यातना भोगनी पडती है, इसका चित्रण है। भारतेन्दु के बाद तीव्र व्यंग्य लिखने वालों में त्रिपाठी का स्थान सबसे ऊँचा है। त्रिपाठी जी के पश्चात् राधाचरण गोस्वामी के प्रहसनों में व्यंग्य सुन्दर तथा उच्चकोटि का मिलता है। उनके दो प्रहसन पाये जाते हैं। 'बूढ़े मुँह मुँहासे, तथा लोग देखे तमाशे' (१८८७ ई०) में भक्तों की पोल खोली गई है। 'तन, मन, धन गोसाँई जी के अर्पण' (१८९० ई०) में ढोंग और पाखंड पर व्यंग्य किया गया है। 'भंग तरंग और 'यमलोक यात्रा' इनके दो और प्रहसन है। लाला खंग बहादुर मल्ल के 'भारत आरत' (१८८५ ई०) में मद्यपान और मुकदमेंबाजी के दोषों का वर्णन किया गया है। किशोरीलाल गोस्वामी के 'चौपट चपेट' (१८९१ ई०) में लम्पटों की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। देवकी नन्दन तिवारी के 'कलियुगी विवाह' (१८९२ ई०) में बाल-विवाह, के अपव्यय तथा अश्लील और भद्दे गानों की निन्दा की गई है। चौधरी नवल सिंह के 'वेश्या' नाटक (१८८३ ई०) में वेश्यावृत्ति की निन्दा की गई है। गोपालराम गहमरी के 'जैसे को तैसा' में 'वृद्ध विवाह' के दुष्परिणाम का चित्रण है। विजयानन्द त्रिपाठी ने भारतेन्दु के 'अन्धेर नगरी' के आधार पर 'महा अन्धेर नगरी' की तथा देवदत्त शर्मा ने 'अति अन्धेर नगरी' की रचना की। इसके अतिरिक्त मेरठ के पं० गौरीदत्त शर्मा के 'सर्राफी' नाटक (१८९७ ई०) में सर्राफी लिपि के कारण सेठ जी के सर्वनाश का दृश्य दिखलाया गया है। हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ ने 'ठगी की चपेट बग्गी की रपेट' (१८८४) नामक प्रहसन चार अंकों में लिखा। इसमें ठगों द्वारा चोरी के गहने बेचने का स्वांग दिखलाया गया है। प्रतापनारायण मिश्र के 'कलि कौतुक' रूपक में कलियुग के पाखंड का चित्रण है। इस युग के अन्य प्रहसनों में पन्नालाल का 'हास्यार्णव' (१८८५ ई०) रामशरण शर्मा का 'अपूर्व रहस्य' (१८८८ ई०), माधव प्रसाद का 'हास्यार्णव का एक भाग' (१८९१ ई०), बचनेश मिश्र का 'हास्य' (१८९३ ई०), राधाकान्त का 'देसी कुत्ता बिलायती बोल' (१८९८ ई०), और बलदेव मिश्र का 'लल्ला बाबू' (१९००ई०) आदि हैं।

इन प्रहसनों का मुख्य उद्देश्य समाज सुधार का काम आगे बढ़ाना था। यूरोप में भी सत्तरहवी शताब्दी में मोलियर तथा फ्रांस में अन्य प्रहसनकारों ने प्राचीन रूढ़ियों की पोल खोल कर समाज सुधार के लिये वातावरण तैयार किया था। हिन्दी नाटकों द्वारा वही कार्य हो रहा था। हां, यह निस्संदेह कहा

जा सकता है कि इन प्रहसनों में से अधिकांश का स्तर बहुत ही सस्ता और निम्न कोटि का था। कहीं-कहीं तो निरर्थक प्रलाप और उपदेश तथा प्रवचन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। कहीं-कहीं बेतुके और अश्लील हास्य को उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। परन्तु हिंदी नाटको के इस प्रारम्भिक काल में, जबकि समाज इतना निरक्षर और कूपमंडूक बना हुआ था, इन लेखकों ने इन प्रहसनों द्वारा जागृति और सुधार की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया यही क्या कम था। इनके द्वारा छुआछूत, मद्यपान, वेश्या गमन, बाल और वृद्ध विवाह, अपव्यय, निरक्षरता तथा संकीर्ण धार्मिक विश्वासों पर आक्रमण किया गया, जिसके फलस्वरूप धार्मिक एकता, नारी शिक्षा और स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय जागरण का दिव्य आलोक फैला, जिससे भारतीय समाज का कोना-कोना आलोकित हो उठा। परिणामस्वरूप इन प्रहसनों के यथार्थ चित्रण में विदेशी सभ्यता तथा शिक्षा का विशेष प्रभाव है, इसीलिये हम इन्हें संस्कृत नाट्य-शैली से अलग मानते हैं। इनमें से अधिकांश प्रहसन बंगला को देखा देखी लिखे गये।

बंगला नाटककारों पर पाश्चात्य प्रभाव

कलकत्ते में यूरोपीय रंगमंचों की स्थापना तथा पाश्चात्य नाटकों का अभिनय—

बंगाल में शेक्सपीयर के नाटकों की धूम बहुत पहले मच चुकी थी। शेक्सपीयर के अतिरिक्त अन्य पाश्चात्य नाटकों का पहले अभिनय भी हुआ था। बंगाल में फ्रेंच, पुर्तगाली तथा अंग्रेज रहते थे। कलकत्ता उस समय भारत की राजधानी थी। वहाँ पर, यूरोप निवासियों के मनोरंजन के लिये, बहुत से अंग्रेजी रंगमंच स्थापित हो चुके थे। कलकत्ते में रंगमंच की स्थापना का कार्य सबसे पहले एक रूसी यात्री हैरेसिम लिवडफ ने किया था। वह मदरास में एक संगीत का अध्यापक था। सन् १७७५ ई० में वह कलकत्ता आया। कलकत्ते में यूरोपीय निवासियों के मनोरंजन के लिए उसने एक कम्पनी खोली, जिसका नाम 'द ग्रेट मुगल' था। इसमें पश्चिमी नाटकों के खेलने के लिये उसने तत्कालीन गवर्नर जनरल से आज्ञा प्राप्त की। सर जार्ज ग्रियर्सन ने सन् १९२३ ई० के कलकत्ता रिव्यू के एक लेख में बताया है कि उन्होंने 'द डिसगाइस और द लव इन द बेस्ट डाक्टर' नामक पाश्चात्य नाटकों का पहले पहल अनुवाद किया। इन नाटकों का अभिनय २१ मार्च सन् १७९६ ई० को कलकत्ता

में हुआ था।[१] इस तरह कलकत्ता में यूरोपीय ढंग के नाटकों का सूत्रपात करने वाला एक रूस निवासी लेब्रेडाफ नाम का यात्री था। उसी ने सबसे पहले बंगाल में रंगमंच की स्थापना की। इसके पश्चात चन्द्र नगर में 'चन्द्र नगर' नामक थियेटर की स्थापना सन् १८०८ ई० में फ्रांसीसियों द्वारा की गई। इस थियेटर में अप्रैल सन् १८३८ ई० में एक फ्रेंच प्रहसन का अभिनय हुआ। इस का कथानक यह था कि एक गड़रिये के ऊपर एक फ्रांसीसी सरदार ने भेड़ें चुराने का अभियोग लगाया था। इसी प्रकार पुर्तगाली चर्च द्वारा सन् १८१२ ई० में 'एथिनियम' थियेटर खोला गया। उसके पश्चात् 'चौरंगी' थियेटर की स्थापना हुई, जिनमें कई यूरोपीय नाटक खेले गये। २ फरवरी सन् १८२७ ई० में इस चौरंगी थियेटर में दो फ्रेंच नाटक खेले गये, जिनकी बड़ी प्रशंसा हुई, इसकी उल्लेख २ फरवरी १८२७ ई० के 'इंडियन गजट' से प्राप्त होता है।[२]

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि किस प्रकार बंगाल मे भी रंगमंच की स्थापना सबसे प्रथम यूरोप निवासियों द्वारा हुई और उनमें पाश्चात्य नाटकों का अभिनय हुआ। यह उस समय की घटना है, जब डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा अंग्रेज सभी बंगाल में व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा के लिये जमे हुए थे, परन्तु अंग्रेज उसमें सफलीभूत होकर शासक बन गये।

बंगला नाटककार

हिंदी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव बंगला के माध्यम से आया, इसकी चर्चा की जाचुकी है। परन्तु बंगला नाटककारों ने किस प्रकार पाश्चात्य नाटकों की विशेषताओं को, अपनी कृतियों में ग्रहण किया, इसका उल्लेख भी आवश्यक

1—'Thus the begininng of the first Bengali Drama came from a foreigner, there is nothing to be ashamed of at this. Lebuffs attempt was the first begininng of the grorious revival of Hindu Stage.

'The Indian Stage'—Das Gupta. Vol. I, page 237.

2—'The Chowrangi, theater was full to much satisfaction. 'The Water Man' and Mousiur Tenson' were performed. Morblew in the latter, surpassed his former per excellence. He entirely identified himself with the whimsical character of the distracted but most amusing old Franch man. We need scarcely add that full justice was done by the orchestra.

—Ibid, page 226.

है। अतः इस प्रकार के नाटकों का वर्णन यहाँ समीचीन होगा। इन बंगला नाटक लेखकों में माइकेल मधुसूदन दत्त, मन मोहन बसु, सतीशचन्द्र बसु तथा गिरीशचन्द्र घोष सबसे प्रथम पाश्चात्य नाटकों से प्रभावित हुए। माइकेल मधुसूदन दत्त के प्रहसन 'एइ कि सभ्यता' का उल्लेख हो चुका है, जिसका अनुवाद हिंदी में पं० ब्रजनाथ शर्मा द्वारा सन् १८८८ ई० में हुआ था। कुछ और बंगला नाटककारों की कृतियों का उल्लेख आवश्यक होगा, क्योंकि उनके हिंदी में भी अनुवाद हुए। राजकिशोर डे ने पद्मावती नामक नाटक १८८६ में लिखा, जिसका अनुवाद हिंदी में रामकृष्ण वर्मा ने किया। द्वारिकानाथ गांगूली ने १८८६ ई० मे 'वीर नारी' नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा, इसका अनुवाद भी रामकृष्ण वर्मा ने किया। मन मोहन बसु द्वारा सती नाटक (१८८६ ई०) तथा अश्रुमती नाटक लिखे गये, जिनके अनुवाद गाजीपुर के उदित नारायण लाल वकील द्वारा हुए।

माइकेल मधुसूदन दत्त

परन्तु उपर्युक्त नाटकों का स्थान इतना महत्वपूर्ण नही है। महत्व के दृष्टिकोण से 'माइकेल मधुसूदन दत्त' का ऐतिहासिक नाटक 'कृष्ण कुमारी' है, जिसमें भारतीय राजपूत-इतिहास के एक ज्वलंत पृष्ठ को खोलने का प्रयत्न लेखक ने किया है। उदयपुर के राना भीमसिंह की लड़की कृष्णकुमारी के अनुपम सौंदर्य पर मोहित होकर जयपुर तथा मारवाड़ दोनों देशों के राजकुमारों में उससे विवाह करने की घोर प्रतिस्पर्द्धा हुई। दोनो ने राना के पास अपने-अपने दूतों को भेजा। जन्मभूमि मे अकारण रक्तपात को बचाने के लिये कृष्णकुमारी ने विष पीकर अपना शरीर त्याग दिया। विषपान, पिता और चचा की प्रेरणा से उसने शिरोधार्य किया। अंत में राजकुमारी के पश्चात्, उसकी माता की भी मृत्यु हो जाती है। नाटक एक ऐतिहासिक दुखान्त नाटक है, जिस पर शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों का स्पष्ट प्रभाव है। वही गम्भीर तथा विषादमय वातावरण मिलता है। राना भीमसिंह प्रतिस्पर्द्धा के लिये जब दोनो राजकुमारों की खून की नदी बहाने को तैयार देखते हैं, तो उनके मानसिक अंतर्द्वन्द्व मे शेक्सपीयर की के दुःखान्त नाटकों की स्पष्ट छाप है। नाटक के पाँचवें अंक के दूसरे दृश्य में भृत्य जब विष लेकर राजकुमारी को देने के लिये जाता है, उस समय, एकलिंग महादेव के मन्दिर के पास भयानक आँधी आती है। मृत्यु के पहिले आँधी के इस वातावरण-चित्रण पर 'जूलियस सीजर' के स्टार्म सीन' या 'मैकबेथ' के 'पोर्टर सीन' की छाप है। शेक्सपीयर भी ट्रेजेडी घटित होने के

पहले अपने नाटकों में प्रकृति में भी एक भयानक दुखान्त वातावरण उत्पन्न करके, ट्रेजेडी की पूर्व सूचना दे देता है। इस उपर्युक्त नाटक में भी, इसी प्रकार का वातावरण है। भृत्य के स्वगत भाषण में, जो शेक्सपीयर के स्वगत भाषणों के आधार पर है, निम्नांकित निराशापूर्ण मन:स्थिति की कितनी सुन्दर व्यंजना है—

"भृत्य—(स्वगत) कैसा अंधकार है। आकाश में एक भी तारा नहीं देख पड़ता। कैसा भयानक स्थान है। यहाँ न जाने कितने भूत, प्रेत और पिशाच रहते है। (चौंक कर) ओ बाबा ! यह क्या ? कुशल हुई, वह तो एक सियार है। जान पड़ता है, ये सियार दल बाँध कर भूतों की स्तुति करते हैं। आज कई दिन से महाराज का हाल खराब है। खाना, पीना, सोना और राज काज सब छोड़ दिया है। हर घड़ी यही कहा करते थे, 'हाय विधाता क्या मेरे भाग्य में यही था। हाय बेटी कृष्णा ! जो तेरा रक्षक था, उसे ही तेरा भक्षक बनना पड़ा।'

('कृष्णाकुमारी' पृ० ३५)

इस प्रकार हम देखते है कि माइकेल मधुसूदन दत्त के "कृष्ण कुमारी" में वातावरण तथा अंतर्द्वन्द्व चित्रण में शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों की स्पष्ट छाप है।

गिरीशचन्द्र घोष

बंगला मे राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना करने वाले, तथा उसको पूर्णता पर पहुँचाने वाले गिरीशचन्द्र घोष का स्थान बंगला नाटक साहित्य मे सदा से अमर है। वे बंगला साहित्य के शेक्सपीयर कहे जाते हैं। उन्होंने कई नाटकों को शेक्सपीयर के आधार पर लिखा। मानसिक अंतर्द्वन्द्व तथा वातावरण चित्रण में उन्होंने अपने नाटकों में शेक्सपीयर के नाटकों का पूर्ण आधार लिया है। इस प्रकार के चार नाटकों का उल्लेख आवश्यक है, जिनमें वे शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों के आदर्शों को पूर्ण रीति से ग्रहण करते हुए पाये जाते हैं। वे चारों नाटक निम्नांकित हैं—

१—पतिव्रता, २—प्रफुल्ल, ३—वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति, और ४—बलिदान। इनमे अंतिम तीन नाटकों का स्थान, उपर्युक्त कथन की दृष्टि से आवश्यक है।

पतिव्रता—यह गिरीशचन्द्र घोष का एक सामाजिक नाटक है, जिसमें मोहन नामक एक रईस तथा उनकी स्त्री हेमवती के जीवन की यथार्थवादी परिस्थितियों को स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह पहला नाटक है,

जिसमें उदात्तवादी नाटकों की परम्परा को छोड़कर, यथार्थवाद का चित्रण, पाश्चात्य नाटकों के आधार पर किया गया है। इसका अनुवाद श्री रूपनारायण पांडेय ने सन् १९३४ ई० में किया था।

प्रफुल्ल—यह भी लेखक की एक श्रेष्ठ सामाजिक ट्रेजेडी है। रूपनारायण पांडेय जी ने इसका भी अनुवाद सन् १९३६ ई० में किया था। इसका कथानक यह है, कि योगेश, बंगाल का एक धनी जमीदार है। कुव्यसन में पड़ जाने से वह अपनी आदतों को नष्ट कर देता है। उसकी सारी संपत्ति मद्य पान में स्वाहा हो जाती है। उसका मझला भाई रमेश एक वकील है। प्रफुल्ल उसी की स्त्री है, जिसमें भारतीय बहू के सभी गुण विद्यमान है। सबसे छोटे भाई का नाम सुरेश है। उमा जो तीनों भाइयों की माँ है, सबसे बड़ी बहू ज्ञानदा को गृहस्थी सौंप कर वृन्दावन जाती है। योगेश शराब के दुर्व्यसन' में सारी पैत्रिक सम्पत्ति फूंक डालता है। इधर, छोटा भाई सुरेश चोरी के अपराध में गिरफ्तार हो जाता है। प्रफुल्ल छोटे भैया (सुरेश) को हर प्रकार से बचाना चाहती है। परन्तु योगेश को इसकी कोई परवाह नहीं। वह मदिरालय में खूब पी कर मस्ती के गीत गाता है। इस दृश्य के निर्माण में लेखक ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार गोल्डस्मिथ के 'शी स्टूप्स टु कान्क्वर' नामक नाटक के मदिरालय दृश्य का आधार ग्रहण किया है। क्योंकि, इस दृश्य में योगेश शराब में मस्त होकर मदिरालय में ठीक उसी प्रकार के गीत गाता है, जैसे 'टानी लुंकिन।' प्रफुल्ल, भारतीय नारी की प्रतीक है, क्योंकि परिवार की रक्षा में, वह अपना बलिदान कर देती है। नाटक की भाषा सरल और यथार्थवादी है, कहीं संवाद एकदम अंगरेजी में रखे गये हैं। उदाहरण के लिये, दूसरे अंक के तृतीय दृश्य में डा० कालीचरण योगेश के लिए एक स्थल पर कहते है, "हाँ इससे कोलैप्स हो सकता है। थ्री आउंस पोर्ट वाइन, थ्री ग्रेन्स कुनैन, सोडा वाटर के साथ पीजिए।"

वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति—गिरीशचन्द्र घोष के प्रसिद्ध दुखान्त नाटक "शास्ति या शान्ति" का अनुवाद है। इस नाटक में भारतीय विधवा का जीवन कितना असहाय और करुण होता है, निर्मला नामक चरित्र द्वारा दिखाया गया है। नाटक की शैली पाश्चात्य है। प्रसन्न कुमार एक बंगाल का धनी जमींदार है। उनकी दो लड़कियाँ भुवन मोहिनी और प्रमादा, विवाह के उपरान्त विधवा हो जाती है। प्रसन्न कुमार का एक पुत्र भी मर जाता है, जिससे उनकी बहू निर्मला विधवा हो जाती है। निर्मला एक आदर्श विधवा है। वही नाटक की नायिका है। प्रसन्न कुमार, इन विधवा बेटियों और बहू को देखकर घोर वेदना और कष्ट का जीवन बिताते हैं। और, इस प्रकार के

करुण जीवन के लिए समाज को उत्तरदायी समझते हैं। छोटी लडकी को देखते ही उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा गिरने लगती है। गरीबी के कारण बडी लड़की अपना सतीत्व खो देती है। इधर, प्रसन्न कुमार की स्त्री की मृत्यु हो जाती है। दुखों की आँधी और संकटों के बवंडर में फंसे हुए, निराशा और वेदना की मूर्ति बने हुए, प्रसन्न कुमार को देखकर शेक्सपीयर के 'किंग लियर' का अनायास स्मरण हो जाता है। प्रसन्न कुमार भी 'लियर' के समान प्रलाप करते दिखाई पडते है। तथा हिन्दू समाज को कलंकित करते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर देते हैं।

"हे परमात्मा यह कितनी यंत्रणा है। आगे जो लडकियाँ चिता पर ढकेल कर जला दी जाती थीं, वह बहुत ही अच्छा था। हिन्दुओं का यह कैसा सनातन धर्म है। यह तो बिलकुल अधर्म, नारी हत्या है।"

(वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति —पृ० ४७)

बलिदान—यह गिरीशचन्द्र घोष की सर्वश्रेष्ठ सामाजिक ट्रेजेडी है। दहेज प्रथा के कारण कितने घर नष्ट हो जाते है, यही इसका कथानक है। करुणामय बोस एक मध्यवर्गीय परिवार के गृहस्थ है। अपनी लड़की हिरण के विवाह में दहेज देने के लिए, उन्हें घर की सारी संपत्ति बेच देनी पड़ती है और वे एक दम कंगाल हो जाते हैं। कुछ दिनों के पश्चात् लड़की भी विधवा हो जाती है। पिता के घर आने पर, पिता की दरिद्रावस्था देखकर कई दिनों के निराहार के कारण डूब कर मर जाती है। पुत्री की यह दशा देखकर, करुणामय बोस भी, रस्सी का फंदा लगाकर आत्महत्या कर डालते है। इस प्रकार एक सामाजिक प्रथा के लिए, वे अपने जीवन का बलिदान करते हैं। करुणामय बोस करोड़ों भारतीयों के प्रतीक हैं, जिनको अपने जीवन का सर्वनाश इस प्रथा के कारण करना पड़ता है। नाटक के अन्त में घनश्याम नामक पात्र दहेज प्रथा पर व्यंग्य करते हुए, उसके दुष्परिणामों का भयानक चित्र खीचता है।

"हम लोगों के समाज में, कन्या के पिता का यही परिणाम होता है। घर-घर यही शोचनीय अवस्था है। फिर भी, हम लोग पुत्र के विवाह में कन्याओं के पिता को पीड़ित करने में कुछ उठा नहीं रखते। **भारत में कन्यादान करना, कन्यादान नहीं बलिदान है।**"

इस नाटक का अभिनय कलकत्ते के मिनर्वा थियेटर में, गिरीश बाबू ने सन् १९०१ ई० में स्वयम् किया था। हजारों दर्शकों की भीड़ ने इसे पसंद

किया था। दास गुप्ता ने अपनी पुस्तक, 'इंडियन स्टेज', में इसको संसार के सर्वश्रेष्ठ दुखान्त नाटकों में एक माना है।[1]

यद्यपि, इसमे थोड़ी अतिशयोक्ति है परन्तु यह निश्चय है कि गिरीश घोष के सामाजिक दुखान्त नाटक शेक्सपीयर के नाटको के आधार पर लिखे गये, क्योंकि उनकी वातावरण-योजना तथा चरित्र-चित्रण और अंतर्द्वन्द्व ठीक-ठीक शेक्सपीयर के दुखान्त नाटको जैसा है। शेक्सपीयर के अनेक नाटकों के अभिनय में भी गिरीश बाबू ने भाग लिया था। उदाहरण के लिए, 'मैकबेथ' नाटक में उन्होंने 'मैकबेथ' का अभिनय स्वयं किया था। गिरीश बाबू के इन नाटकों का मूल कथानक समाज सुधार का वर्णन था। हिंदी नाटको में सामाजिक सुधारों का चित्रण, गिरीश बाबू के ही नाटकों के आधार पर होने लगा। साथ ही साथ, शेक्सपीयर के आदर्शों का भी खूब प्रचार हुआ।

पारसी कम्पनियों द्वारा शेक्सपीयर का प्रचार

गिरीशचन्द्र घोष के समय तक पारसी कंपनियों के थियेटर, बंबई, कलकत्ता, दिल्ली तथा भारतवर्ष के अन्य प्रसिद्ध नगरों में बन चुके थे। ये थियेटर अंगरेजी रंगमंच के आधार पर ही थे। बंबई मे सन् १७७० ई० में, इस प्रकार के अंगरेजी रंगमंच स्थापित हो चुके थे, जहाँ यूरोपीय नाटकों का अभिनय होता था। कलकत्ते मे भी यूरोपीय थियेटर गृहों की स्थापना सबसे पहले कितने वेग से हुई इसका वर्णन किया जा चुका है। इन्हीं यूरोपीय रंगमंचों के आधार पर, इन पारसी रंगमंचों का निर्माण हुआ। पारसी कंपनियों मे सबसे पहले बंबई मे सन् १८६८ ई० के लगभग, औरिजनल, थियेट्रिकल कम्पनी खुली। इसके व्यवस्थापक सेठ पेस्टन जी फ्राम जी थे। इस कंपनी के प्रसिद्ध अभिनेताओं में, कावस जी खटाऊ, सोहराब जी, जहाँगीर जी तथा खुरशेद जी वल्ला वाला आदि मुख्य थे। आगे चलकर इन्होने अपनी अलग अलग कंपनियाँ भी खोलीं। पारसी रंगमंचों की विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या, रंगमंच वाले अध्याय में की जाएगी। यहाँ पर इतना ही कहना आवश्यक है, कि इन कंपनियों ने शेक्सपीयर के नाटकों का भारतीय जनता में खूब प्रचार किया। मूल नाटक का कलेवर परिवर्तित करके, उसमें तड़क-भड़क और सजावट वाले दृश्यों की योजना करके, इन कंपनियों ने भारतीय जनता का ध्यान शेक्सपीयर के नाटकों और उसकी टेकनीक की ओर आक-

1—Balidan is great both as social drama and pure tragedy. It is one of the greatest tragedies in world literature.'
'*Indian Stage*'—Das Gupta, Vol. 1. page 30.

षित किया। कंपनी के व्यवस्थापकों ने सोचा, कि अभी भारतीय जनता शेक्सपीयर के नाटकों से पूर्ण परिचित नहीं है। इसलिए नाटकों के मूल नामों के परिवर्तन करने की आवश्यकता उपयुक्त है। ऐसा उन्होंने ठीक ही सोचा। इसका परिणाम यह हुआ, कि मूल नाटकों का भारतीयकरण रूप इन कंपनियों द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। उदाहरण के लिए, शेक्सपीयर के सुखान्त नाटको में मर्चन्ट ऑफ वेनिस के लिए 'दिल फरोस', 'कामेडी ऑफ एरर्स' के लिए 'भूल भुलैया' नाम अलफ्रेड कंपनी के लेखक अहसान द्वारा रखा गया। शेक्सपीरियन थियेट्रिकल कम्पनी ने 'द विंटर्स टेल' का 'मुराद शोक', 'सिम्बलीन' का 'जुल्म नजा', 'मेजर फॉर मेजर' का 'हुशनारा' तथा 'कामेडी ऑफ एरर्स' का 'गोरखधन्धा' नाम से अनुवाद किया। उसी तरह से शेक्सपीयर के दुखान्त नाटक भी रूपान्तरित करके रगमच पर प्रस्तुत किए गए। 'रौमियो एण्ड जूलिएट' का 'बज्मेफानी', हेमलेट का 'खूने नाहक', ओथेलो का 'शहीदवफा', 'किंग लियर' का 'हार जीत' और 'सफेद खून' 'अन्टोनी और क्लियोपैटरा का 'काली नागिन' के नाम से अनुवाद रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया।

प्राय: इन सभी नाटको के अनुवाद भद्दे है, यह कोई भी पाठक देखकर कह सकता है। भाषा अशुद्ध और गड़बड़ है। उर्दू मिश्रित भाषा का ही आधिक्य है। बीच-बीच मे शेर और गजलों की भरमार है। फलत: मूल नाटक के भाव या सौंदर्य को हम अनूदित रूप मे नही देख पाते। इन अनुवादों में मूल नाटक की कथा को भी तितर-बितर कर दिया है। इसका कारण यह था, कि इन कम्पनियों का उद्देश्य शेक्सपीयर के सौंदर्य का प्रदर्शन करना उतना नहीं था, जितना व्यावसायिक था। अधिक से अधिक टिकट बेचना और पैसा कमाना इनका उद्देश्य था। इसलिये उसके अनुकूल उन्होंने नाटकों में परिवर्तन किया। परन्तु इसका एक अच्छा परिणाम यह अवश्य हुआ कि इसी बहाने साधारण जनता में शेक्सपीयर के नाटकों का खूब प्रचार हुआ। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य रंगमंच के आदर्शों से भी पारसी रंगमंच प्रभावित था। इसलिए विदेशी रंगमंच से भी भारतीय दर्शक और नाटककार परिचित हुए।

शेक्सपीयर के नाटकों के साहित्यिक अनुवाद

विषय तथा शैली, दोनों की दृष्टि से शेक्सपीयर के नाटकों का प्रचार हिन्दी में एक तरफ बंगला के माध्यम से तथा दूसरी तरफ पारसी कम्पनियों द्वारा हुआ। परन्तु पारसी कम्पनियों के अनुवाद भद्दे और कुरुचिपूर्ण थे।

इसका परिचय हमें मिल चुका है । अतः इसके प्रतिक्रिया स्वरूप शेक्सपीयर के नाटको का साहित्यिक एवं अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध अनुवाद कुछ हिन्दी के साहित्यकारो द्वारा हुआ । पिछले पृष्ठों में काशीनाथ खत्री द्वारा लिखे गए पत्र मे शेक्सपीयर के नाटको के आकर्षण की चर्चा हो चुकी है । इन नाटकों का अध्ययन और अध्यापन बड़े वेग से भारतीय शिक्षा संस्थाओं में हो रहा था। क्योंकि अँग्रेजी भाषा बहुत पहले से कॉलेज तथा यूनीवर्सिटियों में शिक्षा का माध्यम बन चुकी थी । भारतीय जनता का पाश्चात्य साहित्य से सम्पर्क बढ़ रहा था । पाठ्य ग्रन्थो के रूप मे शेक्सपीयर के मूल नाटको का अध्ययन और अध्यापन, बड़े वेग से स्कूलों और कालेजो में होने लगा । इन नाटकों का अध्ययन अनिवार्य था, क्योंकि उनमे भारतीयों के लिए विशेष आकर्षण था । एक तो वे नाटक, संस्कृत की जटिल नाट्य परम्परा से पृथक् थे, दूसरे उनके व्यक्तिगत और लौकिक चित्रण मे इतना आकर्षण था कि शिक्षित वर्ग बहुत शीघ्र उनकी ओर खिच गया । शेक्सपीयर के नाटक किसी काल विशेष या वातावरण के ही लिए नही लिखे गए है, वरन् उनमे मानव के राग विराग, ईर्ष्या द्वेष, महत्वाकांक्षा आदि शाश्वत भावो का सार्वकालीन चित्रण किया गया है, इसके बताने की आवश्यकता नही है । फलतः इन नाटकों का अध्ययन स्वांतःसुखाय भी हुआ । कभी-कभी शिक्षा संस्थाओं मे रंगमंच पर भी इसके नाटक अभिनीत हुए । कलकत्ते में हिन्दू तथा सस्कृत कालेज के विद्यार्थियों ने पुरस्कार वितरण के अवसर पर, ३० मार्च सन् १८३७ ई० को शेक्सपीयर के कुछ नाटको में से स्फुट दृश्यो का अभिनय किया था । उसी साल डा० विलसन की अध्यक्षता मे, मेट्रापालिटन एकेडमी ने 'जूलियस सीजर' का भी अभिनय किया था ।[१]

बंगाल की देखा देखी भारत के अन्य प्रदेशों में भी विशेषकर युक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) में अनेक साहित्यिकों द्वारा उसके नाटक अनूदित हुए । इटावा निवासी श्री रत्नचन्द्र ने सबसे पहले १८७९ ई० में शेक्सपीयर के 'कामेडी ऑफ एरर्स' का 'भ्रम जालक' नाम से तथा 'द मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का अनुवाद 'वेनिस नगर के व्यापारी' के नाम से किया था । 'भ्रम जालक' में मूल नामों को परिवर्तित कर दिया गया है । मूल नाटक में युगल बन्धुओं के नाम इफीसस का 'ऐण्टी फाउलस और सिराक्यूज का ऐण्टी फाउलस' है । उनके स्थान पर अनुवाद में छोटा हिन्डोल और बड़ा हिन्डोल नाम रखा गया है । उसी तरह युगल बन्धुओ के स्थान पर छोटा यज्ञदत्त और बड़ा यज्ञदत्त रखा गया है । दोनों के माँ बाप का नाम पद्मावती और देवदत्त रखा गया है । घटना

१—इण्डियन थियेटर—दास गुप्ता—भाग १, पृ० २९५ ।

स्थल 'इफीसस' के स्थान पर चीन का पट्टन नगर है जो रोमान्टिक भावों के अनुरूप एक दूर देश मे है। परन्तु इस प्रकार के परिवर्तनों से मूल नाटक का सौदर्य नष्ट हो गया है। क्योकि कथानक के विकास तथा वातावरण में अनेक असंगतियाँ आ गई है। यही बात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'दुर्लभ बन्धु' के भी विषय में कही जा सकती है।

जबलपुर की आर्या नामक महिला ने सन् १८८८ ई० मे शेक्सपीयर के 'द मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का सुन्दर अनुवाद 'वेनिस नगर का व्यापारी' के नाम से किया है। उनका अनुवाद सुन्दर इसलिए कहा गया है, क्योंकि मूल नाटक के सौंदर्य ग्रहण मे ये अधिक सफल हुई है। इसका कारण यह था कि उनका अंग्रेजी सम्बन्धी साहित्यिक ज्ञान अच्छा था। इसके पश्चात्, शेक्सपीयर के कुछ नाटकों के अनुवाद, भारतेन्दु युग में जयपुर दरबार के पुरोहित श्री गोपीनाथ एम० ए० ने किया। उन्होंने सन् १८९६ ई० में 'रोमियो एण्ड जूलियट' का अनुवाद 'प्रेम लीला' तथा 'ऐज यू लाइक इट' का अनुवाद 'मन भावन' नाम से १८९७ ई० मे किया। मूल सौंदर्य को व्यक्त करने में वे काफी सफल हुए है। 'प्रेम लीला' की भूमिका में उन्होंने अपने आशय को भली भाँति स्पष्ट कर दिया है—

"मन भावन के प्रगट होने पर, कितने ही महाशयों ने यह आक्षेप किया था कि मुहावरा कहीं-कहीं अंग्रेजी है, अतएव यह जतलाना आवश्यक है, कि मैं केवल अनुवादक मात्र हूँ। जहाँ तक सम्भव है कवि के अक्षरो और शब्दों और वाक्यो मे ही कवि का आशय प्रकट करना अपना परम कर्तव्य मानता हूँ। इसलिए जहाँ तक चल सका है, मैंने कवि के गम्भीराशय को कवि ही के अक्षरो, शब्दों, वाक्यों और मुहावरों में प्रकट करने का प्रयत्न किया है।

('प्रेमलीला'—भूमिका, पृ० ३)

इसी प्रकार के और भी कुछ सफल अनुवाद शेक्सपीयर के नाटकों के हुए। मिर्जापुर के श्री मथुराप्रसाद उपाध्याय ने सन् १८९२ ई० में शेक्सपीयर के 'मेकबेथ' काअनुवाद 'साहसेन्द्र साहस' नाम से किया। यद्यपि इसमें भी वातावरण भारतीय है, परन्तु अनुवाद सुन्दर हुआ है।

इन अनुवादों से स्पष्ट है कि शेक्सपीयर के नाटकों की ओर अंग्रेजी पढ़े लिखे भारतीय विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हो रहा था। वे हिंदी नाटक के भंडार को इन अनुवादों द्वारा अधिक समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। द्विवेदी युग में आगे चल कर, लाला सीताराम बी० ए० ने शेक्सपीयर के प्राय: सभी नाटकों के अनुवाद किए। इसकी व्याख्या प्रसंगानुकूल की जायगी।

भारतेन्दुकालीन नाट्यशैली पर पाश्चात्य प्रभाव—

भारतेन्दु के नाटकों की व्याख्या करते समय, यह बताया जा चुका है, कि उनकी दृष्टि समन्वयात्मक थी। प्राचीन संस्कृत नाटकों और उनके आदर्शों मे श्रद्धा रखते हुए भी, उन्होंने अपने नाटकों को युगानुकूल बनाने के लिए, पाश्चात्य नाटकों और उनके आदर्शों को ग्रहण किया। उनके 'नाटक' नामक निबन्ध से यह स्पष्ट है, कि संस्कृत तथा पाश्चात्य दोनों नाट्य शैलियो का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। निबन्ध के अतिम भाग मे 'योरुप में नाटको का प्रचार', शीर्षक से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी का परिचय पाश्चात्य नाटको से भलीभाँति था। इस निबन्ध में ग्रीक नाटककार, उनकी प्रवृत्तियों, कामेडी और ट्रेजेडी के विशेषताओं, रोम, इटली, फ्रांस, जर्मनी तथा इंगलैड सभी देशों के नाटक साहित्य के विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है।[1]

हिन्दी नाटकों मे समन्वयात्मक प्रवृत्ति लाने के लिए तथा उनको युगानुरूप बनाने के लिए भारतेन्दु जी ने यूरोपीय देशों के नाटकों के आदर्शों को विषय तथा शैली दोनों दृष्टियों से ग्रहण किया। अपनी इस प्रवृत्ति मे बंगला नाटकों से वे विशेष प्रभावित हुए। अतः उन्ही के द्वारा पाश्चात्य प्रभाव बहुत पहले से पड चुका था। क्योंकि ट्रेजेडी के स्वरूप और प्रवृत्तियो की स्थापना सबसे पहले इन्हीं नाटकों मे हुई। हिन्दी में भी इन्हीं बंगला दुखान्त नाटको के आधार पर अनेक दुखान्त नाटक लिखे गये। भारतेन्दु का 'विद्या सुन्दर' इसका प्रथम उदाहरण है। इसके पश्चात् 'नील देवी' नामक भारतेन्दु का प्रथम दुखान्त नाटक कहा जा सकता है। इसी परम्परा मे आगे चल कर युग में अनेक नाटक लिखे गये, जिनमें 'रणधीर प्रेम मोहिनी', 'कमल मोहिनी', 'गंगोत्री', 'लावण्यवती', और 'जयन्त' आदि नाटक मुख्य है।

दुखान्त नाटकों के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय नाट्यशैलियों का भी अनुसरण इस युग में हुआ। 'भारत दुर्दशा' पश्चिम के 'मोरेलिटी' नाटकों के आदर्श पर लिखा गया है। 'भारत जननी' मे ओपेरा का अनुकरण किया गया है। ओपेरा नाटको के जन्म और विकास पर भी भारतेन्दु जी ने अपने 'निबन्ध' नामक लेख मे प्रकाश डाला है। इतना ही नहीं, उन्होंने इटली के एक दर्जन आपेरा लेखको का नामोल्लेख भी किया है।[2] इससे स्पष्ट है कि ओपेरा शैली उन्होंने पश्चिम से ही ग्रहण किया। आगे चल कर बाबू राधाकृष्णदास का 'सती प्रताप' भी इसी शैली में लिखा गया।

१—'भारतेन्दु ग्रंथावली'—पहला भाग—ब्रजरत्नदास, पृ० ७५६-७६०।
२—'भारतेन्दु ग्रन्थावली'—पहला भाग—ब्रजरत्नदास, पृ० ७५८।

संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ नान्दी पाठ और मंगलाचरण से तथा उनका अन्त भरत वाक्य से होता था। भारतेन्दु काल के अधिकांश लेखको ने, सस्कृत की परम्परा को त्यागने की प्रवृत्ति दिखाई है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु कृत 'नील देवी', 'भारत दुर्दशा', राधाकृष्णदास कृत 'दुखिनी बाला' और 'सती प्रताप', श्री निवासदास कृत 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' तथा केशवराम भट्ट कृत 'सज्जाद सबुल' और 'शमशाद शौसन' में नान्दी पाठ नहीं है। प्राचीन नाटको के रस निष्पत्ति का ध्यान भी थोड़े ही नाटकों मे मिलता है। उसके बदले क़ौतूहल तथा औत्सुक्य विकास की ओर, अँग्रेजी शैली के अनुसार हिंदी नाटको मे ध्यान दिया जाने लगा। इस दृष्टिकोण से इस युग के, 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'नील देवी', महाराणा प्रताप' तथा 'सज्जाद सबुल' आदि नाटक मुख्य है।

संस्कृत नाटकों के नायक आदर्श तथा सर्वगुण सम्पन्न होते थे। उनमे दोषो का चित्रण प्रायः नही किया जाता था। पाश्चात्य नाटको में, विशेषकर दुखान्त नाटकों के नायको का चरित्र मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व से पूर्ण रहता था। इन्हीं चरित्रों के आधार पर, भारतेन्दुकालीन दुखान्त नाटको मे भी, मानसिक संघर्ष और अंतर्द्वन्द्व के चित्र रखे गये हैं। इस प्रकार के चरित्रों में माइकेल मधुसूदन दत्त के 'कृष्णकुमारी', गिरीश घोष के 'प्रफुल्ल' तथा 'बलिदान', भारतेन्दु जी के 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'नील देवी' तथा राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रताप' आदि नाटकों के चरित्र आते हैं।

संस्कृत नाटकों के वर्णित विषय धार्मिक, पौराणिक और आदर्शात्मक होते थे, परन्तु पाश्चात्य नाटकों में, सामाजिक कुरीतियों, पाखंडों तथा यथार्थवादी रूढ़ियों का चित्रण और आलोचना अधिक हुई। उन्हीं के आधार पर भारतेन्दु युग में भी अनेक यथार्थवादी नाटक और प्रहसन लिखे गये।

संस्कृत नाट्य ग्रन्थों के आधार पर नाटकों में पांच से दस अङ्क तक होते थे। साधारणतया सात अङ्कों का भी प्रचार था। भारतेन्दु काल में इस नियम की अवहेलना की गई। शरतकुमार मुखोपाध्याय के 'भारतोद्धारक' नाटक में, केवल चार ही अङ्क हैं। किशोरीलाल गोस्वामी के 'मयंक मंजरी' में केवल पांच अङ्क हैं। प्रहसनों में भी दो, तीन अङ्क और दृश्य रखे जाने लगे। अङ्क सम्बन्धी प्राचीन नियमों का उल्लंघन प्रायः प्रत्येक नाटककार ने किया है। अंग्रेजी नाटकों के सीन का रूपान्तर बंगला में 'गर्भांकों' के रूप में हुआ, जिसका प्रचलन भारतेन्दु काल के प्रायः सभी नाटककारों ने किया है। नाटकों में दृश्य परिवर्तन शीघ्रता से होने लगे। यद्यपि, इन नियमों के निर्वाह में,

त्रुटियाँ भी की गईं, परन्तु वे स्वाभाविक थीं, क्योंकि इन नाटककारों के सम्मुख कोई आदर्श रंगमंच न था।

पारसी कंपनियों, बंगला नाटककारों तथा हिंदी के अन्य साहित्यकारों द्वारा भी शेक्सपीयर के नाटकों का, विषय तथा शैली दोनों दृष्टियों से खूब प्रचार किया गया। शिक्षा संस्थाओं में उसके नाटकों का अध्ययन और अध्यापन हुआ। साथ ही साथ, बहुत से नाटक रंगमंच पर भी खेले गए।

सारांश

इस प्रकार भारतेन्दुकाल के नाटककारों ने प्राचीन और नवीन दोनों नाट्य-शैलियों का सामंजस्य किया। कुछ नाटककारों ने प्राचीन शैली का अधिक अनुसरण किया और कुछ ने नवीन शैली को अधिक अपनाया। कुछ नाटककारों में दोनों का मिश्रित रूप पाया जाता है। परन्तु ऐसा कोई भी नाटककार न था, जिसने भारतीय नाटकों के नियमों का पूर्ण रीति से अनुसरण किया हो। स्वच्छन्दता तथा स्वतन्त्रता की इसी प्रवृत्ति के कारण हिन्दी में एक नवीन नाट्य परम्परा का निर्माण इस युग में हुआ, जो भविष्य में अधिक विकास को प्राप्त हुई। इस युग के नाटककारों में, भारतेन्दु जी एक प्रकाश-स्तम्भ के समान थे, उन्होंने स्वयं इस समन्वयात्मक पद्धति को अपना कर अपने नाटकों को युगानुकूल बनाया, जिसके कारण वे नवोत्थान काल के प्रतिनिधि साहित्यकार के रूप में आये। उस काल के प्रायः सभी नाटककारों द्वारा उन्हीं के आदर्शों को ग्रहण किया गया है। यहाँ यह कहना आवश्यक है, कि इस युग में, हिंदी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव एक अंकुर के रूप में आया। परन्तु उस अंकुर में इतनी शक्ति थी और उसे आगे चलकर उसे इतना प्रोत्साहन मिला, कि वही भविष्य में जा कर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो गया।

—. ० :—

तृतीय अध्याय

द्विवेदी युग (१९०३-१९२० ई०)

द्विवेदी युग नैतिकता और सुधार का युग था। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों ने नाटक तथा निबन्धों के द्वारा गद्य के स्वरूप की स्थापना की थी, परन्तु उसमें शिथिलता तथा अस्तव्यस्तता थी। स्वच्छन्दतावादी लेखकों ने भाषा को मनमाना स्वरूप दिया था, अतः द्विवेदी जी का सारा ध्यान खड़ी बोली को व्याकरण सम्मत बनाकर उसे एक ओर व्यवस्थित रूप देने का रहा, दूसरी तरफ साहित्य सृजन को सुधारवादी रूप देने की ओर रहा। नैतिकता और आदर्श के प्रतिस्थापन में उनका दृष्टिकोण संस्कृत के नाटककारों की भाँति उदात्तवादी था, अतएव भारतेन्दु युग की नवीनता उनके स्वभाव के अनुकूल न थी, उनके अनुसार उसमें उच्छृङ्खलता का बीज निहित था। व्यंग्य तथा प्रहसनों में समाज की जो पोल खोली गई थी, वह उन्हें पसंद न थी, इसीलिये इस प्रकार के यथार्थवादी चित्रण की अपेक्षा संस्कृत के नाटककारों और महाकाव्यकारों की ओर उनका ध्यान अधिक उन्मुख हुआ। भारवि, माघ और कालिदास की कृतियों का, इसी दृष्टिकोण से उन्होंने अनुवाद भी किया। दूसरे भारतेन्दु के समान, द्विवेदी जी एक युग प्रवर्त्तक नाटककार न थे। अतः नाटकों के क्षेत्र में उनके द्वारा किसी नवीन तत्व का सन्निवेश न हो सका। जिस गति और वेग

से भारतेन्दु काल के लेखकों ने नाटक-रचना का निर्माण किया, वह गति द्विवेदी युग मे शिथिल हो गई, और नवीन तत्वों के अभाव में, अधिकांश लेखकों ने भारतेन्दु युगीन परम्परा का ही नाटकों के क्षेत्र मे पालन किया। फलतः उच्च-कोटि के नाटकों का विकास कुछ समय के लिये रुक सा गया।

संस्कृत नाटकों के विकास का प्रधान कारण भारत में सामाजिक तथा राजनीतिक समृद्धि और शान्तिपूर्ण वातावरण का होना था। शेक्सपीयर के भी नाटक एलिजाबेथ के स्वर्ण-युग मे लिखे गये। भारतेन्दुकाल और उसके बाद का समय हमारे देश के लिये राजनीतिक अशान्ति तथा उथल पुथल का समय था। आर्थिक दशा दिन पर दिन गिरती जारही थी। व्यापार और टैक्सो के द्वारा प्रजा के धन का निरन्तर शोषण हो रहा था। ऐसी दशा में नाटक क्या किसी भी प्रकार के साहित्य का विकास होना असंभव था। अतः इन परिस्थितियो में चली आती हुई नाटक परम्परा उसी रूप में चल रही थी। यही संभव भी था।

सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में सर्वत्र स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति दिखाई दे रही थी। प्राचीन की ओर से अरुचि तथा नवीन की ओर रुचि होना स्वाभाविक था। रूढिबद्धता तथा नियमों की जटिलता के कारण संस्कृत नाटकों के आदर्शो की ओर लोगों का ध्यान नहीं जाता था, अतः यह स्वाभाविक है, कि विदेशी नाटककारों की ओर जहाँ नाट्य-नियमों की इतनी जटिलता न थी, लोगों का ध्यान आकर्षित हो।

उच्च हिन्दी नाटकों के विकास में आर्य-समाज भी बहुत महान बाँधा स्वरूप था, जिसका प्रचार पंजाब तथा उत्तरी भारत में बड़े जोर शोर से हो रहा था। स्वामी दयानन्द ने भारतीयों का ध्यान उनके प्राचीन गौरव की ओर उन्मुख किया, परन्तु उनकी शैली उपदेशात्मक थी। फलतः तत्कालीन काव्यों और नाटकों में भी उसी शैली का अनुसरण हुआ। 'भारत भारती' में उस शैली की स्पष्ट छाप है। फलतः नाटकों का उद्देश्य प्रचारात्मक हो गया। उनमें अन्य नाटकीय तत्वों पर लेखक का ध्यान नहीं रह गया। एक श्रेष्ठ नाटककार के लिये आवश्यक है कि वह घटना और संवाद के माध्यम से परिस्थितियों को इस प्रकार मोड़े कि सारे ढाँचे में अस्वाभाविकता न दिखाई दे। शेक्सपीयर तथा कालिदास के नाटकों में प्रचार की गन्ध भी नहीं मिलती। उसमें लेखक का ध्यान शाश्वत मनोभावों के चित्रण करने में है। हिन्दी नाटककारों में भारतेन्दु तथा लाला श्रीनिवासदास के अतिरिक्त ऐसे बहुत कम नाटककार आये, जिन्होंने अपनी कृतियों मे नाटकीय तत्वों के निर्वाह की ओर ध्यान् दिया। न तो उन्होंने विशुद्ध संस्कृत परम्परा का ही अनुसरण किया, न उससे एकदम विमुक्त ही हो सके। यदि उन्होंने प्रहसन लिखे, तो उसमें सस्ते

हास्य तथा मनोरंजन को अधिक ध्यान मे रखा। इसका परिणाम यह हुआ, कि अनूदित नाटकों की गतिविधि नवीनता की ओर ध्यान देने से अच्छी रही। संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों प्रकार के नाटकों के अनुवाद हुए। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानक के आधार पर भी नाटक लिखे गये। काव्य तथा नाटक दोनों क्षेत्रों में लेखकों का ध्यान अतीत की ओर अधिक था। ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटक अधिक लिखे गये। संक्षेप मे द्विवेदी युग में नाटक का विकास भारतेन्दु काल की भाँति निम्नाङ्कित धाराओं में हुआ—

१—मौलिक नाटक।

२—अनूदित नाटक।

मौलिक नाटकों के भी दो भेद किये जा सकते हैं। १—साहित्यिक नाटक तथा २—पारसी रंगमंच वाले सस्ते ढंग के मनोरंजन वाले नाटक।

अनूदित नाटकों को भी हम तीन धाराओं में बांट सकते है। १—संस्कृत के अनूदित नाटक, २—बंगला के अनूदित नाटक, और ३—अंग्रेजी तथा पाश्चात्य भाषाओं के अनूदित नाटक।

सामाजिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि

भारतेन्दु काल में राष्ट्र जागरण के प्रसंग का उल्लेख करते हुए, सुधारवादी उन अनेक आन्दोलनों का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिसने सदियों से परतन्त्रता की बेड़ियों मे जकडी हुई तथा सोई हुई भारतीय जनता में नवचेतना तथा स्फूर्ति का संचार किया। ब्रह्मसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य सम्पर्क के कारण किस रूप में सामाजिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन किया,[1] जिसका उद्देश्य समन्वयात्मक था, इसकी चर्चा की जा चुकी है। इन संस्थाओं ने, जिनमें आर्यसमाज भी आगे चलकर प्रमुख सुधारवादी संस्था के रूप में आया जनता का ध्यान भारत के प्राचीन गौरव की ओर आकर्षित किया। इनका यह उद्देश्य था कि इस युग मे भी आर्यों के प्राचीन युगीन तथा समाज व्यवस्था के आदर्शों का पालन किया जाय। इसका परिणाम तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। नाटककारो ने प्राचीन भारत के पौराणिक तथा ऐतिहासिक गौरव को अपने नाटकों में स्थान दिया। श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने 'तुलसीदास', मिश्रबंधुओं ने 'शिवाजी', बद्रीनाथ भट्ट ने

१—"ब्रिटिस रूल इन इन्डिया एँड आफ्टर"—आर० आर० सेठी और वी० डी० महाजन, अध्याय २०, पृ० ३७२।

'चन्द्रगुप्त', 'तुलसीदास' और 'दुर्गावती', श्री चतुरसेन शास्त्री ने 'अमर राठौर' तथा 'उत्सर्ग', श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ने 'प्रताप-प्रतिज्ञा', उग्र ने 'महात्मा ईसा' तथा प्रेमचेन्द ने 'कर्बला' नाटक लिखा ।

राजनीतिक आन्दोलन इस समय उग्र रूप में चल रहा था । लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक तथा विपिन चन्द्र पाल भारतीय राजनीति के क्षेत्र में तीन ज्वलन्त नक्षत्रों के समान थे, जिनके सम्मिलित प्रयत्न से भारत में, नई चेतना के साथ एक राजनीतिक उषा का अरुणोदय हुआ और फिर सारा क्षितिज महात्मा गांधी ऐसे बाल रवि के प्रकाश से आलोकित हो उठा । इन तीनों नक्षत्रों के तिरोहित होने पर स्वतन्त्रता संग्राम का सारा भार महात्मा गाँधी के कन्धों पर आ पडा । वृटिश साम्राज्यवादी शोषण तथा दमन की नोति बंगभंग, रौलट ऐक्ट तथा जलियान वाला बाग की घटनाओं ने सारे भारतीयों के मन में एक क्रान्ति की चिनगारी को जन्म दिया, फलतः सारा भारत राजनीतिक क्रान्ति की लहर से आन्दोलित हो उठा,[१] परिणाम स्वरूप महात्मा गाँधी का असहयोग आन्दोलन और भी सबल रूप धारण करता गया । इस आन्दोलन का प्रबल प्रभाव साहित्य के क्षेत्र में भी पड़ा । लेखक तथा कवि जो अब तक सामन्तकालीन विलासिता के झूले में झूल रहे थे, अथवा भारतेन्दु काल में जिनका ध्यान सामाजिक और धार्मिक सुधारों की ओर लगा था, वे अब राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े, और परतन्त्रता, एकता और सगठन को उन्होंने महत्व देना प्रारम्भ किया । त्याग, देशभक्ति तथा हिन्दू मुसलिम एकता की भावना को तत्कालीन नाटककारों ने अपनाया । उग्र जी का महात्मा ईसा जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' का 'प्रताप प्रतिज्ञा', तथा हरिकृष्ण प्रेमी का 'रक्षा बंधन' इन्हीं भावनाओं पर आधारित था । इनके नाटकों की व्याख्या प्रसंगानुकूल की जायगी ।

मौलिक नाटककारों में पं० बद्रीनाथ भट्ट, श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी तथा माखनलाल चतुर्वेदी मुख्य हैं । भट्ट जी के सात नाटक मिलते हैं, जो अनेक शैली मे लिखे गये हैं । पौराणिक नाटकों में वेन चरित्र तथा कुरुवन दहन है । इन नाटकों के प्राचीन कथानक पर नवीन युग तथा वातावरण का प्रभाव पड़ा है । वेन चरित्र में राजा वेन के अत्याचारों का वर्णन है । चौबीस अवतारों में से राजा पृथु प्रजातन्त्र के अध्यक्ष बनाये गए है । भारत में तत्कालीन शासन, उस समय राजा वर्ग से प्रजा तन्त्र की ओर किस प्रकार उन्मुख हो रहा था,

१—"काँग्रेस का इतिहास"—डा० पट्टाभि सीतारमैया, पंचम संस्करण, १९४८, पृ० ३०७-३०८ ।

जो पश्चिमी आदर्शों के आधार पर था, इसकी इसमें झलक है। 'कुरुवन दहन' संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार भट्ट नारायण के 'वेणी संहार' के आधार पर सन् १९१२ ई० में लिखा गया। यद्यपि मूल नाटक के भावों को लाना कठिन था, फिर भी अनुवाद सफल हुआ है। कुछ नये चरित्रों तथा हास्य के वातावरण को लाकर नाटक के मूल भावों मे कुछ परिवर्तन भी किया गया है। इस परिवर्तन मे पाश्चात्य नाट्य परम्परा की स्पष्ट छाप दिखाई पडती है। भट्ट जी ने स्वयं नाटक की भूमिका में इसे स्पष्ट किया है—

"इसको यदि 'वेणी संहार' का रूपान्तर कहे, तो भी अनुचित न होगा। इसे पढने पर पाठकों को मालूम हो जायगा कि उपर्युक्त संस्कृत नाटक की सहायता से लिखे जाने पर भी, इसका नाम बदलना सर्वथा उचित ही हुआ है, क्योंकि उसमें और इसमें बड़ा अन्तर है। कितने ही नये व्यक्ति, कितनी ही नई बातें इसमें सम्मिलित कर दी गई हैं। उसकी और इसकी शैली में बडा भेद हैं। यह अंग्रेजी ढङ्ग पर एक्ट (अंकों) तथा सीन (दृश्यों) मे विभक्त किया गया है, जिससे खेलने में भी सुगमता पड़े। अंग्रेजी नाट्य रचना, संस्कृत नाट्य रचना पद्धति से कहीं उन्नत तथा समयोपयुक्त है, इसलिए उसका ही अनुसरण करना उचित समझा गया।

अत: इस नाटक में, नवीन शैली के कलेवर में, भारतीय गौरव को रखने का सफल प्रयत्न किया गया है। 'रानी दुर्गावती' मे राजपूत नारी की वीरता का चित्रण है। नाटकीय शैली के दृष्टिकोण से, रानी दुर्गावती उसके वीर मन्त्री तथा सेनापति का चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है। हास्य की अवतारणा कहीं कहीं बेमौके की गई है। इस नाटक पर पारसी नाटकों का प्रभाव है। क्योंकि रानी दुर्गावती इसमें शेर पढ़ते हुए पाई जाती है, जो भद्दा कुरुचिपूर्ण लगता है। उसी प्रकार 'चन्द्रगुप्त' भी एक ऐतिहासिक नाटक है, जो १९१३ ई० में लिखा गया। कथानक के निर्माण में इतिहास के ज्ञान की कमी दिखाई पड़ती है। इसके कथानक मे देशी और विदेशी दोनों कथानकों के समन्वय की चेष्टा की गई है। अंग्रेजी की डैमन और पीथियस की प्रसिद्ध कथा के आधार पर एक यवन व्यापारी अपने मित्र रणधीर को बचाने के लिए अपना प्राण त्यागने पर कटिबद्ध हो जाता है। इसका रूपान्तर मात्र है, उसी को मूल कथानक में ढालने का प्रयत्न किया गया है, जो (पैच वर्क) जोड़ सा मालूम होता है। आर्यों तथा यवनों का मेल तत्कालीन प्रभाव के कारण है। पारसी नाटकों का इस पर भी प्रभाव है, जगह-जगह संगीत तथा पात्रों की व्यर्थ की उछल कूद उसी के कारण है। अंग्रेजी नाटकों की शैली के आधार पर, इसमें भी कथानक को अंकों तथा दृश्यों में विभाजित किया गया है। उनका दूसरा नाटक

'तुलसीदास' है, जिसमें लौकिक तथा अलौकिक कथाओं के समन्वय पर महत्व दिया गया है, जो विशेष महत्व नहीं रखता। चुङ्गी की उम्मेदवारी या 'मैम्बरी की धूम' तथा 'मिस अमेरिकन' दो प्रहसन है, जिनका वर्णन इस युग के प्रहसनों के प्रसंग में किया जायगा।

संक्षेप में भट्ट जी के प्रायः सभी नाटक शैली के दृष्टिकोण से पाश्चात्य शैली से प्रभावित हैं।

मौलिक ऐतिहासिक नाटकों में प्रेमचन्द का 'कर्बला' तथा देवीप्रसाद पूर्ण का 'चन्द्रकला भानु कुमार' दो नाटकों का नाम आता है, परन्तु ये दोनों नाटक अभिनेय नहीं हैं। अङ्क विभाजन पाश्चात्य शैली के आधार पर है। साहित्यिक या पाठ्य नाटकों की कोटि में इनकी गणना चाहे भले ही हो जाय। 'कर्बला' में हुसेन की मृत्यु का करुण वर्णन है।

सामाजिक यथार्थवादी परम्परा—

इस परम्परा में कुछ ऐसे थोड़े से नाटक आते हैं, जो तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित है। इस धारा के नाटकों में भगवतीप्रसाद का 'वृद्ध विवाह' नाटक (१९०५ ई०), गौरचरण गोस्वामी का 'भूषण दूषण' (१९०६ ई०), कृष्णानन्द जोशी का 'उन्नति कहाँ से होगी' (१९१५ ई०), मिश्रबंधुओं का 'नेत्रोन्मीलन' (१९१५ ई०), जीवानन्द शर्मा का 'आदर्श हिन्दू विवाह' (१९१६ ई०) तथा प्रेमचन्द का 'संग्राम' और 'प्रेम की वेदी' आदि नाटक हैं। इनमें से कुछ तो अप्राप्य है। अतः यहाँ प्रेमचन्द के 'संग्राम' तथा मिश्रबन्धुओं के 'नेत्रोन्मीलन' पर विचार किया जायगा।[1]

प्रेमचन्द का 'संग्राम' एक सामाजिक नाटक है, जो १९१८ ई० में पहली बार प्रकाशित हुआ था। नाटक में पाँच अङ्क हैं। हलधर किसान नायक तथा उसकी नव विवाहिता पत्नी नायिका है। कथा का जितना अनावश्यक विस्तार किया गया है, अनेकों वर्गों तथा उनके हितों को लेखक ने जिस प्रकार बलात ठूँसने का प्रयत्न किया है, उससे यही स्पष्ट होता है कि यह लम्बा भारी भरकम ढाँचा उपन्यास के लिए ही उपयुक्त था, नाटक के सीमित क्षेत्र में इसकी गुंजाइश न थी। चरित्रों के आधिक्य तथा उनके उचित स्थान के निर्वाह की कमी के कारण दो तीन को आत्महत्या का आश्रय लेना पड़ता है, वास्तव में प्रेमचन्द के उपन्यास भी इस दोष से बच नहीं सके हैं। कथा में अस्वाभावि-

१—हिंदी नाटक साहित्य का इतिहास—डा० सोमनाथ गुप्त—पृ० १३४।

कता है, और उनका संयोजन नाटकीय तत्वों को ध्यान में रखकर नहीं किया है। हलधर तथा राजेश्वरी, सबलसिंह, कंचन सिंह तथा चेतनदास के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रण हुआ है।

'प्रेम की वेदी' प्रेमचन्द का दूसरा सामाजिक नाटक है, जिसमें जाति पाँति के बन्धन को प्रेम के पवित्र मन्दिर में हेय ठहराया गया है। पाश्चात्य शिक्षा के सम्पर्क से नारी केवल भोग्या तथा पति की दासी नहीं वरन् पुरुष के साथ समानाधिकार तथा स्वतन्त्रता को माँगने वाली है, इसका प्रतिनिधित्व सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने 'जेनी' के मुख द्वारा इस नाटक में किया है। नाटक में केवल तीन अङ्क है। नाटकीय शैली तथा विषय प्रतिपादन दोनों की दृष्टि से नाटक पर पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव है। जेनी एक ग्रेजुयेट कुमारी है, वह विलियम्स को नहीं पसन्द करती, अतएव अपनी माता श्रीमती गार्डन के इच्छा के होते हुए भी विलियम्स से विवाह नहीं करना चाहती। उमा जेनी की सहेली और योगराज की पत्नी है, जो फिल्म कम्पनी में डायरेक्टर है और १५००) मासिक वेतन पाता है। जेनी योगराज की ओर आकर्षित होती है, और उसके प्रेम को पाने के लिये ही स्वयं फिल्म कम्पनी में जाती है। उमा का स्वास्थ्य योगराज के अत्यधिक कामुकता के कारण बहुत ही खराब रहता है, अतः अन्त में वह काल-कवलित होती है। कामुकता की आँधी में पुरुष स्त्री के जीवन पर ध्यान नहीं देता, यही यहाँ दिखाने का आशय लेखक का है। योगराज जेनी से विवाह करना चाहता है, पर जेनी अस्वीकार करती है। वह पुरुष की कामुकता का शिकार नहीं बनना चाहती। योगराज की मृत्यु के बाद जेनी प्रेम की वेदी पर अपने को समर्पण करती है, और रज्जन से विवाह करने का प्रस्ताव करती है। नारी-स्वतन्त्रता तथा धार्मिक बन्धनों की तुच्छता का घोष, जेनी कितने सुन्दर शब्दों में करती है—

'जेनी—विवाह करके स्त्री पुरुष की लौंडी हो जाती है, पुरुष विवाह करके स्त्री का स्वामी हो जाता है। स्त्री ने जरा भी स्वेच्छा, आत्म सम्मान का परिचय दिया, फिर भी वह त्याज्य है, कुलटा है, पुरुष उसे क्षमा नहीं कर सकता। पुरुष कितना ही दुराचारी हो, स्त्री जबान नहीं हिला सकती। उसका धर्म है पुरुष को खुदा समझे। मैं यह वर्दाश्त नहीं कर सकती।"

('प्रेम की वेदी'—पृ० १७)

'संग्राम' की अपेक्षा 'प्रेम की वेदी', उद्देश्य तथा नाटकीय तत्वों के निर्वाह के दृष्टिकोण से एक अधिक सफल नाटक है।

'आदर्श हिन्दू विवाह', पं० जीवानन्द शर्मा, यथार्थवादी परम्परा का एक सामाजिक नाटक है, जो १९१६ ई० में प्रकाशित हुआ। जैसा कि लेखक ने

नाटक की भूमिका में स्वयं स्पष्ट कर दिया है, इसका उद्देश्य हिन्दुओं के वैवाहिक कुरीतियों, बाल विवाह, वृद्ध विवाह तथा विवाह के अवसर पर किये गये नाच, तमाशे, भाँड़, मद्यपान आदि कुरीतियों की आलोचना करना है। भाषा पात्रानुकूल है। स्त्री शिक्षा पर भी जोर दिया गया है। प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही कन्या पाठशाला की अध्यापिका खडी होकर, स्त्री-शिक्षा के महत्व पर उपदेश देती है। लगुणानन्द तथा भेकानन्द प्राचीन परिपाटी के समर्थक के रूप में रखे गये हैं, जो विवाह के अवसरों पर सदा लडकी वालों का व्यर्थ में पैसा व्यय कराते हैं। उनके जीवन का यही आदर्श रहा है—

"बच्चा व्याहूँ, बुढवा ब्याहूँ, रंडी भाड नचाऊँ।
आतिश बाजी खूब कराऊँ, तब लगुडा कहलाऊँ।"

गिरधर भी उसी वर्ग का है, जो शराब, सोडावाटर, सिगरेट, सटक और सजावट, इन पंच संस्कारों को विवाह के लिये आवश्यक समझता है। सामाजिक कुरीतियों की सुन्दर आलोचना होते हुए भी, इस नाटक की गणना उच्च कोटि के नाटकों में नहीं की जा सकती, क्योंकि द्विवेदी युग के अन्य नाटकों की तरह इसमें भी व्याख्यान तथा उपदेशों की भरमार है।

मिश्रबन्धुओं का 'नेत्रोन्मीलन' भी इसी प्रकार का एक नाटक है। इसमें मुकद्दमेबाजी द्वारा जो हानियाँ होती हैं, उसी का चित्रण किया गया है। नाटक में न्यायालय सम्बन्धी अनुभवों की गाथा है। नाटक का विषय नवीन अवश्य है, पर हम इसे उच्चकोटि का नाटक नहीं कह सकते।

व्यंग्य तथा प्रहसन

द्विवेदी काल में, जैसा कि कहा गया है, व्यंग्य तथा प्रहसन भारतेन्दु काल की अपेक्षा बहुत कम लिखे गये। जो लिखे भी गये उनका स्तर बहुत ही उच्च कोटि का नहीं है। प्रहसन लिखने वालों में केवल दो उल्लेखनीय हैं। पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी तथा पं० बदरीनाथ भट्ट। पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने सन् १९२३ ई० में 'मधुर मिलन' नामक नाटक लिखा, जो दो वर्ष पूर्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन के अवसर पर खेला भी गया था। इसमें वृद्ध विवाह तथा बाल विवाह के ऊपर व्यंग्य किया गया है। अँग्रेजी भाषा में शब्दों के उच्चारण की आलोचना की गई है। कवि सम्मेलनों में सम्मिलित होने के लिये कवि लोग जो द्रव्य वसूल करते हैं, उसकी भी निन्दा की गई है। हास्य बहुत ही सूक्ष्म है।

'चुङ्गी की उम्मीदवारी' या 'मेम्बरी की धूम' (१९१२ ई०) भट्टजी का

सुन्दर प्रहसन है। परिहास यद्यपि उच्चकोटि का नहीं है, परन्तु अच्छा है। उदाहरण के लिये दो एक संवादों को देखिए—

"सेठ जी—अजी एक-एक के हथकड़ियाँ डलवा दूँगा। किसी ने समझ क्या रखा है, अंग्रेजी राज्य है अंग्रेजी। मैं कलक्टर साहब को दो दफे डाली दे चुका हूँ और तहसीलदारों और डिप्टी कलेक्टरों को रोज ही।

वजीर—'उन्होंने मेरी एकाध बात सुनकर मुझ से पूछा, अबे उल्लू हुआ है। मुझे अच्छी तरह सुनाई न दिया। मैंने जवाब दिया। जी हाँ आपकी दुआ है। बस इसी में वे मुझ से खुश होगये।

सेठ—और रिश्तेदारी भी करीब की है। देखिये मेरे भाई के नाना की नानी की लड़के के साले की सलैज की माँ के भाई के ताऊ के बेटे की बहू की माँ की बहिन, आपकी मुनीम की ताई के नाती के मामा की साली के भौजाई के लड़के की लड़की के भाँजे के दादा के बाप के बेटे के परनाती से ब्याही थी।

मौलवी—वल्लाह रिश्ता तो वाकई करीबी का है। इसका तो ख्याल लाला जी को जरूर ही करना चाहिए।"

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह परिहास अत्यन्त सस्ते ढंग का है। इनका दूसरा प्रहसन 'मिस अमेरिकन' है, जो दो वर्ष बाद प्रकाशित हुआ। इसमें शब्दों के उच्चारण द्वारा हास्य उत्पन्न किया गया है। जैसे, इस-राज (स्वराज्य के लिये), गल्दन-पल्टी (गार्डन पार्टी) के लिये। नामों को भी बिगाड़ा गया है, जो प्रहसन लेखकों का एक प्रधान साधन हास्य उत्पन्न करने का रहता है। जैसे, टट्टू खाँ, गिलहरीमार सिंह। मिसेज अमेरिकन तथा मिस अमेरिकन की 'बातचीत अश्लीलता से भरी हुई है। 'चुंगी की उम्मेंदवारी' तथा मिस अमेरिकन पर मोलियर के हास्य नाटकों का प्रभाव है।

'मिस अमेरिकन' के अतिरिक्त लवड़घोंघों, आनरेरी मजिस्ट्रेट, तथा 'विवाह विज्ञापन' नाम के तीनों प्रहसन भट्ट जी ने लिखे हैं। परन्तु इसमें शिष्ट तथा उच्चकोटि का हास्य कम दिखाई देता है ? हिन्दी हास्य लेखकों के लिये यह साधारण रूप से कहा जा सकता है। सदियों से परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी भारतीय जनता अपने अस्तित्व और मान को खो बैठी थी, फिर पराजित देश के रहने वालों का हास्य भला क्या होगा। प्रत्येक देश की सभ्यता का माप हम उस देश के हास्य लेखकों को पढ़कर लगा लेते हैं, जो देश जितना ही असभ्य होगा, उसका हास्य उतना ही अशिष्ट तथा भद्दा होगा। सभ्य देश के हास्य में शिष्टता तथा सहानुभूति की मात्रा पाई जाती है। केवल शब्दों तथा नामों के बिगाड़ देने से ही हास्य नहीं किया जाता। सुन्दर हास्य

की उत्पत्ति के लिये श्रेष्ठ लेखकों ने अनेक साधनों का आश्रय लिया है। विरोधी तथा असंगत परिस्थितियाँ, बातचीत या कामों की पुनरावृत्ति, अनुकरणप्रियता, आडम्बर, फैशनपरस्ती, भोजन तथा मदिराप्रियता, विस्मरणशीलता तथा चरित्र की विषमताएं, वक्रोक्ति और श्लेष के द्वारा सुन्दर हास्य की उत्पत्ति की जाती है। फ्रांस के प्रसिद्ध हास्य लेखक रेवेलस का अन्तिम समय निकट आया, तो उन्हें देखने के लिये देश के बड़े बड़े चिकित्सक आये। सब ने किसी न किसी औषधि के मंगाने की इच्छा प्रकट की। रेवेल्स ने मुस्करा कर धीरे से कहा—"सज्जनों ! क्या मैं आपसे अनुरोध करूँ कि आप मुझे स्वाभाविक मौत से मरने दीजिए।" इसी तरह एक प्रसिद्ध अंग्रेज, जिसने जीवन भर ईश्वर की सत्ता का विरोध किया, जब मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, एक पादरी ने उससे आत्मा की अन्तिम शान्ति के लिये भगवान से प्रार्थना करने का हठ किया, उस समय उसने उत्तर दिया, "हे ईश्वर, अगर सचमुच कोई ईश्वर है, तो मुझे स्वर्ग मे भेजो, अगर सचमुच स्वर्ग है।" ईश्वर तथा उसकी सत्ता पर कितना सूक्ष्म व्यंग्य है।

द्विवेदीकालीन अनूदित नाटक

मौलिक नाटकों की कमी द्विवेदी युग में अनूदित नाटकों द्वारा पूरी की गई। सामाजिक तथा राजनीतिक अशान्ति के इस वातावरण में लेखकों के सामने हिंदी नाटक साहित्य की हीनता स्पष्ट दिखाई देती थी। अतः कुछ थोड़े उदात्तवादी परम्परा के लोगों का ध्यान संस्कृत नाटकों की ओर गया, परन्तु अधिकांश का ध्यान बंगला तथा पाश्चात्य नाटको की ओर गया।

बंगला नाटककारों के नाटकों के अनुवाद

श्री रामचंद्र वर्मा तथा श्री रूपनारायण पांडेय ने बंगला से गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मनमोहन गोस्वामी, ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर तथा क्षीरोद प्रसाद के नाटकों का अनुवाद किया। गिरीशचन्द्र घोष ने बंगाल में राष्ट्रीय रंगमंच की स्थापना की, तथा अपने नाटकों द्वारा किस प्रकार पाश्चात्य आदर्शों की स्थापना की, इसका वर्णन पिछले अध्याय में हम कर चुके है।

द्विजेन्द्रलाल राय

द्विजेन्द्रलाल राय के नाटक सामाजिक तथा ऐतिहासिक दोनों हैं। ऐतिहासिक नाटकों में शेक्सपीयर के दुखान्त नाटको की शैली को भलीभाँति अप-

नाने की चेष्टा उन्होंने की है।[१] यहाँ तक, उनकी गद्यशैली पर भी, अंग्रेजी शैली का प्रभाव है। उस पार, शाहजहाँ, नूरजहाँ, भारत रमणी, द्विजेन्द्रलाल राय के प्रधान कीर्ति स्तम्भ हैं।

'उस पार' एक सामाजिक नाटक है, जिसका मूल नाम 'परे पारे' है। रूपनारायण पांडेय ने इसका बहुत ही सफल अनुवाद किया है। नाटक की कथा यह है कि भोलानाथ एक उच्च कुल का शिक्षित तथा धनी व्यक्ति है। उसकी पोती सरस्वती के अतिरिक्त उसके परिवार में कोई नही है। सरस्वती का विवाह भगवानदास नामक एक व्यक्ति से होता है, जो मुन्नी नामक वेश्या पर आसक्त है, और उसके साथ मद्यपान में श्वसुर द्वारा दिये हुए ५००) मासिक का अपव्यय करता है। सरस्वती पति की इन दुष्प्रवृत्तियो की तनिक भी शिकायत अपने पिता भोलानाथ से नहीं करती है। परंतु भोलानाथ को अपने मित्र दीनानाथ द्वारा सरस्वती के कष्टमय जीवन तथा भगवानदास की दुष्प्रवृत्ति के विषय मे पता चल जाता है। भोलानाथ सतर्क हो जाता है, और मुन्नी वेश्या को कुछ रुपया देकर उसे सरस्वती के मार्ग से निकाल देता है। भगवानदास शराब के नशे में लड़खड़ाता सरस्वती के ऊपर पिस्तौल चलाता है, पर भूल से गोली मुन्नी को लग जाती है। भगवानदास हत्यारे के रूप मे इधर उधर पागलों सा घूमता है। दादा भोलानाथ अपनी प्यारी पोती सरस्वती के वियोग में कलेजे में कटार मारकर मर जाता है। दीपक बुझ जाने से घर में अँधकार हो जाता है। उस अन्धकार में नाटककार ने उस पार (मृत्यु लोक) की नाव पर चढ़ कर दादा और सरस्वती की भेंट का जो करुण चित्र उपस्थित किया है, वह विश्व नाट्य साहित्य की एक अमर निधि है। दादा की मृत्यु के पश्चात दूसरे ही दिन सरस्वती भी, अपने वेश्यागामी पति भगवानदास को छोड़कर दादा के पास 'उस पार' चली जाती है। भगवानदास के चरित्र मे शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों के नायकों की भाँति महान् परिवर्तन होता है। अपनी माता तथा साध्वी पत्नी के प्रति किये गये दुर्व्यवहारों की व्यथा से उसे असह्य वेदना होती है। अनेक स्थानों में माता को खोजता हुआ वह एक श्मशान मे पहुँचता है, और 'उस पार' जगदम्बा के हृदय में माता का दर्शन पाता है।

इस नाटक में भोलानाथ तथा भगवानदास नामक दो चरित्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, घात प्रतिघात तथा परिवर्तन के चित्रित करने में लेखक ने अनुपम

१—'वेस्टर्न इन्फ्लुएन्स इन बेंगाली लिटरेचर'—प्रिय रमन सेन पृ० १६१।

कुशलता दिखलाई है। मनोवैज्ञानिक चित्रण मे जो सब शेक्सपीयर के नाटकों से लिया है, सारा नाटक भरा पड़ा है।

भोलानाथ भावुक तथा सरल हृदय का है। उसकी एक मात्र लाड़ली पोती सरस्वती का हत्यारा उसका स्वामी भगवानदास भागा हुआ उसके पास आश्रय माँगने को आता है, उस समय भोलानाथ की कर्तव्यपरायणता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। एक ओर पुत्री पर अगाध स्नेह, दूसरी तरफ शरणार्थी को शरण देने के लिए कर्तव्य की पुकार। दोनों मे गहरा संघर्ष होता है, अन्त में कर्तव्य की विजय होती है। कुछ समय पश्चात भोलानाथ के हृदय को काफी धक्का लगता है, जो भोलानाथ दोनों हाथ लुटाकर कंगाल हो गया था जिसके द्वार पर से कभी कोई निराश नहीं लौटता था, वही कुछ रुपये के लिए इधर उधर हाथ फैलाए हुए था। मनुष्य की अकृतज्ञता का ऐसा कटु अनुभव उन्हें कभी हुआ है। काशी में गंगातट पर मेघाच्छन्न अर्द्धरात्रि मे उसका मन संघर्ष के झूले में झूल उठता है—

"भोलानाथ—(स्वगत) मेघ रक्त की वर्षा करो। हवा भीम वेग से गरज उठो। पृथ्वी ! बीच से चार फाँके होकर चिनगारियाँ बरसाती हुई चारों ओर छिटक पड़ो। और मैं अकेले में, महाशून्य में खड़े होकर, वहीं देखूँ मनुष्य इतना अकृतज्ञ होता है।"

जिसने कभी भी शेक्सपीयर के 'ऐज यू लाइक इट' में निर्वासित ड्यूक के प्रसिद्ध स्वगत को पढ़ा होगा, जिसमें भोलानाथ की भाँति ही मनुष्य की अकृतेज्ञता से पीड़ित ड्यूक शीत ऋतु के वायु के झोकों को सम्बोधित करते हुए कहता है—'ओ बर्फीली वायु तुम खूब बहो, तुम इतनी कष्टकारक नहीं हो जितनी मनुष्य की अकृतज्ञता।'' उसे यह स्पष्ट हो जायगा कि भोलानाथ के मानसिक चित्रण मे 'ऐज यू लाइक इट' के निर्वासित ड्यूक की स्पष्ट छाप है।

निराशा और असह्य वेदना की अवस्था मे भोलानाथ 'हेमलेट' की भाँति किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। वह आत्म हत्या करने को उद्यत हो जाता है। परन्तु हेमलेट के (टु वि आर नाट टु वि) की भाँति कभी उन्हे ज्ञान हो जाता है। वे चन्द्रमा की ओर एक टक आँखों से देखते हैं। हेमलेट के पिता के मृत आत्मा की भाँति उन्हे ऐसा मालूम होता है, सरस्वती उन्हें जीवन के उस पार से बुला रही है। विचार शक्ति ने समझाया, नहीं यह कोरी कल्पना है। उसके बाद सचमुच ही सरस्वती का स्वर सुन पड़ा। एक बार नहीं, अनेकों बार। अब, उन्हें सन्देह नहीं रहा कि मरी हुई सरस्वती ही उन्हें पुकार रही है। परलोक में सरस्वती का संग पाने की प्रबल कामना, उन्हें आत्महत्या करने को

विवश कर देती है। भावों के घात प्रतिघात तथा मानसिक अंतर्द्वन्द्व की कितनी दिव्य झाँकी है।

भोलानाथ—'ना ! मै यही पर अन्त कर दूंगा। अब नही सहा जाता लेकिन आत्महत्या ! (कटार को मेज पर रख कर टहलता है) इसकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन अब नही सहा जाता। तिल तिल करके यहाँ भी तो मर ही रहा हूँ। इससे बढ़कर और क्या पातक हो सकता है? भगवती मुझे तुमने यह जीवन दिया है, यह मेरी सम्पत्ति है। मैं इसे रखूं या मिटा दूं। इसमें तुम्हारा क्या। करूंगा। आत्महत्या करूंगा। (मेज के पास जाकर कटार उठाता है। फिर रख कर सोचने लगता है। सहसा चौंक कर) यह क्या कौन मुझे उसी पुरातन परिचित स्वर मे पुकार रहा है। मृत्यु के उस पार से तुम मुझे पुकार रही हो बेटी, वह फिर सुन पड़ा। दूर है। लो अभी आया बेटी। (कटार उठाता है)। कहाँ गई फिर सब सन्नाटा हो गया। यह चन्द्रमा के पास कौन है। सरस्वती है क्या? वह मुझे हाथ बढ़ा कर बुला रही है। नही। कोई भी तो नहीं हैं। सब कल्पना है (बैठ जाता है, फिर सहसा उठकर) ना यह कल्पना नहीं है। सरस्वती मुझे पुकार रही है। वह देखो फिर, उसका स्वर रात की हवा में इधर उधर गूंज रहा है। लो आता हूँ बेटी। क्षमा करो दयामयी (अपनी छाती में कटार मार लेता है)।'

मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की सबसे सुन्दर झाँकी द्विजेन्द्रलाल राय के 'शाहजहाँ' और 'नूरजहाँ' में मिलती है। शेक्सपीयर के ट्रेजिक नाटका का प्रभाव सबसे अधिक इन्ही दोनों नाटकों मे दिखाई देता है। रुचि भेद के अनुसार 'नूरजहाँ' और 'शाहजहाँ' में कोई पहले को तो कोई दूसरे को श्रेष्ठ बतलाता है। बंगाल के प्रसिद्ध आलोचक श्री देवकुमार राय 'नूरजहाँ' के भक्त हैं, वे नूरजहाँ को श्री राय का सर्वश्रेष्ठ नाटक मानते है। श्री प्रफुल्ल कुमार राय 'शाहजहाँ' को उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं। 'अङ्ग दर्शन' नामक पत्र में उन्होने एक स्थान पर लिखा है, 'शाहजहाँ को बंग साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक कहने में भी हमें संतोष नहीं होता। बंगाल साहित्य में संसार को दिखलाने योग्य, जो दो एक वस्तुयें हैं, उनमें से एक यह है।' जिस समय यह नाटक कलकत्ते के मिनर्वा थियेटर में खेला गया, दर्शक इस पर मुग्ध हो गये। डी० एल० राय के किसी भी नाटक का इतना आदर दर्शकों द्वारा नहीं हुआ। इसी नाटक के कारण मिनर्वा थियेटर प्रसिद्ध हो गया।

शाहजहाँ का अनुवाद श्री रूपनारायण पांडेय ने जून १९३१ ई० मे किया। अनुवाद फारसी मिश्रित हिंदी में है। क्योंकि मुसलमान पात्रों के मुंह से यही अच्छी लगती है। जसवंत सिंह और महामाया के मुंह से संस्कृत मिश्रित हिंदी

कहलाई गई है। इस प्रकार का प्रयोग अभिनय की स्वाभाविकता और सुन्दरता बढ़ाने के लिये किया जाता है। शाहजहाँ का कथानक इतिहास प्रसिद्ध है। बादशाह के वृद्ध होने पर राज्याधिकार के लिये चारों लड़कों ने विद्रोह किया। औरंगजेब ने अपनी कूटनीति से सबको तितर बितर करके, तथा दारा को कत्ल करके गद्दी छीन ली और बूढ़े पिता को आगरे में किले के अन्दर बन्दी कर दिया। दारा शाहजहाँ को सर्वप्रिय था। उसका सिर कटवा कर सारे दिल्ली में घुमाया गया, फिर सन्दूक मे बन्द करके उसे भोजन के समय औरंगजेब ने शाहजहाँ के पास भिजवा दिया।

करुणा और भय ट्रेजेडी के मूल तत्व हैं। इन दोनों का उपयोग, शाहजहाँ में, पर्याप्त मात्रा में मिलता है। शाहजहाँ जब अपने लड़कों के विद्रोह की सूचना पाता है, और औरंगजेब की आज्ञा से अपने को बन्दी होने की सूचना पाता है, तो उन्मत्त सिंह की भाँति गरज उठता है और कहता है 'तुमने सोचा है कि यह शेर बूढ़ा हो गया, इसलिये तुम्हारी लातें सह लेगा। मैं बूढ़ा हूँ सही परन्तु शाहजहाँ हूँ। ऐ कौन है। ले आओ मेरा जिरह बख्तर और तलवार। परन्तु लड़कों को सजा देने के बदले उसे उन बच्चों की माँ और अपनी प्रियतमा मुमताज महल की याद आ जाती है, जिसकी कीर्ति का स्मारक आज भी संसार की अनुपम देन ताजमहल खड़ा है। करुण विह्वल होकर पुकार उठता है, अपनी लड़की जहाँनारा से कहता है—

शाह—"मेरा दिल तो एक हुकूमत जानता है, और वह सिर्फ मुहब्बत की हुकूमत है। ये मेरे बेटी बेटे बे माँ के हैं, उन्हें किस दिल से सजा दूँ। जहाँनारा (लम्बी साँस लेकर) उस संगमरमर से बने हुए ताजमहल को देख और फिर उन्हें सजा देने के लिये कहना।" यहाँ करुणापूर्ण सन्तान प्रेम की कितनी सुन्दर झलक है। दारा के पीछे औरंगजेब पड़ गया था। उसको कई बार हराया। संकटग्रस्त दारा बाल बच्चों को लेकर रेगिस्तान मे दर दर की धूल फाँकता, भूख और प्यास की ज्वाला से संतप्त इधर उधर घूम रहा था। अन्त में वह पकड़ा गया। औरंगजेब की क्रूर आज्ञा से बूढ़े हाथी की नंगे पीठ पर मैले कपड़े पहिना कर वह सारे दिल्ली में घुमाया गया। औरंगजेब काजियों से निर्णय करा के दारा को मृत्यु दंड की आज्ञा दिलवाता है। जिहन खाँ दो जल्लादों को लेकर दारा को कत्ल करने को जाता है। इस नाटक का यह सबसे करुण दृश्य है। करुणा और भय अपनी पराकाष्ठा को पहुँचते दिखाये गये है। दारा अपने असहाय लड़के सिपर की ओर देखता है, जल्लाद से प्रार्थना करता है— मुझे दूसरे कमरे में ले जाकर कत्ल करो, बच्चों के सामने मुझे न मारो।' पिता के रक्त से सने हुये सिर को देखकर सिपर मूर्च्छित हो जाता है। सन्तान के

प्रति मृत्यु के मुख में जाते दारा के हृदय में कितनी करुणा दिखलाई गई है। शाहजहाँ को भी इस कत्ल के विषय में सूचना मिल जाती है।

दारा के कत्ल की रात भयानक आँधी, तूफान और बरसात की रात है। जहाँनारा, शाहजहाँ से कहती है—

"जहाँनारा—बाहर एक कयामत हो रही है। वह सुनिये अब्बा जान, बादल गरज रहे हैं। वह सुनिये। पानी जोर से बरस रहा है। वह सुनिये, हवा की हुमक। बारबार बिजली चमक रही है। पानी का सोता मानो उमड़ चला है। आँधी इस पानी को जमीन पर तीर की तरह पहुँचा रही है।"

शाहजहाँ उत्तर देता है—

"करो पाजियो! खूब ऊधम करो। धरती ढेर के ढेर आग के शोले उठा-लेगी। उगले। वे शोले आसमान में जाकर इन्हें जोर से उसी की छाती पर पड़ेंगे और उसे जला देंगे। वह समुद्र में लहरें उठाकर गुस्से से फूल उठेगा।"

तूफान का यह दृश्य शेक्सपीयर के 'जूलियस सीजर' में सीजर के कत्ल के पहिले आँधी और तूफान के दृश्य के आधार पर लिखा गया है।

'शाहजहाँ' के चरित्र तथा वातावरण को प्रस्तुत करने में लेखक ने शेक्स-पीयर के 'किंग लियर' का सहारा लिया है। दोनों लियर और शाहजहाँ बाद-शाह हैं, परन्तु राज्य को खो बैठे हैं, दोनों वृद्ध हैं तथा दोनों अपने सन्तानों के व्यवहार से दुखी हैं। शाहजहाँ का हृदय भी लियर के समान कोमल और सहज ही विक्षुब्ध हो जाने वाला है। 'किंग लियर' के समान शाहजहाँ के भी मन में वहम तथा मानसिक संघर्षों तथा भावों के घात प्रतिघात और उथल पुथल का चित्रण है। यद्यपि दोनों नाटकों के वातावरण तथा चित्रण में अन्तर भी है, परन्तु समानताएँ अधिक हैं। दोनों के वंशगत और शिक्षागत चरित्र में एकसा अन्तर है। दिलदार भी लियर के विदूषक की भाँति एक विदूषक है। वह साधारण विदूषक नहीं, वरन् शेक्सपीयर के विदूषकों की भाँति एक दार्शनिक तथा विचारक व्यक्ति है। मुगल बादशाहों के दरबार में विदूषकों का रहना इति-हास प्रसिद्ध है। दरबार वाले दृश्य में औरंगजेब जब पक्ष और विपक्ष दोनों ओर के सभासदों को अपनी सुन्दर वाक्पटुता से मुग्ध करके 'जय औरंगजेब की जय' की ध्वनि कहलवा लेता है, उस समय का भाषण पढ़कर शेक्सपीयर के तीसरे रिचर्ड की वह वाक्पटुता याद आ जाती है, जिसमें उसने विधवा रानी और लेडी एन को भुलाने का प्रयत्न किया था। 'शाहजहाँ' नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक दृश्य में आदि से अंत तक कुतूहल की क्रमशः वृद्धि होती जाती है। संवाद लम्बे होने पर भी रुचिकारक हैं, क्योंकि वे स्वा-भाविक हैं।

ऐतिहासिक लेखक के लिए किसी सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्र को लेकर उसके श्रेष्ठ नाटक के रूप में परिणत करना बड़ा कठिन कार्य होता है, क्योंकि यदि उसमें इतिहास की रक्षा की जाती है, तो कल्पना को दबाना पड़ता है, और यदि कल्पना की गति में बाधा डाली जाती है तो उस नाटक का आनन्द चला जाता है। एक और विशेषता ऐतिहासिक नाटकों में यह होनी चाहिए कि उसका नायक पवित्र और उन्नत विचारों वाला होना चाहिए। क्योंकि नाटककार अपने मन के गंभीर तत्वों का कथन प्रधान पात्र के मुख द्वारा ही कह जाता है। शेक्सपीयर ने अपने मन के गंभीर तत्वों तथा विचारों को पागल हेमलेट या लियर के ही मुख से कहलाया है। शाहजहाँ भी उसी प्रकार उच्च विचारों का एक ऐतिहासिक पुरुष है। दारा की मृत्यु भी इस नाटक की महान घटना है। उसके भाग्य परिवर्तन तथा मृत्यु में शेक्सपीयर के नायकों के भाग्य परिवर्तन की कहानी छिपी हुई है। नाटक में चित्रित मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के दृश्य शेक्सपीयर के दुःखान्त नाटकों के आधार पर रखे गये है। परन्तु दारा की हत्या रंगमंच पर दर्शकों के सामने न दिखलाकर परदे के भीतर दिखलाकर नाटककार ने अपनी कला-कुशलता का विशेष परिचय दिया है। यह वैसे ही है, जैसे मैकबेथ में बैंको की मृत्यु की सूचना देना।

दारा को कत्ल कर देने के पश्चात् तथा अन्य भाइयों को शक्तिहीन करने के पश्चात् औरंगजेब गद्दी पर बैठता जरूर है, पर उसका अपराधी मन भाइयों तथा पिता के प्रति किये गये दुष्कृत्यो पर नाच उठता है। रह रह कर उसे एक असह्य वेदना होने लगती है। 'मैकबेथ' मे दयालु राजा डंकन को मारने के पश्चात् जिस प्रकार मैकबेथ के मन मे तथा जूलियस सीजर को मारने के पश्चात् ब्रूटस के मन में सहस्रों बिच्छुओ के काटने की असह्य पीड़ा होती है, उसी प्रकार और कभी-कभी उन्हें मृत आत्माओं का भूत आकर कष्ट देता है, ठीक वही दशा औरंगजेब की भी इस नाटक में होती है।

"औरंगजेब—"जो किया दीन के लिये। ओ कैसा अंधेरा है। कौन जिम्मेदार है। मैं। यही फैसला है। यह कैसी आवाज है! नहीं हवा की आहट है, क्या किसी तरह इस ख्यालात को दिल से दूर नहीं कर सकता। नींद नहीं आती। ओ कैसा सन्नाटा है। वह क्या है। वही दारा का कटा सिर। शुजा की खून से तर लाश। मुराद का धड़। जाओ मुझे यकीन नहीं। अरे ये फिर वे ही लोग मुझे घेर कर नाच रहे हैं। कौन हो तुम। सोते हुए भी जागते की भाँति दिखाई पड़ते हो। चले जाओ। वह मुराद का सर मुझे पुकार रहा है, दारा का सिर एकटक मेरी ओर ताक रहा है। (आँखे बंद करके फिर खोलना) जाने दो गया। बदन में तेजी के साथ खून चक्कर कर रहा है।"

इस दृश्य की तुलना मैकबेथ में बैंको की मृत्यु के बाद 'घोस्ट सीन' से या जूलियस सीजर की हत्या के बाद रणक्षेत्र वाले दृश्य से कीजिये। एक साहश्य मिलेगा।

द्विजेन्द्रलाल राय का दूसरा नाटक 'नूरजहाँ' है जिसमें मनस्तत्व की गंभीर आलोचना मिलती है। शेक्सपीयर के नाटक जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक चित्रण के लिये प्रसिद्ध है, ठीक उसी प्रकार का चित्रण हमें 'नूरजहाँ' मे प्राप्त होता है। इस प्रकार का मनोविश्लेषण शेक्सपीयर के दुखान्त नाटको की भाँति, 'नूरजहाँ' के स्वगत भाषणों मे मिलता है, जो दर्जनो की संख्या मे भरे पड़े है। नाटककार ने स्वयं अपना आशय इसकी भूमिका में स्पष्ट कर दिया है।

"मेरे लिखे हुए अन्य ऐतिहासिक नाटकों से 'नूरजहाँ' नाटक में कई विशेषताएं हैं? पहली विशेषता यह है, कि मैंने इस नाटक मे देव चरित्र, अंकित करने की चेष्टा नहीं की। किन्तु दोष गुण समन्वित मनुष्य चरित्र अङ्कित करने का प्रयत्न किया है। दूसरी विशेषता यह है कि इस नाटक मे बाहर का युद्ध दिखाने की अपेक्षा भीतर का युद्ध दिखलाने ही मे अधिक प्रयत्नशील रहा है। ऐसा नहीं है, कि पहले मैंने इस प्रकार का प्रयत्न ही नहीं किया। परन्तु नूरजहाँ में उसे दिखाने का जितना प्रयत्न किया है, उतना पहले कभी नहीं किया। नूरजहाँ के मन के ऊपर होकर प्रवृत्तियों की एक के बाद एक लहर चली जाती है। पाँच छः प्रकार के भावों ने आकर उस पर क्रम से अधिकार किया है। इसी से उसका चरित्र विशेष जटिल और दुर्बोध हो गया है।" आलोचकों का कथन है कि इस प्रकार का मानसिक विश्लेषण सारे बंगला साहित्य में नहीं मिलता। तीसरे अङ्क के तीसरे दृश्य में नूरजहाँ आगरे के महल में एकान्त में पुस्तक पढ़ रही है। शेर अफगन मारा जा चुका है। नूरजहाँ के मन में भावों के घात प्रतिघात का कितना सुन्दर आन्दोलन है—

"नूरजहाँ—ना, अब अच्छा नहीं लगता। (पुस्तक रखकर आइने मे अपना चेहरा देखते देखते अलकावली संभालते संभालते) इसी चेहरे के लिये इतना हुआ। हाय मेरे उदार स्वामी इसी रूप ने तुम्हारी जान ले ली। इस रूप ने या मेरे कठिन अकृतज्ञ हृदय ने। ईश्वर! क्यों मैं कभी उन्हें प्यार नहीं कर सकी। तुम्हें प्यार करने के लिये मैंने अपने हृदय के साथ कितना युद्ध किया है, तो भी प्यार नहीं कर सकी। मेरी उच्च आशा ने तुम्हारा सर्वनाश किया, साथ ही मेरा भी सर्वनाश किया। नहीं तो मैं भी युद्ध करूंगी। इस शैतानी का दमन करूँगी।"

—('नूरजहाँ' अङ्क ३, दृश्य ३, पृ० ४६)

'दुर्गादास' द्विजेन्द्रलाल राय के सर्वश्रेष्ठ नाटकों मे से है। इस नाटक की

घटना औरङ्गजेब के समय की है। दुर्गादास वीर राजपूत है। मारवाड़ का सेनापति है। बादशाह के दरबार में रहता है। औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को काबुल भेजकरे कत्ल करा दिया था। अब उसकी विधवा रानी और बच्चों को भी पकड़वाना चाहता है। दुर्गादास इसका विरोध करता है। अन्त में पकड़ा जाता है। मिठाई के झावे में बन्द करा के दुर्गादास.कुंअर जसवन्त सिंह को बाहर भिजवा देता है। रानी उदयपुर चली जाती है। रास्ते में उसकी मृत्यु हो जाती है। राजकुमार मेवाड़ पहुँच जाता है। औरंगजेब प्रतिशोध लेने के लिये मेवाड़ पर चढ़ाई करता है। परन्तु दुर्गादास की बहादुरी के कारण बादशाही सेना हार जाती है। औरंगजेब का लड़का अकबर कैद हो जाता है।

औरङ्गजेब की स्त्री गुलनार, दुर्गादास के व्यक्तित्व पर मोहित है। वह उसे प्यार करती है, उसे बादशाहत का लोभ देती है। दुर्गादास इस लोभ से अपने चरित्र को पतनोन्मुख नहीं बनाना चाहता। औरंगजेब को भी अपनी बेगम की दुश्चरित्रता का पता चलता है, वह दुर्गादास के चरित्र की प्रशंसा करता है। 'दुर्गादास' बंगला साहित्य का एक दुर्लभ चरित्र है।

'त्र्यस्पर्श' द्विजेन्द्रलाल राय का एक प्रहसन है, जिसका अनुवाद पं० रूप नारायण पाण्डेय ने सन् १६१८ ई० 'मूर्ख मंडली' के नाम से किया था। इस नाटक के बीच-बीच में सिसरो, हक्सले और बेनजानसन के कई उद्धरण दिए गए हैं, जिससे यह पता चलता है, कि शेक्सपीयर के अतिरिक्त नाटककार का परिचय पश्चिम के और कई लेखकों से था। 'सूम के घर धूम' भी उनका एक सफल प्रहसन है।

द्विजेन्द्रलाल राय के उपर्युक्त नाटकों के अतिरिक्त और भी कई नाटक हैं, जो ऐतिहासिक होते हुए भी शेक्सपीयर के नाटकों के आधार पर लिखे गए हैं। इन नाटकों में 'मेवाड़ पतन' 'तारा बाई', 'चन्द्रगुप्त', 'भीष्म', 'सीता', 'अहिल्या' 'सिंहल विजय' और 'भारत रमणी' उल्लेखनीय हैं। अन्तिम नाटक सामाजिक है। 'चन्द्रगुप्त' में चाणक्य का चरित्र 'मुद्राराक्षस' के आधार पर न होकर शेक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटकों के आधार पर खींचा गया है। संस्कृत परम्परा में अधिकतर नाटकों में आदर्शवादी ही चरित्र खीचे जाते थे। व्यक्तिगत चरित्रों की दुर्बलताओं और उनकी विशेषताओं का वर्णन कम होता था।[1] इस प्रकार के चरित्र पाश्चात्य नाटकों में ही अधिक रखे गए, जिनमें उनके

1—'But the dramatists (Sanskrit) made no serious attempt to create individual characters, and to assign to them a speech of their own; they vary greatly in merit as

अन्तःसंघर्षों तथा दुर्बलताओं का चित्रण किया जाता था। 'उस पार', 'शाहजहाँ', 'नूरजहाँ' तथा 'दुर्गादास' आदि नाटकों में, इसी प्रकार का चरित्र चित्रण पाया जाता है। बंगाल में शेक्सपीयर की नाट्य परम्परा का इन्हीं नाटकों द्वारा घर-घर में प्रचार हुआ। उनके अनुवादों द्वारा हिन्दी में भी लोग पाश्चात्य नाट्य परम्परा की ओर आकर्षित हुए।

'खाँजहाँ' क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है, जिसका अनुवाद पाण्डेय जी ने सन् १९१८ ई० में किया। राय बाबू के नाटकों की तरह यह भी पाश्चात्य परम्परा में लिखा हुआ एक उच्च कोटि का दुखान्त नाटक है। बंगाल की नाट्यशालाओं में यह कई बार अभिनीति हो चुका है।

टैगोर के बंगला नाटक और उनके हिन्दी अनुवाद

भारतीय संस्कृति तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय टैगोर की कृतियों में अत्यन्त कलात्मक रूप से पाया जाता है। बंगला साहित्य में टैगोर एक महान कीर्ति स्तम्भ के समान हैं। उन्होंने भी अपने नाटकों में प्राचीन तथा नवीन का समन्वय किया है। पाश्चात्य आदर्शों को अपना कर अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। उनके निम्नांकित नाटकों का अनुवाद हिन्दी में हुआ है—

			अनुवादक
१—विसर्जन	....	(१९२४) ई० अनु०	श्री मुरारीदास अग्रवाल
२—डाकघर	...	(१९१७) "	प्रो० रामचंद्र प्रभासचंद्र नांदी
३—अचला यतन	...	(१९२४) "	पं० रूपनारायण पांडेय
४—लाल कनेर	...		पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी
५—नटी की पूजा	...		भगवतीप्रसाद चन्दौला

विसर्जन नामक नाटक में बलिदान और हिंसा का विरोध किया गया है। किसी समय बंगाल और आसाम में शाक्त मत इतना प्रबल हो गया था कि सारी जनता के सामने परोक्ष शक्ति का संहारकारी स्वरूप ही रह गया था। उसका दयापूर्ण लोक रंजक स्वरूप तिरोहित हो चुका था। एक बालिका अपर्णा के दया पूर्ण हृदय में इस लोक पालक स्वरूप देवी की झलक पाकर

---

regards characterization, but evcen the best daramas paint types, not individual."

—'*The Sanskrit Drama*'—Dr. A. B. Keith, page 282, Oxford at the Clarendon Press, 1924.

त्रिपुरा के राजा ने देवी के मन्दिर में बलिदान का निषेध किया। पुरोहित का पुत्र स्वयं अपने को देवी के चरणों में विसर्जित करके इस परम्परा को शान्त करता है। नाटक मे संस्कृत परम्परा का पालन नहीं किया गया है।

इसी नाटक के आधार पर हिंदी के लेखक श्री धन्यकुमार जैन ने 'माँ' नामक उपन्यास को लिखा है।

डाकघर टैगौर के सर्वश्रेष्ठ कलात्मक नाटकों मे से है। नाटकीय टैकनीक में संस्कृत नाटकों की जटिलता का सर्वथा त्याग तथा पाश्चात्य नाटकों के सरल तथा सक्षिप्त टेकनीक को इसमें ग्रहण किया गया है। अंक तथा दृश्यों का विभाजन पश्चिमी आदर्शों पर है। 'अमल' नामक छोटे बालक के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में टैगोर ने अनुपम कुशलता दिखाई है। प्रतीक का आधार लेकर नाटक का वातावरण आयरलैंड के ईट्स (डब्लू० बी० ईट्स) के नाटकों की भांति रहस्यवादी बनाया गया है। नाटक की कथा संक्षेप में यह है, कि 'अमल' एक चंचल लड़का है। क्वार की धूप लग जाने से ज्वर-ग्रस्त हो जाता है। वैद्य ने उसे वायु के प्रकोप से बचने को मना कर दिया है। वह शैया पर पड़ा हुआ है। उसका चंचल मन जो रात दिन चक्कर लगाने का अभ्यस्त था, इन बन्धनों को स्वीकार नहीं करता। दही वाले की आवाज सुनकर उसका मन आकुल हो उठता है। सुधा मालिन की लड़की आती है। अमल उससे एक लाल फूल मांगता है। घर के सामने उसके साथियों का खेल उसके चित्त को आकुल कर देता है। वैद्य जी आकर अमल को एकदम हिलने डुलने से मना कर देते है। अमल महाराज के पत्र की प्रतीक्षा करता है। अन्त में उसकी पुकार चिट्ठी के रूप में दूसरे लोक के महाराज के यहाँ से आती है, और वह सुधा के सामने मृत्यु को प्राप्त होता है। इसका कथानक टैगोर की 'होम कमिंग' नामक कहानी से मिलता जुलता है।

अचलायतन टैगोर का एक सफल अभिनेय नाटक है। नाटकीय टेकनीक अत्यन्त सरल और पाश्चात्य आदर्शों पर है। इसका अनुवाद पं० रूपनारायण पांडेय ने १९२४ ई० में किया था। इस नाटक में छूत छात मे विश्वास करने वाले, पुरानी लकीर के फकीर, कुलीन लोगों का छोटी जातियों को हलकी दृष्टि से देखने वाले समाज पर व्यंग्य किया गया है। अचलायतन एक स्थान है। वहीं से नाटक का कथानक प्रारम्भ होता है। एक गुरुकुल का दृश्य दिया गया है। गुरुदेव के आगमन पर, उनके शिष्यों द्वारा, वहाँ उनके स्वागत की तैयारी होती है। एक अछूत बालक सुभद्र, मन्दिर की खिड़की भूल से छू देता है। उसे छः मास तक महा तामस की साधना करने का प्रायश्चित गुरु जी लगाते है। सनातन धर्म के निर्वाह के लिये एक अछूत लड़का 'कुशल शील'

अष्टाङ्ग शुद्धि उपवास करते समय पानी पानी चिल्लाकर मर जाता है। नाटक के अन्त में एक गीत के द्वारा अछूतों की विजय दुन्दुभी बजाई गई है।

"बन्द द्वार को तोड़ फोड़ कर, और छोड़ कर तम भ्रम जाल।
ज्योतिर्मयी तुम भले पधारे, जय जय हो दीन दयाल॥"

लाल कनेर विश्वभारती के खंड १ अङ्क ३ में प्रकाशित हुआ था। इसका अनुवाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया है। यह एक प्रतीक ढंग का नाटक है। इसका कथानक रामायण के ऊपर आधारित की भाँति है। इसमें नन्दिनी नामक मानवी का चित्रण है। स्वर्ण लंका के समान नाटक में यक्षपुरी नामक एक नगरी का वर्णन किया गया है। वहाँ का राजा पाताल से सुरंग खोद कर धन-राशि एकत्रित कर रहा है। जैसे रावण ने सीता का अपहरण किया था, वैसे ही पूँजीपति आज के किसानों का शोषण कर रहे हैं। माया मृग मारीच के लोभ से जैसे सीता हरी गई वैसे ही धन के लोभ से, आज का किसान गाँव को छोड़कर, मिलों मे चक्कर काट रहा है। यही इस नाटक का प्रतीकात्मक अर्थ है। नन्दिनी 'लाल कनेर' से माँग सजाये हुये है। उसके सुन्दर गीत नाटक में मनोहर वातावरण का सृजन करते हैं—

"पौष तोदेर डाक दिये थे, आय रे चले आय आय"
डाला रे तीर भरे। आज पाका फसले भरि हाय हाय।"

—(अङ्क २, दृश्य ३)

(पौष तुम्हें बुला रहा है, आओ। आज उसकी डालियाँ पकी फसल से भर गई हैं)

'हावार नेशाय उठलो मेने, दिग्वधूरा धानेर क्षेते।
रोदेर सोना छाड़िये पड़े, मंदिर आंचले, भरि हाय हाय।

(अङ्क ३, दृश्य २)

('दिग्वधुएँ धान के खेतों में हवा के नशे से मतवाली हो उठी हैं। मिट्टी के आँचल पर धूप का सोना बिखर पड़ा है। अहा, कैसी विचित्र शोभा है।')

अस्तु, इस नाटक में रूपक के रूप में, आधुनिक यथार्थवादी सभ्यता तथा उसकी विषमताओं का चित्रण है। आज के औद्योगिक युग की देन, पूँजीवाद की उत्पत्ति तथा सम्पत्ति का विषम वितरण है। यह सिद्धान्त नाटक में, पश्चिमी आदर्शों के प्रभाव के कारण है।

नटी की पूजा टैगोर का दूसरा नाटक है, जिसका कथानक बौद्ध कालीन वातावरण के आधार पर रखा गया है। वर्तमान नारी की यथार्थ समस्याओं का इसमें चित्रण किया गया है।

टैगोर बंगला के सर्वश्रेष्ठ कवि और नाटककार है। पाश्चात्य यथार्थवादी आधुनिकता तथा भारतीय संस्कृति के समन्वय का प्रयत्न उन्होंने अपने नाटकों में किया। उनके नाटक कल्पना तथा भावुकता से बोझिल हैं। रंगमंच पर उनका अभिनय बड़ी सफलता से किया गया है। हिन्दी के अनेक नाटककारों पर, जैसे प्रसाद, पंत पर उनकी कला की स्पष्ट छाप है।

बंगला के कई और नाटकों का अनुवाद हिन्दी मे हुआ है। श्री ज्योतीन्द्रनाथ ठाकुर के 'सरोजिनी नाटक' का अनुवाद पं० केशवप्रसाद मिश्र ने किया परन्तु वह प्रति अप्राप्य है। बाद मे, फिर उसका अनुवाद श्री रामकृष्ण वर्मा ने किया। इसके कथानक का आधार चित्तौड़ का आक्रमण है।

उसी प्रकार श्री मनमोहन गोस्वामी के 'पृथ्वीराज' नामक ऐतिहासिक नाटक का अनुवाद पं० रूपनारायण पांडेय ने १९१५ ई० मे किया।

शेक्सपीयर के नाटकों के हिन्दी अनुवाद

पाश्चात्य नाटकीय शैली और विचारधारा हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में, केवल बंगला के माध्यम से ही नहीं आई, वरन् स्वतन्त्र रूप से भी हिन्दी के क्षेत्र में आई। इसके दो कारण थे। एक तो शेक्सपीयर, गाल्सवर्दी तथा बर्नार्ड शा के नाटक भारतीय कालेजों और विश्वविद्यालयों में पाठ्य ग्रन्थों के रूप में निर्धारित थे। उनका अध्ययन और अध्यापन गम्भीर विद्वानों द्वारा हो रहा था। अतः उन्होंने पढ़ी लिखी जनता के बीच एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया, जिसके कारण जनता इन नाटकों की ओर स्वतः आकर्षित हुई, और उनके हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता प्रतीत हुई। दूसरा कारण अंग्रेजी नाटकों के साहित्यिक अनुवाद का यह था, कि पारसी रंगमंच वाले शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद बड़े ही निम्न कोटि के थे। उनका प्रधान उद्देश्य मनोरंजन था। एक तरह से भाषा और साहित्य की उन नाटकों में, हत्या सी की गई थी। अतः उनसे साहित्यिक लोगों के मन में एक घृणा सी उत्पन्न हुई। उन नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप शेक्सपीयर के नाटकों के साहित्यिक अनुवाद की आवश्यकता का अनुभव हिंदी के नाटककारों ने किया। हिन्दी नाटक जगत में अभी बहुत बड़ा अभाव था, उसी की पूर्ति के लिए, साहित्यकारों ने ध्यान दिया। श्री अवधवासी भूप उपनाम लाला सीताराम बी० ए० ने इसी उद्देश्य से शेक्सपीयर के अनेक नाटकों का अनुवाद किया। उन्होंने अपने इस उद्देश्य को अनेक

अनूदित नाटकों की भूमिका में स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।[1]

अस्तु, लाला सीताराम ने शेक्सपीयर के प्राय: सभी नाटको का अनुवाद किया । हेमलेट तथा मैकबेथ का उन्होंने अनुवाद १६१५ ई० में किया । हेमलेट के अनुवाद की भाषा बड़ी ही दुर्बल थी । मूल नाटक का सौन्दर्य किसी मात्रा में भी नहीं प्रस्तुत हो सका । इन दोनों मूल नाटकों में, जो अनेक भाषण दिये गये है, जिनसे नायक के मानसिक भावधारा का चित्र दिखाई देता है, वे अनुवाद में छोड़ दिये गये है । इनके अतिरिक्त उनके अनुवादों की सूची निम्नाङ्कित है—

१—मनमोहन का जाल (मच एडो एबाउट नथिंग)	१६१५ ई०
२—भूल-भुलैया (कामेडी आफ एरर्स)	१६१५ ई०
३—रिचर्ड द्वितीय	
४—जंगल में मंगल (टेम्पेस्ट)	
५—राजा लियर	१६१४ ई०
६—बगुला भगत (मेजर फार मेजर)	१६२३ इ०
७—जूलियर सीजर	
८—सिम्बलीन या सती परीक्षा	१६२५ ई०
९—शरद् ऋतु की रात (द विंटर्स टेल)	
१०—प्रेम की रात (रोमियो एण्ड जूलियट)	
११—अपनी अपनी रुचि (ऐज यू लाइक इट)	
१२—ओथेलो अथवा झूठा सन्देह	१६२६ ई०

1—'The idea of publishing a translation of Shakespears play in the vernacular of the country was concieved by me thirty years ago, and a small beginning was made by a rendering of the Comedy of Errors' in Urdu under the title of Bhul-Bhulaya. It had a favourable reception. It has since passed through four editions. The most thoughtless reader of Shakespeare will endorse the opinion, so often quoted that Shakespeare was the poet not 'for an age but for all time. There never was an author whose works have been so carefully analysed and illustrated, so eloquenty expounded or so universally admired. Can there be any concealment of the fact that the vernacular romancer have a most demoralising effect upon the minds of the readers. . I, therefore, propose to publish Hindi varsions of all the thirty seven plays of Shakespeare.' *Introduction to othello'*

इन नाटकों का मूल नाटक से केवल भावानुवाद किया गया है। भाषा सरल है। पद्य के लिये कहीं-कहीं खड़ी बोली तथा कही-कहीं अवधी तथा ब्रजभाषा की भी कविता रखी गई है। नामो का भारतीयकरण तो प्राय: सभी में हुआ है। कहीं-कहीं भाषा भी अशुद्ध है। शेक्सपीयर के मूल नाटकों में जो ट्रेजेडी का वातावरण है, उसको अनुवाद मे नहीं लाया गया है। राजा लियर में भय और करुण की जो अजस्र धारा शेक्सपीयर ने बहाई है, उसका आभास मात्र भी अनुवाद में नहीं है। 'ओथेलो' में नाम मूल नाटक के ही रखे गये है। पर अनुवाद को भाषा शिथिल और लड़खड़ाती चलती है। भाषा की अनेकें अशुद्धियाँ है।

दूसरे अङ्क में 'यागो' का एक गीत देखिए—

"भर भर दो शराब का प्याला।
हम हैं सूर वीर रन बाँके।
हमारा ढङ्ग निराला।
जिन्दगी का नहीं ठिकाना,
बूढ़ा होइ कि बाला।'

इसी प्रकार 'मन मोहन का जाल' (मेजर फार मेजर) नामक अनूदित नाटक में नामों के परिवर्तन से बहुत कुछ अस्वाभाविकता आ गई है। उदाहरण के लिए, विशेन्सियों के स्थान पर विनायक, एँजिलो के स्थान अर्जुन, क्लैडिओ के स्थान पर कलहंस, थोमस एण्ड पिटर के स्थान पर रामदास और हरदास रखा गया है। उसी प्रकार 'अपनी अपनी रुचि' में फ्रेडरिक के स्थान पर 'पुंडरवि' आमिन्स एन्ड जेक्स के स्थान पर अमीचन्द तथा जयकृष्ण रखे गये है। विदूषक 'टचिस्टोन' का नाम मूसरचन्द रखा गया है। 'द फोरेस्ट आफ आर्डन' का नाम आरण्यक बन है। उसी प्रकार प्रेम कसौटी (रोमियो एण्ड जूलिएट)' में जूलिएट का नाम 'जालजा' रखा है। शेक्सपीयर के सुखान्त नाटकों में 'द टेम्पेस्ट', विषय तथा शैली दोनों की दृष्टि से, सबसे अधिक प्रौढ है। क्योंकि यह उसकी अंतिम रचना है। इसका अनुवाद 'जंगल में मंगल' के नाम से किया गया है। परन्तु मूल नाटक का सौंदर्य अनुवाद में नहीं प्राप्त होता। उदाहरण के लिए, दोनों की तुलनात्मक व्याख्या आवश्यक है। पात्रों के सभी नामों में निम्नाङ्कित परिवर्तन है—

१—अरिनाश (एलेंजो, द किंग ऑफ नेपुल्स)
२—श्रीवत्स (सेवेस्चीयन) उसका भाई
३—पूर्णकाम (प्रासपेरो) मिलान का ड्यूक
४—अनन्त (एनटोनियो) पूर्णकाम का राज्य हड़पने वाला भाई

५—प्रद्युम्न (फर्डिनेंड) अरिनाश का बेटा

६—गुंजमाल (गांजेलो)

७—कालय वन (कैलिवन)

८—तिनकौड़ी (ट्रिनक्यूलो) विदूषक

९—मालिनी (मिरेंडा) पूर्णकाम की बेटी और नाटक की नायिका ।

१०—बैताल (एलियल)

दो-एक स्थलों पर मूल तथा अनूदित नाटक के साहित्यिक सौन्दर्य की तुलनात्मक व्याख्या भी आवश्यक है । नाटक के प्रथम अङ्क के दूसरे दृश्य में, मालिनी (मिरेंडा), प्रद्युम्न (फर्डीनेन्ड) के रूप पर मुग्ध होकर आत्म-सूमर्पण सी करती दिखाई देती है ।

"मालिनी—'ऐसे घर मे कुटिलाई रह सकती नहीं, जो ऐसे सुन्दर सुन्दर घरों में प्रेम निवास करे, तो देवता यहाँ आना चाहेंगे ।'"[1]

यहाँ, जैसा लेखक ने भूमिका में लिखा है, भावों के सौन्दर्य की कौन कहे, उसकी छाया मात्र भी नही है । मूल नाटक में तुलना करने से स्पष्ट है कि, इस अनुवाद में अनेक शिथिलताएँ है । भाषा खिचड़ी रखी गई है । कहीं खड़ी बोली, कहीं ब्रज और कहीं अधिकांश में देशी भाषा का प्रयोग किया गया है । परन्तु यह सब होते हुए भी इसको मानना पड़ेगा कि किसी भी भाषा के मूल भाव का सौंदर्य और उसकी आत्मा अनुवाद के भाषा में आ ही नहीं सकती । संस्कृत के कालिदास के भावों को उसी रूप में हिन्दी में नहीं रखा जा सकता । यही इन अनुवादों के भी विषय में कहा जा सकता है । दूसरे, अनुवाद कर्त्ता ने, स्वयं लिखा है, जो लोग अनेक स्थलों पर मूल नाटक के ठीक-ठीक भावों को बारीकी से खोजेंगे, उन्हें निराश होना पड़ेगा ।[2]

परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि लाला सीताराम के अनुवादों ने पढ़ी लिखी जनता में शेक्सपीयर के नाटकों का भलीभाँति प्रचार किया । हिन्दी नाटककार पाश्चात्य नाटकीय शैली के भी संपर्क में आए । और अपने नाटकों में इन आदर्शों का अनुसरण करने लगे । पारसी नाटकों के अनुवादों की अपेक्षा शेक्सपीयर के नाटकों के ये अनुवाद बहुत अच्छे थे ।

1—'Miranda—There's nothing ill can dwell in such a temple
If the ill spirit have so fair a house
Good things will strive to dwell with it.
(Act I Scene 2)

2—'Those who will seek for close and faithful renderings of individual passages will be sorely disappointed.'
—*Lala Sitaram*, (Introduction) 'Othello' page 3.

हिन्दी प्रहसन और मोलियर के नाटकों के अनुवाद—

मोलियर—द्विवेदी युग में शेक्सपीयर के नाटकों के अतिरिक्त श्री ज्वाला-प्रसाद श्री वास्तव ने मोलियर के नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किये। इन अनुवादों का वर्णन करने के पूर्व मूल लेखक और उसके नाटको के सम्बन्ध मे, कुछ कहना आवश्यक होगा। संसार के नाटककारों में मोलियर एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। उसका जन्म १५ जनवरी १६२२ ई० में हुआ था। फ्रांस के लुई चौदहवें के समय में उसके नाटक लिखे गये। वह बादशाह का राजकवि था, और उसे राजा की ओर से बहुत प्रोत्साहन भी मिला। संसार की अनेक भाषाओं में, उसके नाटकों का अनुवाद हुआ है। उसके नाटकों की संख्या सैंतीस है। उसके प्रारम्भिक दो नाटक प्रहसन हैं। एक का नाम 'द जेलसी आफ द बारबिले' दूसरे का नाम 'द फ्लाइंग डाक्टर' है। ये दोनों नाटक-कामेडिया डेल आर्ते के प्रभाव पर लिखे गये। उसका तीसरा नाटक 'द लवर्स स्पाइट' १६५६ ई० मे अभिनीत हुआ। १६५९ ई० में उसका 'द अफेक्टेड लेडीज' लिखा गया, इसमें उसकी शैली परिवर्तित हो गई। १६६१ ई० में, उसका सबसे प्रसिद्ध नाटक 'टारटफ आर द इम्पोस्टर' लिखा गया।

उसके सुखांत नाटकों में, जिस प्रकार का हास्य रखा गया है, उसे आलोचकों ने बौद्धिक कहा है।[1] मोलियर ने अपने नाटकीय सिद्धान्तों का वर्णन अपने प्रसिद्ध नाटक 'टारटफ' की भूमिका में दिया है। उसका कथन है, कि सुखांत नाटकों का उद्देश्य, मनुष्य की कमजोरियों का सुधार करना है, परन्तु उसके लिए किसी विशेष वर्ग का उल्लेख नहीं होना चाहिए। उपदेश या शिक्षा का मनुष्य के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चरित्र-सुधार के लिए दोषों का चित्रण तथा उनकी व्यंग्यपूर्ण आलोचना आवश्यक है। इस प्रकार का सुधार रंगमंच द्वारा बड़ी सुन्दरता से हो सकता है।[1]

1—'His greatest power lies in his skill; in arousing, what has been called the 'thoughtful laughter.'

—'*World Drama*'—A. Nicoll, page 354.

1—'If it be the aim of the comedy to correct man's vices, then I do not see for what reason, there should be a priviledged class. We have seen that the stage possesses a great virtue as a corrective medium. Nothing admonishes the majority of people, better than the potrayal of their faults. Reprehensions are easily suffered, but not so redicule. People do not mind being wicked, but they object to being made ridiculous.'

Preface to Tartuff, page 152 from

—'*European Theory of Drama*'—Barrett.H, Clark.

मोलियर के नाटकों की ख्याति फ्रांस में ही नहीं सारे यूरोप में हुई। इंग- लैंड में, रेस्टोरेशन काल के नाटकों पर मोलियर का विशेष प्रभाव पड़ा। 'वाइ- चर्ली' के आचारपूर्ण नाटको की (कामेडी आफ मैनर्स) स्थापना मोलियर के ही आधार पर हुई। संसार के प्राय: सभी भाषाओं मे, मौलियर के नाटकों का अनुवाद हो चुका है। हिन्दी में भी श्री ज्वालाप्रसाद श्री वास्तव ने मोलियर के नाटकों के आधार पर अनेक प्रहसनों को लिखा। परन्तु उनके अतिरिक्त मूल फ्रेंच से भी मोलियर के नाटकों के अनुवाद हिन्दी में हुए हैं। सबसे पहले हम ऐसे ही अनुवादों का वर्णन करेंगे।

मोलियर के नाटकों के मूल फ्रेंच से अनुवाद

'बनिया चला नबाब की चाल'

लाहौर में, संस्कृत ओरियेंटल कालेज के प्रोफेसर डा० लक्ष्मणस्वरूप एम०ए०, डी० फिल्० (आक्सफोर्ड) सन् १९२० ई० में, जब इंगलैंड यात्रा से लौट रहे थे, उस समय डौवर और कैले के बीच २० मील चौड़ी खाड़ी पार करते समय मोलियर के 'ली बार्जिस' गतील हार्मे' का अनुवाद 'बनिया चला नबाब की चाल' नाम से किया है। ऐसा उन्होंने स्वयं लिखा है। पेरिस छोड़ने के कुछ दिन पहले, मोलियर नाटकों पर उन्होंने शोध भी किया था। मूल नाटक के भवों और नामों में परिवर्तन नही किया गया है। नाटक का कथानक यह है कि इसका नायक सेठ जूरदे, जो विद्याविहीन और मूर्ख था, निरंतर अपने से उच्च, शिक्षित तथा कुलीन लोगों के आचार और व्यवहार के नकल करने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न मे उसका धन नष्ट होता है, मान भंग होता है और वह अपने को अनेक आपत्तियों मे डालता है। हमारे देश में भी, बहुत से अशिक्षित लोग, यूरोप वालों का अधूरा तथा बाह्य अनुकरण करके अपने तथा अपने परिवार के जीवन को संकटग्रस्त करते हैं। उन्हें इस नाटक के नायक सेठ जूरदें, के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। पुस्तक की भूमिका में लेखक ने अनुवाद के विषय में स्वयं लिखा है—

"सन् १९२० ई० की शरद् ऋतु में, मैं भारत लौट रहा था। जहाज में समुद्र का रोग मेरा पीछा नहीं छोड़ता। जहाजी नीरसता से ऊब कर मैंने फ्रांस देश के परम प्रसिद्ध सुखान्त नाटककार मोलियर के नाटक का अनुवाद किया। पेरिस छोड़ने से पहिले चन्द महीनों से मैं मोलियर के विषय में अनु- सन्धान कर रहा था। मेरी स्मृति में मोलियर का विषय अभी ताजा था। इस पुस्तक में मोलियर के नाटक का जो अनुवाद किया गया है, वह फ्रांसीसी भाषा से हुआ है। गद्य का गद्य में, पद्य का पद्य में, उलथा किया गया है। अनुवाद मूल

का अक्षरशः अनुवाद है। मोलियर के वाक्यों, मोलियर के भावों को ही केवल हिंदी रूप में पलट दिया गया है। अपनी ओर से कुछ काट, छांट, जोड़ तोड़ नहीं किया। दोरान्त के प्रीति-भोज के वर्णन में थोड़ा सा परिवर्तन आवश्यक था। फ्रांसीसी खाने के पदार्थों के वर्णन का भारतीय जनता पर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। इन दो एक स्थलों के थोड़े से परिवर्तन को छोड़कर, बाकी अक्षरशः अनुवाद है। फ्रांसीसी नामों का फ्रांसीसी उच्चारण दिया गया है।[1]

इस नाटक में सत्तरहवीं शताब्दी के पेरिस नगर के फैशनेबुल वातावरण का चित्रण किया गया है। १४ अक्तूबर सन् १६७० ई० में राजभवन में इसका अभिनय भी हुआ था। फ्रांस के बादशाह ने इस नाटक की प्रशंसा में मोलियर को एक पत्र भी निम्नांकित आशय का लिखा था[2]—

"मोलियर! सचमुच तुमने अभी तक ऐसी कोई चीज नहीं लिखी थी, जिससे मुझे इतनी प्रसन्नता हुई हो। तुम्हारी यह कृति अपूर्व है।"

इस नाटक के पढ़ने से फ्रांस के, विशेषकर पेरिस नगर के तत्कालीन जीवन का अच्छा परिचय मिलता है। उस समय नृत्य, संगीत तथा कई भाषाओं का ज्ञान रखना एक बड़ी भारी विशेषता मानी जाती थी। सेठ जूरदें, जो एक मध्यम वर्ग का अनपढ़ मूर्ख व्यक्ति है, अपने को कुलीन और उच्च दिखाने की लालसा से, संगीत और नृत्य सीखता है। इन सब कामों के लिए उसका शरीर एकदम अनुपयुक्त है क्योंकि वह बहुत मोटा है। अपनी पत्नी श्री मती जूरदें से, नृत्य और संगीत की महत्ता पर अकसर भाषण देता रहता है। उसके यहाँ संगीत तथा नृत्य के एक और अध्यापक आते हैं, जो उसे पट्टे का खेल सिखाते हैं। दोरान्त नामक एक पात्र, सेठ जूरदें की पोशाक तथा उसके नृत्य और संगीत के ज्ञान की झूठी प्रशंसा करके, उसे उल्लू बनाता है और इस प्रकार उससे कुछ रुपये उधार ले लेता है। सेठ जी. अपनी मित्र मंडली में भी हास्य के भाजन बनते है। मित्र लोग, सेठ जी को, 'मामामुचि' नामक उपाधि, जो तुर्क देश की सबसे बड़ी उपाधि है, देकर बेवकूफ बनाते हैं। इस उपाधि पाने की प्रसन्नता में, अपनी पत्नी के सामने सेठ गा गाकर नृत्य करता है। श्रीमती सेठ को निश्चय हो गया कि उसके पति महोदय पागल हो गये हैं। सेठ जूरदें की लड़की कुमारी ल्यूसील है। सेठ उसका विवाह क्योन्त के साथ करना चाहता है, क्योंकि वह दो भाषाओं को जानता है। परन्तु सेठानी इसका विरोध करती हैं। अन्त में उसका वास्तविक प्रेमी, तुर्की के राजकुमार के वेष में आता है, और दोनों का

१—'बनिया चला नवाब की चाल'—डा० लक्ष्मणस्वरूप, भूमिका पृ० २७-२८।
२—'Indeed Moliere, you have never yet done any thing which has amused me more, and your piece is excellent.'

विवाह हो जाता है। दासी निकोल के साथ श्रीमती जूरदें की बातचीत कितनी व्यंग्यपूर्ण है और श्री जूरदें का उत्तर कितना हास्यास्पद है—

"जूरदें—यह निकोल, जो हमारी दासी है, एक गाँव की रहनेवाली है। किन्तु ऐसी बातें बनाती है, जैसे कोई पटरानी हो।"

श्रीमती जूरदें—(अपने पति से) निकोल सच कहती है। वह तुमसे अधिक समझदार है। अच्छा मुझे यह बताओ कि तुम्हें इस उमर में नृत्य के अध्यापक की क्या आवश्यकता है। अब बुढ़ापे में आप नाचना सीखेंगे। चला तो आपसे जाता नहीं। टांगे आपकी लड़खड़ाती है। पग पग तो ठोकर खाते हैं और चले है नाचने।"

निकोल—(मालकिन से) और पट्टा भी तो खेलना आरंभ किया है, या किसी का प्राणघात करने का निश्चय किया है।"

जूरदें—बस चुप। तुम दोनों मूर्ख हो। इन अद्भुत कलाओं के गुणों से अनभिज्ञ हो।"

('वनिया चला नवाब की चाल', अंक ३, दृश्य २)

रावबहादुर

मोलियर के उसी नाटक का (ली वार्जस गतील हर्मे) दूसरा अनुवाद 'रावबहादुर' के नाम से श्री लल्लीप्रसाद पांडेय ने किया है। पांडेयजी ने यह अनुवाद, श्रीयुत हरिश्चन्द आनंद राव तालचेरकर के अनुवाद के आधार पर किया है, जो मूल फ्रेन्च नाटक के बीस वर्ष पहले हो चुका था। पांडेय जी ने अनुवाद में मूल नाटक से बहुत परिवर्तन कर दिया है। सारा वातावरण भारतीय कर दिया गया है। कथानक, रहन सहन, बातचीत, तथा नाम सब मे परिवर्तन हुआ है। प्रो० विश्वनाथ मिश्र का यह कथन है,[1] कि 'रावबहादुर' नामक नाटक जी० पी० श्रीवास्तव का अनुवाद है, यह ठीक नहीं है, क्योंकि जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है, कि यह श्री लल्लीप्रसाद पांडेय जी का अनुवाद है। इस अनुवाद में, कथानक, रहन सहन, बातचीत तथा नाम, जैसा ऊपर कहा गया है, सब बदल दिए गए है। मोशिये जूरदें का नाम रावबहादुर गिरधारी सिंह रखा गया है। श्रीमती जूरदें का नाम मनका बाई है। लड़की का नाम मालती है। मालती का विवाह आशाराम से कराया जाता है, जो बुड्ढा है। मूल नाटक में मोशिये जुर्दे को 'मामारुचि' की उपाधि दिलाई गई है। यहाँ

---

१. डा० विश्वनाथ मिश्र—'आलोचना'—नाटक विशेषांक, जुलाई १९५६। पृ० २४१।

पर गिरधारी सिंह को 'शाहमल' की उपाधि दी जाती है। कहीं-कहीं संवाद की भाषा अश्लील और भद्दी है। पलटू नौकर एक जगह कहता है—

पलटू—"देखो सार, रावबहादुर हूँगा।"

फलत: पांडेय जी के 'रावबहादुर' में मूल लेखक के भावों की हत्या हो गई है। ऐसा मालूम होता है, कि यह मोलियर के नाटक का अनुवाद ही नहीं है।

श्री ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव द्वारा मोलियर के नाटकों के अनुवाद

जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर के निम्नांकित नाटकों का अनुवाद किया है—

अनुवाद	मूल नाटक
१—नाक में दम	ली मैरेज फोर्स
२—जवानी बनाम बुढापा उर्फ मियाँ की जूती मियाँ के सिर	जार्ज डैनडीन आर द बैफुल्ड हसबैंड
३—चड्ढा गुल खैरू	ली बर्जेस गतील हूमें
४—मार मार हकीम	ली मेडिशिन मलग्रेलुइ
५—हवाई डाक्टर	ली मेडिशिन वलेन्ट
६—चाल बेढब	ली फारवेरीज द स्केपिन
७—लाल बुझक्कड़	द ब्लन्डरर
८—आँखों मे धूल	ल अमर मेडिशिन

नाक में दम—श्रीवास्तव जी द्वारा सन् १९१२ ई० में मोलियर के मूल नाटक के आधार पर लिखा गया था। सन् १९१७ ई० में यह फिर नये सिरे से लिखा गया। मूल फ्रेंच नाटक तीन अंकों में है, जो १५ फरवरी १६६४ ई० को 'पैलेस रायल' में खेला गया था, जिसमें मोलियर ने स्वयं नायक का अभिनय किया था। मूल नाटक में एक बड़ा ही सुन्दर दृश्य है, जिसमें दार्शनिकों की खिल्ली उडाई गई है। मोलियर ने इस दृश्य को केवल मनोरंजन के ही दृष्टिकोण से नहीं लिखा वरन् एक विशेष अभिप्राय से लिखा और उसमें वे सफलीभूत हुए। मोलियर के पूर्व अरस्तू के नियमों तथा उसके सिद्धान्तों की पूजा सी होती थी। यदि तनिक भी उसकी कोई आलोचना करता तो उसको मृत्यु-दंड दिया जाता। सितम्बर सन् १६२४ ई० में पेरिस की राज्य-सभा द्वारा मृत्यु-दंड का कानून बननेवाला ही था, कि मोलियर ने उसके पूर्व यह प्रहसन लिखकर अरस्तू का मजाक बनाया, फलत: यह कानून रुक गया।

'नाक में दम' में भी यह दृश्य मौलाना खफतुल हवास (मूल में पेनक्रेस)

तथा पं० संकोचानन्द (मारकूरियस) के बीच रखा गया है, परन्तु वह केवल मनोरंजनार्थ है। इस नाटक का अभिनय भी गोंडा तथा फैजाबाद में १९२२ ई० में हुआ था, जिसमे लेखक जी० पी० श्रीवास्तव ने स्वयं खफ़ैतुलहवास का अभिनय किया था। अरस्तू के नियमों के बदले इस नाटक मे, ज्योतिषियों की खिल्ली उड़ाई गई है। इस नाटक का नायक मुसीबतमल एक वृद्ध तथा कायर व्यक्त है, जो कुलच्छनी नामक स्त्री से, जो पाश्चात्य शिक्षा तथा रहन सहन की मानने वाली है, विवाह करता है। इस विवाह के द्वारा अवैध प्रेम की खिल्ली उड़ाई गई है। नाटक का शीर्षक 'नाक में दम' इसलिये है, कि मुसी-बतमल जहाँ कहीं जाता है, पत्नी के मारे परेशान है। कुलच्छनी घर बिगाड़ू नामक पुरुष से प्रेम करती है, दोनों के वार्तालाप में वृद्ध-विवाह पर अच्छा व्यंग्य किया गया है।

"कुलच्छनी—नहीं मिस्टर घर बिगाड़ू। तुम मत घबड़ाओ, नहीं हम ऐसी नौजवान और चुलबुली लड़कियाँ बूढ़े मर्द को थोड़े ही प्यार कर सकती है।

घर बिगाड़ू—तब तुम उस बूढ़े खूसट के साथ शादी करने को राजी क्यों हुईं।

कुलच्छनी—इसलिये कि इससे बढ़कर अक्ल का अंधा और गांठ का पूरा दूसरा नही मिला।

घर बिगाड़ू—तो यों कहो कि यह शादी क्या आड़ मे शिकार खेलने के लिये टट्टी खेला जाता है। मगर वहाँ इतनी आजादी तुम्हे कहाँ मिल सकेगी, कि मैं तुमसे बराबर मिलता रहूँ।

कुलच्छनी—अजी यहाँ कहाँ आजादी है। चोरी छिपे तो मिलना पड़ता है। वहाँ बड़ी आजादी रहेगी। तुम मुझसे बेखटके और खुले खजाने मिल सकते हो। वह चूं नहीं करने पायेगा, इसका जिम्मा मैं लेती हूं। उल्लू को उल्लू बनाते कितनी देर लगती है।

मुसीबत मल—(सारी बात सुनता है)— (अलग) अफसोस यही कि अकेला हूं, नहीं तो तुम दोनों को मारे बिना नहीं छोड़ता। और ज्यादा गुस्सा आया तो दरिया में कूद पड़ूँगा।

घर बिगाड़ू—(कुलच्छनी से) तो इस तरह कब तक चलेगा। वह कभी न कभी ताड़ जायेगा।

कुलच्छनी—जिन्दा रहेगा तब तो। शादी के बाद छः महीने के भीतर उसे मरना पड़ेगा।

मुसीबतमल—(अलग) अरे बाप रे !

घर बिगाड़ू—(कुल० से) यह कैसे ? क्या उसे कोई मार डालेगा ?

कुल०—नही जी, मारे कोफ़्त के वह खुद ही मर जायगा। प्यारे! ईश्वर से तुम रोज दुआ करना कि मुझे विधवा होने की खुश किस्मती जल्दी से जल्दी नसीब हो। फिर तो चैन ही चैन है। लाखों रुपये हाथ आयेंगे। बेखटके मजे उठायेंगे।

(अङ्क २ दृश्य २)

नाटक के अंत मे शादी की मुबारकवादी भी व्यंग्यपूर्ण है, जिसमे सस्ती तथा अश्लील भाषा का प्रयोग किया गया है।

"लिये चलते है, मुहल्ले में नई चीज जनाब।
गर्म हो यारों का बाजार मुबारक!
दिन में चाहे आप जो करें जनाब, मगर शब में
दोस्त और यारों का हो बाजार मुबारक।
बीबी सोलह की, तो दूल्हा मिया सोलह पंजे (अस्सी)
ऐसी नौची को यह मुरदार मुबारक बाशद।

(पृ० ८०)

जवानी बनाम बुढ़ापा उर्फ मिया की जूती मियाँ के सिर—यह नाटक १९१४ ई०में लेखक द्वारा लिखा गया। १९१९ ई० में नाटक तथा प्रहसन दोनों को साथ मे मिलाया गया। इसको अनुवाद तो नहीं कहा जा सकता, वरन् यह मोलियर के दो नाटकों के आधार पर, जिनका उल्लेख प्रारम्भ में किया है, लिखा गया है। क्योंकि, दोनो नाटकों का विषय एक ही है। मूल नाटक में मोलियर ने एक विवाहिता स्त्री को पति से विश्वासघात करते तथा चरित्रभ्रष्ट होते दिखाया है। श्रीवास्तव जी ने इसको परिवर्तन करके 'बुढ़ापे की शादी' का रूप दिया है। इस नाटक का नायक मुंशी बरबादअली तथा उनकी नवयुवती स्त्री का नाम दिलाराम है। घरबिगाड़ू, दिलाराम का प्रेमी है। भंडाफोड़, घर बिगाड़ू का नौकर है। श्री धरपकड़ जी दिलाराम का बाप या मुंशी जी के श्वसुर है। मुंशी बरबादअली जब अपने ही घर में घर बिगाड़ू को पकड़ते है, तो तुरन्त पत्नी का यह दुश्चरित्र दिखाने के लिये, अपने सास और श्वसुर को बुलाते है। और उल्टे ही उन पर डाँट पड़ती है, और "मियाँ की जूती मियाँ के सिर" शीर्षक चरितार्थ होता है।

मिसेज धर पकड़ (अपने दामाद मुंशी जी को डाटती हुई)—हाँ हाँ ठीक है। दूसरी बात यह है, कि हम औरों पर यह जाहिर होने नहीं देना चाहते, कि हमारे दामाद की उमर हमारे बाबरची के नाना से भी ज्यादे है।"

नाटक में, उपकथानक के रूप में, पंडित भकभकानन्द अपने व्याकरण के

थोथे ज्ञान को प्रदर्शित करते है। नाटक में सस्ते मनोरंजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

चड्ढागुल खैरू—मोलियर के 'ला बर्जेस गतील हुर्मे' के जिन दो अनुवादों की, मूल फ्रेंच से पिछले पृष्ठों में चर्चा हो चुकी है, उसी का अनुवाद श्रीवास्तवे जी ने 'चड्ढा-गुल खैरू' नाम से किया है। यहाँ पर नाटक के कथानक, पात्र तथा वातावरण मे भारतीयता का परिचय दिया गया है। परन्तु हास्य निम्नकोटि का हो गया है। जैसे,

साहब बहादुर—(नौकर से) जूतों को अच्छा ला रख दे मेरी जेब मे, मगर खबरदार कहना मत किसी से।

एक चरित्र—आप पर अंग्रेजी पोशाक तो गजब ढालती है,

साहब बहादुर—'जी हाँ, यह मेरी काठी की तारीफ है, विलकुल बिलायती है।'

मार मार हकीम और 'हवाई डाक्टर'—मोलियर के मूल नाटक 'लि मेडिशिन मालग्रेलुइ' तथा 'ला अमर वैलेन्ट' के क्रमशः अनुवाद हैं। ये मोलियर के विश्वविख्यात नाटक माने जाते हैं। इनका अनुवाद दुनिया की कई भाषाओं में हुआ है। किसी-किसी भाषा मे तो इनके कई अनुवाद हैं। सन् १९११ ई० में श्रीवास्तव जी ने 'फिल्डिङ्ग' के 'माक डाक्टर' के आधार पर 'मार-मार हकीम' लिखा था, परन्तु बाद मे, उन्होंने दो और अनुवादों को देखा, जिसके आधार पर, कुछ परिवर्तन किया है। इन नाटकों में, डाक्टरों की अज्ञानता तथा उनकी शोषण नीति का वर्णन है। 'मार मार हकीम' तीन अङ्कों का नाटक है। मूल नाटक में उन्नीस दृश्य हैं। उसी के आधार पर श्री लल्लीराम पांडेय ने 'ठोक पीट कर वैद्यराज' नामक प्रहसन लिखा है। मोलियर के नाटक में डाक्टर गिगेरी लैन्डर है, जिसका नाम श्रीवास्तव जी ने टरे खाँ और लल्लीराम जी ने वैद्यराज पशुपति चन्द लिखा है।

'चाल बेढब'—मोलियर के 'ली फारबेरीज द स्केपिन' के आधार पर लिखा गया है, जो २४ मई १६७१ ई० को पेरिस के 'पैलेस रायल' में बड़े धूमधाम से खेला गया था, और जिसमें मोलियर ने स्वयं (स्केपिन) का अभिनय किया। अनुवाद में मोलियर के और अनुवादों की अपेक्षा 'मोलियर के हास्य को जीवित रखने का प्रयत्न किया गया है। लेखक ने स्वयं मोलियर की प्रशंसा करते हुए, इसका समर्थन किया है। इस नाटक की भूमिका में वे लिखते है ? मामूली से मामूलो स्थिति, परिस्थिति, आचार-विचार, बातचीत, भाव सुभाव में जहाँ और हास्य लेखक गुमसुम होकर बौखला उठते हैं, मोलियर की कला ऐसा कमाल दिखलाती है कि वह देखते ही बनता है। यही कारण है,

कि उसके आगे संसार के हास्य साहित्यिक सर झुकाते हैं। वे हास्यरस के जगत गुरु हैं। हास्य नाटककारों के लिये वे आदर्श हैं, ऐसी हालत में हिन्दी में भी उनके नाटकों का अपनाया जाना कितना जरूरी है, कहने की आवश्यकता नहीं। इसीलिये हर तरफ मौलिक रचनाओं ही की माँग होने पर भी मैं कभी-कभी उनके नाटकों को अपनाने से नहीं चूकता।''

'चाल बेढब' का कथानक शेक्सपीयर के कामेडी आफ एरर्स से मिलता जुलता है। नाटक के पात्रों में मिर्जा हुज्जत बेग, और हाजी नहूसत बेग बुड्ढे अमीर हैं। यूसुफ और महबूब क्रम से इन दोनों के पुत्र हैं। बौहरा और गुलबदन इन दोनों की प्रेमिकाएं हैं, जिनका विवाह नाटक के अन्त में होता है। 'बेढब' हुज्जत बेग का चालाक नौकर है, वही नाटक में बेढब परिस्थितियों को उत्पन्न करके, हास्य का सृजन करता है।

'आँखों में धूल'—मोलियर के 'ल अमर मेडिसिन' का भावानुवाद है। मूल नाटक १५ सितम्बर १६६५ ई० में वारसेल्स में तथा २२ सितम्बर को पैलेस रायल में खेला गया था। डा० का अभिनय मोलियर ने स्वयं किया था। अनुवाद भी सफल हुआ है।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव के मौलिक नाटक

मोलियर के अनूदित नाटकों के अतिरिक्त श्रीवास्तव जी के हास्य तथा व्यंग्य के और भी कई नाटक हैं, जिनमें दुमदार आदमी, मीठी हंसी, गंगा जमुनी, लतखोरीलाल, स्वामी चौखटानन्द, मर्दानी औरत, उलटफेर, नोकझोंक, लम्बी दाढ़ी, बादामसिंह शर्मा, बिलायती उल्लू तथा हवाई लीला आदि मुख्य हैं। इन सभी में मोलियर की शैली को अपनाने की चेष्टा की गई है। 'साहित्य का सपूत' में संस्कृत गर्भित हिन्दी बोलने वालों का मजाक बनाया गया है। साहित्य सम्बन्धी कुछ नवीन परिभाषायें अत्यन्त हास्योत्पादक हैं, जैसे—

साहित्य—जिसे पढ़ने को जी न चाहे।
नाटक—व्याख्यानों का संग्रह।
कविता—जिसे समझने के लिये कवि को बुलाना पड़े।
संपादक—जिसके लेख नहीं छपते।

'मरदानी औरत' में साहित्यिकों, लेखकों तथा प्रकाशकों की पोल खोली गई है। 'सत्यानाशी' ही मर्दानी औरत है, जो पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होकर, पर्दे की प्रथा तोड़ना चाहती है, तथा नारी स्वतन्त्रता का आन्दोलन करती है। वह विवाह को भी एक बन्धन समझती है।

पेट्रलाल जी पहले चूरन बेचा करता था, बाद में प्रकाशक हो जाता है।

'बंटाधार' पहिले 'छापेखाने का नौकर था'। बेलन चलाते-चलाते वर्णमाला के सब अक्षर पहचान लेता है। फिर क्या है, उसकी योग्यता बलबला उठती है। नाटक के अन्त में, लेखकों और कवियों पर भी अच्छा व्यंग्य किया गया है—

दिलजाना—हाँ साहब क्या आप मुझे कवि का पता बता सकते हैं?

गड़बड़—एक नहीं सैकड़ों का।

दिल०—तो मेहरबानी करके बता दीजिये, कहाँ मिलेंगे ये लोग।

गढ़०—सीधे पागलखाने चले जाइये।

दिल०—और लेखक?

गड़०—इनको तो काँजी हाउस में ढूँढ़िये या दरिया के किनारे।

दिल०—यह भी बतलाइये मैं कवियों और लेखकों को पहचानूँगा कैसे?

गड़०—"क्या कहा? बहुत सहल तरकीब है। सुनिये, कवियों की खोपड़ी में आँख होती है, जिससे वह सिवाय आसमान के किसी तरफ देख ही नहीं सकते। और लेखकों की आँख पीछे होती है, सामने की चीज उन्हें नहीं दिखाई देती।"

(अंक ३, दृश्य १)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है। श्रीवास्तव जी ने सस्ते हास्य को उत्पन्न करने की चेष्टा की है। नाटकों में, उनके नामों का संकलन ही ऐसा है, जो अकस्मात हास्य की हिलोर प्रवाहित कर देता है। उदाहरण के लिए, महामहोपाध्याय पं० चापरकरन, बाबू झपसटनाथ, पं० घोंचूमल, जनाब मौलाना बरबाद अली वाही तवाही, ढकोसला नन्द, मुसीबत् मल, मौलाना खफतुल हवास, उचक्कानन्द, भकभकानन्द, बाबू बम्बूसिंह तथा मौलाना हुदहुद।

इसमें कोई सन्देह नहीं, श्रीवास्तव जी का हास्य अधिकांश में सस्ता तथा निम्नकोटि का है। इसमें शिष्टता तथा सुरुचि का अभाव है। और कहीं-कहीं उसमें अश्लीलता का भी समावेश है। उसमें मोलियर की भाँति बौद्धिकता नहीं है। हिन्दी में, हास्य का एकदम अभाव था, उसका सूत्रपात करना ही, श्रीवास्तव जी के लिए एक श्रेय की 'बात है। डा० नगेन्द्र ने हिन्दी में हास्य की कमी' नामक लेख से अत्यन्त तर्कपूर्ण शब्दों में, भारतीय साहित्य में हास्य का विकास दिखाते हुए, उसके विविध रूपों की व्याख्या की है। हास्य को, उन्होंने देशी और विदेशी दोनों कसौटियों पर परखने का प्रयत्न किया है। उनका कथन है, कि यूरोप में, व्यंग्य, वक्रोक्ति, विदग्धता और हास्य ये चारों अलग-अलग चीजें हैं। इनमें सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट अन्तर है। व्यंग्य सोद्देश्य होता है। उपहास के द्वारा ताड़ने का अभिप्राय होता है, वक्रोक्ति मे चुभनेवाली कटुता होती है, और विदग्धता (विट) में बुद्धि के चमत्कार पर आश्रित रहती है, परन्तु

हास्य स्वच्छ मन का सहज उच्छलन है। 'हिन्दी लेखकों ने इन चारों को की उलझा दिया है।'[1] फलतः हमारे यहाँ हास्य की उत्कृष्ट कोटि नहीं दिखाई देती।

मोलियर के व्यंग्य अत्यन्त बौद्धिक ढङ्ग के हैं। उनमें शिष्टता भी बनी है और संवाद का स्तर भी नीचे नही गिरने पाया है। इसीलिए वह हास्य लेखकों में अग्रणी है। शिष्ट हास्य का प्रदर्शन संस्कृत साहित्य मे अवश्य है, परन्तु वह नहीं के बराबर। आदर्शवादी उद्देश्य के कारण, संस्कृत साहित्य में न तो हास्य सम्बन्धी सिद्धान्त ही अधिक निर्मित हुए और न उनका अनुसरण ही किया गया। गंभीर वातावरण को भुला देने के लिए, यत्र-तत्र विदूषक का समावेश अवश्य नाटकों में हुआ, पर अलग से प्रहसन नहीं लिखे गए। श्रीवास्तव जी ने अपने नाटकों में, हास्य का आदर्श पाश्चात्य लेखकों से ही ग्रहण किया है। उन्होंने स्वयं, इसका समर्थन अपनी "हास्य रस" नामक पुस्तक से किया है, जो उनके कई भाषणों का संग्रह है। ५ मई सन् १९३३ ई० में, काव्यपरिहास सम्मेलन के अध्यक्ष पद से, उन्होंने हास्य रस पर अपना भाषण दिया था, उसमें प्रसंगवश अरस्तू, कांट, बेन जॉनसन, मोलियर, वर्गसां आदि विद्वानों के हास्य रस के सिद्धान्तों का भी उद्धरण दिया गया है, जिनसे यह सिद्ध होता है, कि मोलियर के अतिरिक्त उन्होंने अन्य पाश्चात्य हास्य सम्बन्धी विचारकों की कृतियों का अध्ययन किया है।

इस विचार-विमर्श से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं, कि श्री जी० पी० श्रीवास्तव हिन्दी नाटककारों में पहले नाटककार हैं, जिन्होंने पाश्चात्य हास्य सम्बन्धी सिद्धान्तों को हिन्दी-नाटक क्षेत्र में लाने का प्रयास किया। उसमें उन्हें कितनी सफलता मिली है, इसकी चर्चा करना यहाँ अनावश्यक है।

पारसी कंपनियों के लेखक

द्विवेदी युग के अन्त में, तथा प्रसाद के आगमन के पूर्व पारसी कम्पनी वाले व्यवसायी तथा अन्य अव्यवसायी नाटककारों की कृतियों का प्रचार बड़ी जोर से जनता में हो रहा था। पारसी कंपनियों के उद्भव और विकास की चर्चा भारतेन्दु काल में हो चुकी है। उनके नाटक निम्न कोटि के मनोरंजन को लेकर चलते थे। वे कुरुचिपूर्ण तथा दिखावटी थे। इन नाटकों के कारण हिन्दी नाटक का स्तर बहुत गिर गया। परन्तु फिर भी इन कंपनियों ने कुछ ऐसे नाटककारों को जन्म दिया, जिन्होंने अपनी कृतियों से बड़ी ख्याति प्राप्त की। साथ ही साथ, इन नाटककारों ने पाश्चात्य नाट्यपरम्परा का प्रचलन भी

१—'हिन्दी में हास्य की कमी' —डा० नगेन्द्र।

बड़े वेग से किया। इन नाटककारों में आगा हश्र काश्मीरी, पं० राधेश्याम कथावाचक पं० नारायण प्रसाद बेताव, कृष्णचन्द्र जेवा, हरिकृष्ण जौहर और तुलसीदास शैदा है। आगा हश्र काश्मीरी अच्छे लेखक तथा अभिनेता थे। पहले उर्दू में ये नाटक लिखा करते थे, बाद में इन्होंने बहुत से धार्मिक तथा पौराणिक नाटकों को हिन्दी में भी लिखा। इनके लिखे हुए सूरदास, श्रवणकुमार, गंगावतरण, भीष्म प्रतिज्ञा, सीता बनवास आदि प्रसिद्ध नाटक है। शेक्सपीयर के कुछ नाटकों के आधार पर इन्होंने कई नाटकों को लिखा है।

सारांश

द्विवेदी युग में, नाटको के क्षेत्र में विशेष मौलिकता तथा नवीनता नही दिखाई देती। यह युग भावों तथा विचारों की दृष्टि से, परम्परावादी था, इसलिए इसमें भारतेन्दुकालीन आदर्शों का ही अधिक परिपालन हुआ। सुधार वाद की प्रधानता के कारण, पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों की प्रबलता रही। शृङ्गार का विरोध हुआ और सामाजिक नाटक अधिक लिखे गए। इन नाटकों का उद्देश्य सुधारवादी था। इनमें बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अछूतोद्धार मद्यपान, वेश्या प्रेम, धार्मिक पाखंड तथा पाश्चात्य अंधानुकरण की आलोचना की गई। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफी द्वारा साँस्कृतिक समन्वय की चेष्टा की गई।

इस युग में, अनुवादों की संख्या, भारतेन्दु काल से भी अधिक रही। आदर्शों की उपलब्धि के लिये संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी और फ्रेंच से अनुवाद हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि शेक्सपीयर के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशों की नाट्य परम्परा के संपर्क में हिन्दी नाटककार आए। नाटककारों ने संस्कृत नाट्यशैली का क्रमशः त्याग करना आरम्भ कर दिया था। यद्यपि वे, इससे एकदम विमुक्त नहीं हुए।

हास्य तथा व्यंग्य का क्षेत्र भारतेन्दु काल की अपेक्षा, यद्यपि उतना उर्वर तथा समृद्धिशाली नहीं था, फिर भी उसका क्रम बना रहा। मोलियर के नाटकों का अंग्रेजी मूल फ्रेंच, दोनों के माध्यम से अनुवाद किया गया। इन नाटकों द्वारा सामाजिक कुरीतियों की आलोचना की गई।

पारसी कम्पनियों के नाटकों ने भी पाश्चात्य टेकनीक का प्रचार किया। उनका दृष्टिकोण व्यवसायी तथा कुरुचिपूर्ण था। फलतः इन्हीं नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दी नाटक क्षेत्र में प्रसाद के नाटकों का अभ्युदय हुआ, जिन्होंने हिन्दी नाटकों के स्तर को काफी ऊँचा किया।

—:o:—

चतुर्थ अध्याय

प्रसाद युग के नाटकों में पाश्चात्य परम्परा का अनुसरण

जयशंकर प्रसाद—

भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी नाटक क्षेत्र में प्रसाद जी एक युग प्रवर्त्तक कलाकार के रूप मे आये। प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों साहित्यों के वे मननशील विद्वान थे तथा दोनों देशों की नाट्य शैलियों से उनका प्रगाढ़ परिचय था। उनको प्रतिभा बहुमुखी तथा मौलिक थी। अतः उन्होंने अपने नाटक-साहित्य के निर्माण में समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया। संस्कृत नाटकों के रस सिद्धान्त का पूर्णतया समर्थन किया। साथ ही साथ पाश्चात्य नाटकों के, अंतः संघर्ष, बाह्य संघर्ष तथा शील वैचित्र्य की परम्परा को शेक्सपीयर से अपना कर उसी की भाँति स्वच्छन्दतावादी कला का अनुसरण किया। भारतीय नाटकों के रस सिद्धान्त को परिपालन से उनके नाटक भावुकता पूर्ण तरल गीतों तथा संवादो से रस स्निग्ध हैं, तथा पाश्चात्य परम्परा के प्रभाव से उनके नाटकों के चरित्र शील वैचित्र्य तथा अन्तर्द्वन्द्व से परिवेष्टित हैं। जिस प्रकार शेक्सपीयर ने अपने नाटकों को उदात्तवादी नाटक-साहित्य के आदर्शों तथा परम्पराओं से हटा कर, एक स्वतंत्र दिशा में मोड़ने का प्रयत्न किया, उसी प्रकार प्रसाद जी भी भारतीय परम्परा के अगाध प्रेमी होते हुए भी, उसके अन्धभक्त नहीं बने। उन्होंने परिस्थितियों के प्रवाह में यह भली भाँति समझ लिया, कि संस्कृत

नाटक की जटिलताओं के पूर्ण अनुसरण करने से हिंदी नाटक साहित्य की धारा अवरुद्ध हो जायगी, अतएव स्वच्छन्दतावादी नाटककार के रूप में अपनी नाटकीय प्रतिभा को स्वतंत्रता से खुलकर खेलने का अवसर दिया। सन् १९१० ई० से सन् १९३३ ई० के बीच में उन्होंने १३ नाटकों को लिखा, जिनका काल क्रम निम्नांकित है इन नाटकों को संस्कृत तथा पाश्चात्य नाट्य परम्पराओं की कसौटी पर रखने की चेष्टा की जायगी।

नाटक	सन्
१—सज्जन	१९१०-११ ई०
२—कल्याणी-परिणय	१९१२
३—करुणालय	१९१३
४—प्रायश्चित	१९१४
५—राज्यश्री	१९१५
६—विशाख	१९२१
७—अजातशत्रु	१९२२
८—कामना	१९२७
९—जनमेजय का नागयज्ञ	१९२६
१०-स्कन्दगुप्त	१९२८
११-एक घूँट	१९२९
१२ चन्द्रगुप्त	१९३१
१३-ध्रुवस्वामिनी	१९३३

उनकी नाटकीय कला की प्रथम किरण 'सज्जन' के रूप में १९१०-११ में प्रस्फुटित हुई। यह नाटक सर्वप्रथम 'इंदु' कला १ किरण ८-११ में प्रकाशित हुआ था। इसमें संस्कृत नाटक परंपरा का पूर्ण अनुसरण किया गया है। नांदी, सूत्रधार, से आरम्भ तथा भरत वाक्य से समाप्ति मिलती है। पद्यबद्ध संवाद, गीतो का आधिक्य तथा वार्तालाप में शायरी तथा पारसी नाटकों का प्रभाव दिखाई देता है। गीत ब्रजभाषा में है। इस नाटक का कथानक 'महाभारत'। से लिया गया है।

'कल्याणी परिणय'—काल क्रम के अनुसार, दूसरा नाटक 'कल्याणी परिणय' है जिसमें भारत सम्राट, चन्द्रगुप्त मौर्य की सिल्यूकस के ऊपर विजय तथा पुत्री कार्नेलिया के साथ विवाह की कथा है। इसका परिवर्द्धित रूप हम 'चन्द्रगुप्त' नामक नाटक में आगे चलकर देखते हैं।

'करुणालय' की कथा, ऐतरेय ब्राह्मण से ली गई है। इसमें राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा का वर्णन है। इसकी शैली पर बंगला के माध्यम से, स पीयर के नाटकों का प्रभाव दिखाई देता है। ऐसा कहा जाता है, कि इस

नाटक की प्रेरणा प्रसादजी को गिरीश घोष के अतुकान्त गीति नाट्य से प्राप्त हुई थी। क्योंकि बंगला के अमित्राक्षर अरिल्ल छन्द का प्रयोग, प्रसाद जी ने इसमें किया है, जो शेक्सपीयर के 'ब्लैक वर्स' से मिलता जुलता है।

'प्रायश्चित'—प्रसाद जी के प्रारम्भिक नाटकों में 'प्रायश्चित' पहला नाटक है, जिसमें वे संस्कृत नाट्य परम्परा को छोड़ते तथा पाश्चात्य नाट्य परम्परा को ग्रहण करते दिखाये गये हैं। यहाँ पर न तो पूर्व रंग की योजना है, न भरत वाक्य का विधान। संपूर्ण नाटक शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' के आधार पर लिखा गया मालूम होता है। 'प्रसाद' जी का यह सर्वप्रथम ऐतिहासिक नाटक है। पृथ्वीराज की मृत्यु तथा जयचन्द की आत्महत्या द्वारा, नाटक की समाप्ति दुखान्त रूप में की गई है। संयोगिता द्वारा प्रेत की छाया देखना तथा जयचंद का मानसिक संघर्ष उसके स्मशान के अट्टहास के दृश्य आदि स्थलों पर शेक्सपीयर के नाटकों की स्पष्ट छाप है।

'राज्यश्री'—'प्रायश्चित' के पश्चात् 'राज्यश्री' में 'प्रसाद' की नाट्य-कला और भी स्वतंत्र दिशा में मुड़ती दिखाई देती है। इस नाटक के प्रथम संस्करण में केवल तीन ही अंक थे। दूसरे संस्करण में एक और अंक जोड़ दिया गया है। नान्दी-पाठ और भरत वाक्य प्रथम संस्करण में हैं, दूसरे में नहीं। दूसरे संस्करण में ह्वेनसाँग की अवतारणा सोद्देश्य की गई है। भारतीय संस्कृति के प्रति प्रसाद जी के मन में असीम मोह था। उसकी श्रेष्ठता का विजय घोष उन्होंने प्रायः प्रत्येक नाटक में किया है। उसकी महत्ता को ही प्रतिपादित करने के लिये उन्होंने विदेशी पात्रों को खड़ा किया है, तथा उनके मुख से भारत की प्रशंसा कराई है। 'राज्यश्री' पतिव्रता तथा वीर क्षत्राणी है, परन्तु उसकी मानसिक दुर्बलताएँ भी हैं। मंदिर में पति की विजय कामना के समय एक अट्टहास सुनकर भविष्य की आशंका से मूच्छित हो जाती है। उस समय उसके मानसिक संघर्ष के चित्रण में विदेशी प्रभाव परिलक्षित होता है। उसी प्रकार का वातावरण **'विशाख'** में है। प्रस्तावना तथा भरत वाक्य की योजना नहीं की गई है। प्रारम्भ के गीत कोरस का काम देते है। पारसी नाटकों का प्रभाव इसमें स्पष्ट है। स्थान-स्थान पर गीत तथा शायरी है। गद्य में भी अन्त्यानुप्रास का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिये द्वितीय अंक में सखियों के गीत में—

> "हिये में चुभ गई, हाँ ऐसी मधुर मुसुकान।
> लूट लिया मन, ऐसा चलाया नैन का तीर कमान।"
>
> (द्वितीय अंक, पृ० ४५)

वार्तालाप में भी पारसी नाटकों वाली शब्दावली मिलती है—

"मिट्टी के बर्तन थोड़े ही आँच में तड़क जाते हैं। नये पशु एक ही प्रहार में भड़क जाते हैं।" (प्रथम अंक, पृ० ३३)

'विशाख'—'प्रसाद' के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती नाटकों में 'विशाखा' एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जहाँ से यह निर्देश किया जा सकता है, कि अबतक प्रसाद की लेखनी नाटकों के क्षेत्र में अनेक प्रकार के प्रयोगो में लगी रही, परन्तु इसके पश्चात उनकी कला में परिपक्वता आती हुई दिखाई देती है। यह एक विभेदक रेखा है, जहाँ से उनके परवर्ती नाटकों में क्रमशः पाश्चात्य प्रभाव को अधिक स्पष्ट रूप से उनको ग्रहण करते हुए पाते हैं, और कलाकार के रूप में उनका स्वच्छन्दतावादी रूप अधिक स्पष्ट होता दिखाई देता है।

'अजातशत्रु' में प्रसाद की नाटकीय कला का स्पष्ट निखरा हुआ रूप दिखाई देता है। नान्दी, सूत्रधार तथा भरत वाक्य आदि संस्कृत परम्परा के नियमों से यह नाटक विमुक्त है। इस नाटक पर शेक्सपीयर के 'किंग लियर' और 'रिचर्ड द्वितीय' का स्पष्ट प्रभाव है। स्वगत भाषणों के प्रयोग शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों की तरह हैं, जिनमें अंतर्द्वन्द्व की सफल योजना दिखाई देती है। साथ ही साथ, शेक्सपीयर के नाटकों की भाँति उनमे प्रकृति का मानवीकृत रूप भी दिखाई देता है। उदाहरण के लिये दूसरे अंक के द्वितीय दृश्य मे 'श्यामा' के कथन में—

"श्यामा (स्वगत)—रात्रि चाहे कितनी भयानक हो, किंतु प्रेममयी रमणी के हृदय से भयानक वह कदापि नहीं हो सकती। यह देखो, पवन मानो किसी डर से धीरे-धीरे साँस ले रहा है। आकाश में ताराओं का झुंड नीरव सा है। जैसे कोई भयानक बात देखकर भी वे बोल नहीं सकते। केवल आपस में इंगित कर रहे है।"

(अंक २, दृश्य २, पृ० ७१ 'अजातशत्रु')

विरुद्धक के चरित्र में भी, इसी प्रकार के संघर्ष की झाँकी मिलती है। 'मैकबेथ' की भाँति अजातशत्रु महत्वाकांक्षी है। इस प्रकार का अंतर्द्वन्द्व, उसके स्वगत कथनों में भरा हुआ है, जो शेक्सपीयर के आधार पर रखे गये हैं। शेक्सपीयर के स्वगत भाषण, उसके नाटकों की अमर विभूति के रूप में हैं। उनकी योजना द्वारा उसने चरित्रों के मन की झाँकी को प्रस्तुत किया है। 'मैकबेथ' में राजा डंकन की मृत्यु के पूर्व जब मैकबेथ सोते हुए, डंकन के कक्ष में कटार लेकर जाता है, और उसको अन्धकार में एक लटकती हुई दूसरी कटार दिखाई पड़ती है, उसका मन रक्तपात के भूत और भविष्य के हिंडोले में आन्दोलित हो उठता है। उसी प्रकार नाटक के अंत में, "चारों ओर से निराशा के समुद्र में घिरा हुआ मैकबेथ अपनी जीवन सहचरी की मृत्यु पर जीवन की निस्सारता पर

कितनी अमर पंक्तियों को गुनगुनाता है ।[1] प्रसाद के नाटक भी इसी प्रकार के स्वगत कथनों से भरे पड़े हैं, जिनमे सशक्त मनोविज्ञान तथा तरल भावुकता का मादक रंग दिखाई पडता है । 'अजातशत्रु' से भी इस प्रकार के स्वगत का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है । बिंबसार और बासवी के चरित्रों में इस प्रकार के कथनों का अच्छा स्वरूप दिखाई पड़ता है । डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने भी इस कथन का समर्थन करते हुए लिखा है, "पाश्चात्य देशों में जहाँ चित्रांकन के प्रवाह में व्यक्ति-वैचित्र्य की ओर विशेष दृष्टि लगी रहती है, वहाँ इसके चित्रण का कौशल भी दिखाई पड़ता है, और नाटक में इसका अधिक उपयोग होता है । प्राचीन भारतीय नाटकों में इस शैली के वैलक्षण्यपूर्ण चरित्रों का प्रयोग कम हुआ है । पाश्चात्य प्रणाली का प्रभाव इधर भारतीय लेखकों पर भी दिखाई पड़ता है । 'प्रसाद' के पात्र भी इस उलझन में पड़ गए है । 'अजातशत्रु' के बिंबसार और बासवी में भी इसका अच्छा स्वरूप दिखाई पड़ता है ।[2]

स्वगत के अतिरिक्त नियतिवाद के चित्रण में भी प्रसाद पाश्चात्य प्रभाव में पड़ते हुए दिखाई देते है । अजातशत्रु में ही नहीं, उनके बाद के प्रायः सभी नाटकों मे नियतिवाद का अजेय घोष किया गया है । शेक्सपीयर तथा हार्डी की कृतियों मे इस नियति चक्र की प्रबलता का शक्तिशाली स्वर सुनाई देता है, जिसका एक उदाहरण नीचे भी मैकबेथ से दिया गया है । इस नियतिवाद की प्रेरणा का मूल स्रोत ग्रीक नाटकों के नैमीसिस से प्राप्त होता है, जहाँ नायक के पतन का उत्तरदायित्व विध्वंसकारी नियति के हाथ में रहता था, जिस पर न उसका कोई वश था, न जिसमें नायक के प्रति कोई दया थी । 'प्रसाद' ने भी अपनी कृतियों में मनुष्य के क्रिया कलाप में नियति की अदम्य शक्ति की

1—'Tomorrow and tomorrow and tomorrow,
Creeps in this petty pace from day to day,
To the last syllable of recorded time;
And all our yesterdays have lighted fools
The way to dusty death. Out, out, brief candle.
Life's but a walking shadow, a poor player,
That struts and frets his hour upon the stage,
And then is heard no more; it is a tale
Told by an idiot, full of sound and fury,
Signifying nothing.

—*Macbeth*. Act V. Scene V.

२—'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन'—डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पृ० ६० ।

सत्ता को स्वीकार किया है। इसका विस्तृत विवेचन आगे चलकर 'प्रसाद के नियतिवाद' प्रसंग मे किया जायगा।

'कामना' एक रूपक प्रधान रचना है, जिसमें संस्कृत प्रतीकवादी नाटकों की परम्परा का अनुगमन किया गया है। जीवन में शांति और आनंद की प्राप्ति किस प्रकार से हो, यही इसका प्रतिपाद्य विषय है। पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के विषाक्त कीटाणुओं ने हमारे आध्यात्मिक स्वास्थ्य को क्षय ग्रस्त कर दिया है, उससे हमारी मुक्ति किस प्रकार होगी, यही इस नाटक का संदेश है। इसका विस्तृत वर्णन प्रतीक परम्परा के नाटकों में किया जायगा।

प्रसाद जी की काव्य-प्रतिभा का निखार 'कामना' में नहीं दिखाई पड़ा, अतः उनकी तूलिका ऐतिहासिक नाटकों के अतीत को सँवारने के लिये, तथा करुणा, निष्फल यौवन-प्रेम की दर्दभरी स्मृति तथा भारतीय इतिहास के विराट कर्मवीरों की झाँकी दिखाने के लिये एक विस्तृत कैनवास की ओर उन्मुख हुई।

'जनमेजय का नागयज्ञ' में नियतिवाद का स्वर और भी सशक्त दिखलाया गया है। दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में जनमेजय नियतिवाद की दुंदुभी घोषित करता है।

"मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है। क्या वह कर्म करने मे स्वतंत्र है?"

तीसरे अंक के पहले दृश्य में जनमेजय जब कामदेव से अपना भविष्य कौतूहल वश जानना चाहता है, उस समय व्यास देव कहते हैं—

"नियति केवल नियति, जनमेजय और कुछ नहीं।"

उसी अंक के दूसरे दृश्य में उत्तंक वपुष्टमा से कहता है—

"**उत्तंक**—कल्याणी, सावधान रहे। आप साम्राज्ञी हैं, फिर ऐसी दुर्बलता क्यों, नियति का क्रीड़ा कन्दुक नीचा ऊँचा होता हुआ अपने स्थान पर पहुँच ही जायगा। चिन्ता क्या है? केवल कर्म करते रहना चाहिए।

अस्तु, नियतिवाद की जो रेखा 'अजातशत्रु' में धूमिल थी, वह यहाँ आकर गहरी हो गई है। स्वगत भाषणों का भी प्रयोग अनेक स्थलों पर किया गया है। उनमें शेक्सपीयर के नाटकों जैसी मनोवैज्ञानिकता तथा भावुकता है। तीसरे अंक के पहले दृश्य में आस्तीक की तरल भावुकता एक स्थल पर फूट पड़ती है—

"**आस्तीक**—(स्वगत) बुला लो, बुला लो उस बसन्त को, उस जंगली बसन्त को, जो महलों को उदास कर देता है, जो मन में फूलों के महल बना देता है। जिसमें विश्व भर के सम्मिलन का उल्लास स्वतः उत्पन्न होता है।

उस बसन्त को उस गई हुई निधि को लौटा लो। काँटों मे फूल खिलें। विकास हों प्रकाश, सौरभ खेले। आनन्द का रसीला राग गूंज उठे। विश्व भर का कुन्दन कोकिल की काकली मे परिणत हो जाय।' (अंक ३, दृश्य १)

स्कन्दगुप्त—प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी कला का सबसे उत्कृष्ट और परिपक्व रूप उनके 'स्कन्दगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' में दिखाई पड़ता है। ये दोनों नाटक उनकी कीर्ति के अमर स्तम्भ है। कला की दृष्टि से स्कन्दगुप्त अधिक सफल हुआ है। कौतूहल तथा नाटकीय संघर्ष आदि से अन्त तक इस नाटक में पाया जाता है। व्यक्तिगत तथा बाह्य दोनों प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व में की झाँकी को हम यहाँ देखते हैं। वर्गगत बाह्य संघर्ष तो प्रत्यक्ष है ही। 'आँधी आने से पूर्व आकाश जिस प्रकार स्तम्भित रहता है, बिजली गिरने के पूर्व जिस तरह नील कादम्बिनी का आवरण महाशून्य पर चढ़ जाता है, गुप्त साम्राज्य की कुछ वैसी ही दयनीय स्थिति है। चारों ओर कुचक्रों तथा षड्यन्त्रों की आँधी चल रही है। परम भट्टारक कुमारगुप्त की विलासिता दिनों दिन बढ़ रही है। अनंतदेवी अपने कायर पुत्र पुर गुप्त को लेकर स्कन्दगुप्त के विरोध में राज्य लिप्सा के लिये कुचक्र की प्रकांड ज्वाला को फैलाती है। विजया भी भट्टारक, पुरगुप्त तथा स्कन्दगुप्त के बीच प्रेम का नाटक खेलकर अपनी महत्वाकांक्षा का परिचय देती हुई, रंगमंच पर आत्महत्या करती हुई, पुच्छल तारे की भाँति विलीन हो जाती है। संस्कृत नाटकों की परम्परा के प्रतिकूल आत्महत्या तथा युद्ध के अनेक दृश्य दिखाये गये हैं।

शकों और हूणों को सम्मिलित वाहिनी ने आक्रमण कर दिया है। एक एक राष्ट्र अपदस्थ हो रहे हैं। सौराष्ट्र पादाक्रान्त हो चुका है, पश्चिमी मालवा भी संकट में है। वलभी का पतन अभी नहीं हुआ, पर बर्बर हूणों से उसका बचना कठिन है। पुष्यमित्रों से युद्ध की सम्भावना है। मालव की रक्षा के लिये बन्धुवर्मा ने सहायता माँगी है। सारे साम्राज्य का भविष्य बाह्य संघर्षों के कारण अन्धकार ग्रस्त है। आन्तरिक संघर्ष उससे कम नहीं। अनन्त देवी पुरगुप्त को राज्याधिकार दिलाने के लिए स्कन्दगुप्त का उग्र विरोध करती है। भट्टार्क अपनी कूटनीति के प्रदर्शन में प्रारम्भ से ही दत्तचित्त है। अनन्त देवी अपने पुत्र को राज्य दिलाने में भट्टार्क और प्रपंच बुद्धि को भी अपनी ओर मिला लेती है। भट्टार्क शर्वनाग को भी मिला लेता है। भट्टार्क प्रपंच बुद्धि से मिलकर देवसेना से प्रतिशोध लेना चाहता है, प्रपंच बुद्धि को भी उग्र तारा की साधना के लिए एक बलिदान चाहिए। उसके लिए देवसेना उपयुक्त समझी जाती है। उसे श्मशान में ले जाया जाता है, परन्तु उचित समय पर स्कन्दगुप्त आकर इसको विफल करता है। भट्टार्क फिर अवसर नहीं चूकता। तीसरे अंक

में कुम्भा के बाँध को तोड़कर वह स्कन्दगुप्त से विश्वासघात करता है। चौथे अंक में विजया तथा अनन्त देवी का सघर्ष चलता है। सारांश, यह कि पूरा नाटक अन्तर्सङ्घर्षों की योजना से भरा पड़ा है।

व्यक्तिगत संघर्ष के उदाहरण तो और भी सुन्दर इस नाटक में मिलते है। युवराज स्कन्दगुप्त अपने अधिकारों के प्रति उदासीन है। उसमें अपने स्वार्थ की भावना नही देश रक्षा की भावना है, परन्तु मादक तथा सारहीन अधिकार सुख के पीछे नियामक तथा कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार नही कराना चाहती, वह अपने को केवल साम्राज्य का एक सैनिक समझता है। वह मानव जीवन को जिसमें व्यर्थ का रक्त हो, एक विडम्बना समझता है। उसके मन मे हेमलेट की भाँति चारों ओर से एक भयंकर तूफान तथा अशांति का विध्वंसकारी बवंडर नाचता हुआ दिखाई पड़ता है। उसका मन संघर्ष के हिंडोल से आंदोलित हो उठता है। हेमलेट की भाँति आत्म प्रतारणा (सेल्फ ऐक्यूसेशन) की भावना से अभिभूत हो उठता है।

"स्कन्दगुप्त—इस साम्राज्य का बोझ किसलिए ? हृदय में अशान्ति, राज्य में अशान्ति ! परिवार में अशान्ति ! केवल मेरे अस्तित्व से। मालूम होता है कि सबकी—विश्व भर की शान्ति रजनी मे मैं ही धूमकेतु हूँ। यदि मैं न होता तो यह संसार अपनी स्वाभाविक गति से आनन्द से चला करता।" इस पर हेमैलेट के उस स्वगत भाषण का स्पष्ट प्रभाव है, जिसमे अत्यधिक चिन्तनशील के कारण वह बदला लेने में असमर्थ अपने को कोसता है।[1]

चतुर्थ अङ्क में, फिर स्कन्दगुप्त अपने को कोसता है—

"परन्तु यह ठीकरा इसी सिर पर फूटने को था, आर्य साम्राज्य का नाश इन्हीं आँखों को देखना था।

'देवसेना' स्वयं संघर्ष के श्रेय और प्रेय के हिन्डोल में झूल रही है—

"संगीत सभा की अंतिम लहरदार और आश्रयहीन तान धूपदान की एक क्षीण गंध-धूम रेखा, कुचले हुए फूलों का म्लान सौरभ और उत्सव के पीछे का अवसाद, इन सबों की प्रति-कृति मेरा क्षुद्र नारी जीवन।"

(पंचम अंक)

1—'To be, or not to be,—that is the question
Whether'tis nobler in the mind to suffer
The slings and arrows of outrageous fortune
Or to arms against a sea of troubles
And by opposing end them ?

—*Hamlet*, Act III, Sc. I.

स्कन्द गुप्त के प्रति प्रेम तथा देश की रक्षा, मे इन दोनों में देशप्रेम को वरण करती है, दोनो में द्वन्द्व चलता है—

"हृदय की कोमल कल्पना ? सो जा। जीवन मे जिसकी सभावना नहीं जिसे द्वार पर आये लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए अच्छी बात है ?"

(पंचम अंक)

भट्टार्क अपनी पूर्व भूलों पर पश्चाताप करता हुआ, अपने को कोसता है-

"अपने कुकर्मों का फल चखने में कड़वा, परन्तु परिणाम मे मधुर होता है। ऐसा वीर, ऐसा उपयुक्त और ऐसा परोपकारी सम्राट। परन्तु गया मेरी ही भूल से सब गया।"

(पंचम अंक)

विजया स्वयं स्वार्थ और परमार्थ के द्वन्द्व से व्याकुल है—

"उसने ठीक कहा, मुझे स्वयं अपने पर विश्वास नहीं। स्वार्थ में, ठोकर लगते ही मैं परमार्थ की ओर दौड़ पड़ी। परन्तु क्या यह सच्चा परिवर्तन है क्या देवसेना········ ओह ! फिर मेरे सामने वही समस्या।"

अन्तसंघर्ष के उदाहरणों से सारा स्कन्दगुप्त भरा पड़ा है। ये सघर्ष सुन्दर स्वगत भाषणों के रूप मे है, जो शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों के आधार पर है। चरित्रगत शील वैचित्र्य की भावना शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों मे मूल भावना है, उसी का दिग्दर्शन प्रसाद ने स्कन्दगुप्त के चरित्रों में किया है। इसके अतिरिक्त प्रधान चरित्रों के विचारों के ऊहापोह, उनके मानसिक परिवर्तन, भावनाओं के उतार और चढ़ाव भी पाश्चात्य दुखान्त नाटकों के आधार पर है। संस्कृत नाटकों में नायक आदर्श तथा सर्वगुण सम्पन्न होते थे, अतः उनकी मानसिक दुर्बलताओं के उतार चढ़ाव का चित्रण नहीं किया जाता है। इस प्रकार के परिवर्तन 'स्कन्दगुप्त' के प्रायः सभी प्रमुख पात्रों में मिलते हैं।

संस्कृत नाटकों की परम्परा के प्रतिकूल स्कन्दगुप्त में आत्महत्या तथा युद्ध के अनेक दृश्य रखे गये हैं। नाटक के प्रारम्भ में ही पृथ्वीसेन, महाप्रतिहार और दंड नायक आत्महत्या करते हैं। नाटक के अन्त में विजया आत्महत्या करती है। युद्ध तथा रक्तपात के अनेक दृश्य भरे पड़े हैं, जो सभी पाश्चात्य आदर्शों पर निर्मित है।

'स्कन्दगुप्त' में नियतिवाद का स्वर कम ऊँचा नहीं रखा गया है। प्रपंच-बुद्धि सूची भेद्य अन्धकार मे छिपने वाली रहस्यमयी नियति का, प्रज्वलित

कठोर नियति का नील आवरण उठा कर झाँकने वाला है। चतुर्थ अङ्क में स्कन्दगुप्त नियति की अजेय शक्ति की महत्ता स्वयं स्वीकार करता है—

"बौद्धों का निर्वाण, योगियों की समाधि, और पागलों की सी संपूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए। चेतना कहती है तू राजा है, उत्तर में जैसे कोई कहता है तू खिलौना है। उसी खिलवाड़ी वटपत्रशायी बालक के हाथों का खिलौना है। तेरा मुकुट श्रमजीवी की टोकरी से भी तुच्छ है।"

(चतुर्थ अङ्क)

"एक घूँट"—"स्कन्दगुप्त" के पश्चात् 'एक घूँट' में प्रसाद ने नारी-समस्या पर विचार विमर्श किया है। इसमें वैवाहिक जीवन की आवश्यकता पर जोर दिया गया है, साथ ही साथ अनियंत्रित प्रेम को संघर्ष का कारण बतलाया है। प्रो० विश्वनाथ मिश्र के शब्दों में इसमें 'शा' की तर्कशील नाटकों की शैली का अनुसरण किया गया है।" परन्तु मैं तो यह सोचता हूँ कि प्रसाद जी 'शा' के आदर्शों से बहुत दूर थे। 'शा' भावुकता का विरोधी तथा शेवियन दर्शन के प्रचार को लेकर चलने वाला था। प्रसाद महान् कवि तथा रस और आनन्द को नाटकों की मूल प्रेरणा मानते थे। अतः 'शॉ' की कोई प्रवृत्ति प्रसाद के नाटकों में नहीं मिलती, हाँ शेक्सपीयर से वे प्रभावित दीख पड़ते हैं।

'चन्द्रगुप्त'—'एक घूँट' के पश्चात् 'चन्द्रगुप्त में फिर प्रसाद की स्वच्छन्द-वादी तूलिका एक विस्तृत कैनवास पर उन्मुक्त रूप से खेलती है। 'स्कन्दगुप्त' की भाँति इसमें कथा सौष्ठव नहीं पाते, परन्तु हेमलेट की भाँति कार्य व्यापार तथा कथानक-निर्वाह में शैथिल्य को देखते है। चन्द्रगुप्त के कथानक निर्माण में प्रसाद द्विजेन्द्रलाल राय के 'चन्द्रगुप्त' से प्रभावित हैं। प्रसाद का चन्द्रगुप्त, चाणक्य के हाथ का खिलौना है, उसकी व्यक्तिगत सत्ता बहुत कम है। भारतीय संस्कृति की महत्ता, चाणक्य के चरित्र द्वारा ब्राह्मणत्व का आदर्श, अखंड राष्ट्रीयता की स्थापना, यही इस नाटक का प्रतिपाद्य विषय है। पूरे नाटक में तीन प्रमुख घटनाएँ हैं, सिकन्दर का आक्रमण, नन्द वंश का नाश तथा सिल्यूकस की पराजय। शेक्सपीयर के नाटकों की भाँति बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष के उदाहरण इसमें भी मिलते हैं। 'चाणक्य' मनोविज्ञान का कुशल पारखी है। वह दृढ़ प्रतिज्ञ, हठी तथा क्रोधी है। महान कर्मवीर है और महत्वाकांक्षी है। स्वाभिमान के विरोध में कुछ भी सहन नहीं करना चाहता। अपने आदर्श गुणों के कारण ही वह गुरुकुल के बाहर भी चन्द्रगुप्त और सिंहरण, जैसे महान वीरों का पथ प्रदर्शक बनता है। परन्तु उसके शुष्क बौद्धिक तथा नीति कुशल जीवन के पीछे, नारिकेल के आवरण की भाँति प्रेम की धारा प्रवाहित होती है, शैशवकालीन स्मृतियों को सुवासिनी के सम्मुख दुहराते हुए, उसका चिर संचित प्रेम आँखों में उमड़ पड़ता है।

कल्याणी, मालविका और अलका, लेडी मैकबेथ की भाँति भयानक राजनीति की आँधी का सामना करती है। मालवा युद्ध में अलका अपनी वीरता का पर्याप्त परिचय देती है। उसके तीरों से अनेक यवन सैनिकों का पतन देख कर सिकन्दर प्रभावित हो जाता है। कल्याणी कई स्थलों पर अपनी अदम्य वीरता का परिचय देती है।

शेक्सपीयर के नाटकों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है, कि उनमें नायक की नहीं वरन् नायिका की प्रधानता होती है। नायक दुर्बल या आलसी पाया जाता है। मैकबेथ या हेमलेट की भाँति 'चन्द्रगुप्त' भी दुर्बल है, चाणक्य के हाथों का खिलौना है। चन्द्रगुप्त के कथानक निर्वाह में हेमलेट की भाँति कार्य व्यापार की शिथिलता है। इस अनावश्यक विस्तार के कारण ही पात्रों की आकस्मिक मृत्यु, आत्महत्या तथा अन्य दृश्यों की कल्पना करनी पड़ी, जो पश्चिमी नाटकों के आधार पर है। नियतिवाद की दुहाई चन्द्रगुप्त में भी दी गई है। चाणक्य जैसा राजनीतिक पटु और सशक्त व्यक्ति कहता है कि 'नियति सुन्दरी की भौहों में बल पड़ने लगा है।' शकटार नियति को सम्राटों से भी प्रबल मानता है।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व 'चन्द्रगुप्त' के चरित्रों में पर्याप्त रूप से है। चतुर्थ अङ्क में चन्द्रगुप्त मालविका से कहता है—

'चन्द्रगुप्त—संघर्ष ! युद्ध देखना चाहो, तो मेरा हृदय फाड़कर देखो मालविका। आशा और निराशा का युद्ध। भावों का अभाव से द्वन्द्व। कोई कमी नहीं।'

मगध के बन्दीगृह में चाणक्य का मन संकल्प और विकल्प के झूले में झूल उठता है—

"समीर की गति भी अवरुद्ध है, शरीर का फिर क्या कहना। परन्तु मन में इतने संकल्प और विकल्प। एक बार निकलने पाता तो दिखा देता कि इन दुर्बल हाथों में साम्राज्य उलटने की शक्ति है, और ब्राह्मण के कोमल हृदय में कर्त्तव्य के लिये प्रलय की आँधी चला देने को कठोरता है।"

"ध्रुवस्वामिनी" नाटककार प्रसाद का अन्तिम उपहार है, जिसमें उनकी नाट्यकला सौष्ठव तथा पूर्णता को प्राप्त होती दिखाई गयी है। इसमें केवल तीन अङ्क हैं, और प्रत्येक अङ्क में एक-एक दृश्य। प्रत्येक अङ्क की घटनाएँ एक स्थानीय हैं। कार्यव्यापार की मितव्ययिता के कारण संकलन त्रय का इसमें निर्वाह हुआ है। विषय के दृष्टिकोण से वर्तमान नारी की समस्या का चित्रण इसमें हुआ है। ध्रुवस्वामिनी में जहाँ रचनापद्धति की नवीनता पाश्चात्य नाटकों के आधार पर की गई है, वहीं बड़े कौशल से उसमें, नारी

समस्या का भी समावेश किया है ।[1] युगों से नारी पुरुष की शृंखला में बद्ध तड़पती हुई अपनी भावनाओं का बलिदान करती हुई चित्रित की गई थीं। प्रसाद का स्वच्छन्दतावादी हृदय पश्चिम के प्रभाव में आकर नारी के इस करुण दशा का विद्रोह कर बैठा । ध्रुवस्वामिनी में मोक्ष (डाइवर्स) की प्रथा का उच्च स्वर नारी स्वतन्त्रता के प्रथम अधिकार पत्र के रूप मे जाता है । ध्रुवस्वामिनी गुप्त साम्राज्य की लक्ष्मी है । उसका पति रामगुप्त कायर, क्लीव और अयोग्य है। वह अपनी पत्नी को शकराज खिंगिल को भेंट देता है, ध्रुवस्वामिनी की रक्षा, अपने कुल की मर्यादा के लिये, चन्द्रगुप्त खिंगिल के डेरे में जाकर उसका बध करता है । ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम विकास की अवस्था को पहुँच चुका है । अतः दोनो का विवाह कराया जाता है, और धर्माधिकारी व्यवस्था देता है—'मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है । मोक्ष की इस भावना में प्रसाद पाश्चात्य नारी-स्वतन्त्रता की भावना से प्रभावित दिखाई देते हैं । यदि वे कुछ दिन के लिए और जीवित रहते तो समस्या नाटकों की धारा में भी उनकी उत्कृष्ट कला का परिचय हमें प्राप्त होता । ध्रुवस्वामिनी के वातावरण चित्रण में शेक्सपीयर के जूलियससीजर तथा मैकबेथ की स्पष्ट छाप है । जूलियस सीजर के प्रथम अङ्क में ही भविष्यवक्ता सीजर को बार-बार चेतावनी देता है कि पन्द्रह मार्च को अपने जीवन के विषय में सतर्क रहे क्योंकि उस दिन उस पर महान आपत्ति आने वाली है । पर सीजर भविष्यवक्ता की भविष्य वाणी को अनसुनी कर देता है और परिषद भवन की ओर चल देता है, जहां वह मारा जाता है । ध्रुवस्वामिनी के दूसरे अङ्क के अन्त में आचार्य मिहिरदेव पुच्छलतारे के अमंगल-दर्शन से शकराज को सतर्क रहने की सलाह देते हैं । शकराज धूम केतु को देखकर उसी प्रकार भय से कांप जाता है जैसे मैकबेथ नाटक में भोज के दृश्य में बैंकों की प्रेतात्मा देखकर मैकबेथ बड़बड़ाने लगता है । वास्तव में प्रसाद जी ने शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों का पर्याप्त अध्ययन किया था और उसी वातावरण को उन्होंने कई नाटकों में लाने की चेष्टा की ।

इस नाटक के 'शकराज' तथा रामगुप्त का वध पाश्चात्य परम्परा के अनुकूल है । अभिनय की दृष्टि से यह प्रसाद का सबसे सफल नाटक है । तीन अङ्कों के इस नाटक में, कार्य-व्यापार की शीघ्रता, दृश्य विधान की सरलता तथा जिज्ञासा, कौतूहल की भावना आदि से अन्त तक बनी रहती है । विचारों और

१—'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन'—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा पृ० २१५ ।

घटनाओं के संघर्ष की भी सफल योजना की गई है। कला की दृष्टि से यह प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कृति कही जा सकती है।

निष्कर्ष रूप में, प्रसाद के नाटकों में प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों नाट्य शैलियों का समन्वय मिलता है। कवि होने के नाते प्राच्य संस्कृत नाटकों के रस सिद्धान्त का उन्होंने विशेष अनुसरण किया है। नान्दी, सूत्रधार, भरत वाक्य आदि अन्य जटिलताओं का त्याग किया गया है। पाश्चात्य नाटकों से चरित्र-गत शील वैचित्र्य, संघर्ष और भावों के घात प्रतिघात तथा उत्थान-पतन की प्रवृत्ति को अपनाया गया है। उनके नाटकों में संस्कृत परम्परा के अनुसार जिस प्रकार नाट्यशास्त्र की पाँच अवस्थाओं और सन्धियों का पूर्णतः निर्वाह हुआ है,[1] जिसका सुन्दर विवेचन डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा के 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, नामक पुस्तक के अन्त में 'भारतीय एवं पाश्चात्य पद्धतियों का समन्वय' शीर्षक में विस्तृत और सांगोपाङ्ग रूप से प्रस्तुत किया गया है, उसी प्रकार पश्चिमी नाटक की पाँच अवस्थाओं का भी सफल निर्वाह दिखाई पड़ता है। विशेषकर जहाँ नाटक मे पाँच अङ्क हैं। दृश्य-योजना तथा अङ्क विधान भी पाश्चात्य पद्धति पर किया गया है। पाश्चात्य परम्परा के आधार पर रंगमंच पर आत्महत्या, वध, मृत्यु तथा युद्ध भी दिखलाये गये हैं। ग्रीक तथा शेक्सपीयर के दुखान्त नाटकों की भाँति नियति की अजेय शक्ति की महत्ता को स्वीकार किया गया है। उनके नाटकों में कवि, दार्शनिक तथा इतिहासवेत्ता की तीन धाराओं का संगम प्रयाग की त्रिवेणी की भाँति होता है। ये तीनों धारायें इतनी घुलीमिली तया परस्पर उलझी हुई है कि उनमे से एक को दूसरे से पृथक करना संभव नहीं है। प्रसाद का कवि रूप, नाटककार के पहले मचल उठता है, अतएव शेक्सपीयर की भाँति उनके नाटकों में, तरल भावुकता तथा कोमल कवित्व की मन्दाकिनी स्वगत भाषणों में अनायास कल्लोल करती फूट पड़ती है। साथ ही साथ, उन स्वगत कथनों में चरित्रों की मानसिक ग्रन्थियों का रहस्योद्घाटन भी कराया गया है। शेक्सपीयर की भाँति लम्बे काव्यात्मक संवादों का प्रयोग भी प्रसाद ने अपने नाटकों में किया है। उनके चरित्र संस्कृत नाटकों की भाँति आदर्श और परम्परावादी न होकर शेक्सपीयर के चरित्रों की भाँति अपने निजी व्यक्तित्व तथा मानसिक ग्रन्थियों को लिये हुये हैं। अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, भट्टार्क और चाणक्य के व्यक्तित्व दोहरे है। वे भयानक मानसिक आँधी तथा झंझावात के झकोरों में झूलते है। हेमलेट और स्कन्दगुप्त की

१—'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन'—डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा पृ० ३०१।

दार्शनिकता, कर्त्तव्य से निराशा और मानसिक संघर्ष की भावना एक सी है। 'अजातशत्रु' और मैकबेथ में कितना ही अन्तर हो, दोनो के नायक महत्वाकांक्षी हैं। अजातशत्रु और स्कन्दगुप्त के वातावरण पर हेमलेट,- मैकबेथ और किंग लियर का प्रभाव है। प्रसाद का भट्टार्क ओथेलो के इयागो से मिलता जुलता है। देवसेना, मल्लिका आदि नारियाँ रोजेलिन्ड तथा डेसडीमिना से मिलती है। प्रसाद के नारी चरित्र भी सशक्त, तथा स्वतन्त्र व्यक्तित्व को वहन करते हैं। विजया, देवसेना, अलका, कोमा, सुरमा और अनन्त देवी घर की चहारदीवारी में बन्द रहने वाली अबलाएं नहीं है, वरन् राज्यसत्ता को डावाडोल तथा उथल पुथल करने की विस्फोटक शक्तियों को छिपाये हुए है। वे राजनीति की आंधी और तूफान से हंसती खेलती हैं तथा राष्ट्र के नीति निर्धारण में शेक्सपीअर की नायिकाओं की भाँति उच्च स्थान ग्रहण करती है। साथ-साथ उनके नारी सुलभ रूप का भी अन्तर्द्वंद्व देखने को मिलता है। असफल यौवन, करुण प्रणय तथा प्रेम से व्याकुल मन के दर्द भरे घात प्रतिघातों का ऊहापोह भी उनमें दिखाई देता है। वहीं प्रसाद का कवि सान्ध्य क्षितिज की तरह स्पष्ट धूमिल तूलिका की एक रेखा से, उनमें रहस्यात्मकता का भी संकेत कर देता है। सारांश यह कि एक उत्कृष्ट कलाकार की भाँति, प्रसाद जी में त्याग और ग्रहण की पूर्ण परख है, इसीलिये वे युगद्रष्टा तथा युगनिर्माता के रूप में उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद युग के अन्य नाटककार

इस युग के नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द बल्लभ पन्त, बेचनशर्मा उग्र, माखनलाल चतुर्वेदी, सुदर्शन तथा जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद विशेष उल्लेखनीय हैं। वैसे प्रसाद का स्थान इनमें सर्वोपरि रहा। इन नाटककारों की कृतियाँ पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक हैं। और उनमें, प्रसाद की भाँति प्राच्य तथा पाश्चात्य नाटकीय परम्परा के समन्वय की चेष्टा की गई है। विशेष व्याख्या के लिये प्रत्येक की कृतियों का अध्ययन आवश्यक होगा।

हरिकृष्ण प्रेमी

यदि प्रसाद ने अतीत भारत के हिन्दू तथा बौद्ध काल के अप्रकाशित स्वर्णिम पृष्ठों को अनावृत्त किया तो प्रेमी जी ने मुगल कालीन भारत की संस्कृति और गरिमा को व्यक्त करने का प्रयत्न किया। वास्तव में प्रेमी जी का यह प्रयत्न युगानुकूल था। जिस समय प्रेमी जी ने अपने नाटकों का सृजन आरम्भ

किया, उस समय गांधी जी के नेतृत्व में भारत का प्रत्येक नर नारी शृङ्खला की बेड़ियों को तोड़ने के लिये स्वतन्त्रता संग्राम मे सम्मिलित रूप से सेनानी के रूप में लगा हुआ था। गांधी की रणभेरी के आह्वान को सुनकर हिन्दू और मुसलमान एक सूत्र में गुंथ कर स्वतन्त्रता के घोष को और भी उच्च कर रहे थे। हिन्दू धर्म के संरक्षक महामना पं० मदन मोहन मालवीय, तथा मुसलमानों के अग्रणी मौलाना बन्धु एक साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर अंग्रेजों के विरोध में तत्पर थे। युग की आवश्यकता को पहचानकर प्रेमी जी ने 'हिन्दू मुसलिम एकता' का स्वर अपने नाटकों द्वारा और भी उच्च किया। अतः उनकी कृतियों पर एक तरफ तो गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है, दूसरी ओर पश्चिम के जनतंत्रीय तथा समाजवादी विचारधारा की भी प्रबल छाप दिखाई पड़ती है। पश्चिम में, जो सबसे बड़ा धर्म इस समय निर्मित हो रहा था, वह राष्ट्रीयता था। राष्ट्र का प्रत्येक प्राणी चाहे वह जर्मनी का हो या इंगलैंड का या इटली का, एक नेता के पथप्रदर्शन में उच्च नीच का सभी भेद भाव भुलाकर एक सूत्र में गुंथ रहा था। इस राष्ट्रीयता की आवश्यकता को राष्ट्रीय-एकता के लिये प्रेमी जी ने अनुभव किया, अतः उन्होंने हिंदू-मुसलिम ऐक्य का समर्थन किया।

प्रेमी जी की रचनाओं का काल क्रम निम्नाङ्कित है—

१—स्वर्ण विहान	
२—पाताल विजय	
३—रक्षा बँधन	सन् १९३४ ई०
४—शिवा साधना	१९३७
५—प्रतिशोध	१७३७
६—आहुति	१९४०
७—स्वप्न भंग	१९४०
८—छाया	१९४१
९—बन्धन	१९४१
१०—मंदिर	१९४२
११—मित्र	१९४५
१२—विषपान	१९४५
१३—उद्धार	१९४९
१४—शपथ	१९५१
१५—प्रकाश स्तंभ	१९५१

१६—बादलों के पार

१७—शतरंज के खिलाड़ी

इसमें 'मंदिर', 'बादलों के पार' एकाङ्की संग्रह हैं। 'स्वर्ण विहान' एक गीति नाट्य है। 'पाताल विजय' पौराणिक नाटक है। 'स्वर्ण विहान' 'छाया' तथा 'बंधन' को छोड़कर उनके सभी नाटक ऐतिहासिक हैं। उनके सभी नाटकों का मूल संदेश राष्ट्रीय आदर्श तथा एकता की उपलब्धि तथा आतताइयों द्वारा देश की रक्षा है। 'स्वप्न भंग' की भूमिका में उन्होंने अपने इस आदर्श को स्पष्ट कर दिया है।

पाश्चात्य प्रभाव के दृष्टिकोण से 'रक्षा बंधन', 'शिवा साधना', 'प्रतिशोध', 'स्वप्न भंग', 'छाया', 'बन्धन' तथा 'उद्धार' आदि नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। 'रक्षा बन्धन' प्रेमी जी का पहला नाटक है, जिसमें संस्कृत नाटक के नियमों की एकदम अवहेलना की गई है।

'रक्षा बन्धन' पाश्चात्य परम्परा के अनुसार केवल तीन अङ्कों में लिखा गया दुखान्त नाटक है। 'कर्मवती' मेवाड़ की रक्षा के लिए क्षत्राणियों के साथ 'जौहर' रच कर चिता की लपटों में तिरोहित होकर भारतीय नारी की गरिमा का सन्देश देती है। इस नाटक में दो ही बातें खटकने वाली हैं। एक तो अत्यधिक गीतों का प्रयोग। कुल मिला कर तीन अङ्कों के नाटक मे पूरे एक दर्जन गीत हैं। दूसरी खटकने वाली बात इसमें यह है कि कथोपकथन इतने लम्बे हो गये है, कि वे भाषण का रूप धारण कर लेते हैं। उपदेशात्मकता तथा धार्मिक एकता के प्रचार के फेर में नाटकीयता को आघात पहुँचा है। वैसे, प्रेमी जी के सफल नाटकों में से यह है। 'चित्तौड़' के नाम पर हिन्दू-मुसलमानों में बहुत रक्तपात हुआ है। प्रेमी जी ने दोनों को चित्तौड़ के नाम पर एक सूत्र में बाँध कर भारतीय इतिहास में एक मौलिक पृष्ट का सृजन किया। रानी कर्मवती जो राणा साँगा की पत्नी थी, बाबर के पुत्र हुमायूँ को राखी भेजकर भाई बनाती है। बाबर और राणा सांगा में घोर शत्रुता थी। प्रेमी जी ने युगानुकूल इस वैमनस्य की भावना को विस्मृत करा देने में अद्वितीय कार्य किया। हुमायूं इसी धार्मिक एकता का प्रवचन तीसरे अङ्क में उच्च स्वर से करता है—

'हुमायूं'—''तातार खाँ! देहली की सल्तनत तो चीज ही क्या है, सारी दुनियाँ की स तनत से बढ़कर एक सन्तनत है, वह है इंसानियत और मुहब्बत की सल्तनत। सिकन्दरशाह, जिन्होंने यूनान से हिन्दुस्तान तक अपनी सल्तनत कायम की थी, आज कहाँ हैं। जिन्होंने दिलों को जीता था, वे आज तक जिन्दा हैं, वे आज तक हुकूमत करते हैं। हजरत मुहम्मद, जिन्होंने इन्सान को सारी

दुनिया से मुहब्बत करने की तालीम दी, आज दिलों के आसमान में सितारे की तरह चमक रहे हैं। अभी तक वह गोया हमें इशारे से बता रहे हैं धन दौलत का ख्याल छोड़ और इन्सानियत की सल्तनत कायम कर।"

(अङ्क ३, दृश्य २, 'रक्षा बन्धन')

इसमें पश्चिमी राष्ट्रीयता और मानववाद का स्वर गूंज रहा है।

'शिवा साधना' में शिवाजी के पराक्रम का वर्णन है। इसमें इतिहास के साथ कल्पना का अधिक सम्मिश्रण है, जो अस्वाभाविक लगता है। उदाहरण के लिए, शिवाजी का जैबुन्निसा से प्रेम, अफ़जल खाँ का अपनी पत्नियों का बध इत्यादि इतिहास विरुद्ध घटनायें है। इतिहास में शिवाजी के चरित्र मे धार्मिक सहिष्णुता तथा प्रेम की झलक दिखाई गई है। शत्रु की नारी का बाल भी उसकी देख रेख में बांका नहीं हुआ, मुसलमानों की धर्म पुस्तक कुरान यदि कहीं हाथ लग गई, तो उसका सम्मान उन्होंने किया। नाटक के अन्त में पाश्चात्य राजनीति के आधार पर जनतन्त्रीय भावनाओं का समर्थन लेखक ने किया है। शिवाजी का कथन है—

"किन्तु स्वराज्य यदि हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया, तो मेरी साधना अधूरी रह जायगी। मैं बीजापुर और दिल्ली की बादशाहत की जड़ उखाड़ फेंकना चाहता हूँ, वह इसलिए नहीं कि वे मुसलिम राज्य हैं, बल्कि इसलिए कि वे आततायी हैं, एक तन्त्र हैं, "लोकमत को कुचल कर चलने वाले हैं।"

'प्रतिशोध' के चरित्र-चित्रण तथा अन्तर्द्वन्द्व और कथोपकथन में पाश्चात्य परम्परा का परिपालन किया गया है। इस नाटक में औरङ्गजेब की पराजय छत्रशाल द्वारा दिखाई गई है। छत्रसाल, चम्पत राय नामक वीर सरदार की सहायता से बुन्देलखन्ड की रक्षा करता है। नाटक के बीच-बीच में मातृभूमि की रक्षा में आकुल उसके मन का द्वन्द्व उल्लेखनीय है।

'स्वप्न भंग' और **'उद्धार'** में पश्चिमी नाटकों के आदर्शों का समावेश अधिक हुआ है। इसमें 'दारा' हिन्दू-मुसलिम एकता को स्थापित करने के लिए, अपने प्राणों का बलिदान कर देता है। चरित्र-चित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य तथा अन्तर्द्वन्द्व की भावना इस नाटक में सबसे अधिक मिलती है। चरित्र अपनी दुर्बलताओं को लिए हुए आते हैं, और एक क्षण के लिए, पाश्चात्य दुखान्त नाटकों की भाँति भय तथा करुणा की भावना को जागृत करते हैं। औरङ्गजेब एक दुर्दमनीय नर पिशाच राक्षस के रूप में प्रकट होता है। उसकी निष्ठुरता, निरंकुशता तथा निर्ममता पराकाष्ठा को पहुँचती दिखाई गई है।

उसकी मानसिक हलचल तथा अशान्ति का चित्र उसके स्वगत में मूर्तिमान हो उठता है।

"संसार में सब प्राणियों के स्नेह से वंचित औरङ्गजेब ! तुझे बहन रौशनारा के अतिरिक्त और कोई भी प्यार करता है ? नही रौशनारा का स्नेह मरुभूमि में जलते हुए मेरे जलहीन जीवन का एक मात्र सरोवर है। वह कयामत से भी तेज लड़की, बिजली से भी अधिक ज्योतित आँखों वाली लड़की, आज औरङ्गजेब को सर्वनाश की आग लगाने को कह रही है ?"

(अङ्क २, दृश्य २)

रौशनारा आगरे के महल में बैठी हुई, देश की राजनीति का संचालन करती है, आँधी और तूफान से खेलती है, परन्तु कभी-कभी उसकी नारी सुकोमल भावना भी इस मानसिक हलचल और बवन्डर के बीच झाँकने लगती है।

"ईर्ष्या की आँधी में उड़कर मैं कहाँ आ गई हूँ। मै नारी हूँ। नारी का अस्तित्व प्रेम करने के लिए है, संसार को स्नेह के निर्मल झरने में स्नान कराने के लिए है। मैं अपना स्वाभाविक धर्म छोड़कर हिंसा का खेल खेलने चली हूँ। कोई दिल में बार बार कहता है 'रौशनारा जरा सोच ! आगे कदम बढ़ाने के पहिले उसके परिणामों पर विचार कर।" (अङ्क ३, दृश्य ७)

औरंगजेब के कोप का भाजन बना हुआ शाहजहाँ और उसके पुत्र दारा की मानसिक हलचल आशा, निराशा, द्विविधा तथा संकट से भरी हुई है। नाटक के अंत में दारा के निम्नांकित कथन पर पश्चिमी समाजवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है—

"मैं धनी, निर्धन, विद्वान, अविद्वान और छोटे बडे का भेद मिटाना चाहता हूँ कि संसार एक मजदूर के पुत्र की मृत्यु का दुख भी उतना ही अनुभव करे, जितना कि वह शाहजहाँ की पत्नी की मृत्यु का अनुभव करता है।"

"उद्धार" में लोकमत तथा जनतंत्रीय भावनाओं का अधिक समावेश हुआ है, क्योंकि यह प्रेमी जी के बाद के नाटकों में से है। सुजानसिंह तथा हमीर राजपूती ऐश्वर्य और गौरव के साथ-साथ अपनी मानसिक दुर्बलताओं को लिये हुए, रंगमंच पर आते हैं। वर्तमान सामाजिक आन्दोलनों का चित्रण इसमें सबसे अधिक हुआ है, विधवा-विवाह का समर्थन किया गया है। गाँधीवादी विचारधारा की पुकार स्वतन्त्रता के समर्थन में की गयी है।

"स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। जिस शासन में जनता की आवाज नहीं सुनी जाती, उसके नियमों को भंग करना जनता का कर्तव्य हो जाता है।"

अभिनय की दृष्टि से 'उद्धार' सबसे सफल नाटक है । केवल तीन ही अंक है । कार्यव्यापार में शैथिल्य का नाम भी नहीं । कौतूहल तथा उत्सुकता से सारा नाटक भरा पडा है । एक दृश्य दूसरे के निर्माण में सहायक होता है, और प्रभावोत्पादकता की क्रमशः वृद्धि करता जाता है ।

"छाया" और "बंधन" सामाजिक नाटक हैं। टेकनीक तथा विषय-निर्वाचन दोनों में विदेशी प्रभाव का पालन किया गया है । 'छाया' में प्रेमी जी ने 'कवि प्रकाश' पर किये गये सामाजिक तथा राष्ट्रीय शोषण का चित्र खींचा है । प्रकाश राष्ट्र का महान कवि है, उसकी कविता में क्रान्ति करने की विस्फोटक शक्ति भरी हुई है । परन्तु भारती के उस अमर साधक के गृह में दरिद्रता का भयंकर अट्टहास हो रहा है । कुटिया को प्रकाशित करने के लिये तनिक तेल भी नहीं है । सरकारी अधिकारी लगान वसूल करने के लिये उसकी सम्पति को नीलाम करने में अत्यंत निर्ममता से काम लेते है । 'प्रकाश' पूंजी-पतियों पर कठोर व्यंग्य करता है—

"रुपये वालों के दिल नहीं होता, जिन लोगों के घर में, लाखों रुपये पडे हैं, वे भी दो दिन की मोहलत नहीं देते, एक पैसे की छूट नहीं देते ।"

प्रकाश की पत्नी माया परिवार की व्यवस्था को संचालित करने के लिये, वेश्या होने के लिये विवश होती है । वह सामाजिक विषमता तथा आर्थिक शोषण को चुनौती देती है । उसके विचारों में मार्क्स के साम्यवाद की ध्वनि गूँजती हुई सुनी जाती है—

'रुपये को अपने सिर पर न चढ़ने दो मनुष्यों ! रुपये को मनुष्य का सुख न छीनने दो, रुपये को मनुष्य का अपमान न करने दो मनुष्यों !'

'बंधन में भी इसी सामाजिक शोषण की कहानी है । टेकनीक तथा विषय विस्तार में यह जॉन गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' से मिलता जुलता है । 'स्ट्राइक' की भाँति मिल मालिक तथा मजदूर का संघर्ष इस नाटक की कथा वस्तु है । खजांचीराम एक धनी पूंजीपति तथा एक मिल का संचालक है । मजदूरों के ऊपर अत्याचार करता है, उनकी माँगें पूरी नहीं करता है । लड़ाई के कारण बढ़ी हुई मंहगाई का भत्ता भी मजदूरों को नहीं देता है, परिणाम-तया मजदूर हड़ताल करते है । मोहन मजदूरों का नेता है । अन्त में मोहन और मालती के विवाह सम्बन्ध द्वारा सारा विरोध समाप्त होता है । मजदूरों को माँगें पूरी की जाती हैं । विषमता तथा आर्थिक शोषण का अन्त होता है । खजांची राम स्वयं साम्यवाद का विजय घोष करते हुए सुने जाते है—

"यह तुम लोगों का ही तो रुपया है, जो हमने अपनी तिजोरियों में कैद कर रखा है, लक्ष्मी को हमने कैद करना चाहा, लेकिन हमारी कैद में, वह

खुश नहीं है। वह मुक्त होना चाहती है। जबतक वह मुक्त न होगी, मार, काट, हिंसा बनी रहेगी।

(अङ्क ३, दृश्य ४)

अत: प्रेमी जी की लेखनी ने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रीयता तथा जनतन्त्र की भावनाओं का प्रतिनिधित्व किया है। प्रारभिक नाटकों में राजपूत शौर्य तथा आदर्श की झांकी है, बाद मे सामती प्रभाव को जनमत में परिवर्तित करने की चेष्टा की गई है। सामाजिक नाटकों में आर्थिक शोषण तथा विषमता की धूमिल तथा मर्म ध्वनि सुनाई देती है, जो आगे चलकर एक गगन भेदी रणभेरी का रूप धारण करती है। नाटकीय कौशल में प्रेमी जी के सभी नाटकों में पाश्चात्य टेकनीक का अनुसरण किया गया है। तीन अङ्कों के इस नाटक मे सरल दृश्य विधान, शील वैचित्र्य तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की भावना को पश्चिम से लिया गया है। भारतीय रस सिद्धान्त का भी समर्थन गीतों के रूप में किया गया है। सारांश यह है, कि प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों प्रकार की नाट्य शैलियों का समन्वय प्रसाद की भांति प्रेमी जी में भी पाया जाता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में, इसका स्पष्ट रूप से समर्थन किया है।

"भारतीय साहित्य शास्त्र में नाटक भी काव्य के ही अन्तर्गत माना गया है, अत: उसका लक्ष्य भी रस संचार करना रहा है। पात्रों के धीरोदात्त आदि बंधे हुए ढांचे थे, जिनमें ढले हुए, सब पात्र सामने आते थे। इन ढांचों के बाहर शील-वैचित्र्य दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता था। योरप में धीरे-धीरे शील वैचित्र्य प्रदर्शन को प्रधानता प्राप्त होती गई। यहाँ तक कि किसी नाटक के सम्बन्ध में वस्तु विधान और चरित्र विधान चर्चा का ही चलन होगया। इधर यथातथ्यवाद के प्रचार से वहाँ रहा सहा काव्यत्व भी झूठी भावुकता कह कर हटाया जाने लगा। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि हमारे 'प्रसाद और प्रेमी ऐसे प्रतिभाशाली नाटककारों ने उक्त प्रवृत्ति का अनुसरण न करके रस विधान और शील वैचित्र्य दोनों का सामंजस्य रखा है।[1]

गोविन्दबल्लभ पन्त

पन्त जी ने अपने नाटक-साहित्य का सृजन प्रसाद और प्रेमी की भांति किसी राष्ट्रीय या साम्प्रदायिक एकता की स्थापना की प्रेरणा से नहीं किया, वरन् कला के लिये कला की भावना से किया है, जिसकी आत्मा का आधार पाश्चात्य है। उनके नाटकों मे—

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—पृ० ५४६।

१—कंजूस की खोपड़ी	सन् १६२३ ई०
२—वरमाला	१६२५
३—राजमुकुट	१६३५
४—अंगूर की बेटी	१६३७
५—अंतःपुर का छिद्र	१६४०
६—सिन्दूर बिन्दो, और	
७—ययाति हैं।	

'वरमाला' की कथा पौराणिक है। यह संस्कृत परम्परा में लिखा गया है। नायक अवीक्षित तथा नायिका वैशालिनी है, जो भारतीय चरित्रो की भाँति सर्वगुण सम्पन्न है, जिनकी प्रेमकथा का चित्रण ही इसका कथानक है। नाटक पर शेक्सपीयर के रोमान्टिक नाटकों का प्रभाव पड़ा है। दृश्य-योजना सरल है तथा कौतूहल और जिज्ञासा से पूरा नाटक आदि से अन्त तक भरा पड़ा है।

'राजमुकुट' तथा **'अंतःपुर का छिद्र'** दोनों ऐतिहासिक नाटक हैं। राजमुकुट मे पन्ना धाय के उच्च आदर्श की कथा है, जो इतिहास सम्मत है। पन्ना ने क्रूर वनवीर के हाथों से अपने एकमात्र पुत्र का बध करा के राना उदयसिंह की रक्षा की। 'राजमुकुट' की शीतल सेनी शेक्सपीयर के लेडी मैकबेथ की भाँति महान महत्वाकांक्षी है, वह रक्तपात तथा हत्या की अभिलाषा लिये हुए भीषण षड़यन्त्र संचालित करती है। वह कहती है, न्याय और नाते का कुछ भी सम्बन्ध नही। विक्रम का बध करो, और रक्त सूखने से पहिले उसी कटार से, उदय का। उसकी रक्त पिपासा की भावना शेक्सपीयर की लेडी मैकबेथ की भाँति है। इस नाटक में गीतों की संख्या अधिक है, जो पारसी नाटकों का प्रभाव कहा जा सकता है। मारकाट तथा तलवार की खनखनाहट भी पारसी नाटकों के आधार पर है। काव्य-न्याय (Poetic-Justice) का भी निर्वाह इसमें किया गया है।

'अंतःपुर का छिद्र' ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें इतिहास प्रसिद्ध भरतवंशी राजकुमार उदयन की चरित्रगाथा अंकित की गई है। नाटक मे उदयन की दो रानियों पद्मावती और मागंधी की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष का चित्रण है। उदयन का चरित्र भारतीय नायकों के आदर्श पर है, फिर भी उसमें परिवर्तन तथा उतार चढ़ाव की मनोवृत्ति पश्चिमी आदर्श पर रखी गई है। वही उदयन जो एक समय पद्मावती के लिये प्राण देता था, उसके प्राण लेने को कटिबद्ध हो जाता हैं। मागंधिनी में कुचक्र तथा षड्यंत्र चरमावस्था को पहुँचता दिखाया गया है। अपने विनाश चक्र का वह स्वयं भाजन बनती है, और मृत्यु को प्राप्त होती है। अभिनय की दृष्टि से पंत जी का यह सर्वश्रेष्ठ

नाटक है। दृश्य विधान सरल, तथा कौतूहल और आकस्मिकता से भरा पड़ा है। काव्य न्याय (पौयटिक जसटिस) का भी इसमें निर्वाह किया गया है।

'अंगूर की बेटी' एक सामाजिक नाटक है, जिसमे मद्यपान के दुष्परिणाम का चित्रण है। नाटक केवल तीन अंकों का है। दृश्य विधान अत्यंत सरल है। होटल का कमरा, पार्क, मैनेजर का दफ़्तर, बैठक जो बड़ी सरलता से तैयार किये जा सकते है। नाटक की कथा यह है, कि मोहनदास बहुत बड़ा शराबी हैं। मद्यपान में घर का सारा धन स्त्री, कामिनी के आभूषण तक, बिक जाते हैं। घर में दरिद्रता का अभिशाप छा जाता है। बाद में, वह एक होटल मे, नौकर हो जाता है, जिसका संचालन उसकी पत्नी करती है। वहाँ शराब में, थोड़ा थोड़ा जल देकर, उसकी आदत बढ़ाई जाती है। हरिहर एक समाचार पत्र की रिपार्ट पढ़कर मद्यपान के दुष्परिणाम की घोषणा करता है—

"संसार में जितने पागल हैं, उनमें से पिछत्तर फीसदी लोग शराब आदि नशीली चीजों के इस्तेमाल से हुए हैं।"

इसमें उपदेशात्मकता की मात्रा दिखाई देती है। पात्रों की संख्या कम और कार्य व्यापार छिप्र गति से चलता है। कौतूहल तथा जिज्ञासा से नाटक की प्रभावोत्पादकता में बराबर वृद्धि होती रहती है। माधव के नदी में गिरकर डूब मरने मे, तथा कामिनी और मोहन तथा विन्दु और विनायक के मिलन में पश्चिमी काव्य-न्याय की स्पष्ट छाप है।

"सिन्दूर बिन्दी" मे पतित बालिकाओं के उद्धार और रक्षा का सामाजिक चित्र खीचा गया है। असहाय परिस्थितियों में पड़कर हिन्दू-लड़कियों वेश्यावृत्ति को धारण करने पर विवश होती है, जैसे प्रेमचन्द के सेवासदन में सुमन धर्मच्युत हो जाती है। हिन्दू समाज ऐसी पतित बालिकाओ पर, सहानुभूति की दृष्टि नहीं डालना चाहता। विजय इसी प्रकार की एक बालिका है, जिसका उद्धार कुमार के हाथों होता है। नाटक समस्या प्रधान है, जिसने न केवल समस्या को प्रस्तुत किया है, बरन् उसको सुलझाया भी है।

"कंजूस की खोपड़ी" पंत जी का एक प्रहसन है, जो बहुत पहिले लिखा गया था। यह एक साधारण कोटि की रचना है।

निष्कर्ष रूप में पंत जी के नाटकों में संस्कृत नाटकीय परम्परा का आधार कम परन्तु पश्चिमी आधार अधिक है। चित्रपट तथा पारसी टेकनीक का भी प्रभाव कुछ अंश में मिलता है। नाटकों के संवाद तीव्र, छोटे तथा कौतूहल से भरे हुए है। अंक प्रायः तीन प्रत्येक नाटक में है। दृश्य विधान सरल तथा पश्चिमी ढंग का है। अभिनय-कला के सभी तत्व पंतजी के नाटकों में उपस्थित

हैं। प्रारम्भिक नाटकों में स्वगत अधिक हैं, ज्यों-ज्यों उनकी कला का परिमार्जन हुआ नाटकों से स्वगत की संख्या कम होती गई है। युद्ध, बध तथा हत्या के दृश्य प्रायः प्रत्येक नाटक में हैं। अंतःसंघर्षो की अपेक्षा बाह्य संघर्षों की संख्या अधिक है। काव्य-न्याय का निर्वाह भी अनेक नाटकों मे किया गया है।

पंत जी की वस्तु योजना तथा टेकनीक पर अंगरेजी नाट्यकला का स्पष्ट प्रभाव है। संस्कृत नाटकों के रस निष्पत्ति को न अपना कर उन्होंने संवेदनात्मक अन्विति तथा कौतूहल और मानसिक संघर्ष की सफल योजना अपने नाटकों में की है। अंकों तथा दृश्यों का विभाजन भी पाश्चात्य नाटकों के आधार पर है। कथानक के विकास में आकस्मिकता तथा कौतूहल का सुन्दर समन्वय है। कहीं-कहीं संगीत का अत्यधिक प्रयोग पारसी रंगमंच के आधार पर है। 'राजमुकुट' में पन्ना अपने पुत्र के शव को लिये हुये भी गीत गाती है, जो अत्यंत अस्वाभाविक है। नाटकों का कथानक अत्यंत सरल तथा अभिनेय है। रंगमंच की प्रायः सभी सुविधाओं का ध्यान पंत जी ने अपने नाटकों में रखा है। संस्कृत नाटकों के जटिल नियमों से वे दूर हैं। नाटकों के दृश्य संकेत भी अंग्रेजी नाटकों के आधार पर दिये गये हैं।

बेचन शर्मा उग्र

उग्र जी हिंदी साहित्य में नग्न यथार्थवाद को लेकर आये। आपके छः नाटक पाये जाते हैं—

१—महात्मा ईसा	सन् १९२२ ई०
२—गंगा का बेटा	१९४०
३—चुम्बन	१९३७
४—चार बेचारे	
५—आवारा	१९४२
६—अन्नदाता	१९४३

"**महात्मा ईसा**" एक ऐतिहासिक नाटक है, परन्तु इसमें कल्पना का अधिक समावेश किया गया है, जो अस्वाभाविक सा लगता है। ईसा को शिक्षा प्राप्ति के लिये काशी की गलियों में घुमाया गया है। नाटक चरित्र प्रधान है। वातावरण का सुन्दर निर्माण हुआ है। कथोपकथन की शैली चुस्त और सजीव है, जो उग्र जी की अपनी विशेषता है। नाटक की विचारधारा में, गाँधीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

'**चुम्बन**' में दरिद्रता के अट्टहास का चित्रण है। इसमें दौलत नाम का

एक धनी शराबी है, जो मल्लू नामक लकड़हारे की पत्नी को फंसा लेता है, परन्तु एक वर्ष बाद उसे छोड़ देता है, क्योंकि उसकी सम्पत्ति, वह दूसरे प्रेमी राजाराम को सौप देती है। पत्नी मैना और पुत्र विपत मृत्यु को प्राप्त होते हैं। भारतीय मजदूर का जीवन कितना दयनीय है, उसकी इज्जत पैसे पर बिकती है, इसी का इस नाटक में चित्रण है। नाटक भूमिका में उग्र जी लिखते हैं, कि—

"हिन्दी में नाटककार ? हाँ थे। हाँ है, मगर सभी की महिमा में मगर और प्रतिभा में 'अगर' लगा हुआ है।"

पर, उग्र जी की प्रतिभा में स्वयं पं० रामचन्द्र शुक्ल जी के शब्दों में अगर और मगर लगा हुआ है। चुम्बन में संवाद कहीं-कही अत्यन्त अश्लील है। दौलतराम कहता है, कि, मैंने मैना को तालाब में अर्द्धनग्न नहाते देखकर उसका सौंदर्यपान किया है।'

'अन्नदाता' में ग्वालियर के महाराज माधव तथा उनकी प्रजा की गरीबी का चित्रण है। इस नाटक में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है।

'गंगा का बेटा' 'महाभारत' के देवव्रत भीष्म की कथा है। 'चार बेचारे' एक प्रहसन है, जिसमें सम्पदक, अध्यापक, सुधारक तथा प्रचारक की मखौल उड़ाई गई है। उग्र जी के नाटकों पर अंग्रेजी के आस्कर वाइल्ड के नाटकों का प्रभाव है, जो नग्न यथार्थ का पक्षपाती था।

उग्र जी स्वयं अपने को उत्कृष्ट कोटि का नाटककार नहीं मानते हैं। इसका समर्थन उन्होंने अपने शब्दों में किया है, "मैं पहले बंगाल के महान यशस्वी श्री द्विजेन्द्रलाल राय को ही सबसे बड़ा नाटककार मानता था, पर जब इब्सन के नाटक पढ़े तब आँख खुल गई और स्पष्ट हुआ कि अब तक नाटक के नाम पर मैंने जो कुछ लिखा है, वह दुस्साहस मात्र है।[1]

'आवारा' की भूमिका में 'जार्ज बर्नाड शा' के नाटकों की आलोचना करते हुए उग्र जी ने लिखा है कि, 'मेरा दावा इतना ही है, कि नाटक को आदि, मध्य और अन्त में पहले नाटक होना चाहिए।' 'आवारा' मे श्रीपुर के चरित्र-हीन जमींदार राजाराम के विलासी जीवन का चित्रण है। दयाराम 'पादरी' द्वारा ईसाई धर्म की सेवा तथा प्रेम का समर्थन किया गया है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

मिलिन्द जी के दो नाटक उल्लेखनीय हैं। १—प्रताप प्रतिज्ञा, और २—समर्पण।

१—'साहित्य सन्देश'—'हिन्दी नाटककार अपनी अपनी कलम से" नाटक अंक पृ० ९७।

पहली ही कृति 'प्रताप प्रतिज्ञा' (१९२८) में मिलिन्द जी की उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय पाठकों को मिलता है। इसमें महाराणा प्रताप की देश-भक्ति, शक्ति सिंह का द्वेष, दोनो भाइयों के वैमनस्य को दूर करने के लिये, कुल पुरोहित की आत्महत्या एक अलौकिक बलिदान है। नाटक की भाषा सशक्त और अवसरोपयुक्त चुस्त है। राष्ट्रीयता की भावना से नाटक ओतप्रोत है।

'समर्पण' केवल तीन अङ्कों का एक सामाजिक नाटक है। 'विवाह' को समाज का एक आवश्यक बंधन स्वीकार किया गया है। हड़ताली मजदूरों का नेतृत्व करते हुए, इस नाटक का नायक 'नवीन' गोली से मारा जाता है। 'इला' नवीन की प्रेमिका थी। नवीन के शहीद हो जाने पर प्रेम और विवाह के आगे अपने को समर्पण करती है, यही नाटक के शीर्षक की सार्थकता है। 'नवीनचन्द' के द्वारा लेखक अपनी समाजवादी विचारधारा का प्रकाशन भी करता पाया जाता है—

"नवीनचन्द—हमारा देश इस पृथ्वी पर नरक बना हुआ है। हमारे देश-वासी स्त्री और पुरुष कीड़ों मकोड़ों की जिन्दगी बिताते हैं। शोषित, पीड़ित और तिरस्कृत मानवों के झुंड के झुंड, जन्म और मरण के बीच में एक रौरव यातना का अनुभव करते हुए, किसी भी क्षण दम तोड़ देते हैं। इस स्थिति से इन्हें मुक्ति दिलाने का कोई उपाय भी है।" (अङ्क २, दृश्य २)

रामेश्वरप्रसाद 'कुमार हृदय'—

इन्होंने गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित होकर 'सरदार बा', 'निशीथ', 'भग्नावशेष' आदि नाटकों को लिखा है। 'सरदार बा' पाश्चात्य शैली पर लिखा हुआ एक दुखान्त नाटक है। नाटक की कथावस्तु कल्पित है। बा जागीर दार की लड़की है। गुजरात का सूबेदार रहमत खां, उसका अपहरण करता है, और उसके किले पर आक्रमण करता है। बा का भाई मारा जाता है। परन्तु चन्द्रावती का कुमार बैरीसिंह पुनः उसकी सहायता के लिए आता है। मुसलमान बैरीसिंह का पीछा करते हैं और उसे मार डालते हैं। बैरीसिंह का पुत्र भी मारा जाता है। सरदार बा भी अन्त में आत्महत्या कर लेती है। युद्ध, रक्तपात और आत्महत्या के दृश्यों से नाटक भरा पड़ा है।

'निशीथ' दूसरा सामाजिक नाटक है, इसमें एक युवती विधवा की कष्ट कथा है। नाटक में लूट, मार पीट, रक्तपात आदि के दृश्य हैं। 'भग्नावशेष' भी पाश्चात्य शैली पर लिखा हुआ एक दुखान्त नाटक है। इसमें कलचुरि राज-वंश की चार पीढ़ियों का नाश दिखलाया गया है। इस नाटक में पात्रों की संख्या अधिक तथा अभिनेयता की कमी है।

वृन्दावनलाल वर्मा—

प्रसाद और प्रेमी के पश्चात ऐतिहासिक नाटको के क्षेत्र में वृन्दावन लाल वर्मा का स्थान उच्च है। प्रसाद ने यदि हिन्दू तथा बौद्ध काल के ऐतिहासिक अतीत में प्राणस्पन्दन किया, और प्रेमी ने मुगलकालीन इतिहास मे नई चेतना का संचार किया, तो वर्मा जी ने मध्य युग के भारत के गौरव तथा ऐश्वर्य को मूर्तिमान किया। झाँसी, बुन्देलखन्ड तथा मध्यभारत के मध्य-युगीन सामन्ती खन्डहरों की छिपी हुई गरिमा को आपने जीवन दान दिया है। स्थानीय चित्रण (लोकल कलर) तथा युगानुकूल वातावरण के निर्माण में वर्मा जी अंग्रेजी के वाल्टर स्काट के रूप मे हिन्दी में प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त सामाजिक नाटकों में पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित भारतीय जीवन की अनेक समस्याओं को नये प्रकाश में देखने का प्रयत्न किया है। पाश्चात्य विचारकों तथा नाटककारों का आपने विशद अध्ययन किया है, अतः मार्क्स के समाजवाद, फ्रायड के काम-सिद्धान्त आदि का भी प्रभाव आपके नाटकों में मिलेगा। राजनीतिक विचारों का समावेश इनमें हुआ है। काल क्रम के अनुसार आपकी कृतियाँ निम्नाँकित है—

१—राखी की लाज — सन् १९४३ ई०
२—फूलों की बोली — १९४७
३—बांस की फांस — १९४७
४—काश्मीर का काँटा — १९४८
५—झाँसी की रानी — १९४८
६—लो भाई पंचो लो — १९४८
७—पीले हाथ — १९४८
८—मंगल सूत्र — १९४९
९—हंस मयूर — १९५९
१०—पायल — १९४९
११—खिलौने की खोज — १९५०
१२—पूर्व की ओर — १९५०
१३—बीरबल — १९५०
१४—सगुन — १९५०
१५—जहाँदारशाह — १९५०
१६—धीरे-धीरे
१७—कनेर
१८—केवट

१६—नीलकंठ

वर्मा जी के प्राय. सभी नाटक सस्कृत नाटक के नियमों से उन्मुक्त हैं। इसका कारण यह है, कि उनकी कृतियाँ हिन्दी नाटक के समृद्धि काल में लिखी गई हैं। उन्होंने स्वयं पश्चिम के अनेक नाटककारों का अध्ययन किया है। अपनी कृतियों के सम्बन्ध में उन्होने स्वयं लिखा है :

"१६०५ ई० मे जब मैं १६ वर्ष का था, तीन छोटे-छोटे नाटक लिखे, जिनके मूल मे देश प्रेरणा थी। भूले हुए भले युग की चमत्कार पूर्ण बातों को सामने रखने का आकर्षण मुझसे ऐतिहासिक नाटक लिखवाता रहा है। १६०७ तक शेक्सपीयर के छः नाटक पढ़ चुका था। १६२२ से १६२६ तक के बीच में इब्सन, आक्सर वाइल्ड, मोलियर, शेक्सपीयर के अन्य नाटक, बर्नार्ड शा, गाल्सवर्दी इत्यादि के नाटक पढ़े। इनमे शा, गाल्सवर्दी को अत्यधिक पसंद करता हूँ। समाज के उत्तरोत्तर विकास का पक्षपाती और पर-शोषण का विरोधी होने के कारण मुझे जो उपाय समाज का ढांचा बदलने के लिये, अच्छे लगे उनकी प्रेरणा का परिणाम 'मंगल सूत्र', 'राखी की लाज' 'सगुन' 'पूर्व की ओर' इत्यादि नाटको में है।

(साहित्य संदेश नाटक अङ्क जुलाई-अगस्त १६५५, पृ० ३६१)

'पूर्व की ओर' वर्मा जी का पहला नाटक है। इसमें पल्लव राजकुमार अश्वतुंग के निर्वासन की कथा का चित्रण है। नाटक के कथानक निर्माण में शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट से प्रेरणा ग्रहण की गई है। टेम्पेस्ट के प्रासपैरो की भाँति अश्वतुंग अपने चाचा वीरवर्मा द्वारा राज्यद्रोह के कारण देश से निष्कासित होता है, अपने मित्रों के साथ एक जहाज में बैठकर नाग द्वीप होकर पूर्वी द्वीप समूह में पहुँच जाता है। परन्तु शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट की भाँति कला की परिपक्वता इसमें नही है। नाटक के अधिकांश पात्र कल्पित है। नाटक की अभिनेयता में सबसे बड़ी कमी, समुद्र मे जहाज के डूबने उतराने के दृश्य के कारण आ गई है, जिसको रंगमंच पर नहीं दिखाया जा सकता।

'फूलों की बोली' अरबी यात्री अलबेरुनी की 'किताबबुल हिन्द' की एक कथा के आधार पर लिखा गया है, इतिहास का ढाँचा मात्र ही रह गया है। कथा में काल्पनिकता का अधिक समावेश है। घटनाएँ भी अधिक हैं, जिनका ठीक निर्वाह नहीं हो पाया है। बलभद्र का नारी रूप धारण करना तथा आत्महत्या का प्रयत्न विदेशी प्रभाव के कारण है।

वर्मा जी के अधिकांश नाटकों में समाज की उलझनों तथा गहन समस्याओं का चित्रण किया गया है। 'राखी की लाज' 'खिलौने की खोज', 'बाँस की फांस', 'सगुन', 'लो भाई पंचो लो' 'मंगल सूत्र', इसी प्रकार के

नाटक हैं । 'राखी की लाज' में चम्पा मेघराज नामक एक डाकू सपेरे के हाथ में राखी बांध देती है, जो उसके पिता के घर में डाका पड़ते समय, उसकी रक्षा करता है । 'राखी' बांधने की प्रथा का अस्वाभाविक दुरुपयोग किया गया है । वैवाहिक समस्या पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है । चम्पा का पिता उसका विवाह दूसरे से करना चाहता है, पर चम्पा अपने प्रेमी सोमेश्वर से विवाह कर लेती है । 'बाँस की फांस' में 'पुनीता' तथा मन्दाकिनी को जो रेल दुर्घटना से घायल हो जाती हैं, गोकुल तथा फूलचन्द 'रक्तदान' देकर प्राण बचाते हैं। पुनीता के चरित्र द्वारा आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक नई खोज का चित्रण किया है । 'रक्तदान' आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक देन है । उसी को लेकर इस नाटक का ताना बाना तैयार किया गया है। 'धीरे-धीरे' तीन अङ्को का नाटक है, जिसमें गांधीवादी विचारधारा वाले देशभक्तों का व्यंग्य चित्रण है । 'खिलोने की खोज' का कथानक फ्रायड के काम-सिद्धान्त के आधार पर गढ़ा गया है, जो डाक्टर सलिल और सरूपा के प्रेम कथानक के रूप में रखा गया है । दोनों बचपन के प्रेमी हैं, परन्तु सामाजिक रूढ़ियों के कारण दोनों विवाह बन्धन मे नहीं पड़ सके, फलतः सलिल क्षय रोग से तथा सरूपा निरन्तर बेचैनी के दर्द से आकुल रहने लगी । डा० सलिल जब सरूपा की चिकित्सा के लिये आता है, जब अर्ध चेतन मन की सारी पूर्व सुप्त स्मृतियों का सरूपा अनावरण करती है, जो उसके एक खिलौने को देखकर, जिसको सलिल सरूपा के यहाँ से चुरा ले जाता है, होता है । वासनाओं का दमन भयानक विस्फोट की भाँति क्षय रोग के रूप में परिवर्तित होता है, इस मनोवैज्ञानिक समस्या को वर्मा जी ने फ्रायड के आधार पर रखने का प्रयत्न किया है ।

उनके अन्य नाटकों में समाज में ऊपरी सतह पर रहने वाली बाहरी समस्याओं की उलझने रखी गई हैं । प्रायः अधिकांश नाटक घटना प्रधान हैं। चरित्र चित्रण में सूक्ष्मता तथा मनोवैज्ञानिकता का सफल रूप कम मिलेगा । कहीं-कहीं घटनाओं की लड़ी इतनी अधिक है, कि सारा कार्य व्यापार उलझ सा गया है । उपन्यासकार होने के नाते कौतूहल तथा उत्सुकता को जागृत करने की पर्याप्त सामग्री इनके नाटकों में है । नाटकों का टेकनीक सरल तथा अभिनेय है । उनके अधिकांश नाटक एकांकी हैं, जिनमें अभिनेयता पर्याप्त मात्रा में है । परन्तु इतना होते हुए भी, उनके नाटकों की गणना प्रथम श्रेणी के नाटकों में नहीं की जाती, इसका कारण यह है, कि उनमें टेकनीक की परिपक्वता नहीं दिखाई पड़ती । प्रारम्भिक नाटकों पर पारसी रंगमंच तथा आधुनिक नाटकों पर चलचित्रों का प्रभाव है । हाँ, संस्कृति नाट्य परम्परा से उनके नाटक एकदम मुक्त हैं, यह निस्संदेह कहा जा सकता है ।

चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार

इनके 'रेखा' और 'अशोक' नामक नाटकों पर पर पाश्चात्य दुखान्त नाटकों का पूरा प्रभाव है। दोनों ऐतिहासिक नाटक है। पाश्चात्य दुखान्त नाटको की भाँति, दोनों में भय तथा आतंक का विषादमय वातावरण है। हत्या तथा बध के दृश्यों की भरमार है। अशोक द्वारा चंडगिरी को सुमन के बध की आज्ञा देना, तथा चील का मंडराकर उड़ना जूलियर सीजर के आँधी वाले दृश्य, या मैकबेथ के पोर्टर सीन की भाँति आतंक तथा भयानकता से पूर्ण है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'रेखा' 'अशोक' से अधिक सफल हुआ है। करुणा का भी संचार इनमें अधिक किया गया है। आधुनिक नाटकों के प्रतीक तथा सांकेतिक दृश्य विधान का भी उपयोग इन नाटकों मे किया गया है। वास्तव मे विद्यालङ्कार के नाटकों में टेकनीक की परिपक्वता विद्यमान है।

यथार्थवादी परम्परा के सामाजिक नाटक

प्रसाद युग के अन्तिम काल में यथार्थवादी सामाजिक समस्याओं का चित्रण प्रबल रूप से प्रारम्भ हो गया था। नाटकों में, उच्च वर्ग के स्थान पर मध्यम तथा निम्न वर्ग के चरित्रों की प्रधानता हो रही थी। इसका कारण यह था कि पाश्चात्य देशों के सम्पर्क से जनतंत्रवाद की प्रबलता हो रही थी। फ्रांस की राज्यक्राति ने सामन्तवादी शक्ति को बहुत पहले ही कुचल दिया था। इंगलैंड में भी राजसत्ता का प्रभुत्व नष्ट हो चुका था। राज्यसत्ता जनता तथा उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में आगई थी। फलतः साहित्य के मानदंड बदल गये। सामंती तथा उच्च वर्गों के स्थान पर निम्न वर्ग के जीवन का चित्रण उपन्यासों और नाटकों का प्रधान विषय हो गया। हिंदी नाटकों मे भी तत्कालीन परिस्थितियों को अधिक अपनाया गया। इस समय महात्मा गांधी ने हरिजनोद्धार का महान आन्दोलन उठाया था। अनेक नाटकों का यह प्रधान कथानक बन गया। इन नाटकों में छविनाथ पांडेय का 'समाज' (१९२९ ई०), आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव का 'अछूत' तथा 'आत्मत्याग', जयगोपाल कविराज का 'पश्चिमी प्रभाव' तथा घनानन्द बहुगुणा का 'समाज' (१९३० ई०) तथा नरेन्द्र का नीच (१९३१ ई०) पृथ्वीनाथ शर्मा का दुविधा (१९३७ ई०) और अपराधी (१९३९ ई०), प्रसिद्ध हैं। मिश्र जी के नाटक इसी समय लिखे गये, जिनका वर्णन समस्या नाटकों के प्रसङ्ग में किया जायगा।[१]

आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव के 'अछूत' में अछूतों पर किये गये सामाजिक अत्याचारों का वर्णन है। हरिकरण उपाध्याय की लड़की दयासागर अछूत के

१—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० २१५।

प्रेम में पड़ जाती है। दया सागर बाद में न्यायाधीश हो जाता है। समाज के उच्च वर्ग के लोग उसका विरोध करते हैं। तीसरे दृश्य मे न्यायाधीश के सम्मुख एक ब्राह्मण का मुकदमा पेश होता है, जिसमें ब्राह्मण की हार होती है। नाटक की मुख्य कथा वर्ण-व्यवस्था तथा उच्च वर्ग की निन्दा तथा अछूतों की है। नाटक के अन्त में दयासागर का विवाह राजकुमारी से कराकर अपने सिद्धान्त का लेखक ने विजय घोष किया है। न्यायालय में तीन अछूत पात्रों का सम्वाद समाज की रूढ़ियों पर अच्छा व्यंग्य प्रस्तुत करता है।

"पहला अछूत—सरकार हम मानता माने रहित है। पर ठाकुर जी की पूजा अपने हाथ से नाही करे पाइत।

दूसरा अछूत—सरकार। ठाकुर जी के दर्शन करे के नाही मिलत तो पूजा कैसे करीं।

तीसरा अछूत—सरकार। हिन्दू धर्म में रहे के कारण, हमें इ सब भोगे परत है। अबहीं मुसलमान हो जाई, ईसाई हो जाई, त इ पुजारी हमसे हाथ मिलावें। खाँ साहब और 'साहब' कहे लागे।"

इनके दूसरे नाटक 'आत्मत्याग' में विधवा विवाह की समस्या का चित्रण है। कमला नामक विधवा का विवाह तेजनारायण वकील से होता है; जो समाज में विधवा विवाह का आदर्श उपस्थित करता है। तीन अंकों का यह नाटक पाश्चात्य टेकनीक पर लिखा गया, पूर्ण अभिनेय है।

घनानन्द बहुगुणा का 'समाज' उत्कृष्ट कोटि का नाटक है जिसमें अछूतोद्धार का विषय कथानक के रूप में रखा गया है। पहले ही अंक में स्वामी विशुद्धानंद सेवाश्रम में हरिजनोद्धार पर व्याख्यान देते चित्रित किये गये हैं। हरिदास एक आस्तिक ब्राह्मण है। उसका पुत्र ज्ञानदास आश्रम की शांता नामक बालिका से प्रेम करता है। अनेक विरोधी परिस्थितियों के होते हुए भी, उसका विवाह शांता से हो जाता है। सरला एक महाजन की पुत्री है, उसका विवाह धनदास नामक एक दुश्चरित्र शराबी से हो जाता है, जिससे वह हृदय से घृणा करती है। सरला के कथन में हिन्दू समाज की वैवाहिक नीति की खिल्ली उड़ाई गई है।

"सरला—तुम लोग शरीर को व्याह सकती हो, किन्तु हृदय को नहीं। हृदय स्वतन्त्र है। वह ऊंच नीच या जाति पाँति को क्या जाने। मेरे शरीर पर तुम्हारा अधिकार है। मैंने तुम्हारी जाति के लिए, तुम्हारे पितरों के स्वर्ग-सुख के लिए अपना बलिदान कर दिया है। इसी से उनका आदर किया करूंगी। पर एक वेश्याचारी मद्यपी से प्रेम नहीं करूंगी।"

पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा' (१९३७ ई०) तथा अपराधी (१९३९ ई०)

में शील वैचित्र्य तथा अन्तर्द्वन्द्व की भावना का अच्छा चित्रण हुआ है। 'दुविधा' में केशवदेव अपनी प्रथम विवाहिता पत्नी तथा पुत्र की बात न बता कर 'सुधा' से विवाह करने का उपक्रम करता है। सुधा दुविधा में पड़ती है कि केशव उसका सच्चा प्रेमी है या नहीं। अन्त में केशव की पत्नी मोहिनी सुधा से मिलकर उसकी दुविधा मिटा देती है। 'अपराधी' नामक नाटक में गहन समस्या का चित्रांकन नहीं है। वरन् एक साधारण घटना का अनावश्यक उपयोग लेकर नाटक के कथा तन्तु का अस्वाभाविक विस्तार किया गया है। अशोक एक आदर्शवादी युवक है। एक चोर उसकी जेब में घडी रखकर भाग जाता है, चोर पर दयार्द्र होकर वह उसे छोड़ देता है, परन्तु सन्देह में स्वयं अशोक पकडा जाता है। चोर की स्त्री उचित अवसर पर अपने पति को न्यायालय में भेजकर अशोक की रक्षा करती है। इन नाटकों में टेकनीक की सरलता, संकलन त्रय का प्रयोग दृश्य विधान की संक्षिप्तता तथा अभिनेयता के तत्व पूर्ण रूप से उपस्थित हैं।

प्रसादकालीन प्रहसन

प्रहसन की परम्परा द्विवेदी युग की भाँति ही प्रसाद युग में अविच्छिन्न रूप से चलती रही। इन प्रहसनों में सामाजिक के अतिरिक्त राजनीतिक समस्याओं पर भी व्यंग्य किया गया है। इन प्रहसनों में हरशंकरप्रसाद उपाध्याय का 'भारत दर्शन या कौंशिल के उम्मेदवार' (१९२१ ई०), हरद्वार प्रसाद जालान का 'घरकट सूम' (१९२३ ई०), बद्रीनाथ भट्ट के प्रहसन, उग्र का चार बेचारे तथा जी० पी० श्रीवास्तव के मौलिक प्रहसन हैं। भट्ट जी के प्रहसनों की चर्चा पहले की जा चुकी है। उपाध्याय जी के 'भारत दर्शन' में कौंसिल के चुनाव में अयोग्य व्यक्तियों के जाने पर व्यंग्य किया गया है।

जी० पी० श्रीवास्तव के अनूदित तथा स्वतन्त्र प्रहसनों की चर्चा द्विवेदी युग मे की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त, उनके कुछ और मौलिक प्रहसन इस युग में लिये गये, जिनमें—(१) उलट फेर (१९१८ ई०) (२) गड़बड़ झाला (१९१९ ई०), (३) भूलचूक (१९२३ ई०), (४) साहित्य का सपूत (१९३४ ई०), (५) बेसूँड़ का हाथी, (६) कागजी करतब, (७) मनहूस मल, (८) कुरसी मैन, तथा (९) घर का न घाट का उल्लेखनीय है। सिनेमा के लिए 'बंटाधार तथा' 'चोर के घर छिछोर' तथा 'लोक परलोक' लिखे गये हैं। रेडियो के लिए 'गया जायँ कि मक्का' तथा 'पैदाइशी मैजिस्ट्रेट' नामक प्रहसनों को लिखा है।

श्रीवास्तव जी ने 'उलट फेर' नामक नाटक में न्यायालयों की धाँधली का अच्छा

व्यंग्य है देहाती मुवक्किलों का सम्वाद ठेठ अवधी में रखकर हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। 'साहित्य' का सपूत में साहित्यकारों को मखौल उड़ाई गई है। 'भूल चूक' में पार्वती के पति शकीमल की मूर्खता पर व्यंग्य किया गया है। 'कुरसी मैन' मे म्यूनिसपल बोर्ड के चुनाव की खिल्ली उड़ाई गई है। जैसा कि, पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, श्रीवास्तव जी का हास्य घटना प्रधान और सस्ता मनोरंजन करने वाला है। अस्तु, उसमें स्थायी प्रभाव को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। सुधार की, दृष्टि से, हास्य का स्थान बहुत ही उच्च होता है। शेक्सपीयर के 'शायलाक' ने यूरोप में यहूदियों का मस्तक आजन्म नीचा कर दिया। स्पेन के सर वेटीज ने 'डानक्यूजोट' को लिखकर सदा के लिये पादरियों और धार्मिक व्यक्तियों का प्रभुत्व नीचे ढकेल दिया। मोलियर ने अपने पैके और मरफूरिये नामक चरित्रों से तत्वज्ञानियों के ऊपर व्यंग्य बरसा करके अरस्तू के विरोधियों को फाँसी के तख्ते से उतार लिया। अन्य रसों के लेखकों की संख्या संसार साहित्य में अगणित हैं, पर हास्य रस के उत्कृष्ट कोटि के लेखक उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। यद्यपि हम श्रीवास्तव जी के 'हास्य' को स्थायी तथा उत्कृष्ट कोटि में नहीं रख सकते, परन्तु हिन्दी में इस अंग को लिखकर उन्होंने एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति की है, यह कम प्रशंसा की बात नहीं है। हास्य रस के पूर्वी तथा पश्चिमी अनेक विद्वानों की कृतियों का उन्होंने अध्ययन किया है, जैसाकि उनकी पुस्तक 'हास्य रस' के देखने से स्पष्ट है। इसमे उनके पाँच भाषणों का संग्रह है, जो हास्य रस से सम्बन्धित हैं। 'हास्य रस' नामक भाषण द्विवेदी मेला के अवसर पर काव्य-परिहास सम्मेलन मे सभापति-भाषण के रूप में ५ मई १९३२ को प्रयाग में पढा गया था। इसमें श्रीवास्तव जी ने बतलाया है कि, हास्य का सम्बन्ध मस्तिष्क से अधिक तथा हृदय से कम है। हास्य की प्रथम व्याख्या अरस्तू ने की है, जो पतन या डिग्रेडेशन के कारण होती है। इसका आशय यह है कि जब कोई व्यक्ति साधारण मनुष्यत्व की श्रेणी से अपने कर्मों द्वारा गिर जाता है, तो उसका यह पतन उसे हमारी दृष्टि में उपहास का भाजन बना देता है। परन्तु अरस्तू की यह व्याख्या बहुत ही प्राचीन थी, बाद में हास्य के दूसरे तत्वों की योजना कान्ट और हैजलिट ने की, जिसका प्रमुख सिद्धान्त यह था कि सच्चे हास्य की उत्पत्ति दो असमान पात्रों, भावों या विचारों के द्वन्द्व से होती है। इसी को असमानता या इंकाग्रुयटी कहते हैं। आगे चलकर वर्गसाँ ने यह सिद्धान्त निकाला कि हास्य के लिये ऐसीपरिस्थिति की अवतारणा होनी चाहिए, जिसमें विपक्षी असहाय हो जाए। इसे उन्होंने आटोमैटिज्म नाम दिया, जिसे श्रीवास्तव जी ने कठपुतलीपन कहा है। हास्य की उत्पत्ति के इन तीन उपादानों के अतिरिक्त श्रीवास्तव जी ने चौथा

साधन आशा तथा अवसर की प्रतिकूलता को बतलाया है। इन चारों का प्रयोग लेखक को कुशलता से करना होता है। इसके पश्चात उन्होंने ज्ञात और अज्ञात हास्य के दो भेद किये हैं। व्यंग्य विनोद, कटाक्ष (सेटायर) और उपहास (केरीकेचर) के अनेक रूप जो पाश्चात्य साहित्य में मिलते हैं, उनकी भी व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में हास्य के विकास तथा इसके अभावों की व्याख्या की गई है। 'हास्य का महत्व' दूसरा भाषण है, जो सभापति के आसन से कलकत्ते में ८ अक्तूबर १९३३ ई० को परिहास सम्मेलन के अवसर पर पढ़ा गया था। इसमें पाश्चात्य देशो में लिखे गये, हास्य प्रधान सुखान्त नाटकों के भेद-विभेदों की व्याख्या की गई है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जी० पी० श्रीवास्तव ने पाश्चात्य आदर्शो पर आधारित न कि केवल हास्य रस के नाटकों और प्रहसनों को लिखकर एक विशेष अभाव की पूर्ति की, वरन् हास्य के सिद्धान्त पक्ष पर प्रकाश डालने की चेष्टा भी की है। उनकी कला में कितनी परिपक्वता तथा स्थायित्व है, इस सम्बन्ध में न जाकर इतना ही कहना समीचीन है, कि उनके नाटकों द्वारा ऐसे साहित्य का विकास हुआ जो हिन्दी मे केवल 'भारतेन्दु काल' में अंकुरित हुआ था।

पाश्चात्य नाटकों के प्रसादकालीन अनुवाद

भारतेन्दु तथा द्विवेदी काल में पाश्चात्य लेखकों में, ग्रीक दुखान्त लेखकों तथा अँग्रेजी के शेक्सपीयर का ही विशेष प्रभाव था। द्विवेदी युग के अन्त में फ्रास से प्रसिद्ध लेखक मोलयर के नाटकों का मूल फ्रेंच तथा अंग्रेजी अनुवाद के माध्यम से हिन्दी में अनुवाद हो चुका था। प्रसाद युग तक भारतीय विद्यालयों में समस्त यूरोपीय साहित्य का अध्ययन तथा मंथन विद्वानों द्वारा हो रहा था। यद्यपि यह अधिकांश अँग्रेजी भाषा के अनुवादों के माध्यम द्वारा हुआ, परन्तु मूल यूरोपीय भाषाओं का भी ज्ञान, यहाँ के अनेक विद्वान यूरोपीय यात्रा द्वारा तथा यूरोप के विभिन्न देशों में रहकर करने लगे। मोलियर के अनुवादों से फ्रांस के नाटक साहित्य की ओर हिंदी के विद्वानों का ध्यान गया। सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन से तथा साम्यवादी विचारधारा के आगमन से, रूस के नाटककारों का भी अध्ययन किया गया। फलतः अँग्रेजी नाटकों के अतिरिक्त जर्मन, रूसी, बैलजियम तथा नारवे के नाटककारों की कृतियों का भी हिन्दी में अनुवाद हुआ। ये अनुवाद इस तथ्य के स्पष्ट परिचायक हैं, कि अंग्रेजी के अतिरिक्त यूरोप की अन्य भाषाओं के नाटकों की

कथावस्तु, विषय वर्णन तथा नाट्य परम्परा की ओर, भारतीय नाटककार कितने वेग से आकर्षित हो रहे थे।

जर्मन नाटकों के अनुवाद

१—प्रेम प्रपंच—जर्मन कवि और नाटककार शीलर के 'लुइश मेलरिन या कबेब्लिंड लाइ' का अनुवाद रामलाल अग्निहोत्री द्वारा सन् १९२७ ई० मे हुआ।

२—नातन— जर्मन नाटककार लेसिंग के 'नातन दर वेज' नामक मूल नाटक के उर्दू अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर 'नातन' नाम से अबुलफजल ने सन् १९३२ ई० में किया।

३—मिना अथवा प्रेम प्रतिष्ठा—लेसिंग के दूसरे नाटक 'मिना फन वार्न हयलम' का अनुवाद डा० मंगलदेव शास्त्री ने १९३७ ई० में किया।

४—फाउस्ट— गेटे के प्रसिद्ध नाटक 'फाउस्ट' का मूल जर्मन से भोलानाथ शर्मा ने १९३९ ई० में अनुवाद किया।

मैटरलिंक (बेलजियम) के नाटकों के अनुवाद

१—प्रायश्चित तथा उन्मुक्ति का बंधन—मैटरलिंक के 'सिस्टर वियट्रीस' तथा 'द यूसलेस डिलीवरेंस' नामक दो नाटकों का भावानुवाद श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने १९१६ ई० में किया।

२—मग्दालिनी— मैटरलिंक के एक दूसरे दुखान्त नाटक का रूपान्तर श्री जैनेन्द्रकुमार ने १९४२ ई० में किया।

अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद

१—विपता— अंग्रेजी कवि और नाटककार 'जान मेसफील्ड' के ट्रेजेडी आफ नेन' का अनुवाद श्री उमा नेहरू ने 'विपता' नाम से १९३६ ई० में किया।

२—न्याय— प्रसिद्ध यथार्थवादी नाटककार जान गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' नामक नाटक का अनुवाद प्रेमचन्द ने 'न्याय' नाम से किया।

३—हड़ताल— गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' का अनुवाद भी प्रेमचन्द ने इस नाम से किया।

४—चाँदी की डिबिया—उसी लेखक के 'द सिलवर बाक्स' का अनुवाद प्रेमचन्द ने किया। ये चारों अनुवाद हिन्दुस्तानी एकेडमी से प्रकाशित हुए हैं। इन अनुवादों से यह स्पष्ट है, कि यथार्थवादी नाटकों की ओर, भारतीय लेखकों का ध्यान विशेष रूप से जा रहा था।

फ्रेंच नाटक का अनुवाद

द्विवेदी युग में, मोलियर के अनुवादों की चर्चा हो चुकी है। मोलियर के अतिरिक्त 'रोम्या रोला' के 'द फोर्टीन्थ आफ जुलाई' का अनुवाद 'विनाश की घड़ी' शीर्षक से ठाकुर राजबहादुरसिंह ने सन् १९३२ ई० में किया। इस नाटक द्वारा 'रोम्या रोला' को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली थी।

रूसी नाटकों के अनुवाद

भारत में जनतन्त्रवाद के प्रसार से रूसी समाजवाद का प्रभाव बढ़ रहा था। फलत: वहाँ के साहित्यकारों की ओर भी हिन्दी लेखकों का ध्यान गया। इन साहित्यकारों में 'टालस्टाय' की ओर लोग विशेष रूप से उन्मुख हुए। अतः उसके कई नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया गया।

१—कलाकार की करतूत — १९२६ ई०
२—अंधेरे में उजाला — १९२८ ई०
३—जिन्दा लाश — १९२९ ई०

टालस्टाय के उपर्युक्त तीन नाटकों का अनुवाद श्री क्षेमानन्द राहत ने किया, जिनका प्रकाशन 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा हुआ है।

४—पाप और प्रकाश—टालस्टाय के एक दूसरे नाटक का अनुवाद जैनेन्द्रकुमार ने इस नाम से किया।

५—बालकों का विवेक—श्री रामनाथ सुमन द्वारा अनूदित टालस्टाय के एक नाटक का अनुवाद है।

अन्य नाटककार

इसके अतिरिक्त आस्कर वाइल्ड के 'द डचेस आफ पाडुआ' का अनुवाद श्री सत्यजीवन वर्मा ने १९५० ई० मे 'प्रेम की पराकाष्ठा' शीर्षक से किया है। अब उपर्युक्त सभी अनुवादों की व्याख्या विचार से की जायगी।

प्रेम-प्रपंच

जर्मन महाकवि और नाटककार शीलर के 'लुइश मेलरिन या कबेब्लिंड लाइ' का भावानुवाद है। अग्निहोत्री जी ने यह अनुवाद, जैसा कि उन्होंने नाटक की भूमिका में कहा है, मूल जर्मन या अंग्रेजी अनुवाद से न करके एक फारसी अनुवाद के आधार पर लिखा है। यह फारसी अनुवाद तेहरान की

एक पब्लिशिंग कम्पनी ने 'खद श्रो इश्क' के नाम से किया था। मूल जर्मन का यह सुन्दर अनुवाद है। अग्निहोत्री ने इसी अनुवाद का आधार लिया है। भूमिका में अग्निहोत्री जी ने अनुवाद के उद्देश्य को स्पष्ट किया है—

"पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि मैंने यह ग्रन्थ मूल जर्मन या अंग्रेजी अनुवाद से न लिखकर फारसी अनुवाद के सहारे लिखा है। मैंने इसका अंगरेजी अनुवाद भी पढ़ा है, परन्तु वह मुझे फारसी अनुवाद से अच्छा न जान पड़ा। इसलिये मैंने इसे फारसी के आधार से ही लिखना उचित समझा···। फारसी लेखक ने मूल ग्रन्थ का अनुवाद किया है, परन्तु मैंने थोडा सा रूपान्तर करना उचित समझा है। मेरी समझ में अभी हिन्दी के पाठकों की रुचि ऐसी नहीं हुई है कि वे विदेशी नाटक उपन्यासों को उनके असली रूप में पढ़कर यथेष्ठ लाभ कर सकें। विदेशी नाम, विदेशी रीति रिवाज और विचार, उन्हें अटपटे से मालूम होते है। इसीलिये मैंने जर्मनी के पात्रों को 'भारतीय जामा पहनाने का प्रयत्न किया है।" (भूमिका)

केवल नामों में ही नहीं, वातावरण में भी अन्तर है। नाटक का पूरा वातावरण भारतीय है। मदन मोहन, कृष्ण कुमार मंत्री का लड़का है। माधव प्रसाद एक प्रसिद्ध संङ्गीतज्ञ है। उसकी लड़की विमला है। मदन और विमला में प्रेम है दोनों जब माँ, बाप के विरोध स्वरूप विवाह बन्धन में नहीं बध पाते तो विष खाकर आत्महत्या कर लेते है। यही नाटक का अन्त है। भावानुवाद के रूप में रूपान्तर सुन्दर कहा जा सकता है।

नातन

दूसरे प्रसिद्ध जर्मन नाटककार लेसिंग के 'नातन दर वेज' के उर्दू अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर है। मूल जर्मन से अनुवाद मुहम्मद नई मुर्रहमान ने किया था। उसी का आधार लेकर अबुल फजल ने इसका हिन्दी रूपान्तर किया। इस नाटक का अनुवाद यूरोप की कई भाषाओं में हो गया था। फलत: अंग्रेजी में भी इसका अनुवाद हुआ था। पर नई मुर्रहमान ने अंग्रेजी अनुवाद का सहारा न लेकर मूल जर्मन का सहारा लिया। यूरोप में यहूदियों तथा ईसाइयों का बहुत दिन तक झगड़ा चलता रहा। भारत में भी हिन्दू मुसलिम-विरोध के कारण भयानक अनर्थ हुआ है। अत: समान परिस्थितियों में नातन इस देश के लिये भी अनुकूल होगा, इसीलिये इसका अनुवाद किया गया। नातन एक यहूदी होते हुए भी आदर्शगुणों से सम्पन्न है। साम्प्रदायिकता को दूर करके वह विश्व-बंधुत्व की स्थापना करता है, इसीलिये हमारे देश वासियों के लिये भी उसका चरित्र अनुकरणीय है। यह आठरहवीं सदी की यूरोप की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है:

मिना अथवा प्रेम प्रतिष्ठा

लेसिंग के दूसरे नाटक 'मिना फन वार्न ह्यलम का' अनुवाद डा० मंगलदेव शास्त्री ने किया। यह नाटक लेसिंग की कीर्ति का अचल स्मारक है। इस अनुवाद में मूल भावों, विचारों तथा नामों में परिवर्तन नही हुआ है। नाटक पाँच अंकों का है। संकलन त्रय का पूर्ण रीति से पालन किया गया है। नाटक की सारी कथा २२ अगस्त १७६३ के प्रातः से लेकर संध्या तक 'स्पेनिश किंग होटल' में पूरी हो जाती है। नाटक के पात्र दो वर्गों में बांटे जा सकते है। एशिया निवासी और सैक्सन। मिना और फ्रांसिस्का सैक्सन हैं। ट्यूल हाइम, वर्नर और जुस्ट प्रशियन है। दोनों वर्गों का सम्बन्ध होटल के मैनेजर द्वारा होता है, दोनों मिलकर एक पूर्ण चित्र बनाते है। नाटक की मुख्य कथा एक अंगूठी के धरोहर रखने, छुड़ाने तथा लौटाने पर आधारित है। मिना एक प्रफुल्ल, दयालु तथा सुशील नायिका है, जो ट्यूल हाइम से प्रेम करती है। नाटक का अनुवाद विद्वान लेखक ने सुन्दर किया है।

फाउस्ट

गेटे का प्रसिद्ध नाटक है, जिसका अनुवाद मूल जर्मन से भोलानाथ शर्मा ने किया। मूल नाटक पद्य में है, परन्तु अनुवादकार ने इसकी भाषा गद्य रखी है। इटैलियन भाषा मे एक कहावत है कि अनुवादक वंचक होते हैं (ट्रेडुटोरी ट्रेडीशन)। उसके अनुसार यह कहा जा सकता है, कि यह अनुवाद केवल भावानुवाद है। मूल नाटक की आत्मा और सौंदर्य को लाने में लेखक असफल हुआ है। नाटक की कथा यूरोपीय साहित्य में प्रसिद्ध है। योहान फाउस्ट विश्व का वैभव भोगने की इच्छा से शैतान से प्रण करता है। शैतान का एक सेवक मेफिस्टोफिलीस चौबीस वर्षों तक उसकी सहायता करने का लोभ देकर फाउस्ट की आत्मा खरीद लेता है। अब फाउस्ट भोग और वैभव के तरल सागर में निमग्न हो जाता है। अनुपम सुन्दरी हेलेन के सौन्दर्य भोग में सब कुछ भूल जाता है। अन्त में शैतान उसे धोखा देता है, और नरक में फाउस्ट घोर यातना सहन करता है। कथा का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि सारे यूरोप में फाउस्ट के समान अतृप्ति और सुख की लालसा है। गेटे अपने युग का पैगम्बर था, अतः उसने यूरोप को फाउस्ट के रूप में अपना पैगाम दिया। अनेक आलोचकों का कथन है कि इसमे समग्र मानव जाति की वासनाओं का इतिहास है। इसी रचना के आधार पर मारलो ने 'डा० फास्टस' नामक नाटक लिखा था।

प्रायश्चित अथवा उन्मुक्ति का बंधन

बेलजियम के प्रसिद्ध कवि मैटरलिंक के काव्य नाटक 'सिस्टर वियट्रिस' का अनुवाद पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी द्वारा हुआ। मैटरलिंक एक दार्शनिक वस्तुओं का कवि और नाटककार था। उसके नाटकों में भौतिक तथा शारीरिक चित्रण न होकर आत्मा का चित्रण होता है। मूल नाटक में जो माधुर्य और दिव्यता है, उसकी केवल छाया मात्र अनुवाद में मिलती है। नाटक के आरंभ में निम्नांकित पद नाटक की मूल भावना को प्रकट करता है—

"पाप ताप मे जलकर भी, जो होता नहीं निराश।
नहीं छोड़ सकता जो अपना प्रेम-पूर्ण विश्वास।
रह सकता क्या कभी जगत में उसका पाप-कलक।
कैसा भी हो, उसको देवी देती अपना अंक।

मूल नाटक के भावों, विचारों तथा पात्रों के नामों का भारतीयकरण किया गया है। 'कमला' नाटक की नायिका है, जिससे कुमार सिंह देवी के मंदिर में अपना प्रेम प्रकट करता है, परन्तु कमला उदासीन है। अन्त में देवी की गोद में पश्चाताप करते हुए वह मृत्यु को प्राप्त होती है।

मग्दालिनी

मैटरलिंक का एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसका अनुवाद जैनेन्द्रकुमार ने मूल नाटक से किया है। भावों तथा नामों में परिवर्तन नहीं किया गया है। नाटक की भूमिका में जैनेन्द्रकुमार इसकी प्रशंसा करते हुए लिखते है, कि "इस छोटे से नाटक में आत्मा की एक बड़ी ट्रेजेडी बन्द है। मैं तो इससे हिल गया।" नाटक केवल तीन अङ्कों का है। मग्दालिनी एक गेलीलियन स्त्री है, जो एकान्त सेविका है। उसका प्रेमी बेरस है। मग्दालिनी पर एक दैवी ध्वनि का प्रभाव है, जिसकी ओर वह सांसारिक प्रेम को छोड़कर आकर्षित होती है, तथा अपने मे महान परिवर्तन पाती है, अन्त में, अपने प्रेमी से अलग होकर आध्यात्मिक जीवन बिताती है। नेजरिन ईसा का भक्त है, जो मुर्दा को जीवन दान देता है। अनेक मुर्दे जी उठे हैं, नाटक में भय और आश्चर्य का वातावरण उपस्थित करते हैं। नाटक में आध्यात्मिक वातावरण है। जैनेन्द्रकुमार का अनुवाद सुन्दर हुआ है। मूल नाटक के सौन्दर्य को पकड़ने की चेष्टा की गई है।

विपता

मेसफील्ड के एक ट्रेजेडी (ट्रेजेडी आफ नेन) का अनुवाद उमा नेहरू ने किया है। नाटक में यथार्थवादी घरेलू वातावरण का चित्रण है। भारतीय वातावरण से इसका पूर्ण साम्य है। अनुवाद के उद्देश्य को लेखिका ने भूमिका

मे स्पष्ट करते हुए कहा है "ट्रेजेडी' ग्राफ नेन की खूबी यह है, कि हमारे ख्याल को ग्रमीरों ग्रौर रईसों के जीवन से हटाकर गरीबों के दुखों की ग्रोर ले जाती है। हमारे देश में ऐसे घर बहुत कम होगे, जिनमें मिसेज पराजिटर ग्रौर नैन न हों। उन घरों की ग्रादत सुधारना, गिरे हुग्रों को उभारना जिन्दगी की सबसे बड़ी ग्रावश्यकता है। 'मेजफील्ड' ने देहाती टूटी फूटी जवान में, गरीब किसानों की रोजमर्रा की बातों में, ग्राकाश गंगा को जमीन पर बहाकर दिखा दिया है। विलियम पराजिटर एक निर्धन किसान है। जेनी उसकी पुत्री है. नैन, पराजिटर की ग्रनाथ भाँजी है। नाटक की कथावस्तु के निर्वाह में सकलन-त्रय का पूर्ण निर्वाह किया गया है। कथा चार बजे संध्या से प्रारम्भ होकर दस ग्यारह बजे रात तक समाप्त हो जाती है। नैन के साथ श्रीमती पराजिटर ग्रसह्य क्रूरता का व्यवहार करती है। गालियाँ तथा कटूक्तियों की बौछार उस पर पड़ती रहती है। नैन संतोष ग्रौर धैर्य से कष्टों को सहन करती है। नैन के चरित्र में ग्रनाथ मानवता की करुण गाथा भरी पड़ी है। ग्रनुवाद की भाषा ठेठ मुहाविरेदार बोलचाल की भाषा पात्रों को ध्यान में रखकर रखी गई है। इस दृष्टि से ग्रनुवाद सफल है। यथार्थवादी नाटकों की ग्रोर भारतीय लेखकों का ध्यान कितने वेग से जारहा था, विपता' इसका परिचायक है।

विनाश की घड़ी

फ्रेंच लेखक रोम्या रोला के ग्रत्यन्त प्रसिद्ध नाटक 'द फोरटीन्थ ग्राफ जुलाई' का ग्रनुवाद, ठाकुर राजबहादुर सिंह ने १९२२ ई० में किया। नाटक में फ्रांस की राज्य क्रान्ति ग्रौर उसके प्रभाव का वर्णन किया है। टेकनीक इतना उत्कृष्ट कोटि का है, कि सारे नाटक का कथानक केवल तीन चार पात्रों के द्वारा पूर्ण हो जाता है। मूल के भावों में परिवर्तन नहीं किया गया है। फ्रांस की राज्यक्रान्ति का इतना सजीव चित्र शायद ही कहीं देखने को प्राप्त होता हो। सामन्तों तथा धनिकों का ग्रत्याचार चरम सीमा पर पहुँच गया था। ग्रनाज की बोरियाँ समुद्र में फेक दी जाती थीं, परन्तु क्षुधा की ज्वाला से तड़-पते बच्चों को नहीं दी जाती थी। वे ग्रनाथ बच्चे सड़कों पर चिल्लाते ग्रौर नारे लगाते हैं जिसका ग्राशय है, सरकार परश्तों का नाश हो, ग्रमीरों का नाश हो, बुढ़िया कुजड़िन भी उसमें सम्मिलित हो जाती है। वार्सेई के दुर्ग पर १३ जुलाई की रात को मजदूरों तथा जनता का दल एक भयंकर ग्रांधी की भाँति, ग्राक्रमण करता है। भयङ्कर संहार, उपद्रव, ग्रग्निकांड तथा गोलाबारी का दृश्य उपस्थित होता है। दुर्ग पर जनता का ग्रधिकार हो जाता है ग्रौर राजसता जनता ग्रपने हाथों में ले लेती है।

न्याय

प्रेमचन्द ने इङ्गलैंड के यथार्थवादी परम्परा के प्रसिद्ध नाटककार जान गाल्सवर्दी के 'द जस्टिस' का अनुवाद किया जो हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा प्रकाशित हुआ। नाटक चार अङ्कों का है। इसमें गरीबों के प्रति न्याय की धाँधली का चित्रण किया गया है। जेम्स एक वकील है। कोकसन वकील का क्लर्क है। नाटक मे यथार्थवादी टेकनीक का सफलता से पालन किया गया है।

हड़ताल

यह भी गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' नामक तीन अङ्कों के नाटक का अनुवाद हैं। हिन्दुस्तानी एकैडमी का यह प्रकाशन है। नाटक की भूमिका में श्री ताराचन्द जो लिखते है कि "उन्नीसवी सदी में यूरोप की जातियों में बड़ो भारी तबदीली हुई, जिसका गहरा असर उनके समाज, रहन सहन के ढङ्ग, कला और व्यापार के तरीके, मुल्क के संगठन और प्रबन्ध पर पड़ा। मनुष्य की जिन्दगी का कोई पहलू इस प्रभाव से न बचा। आजादी, समता और देश प्रेम के भावों ने लोगों के दिलों को पलट दिया। हिन्दुस्तान के हृदय में भी आज कुछ ऐसे ही विचार और भाव हिलोर ले रहे हैं। हमारे जीवन में भी एक अद्‌भुत हलचल है, जो यूरोप की उन्नीसवी सदी के परिवर्तन से कहीं अधिक है। यहाँ भी नये और पुराने युग के सघर्ष ने भयानक रूप धारण किया है। इस खींच तान का असर जीवन के सभी अङ्गों पर दिखाई पड़ता है। हम यह चाहते हैं, कि हमारे नाटक लिखने वाले इन ड्रामों की तरफ़ ध्यान दें और हमारे देश के रहने वाले, इनमें दिलचस्पी लें। जान एथोनी एक टीन के कारखाने का मालिक है, उसकी शोषण नीति तथा अत्याचार के कारण कारखाने में हड़ताल हो जाती है। मजदूरों का नेता डेविड राबर्टस है, उसके घर में बच्चे भूखों मरते हैं, पत्नी बीमार है, फिर भी, वह झुकने के लिए तैयार नहीं है। वह आपस में चन्दा करके रोटी नमक का प्रबन्ध करते हैं, पर मैनेजर की लड़की की सहानुभूति नहीं चाहता। राबर्ट की पत्नी की मृत्यु हो जाती है। फिर भी वह किसी भी भाँति झुकने को तैयार नहीं है।

चाँदी की डिबिया

गाल्सवर्दी के 'द सिलवर बाक्स' का अनुवाद प्रेमचंद द्वारा हुआ। इस नाटक में धनी रईसों के बिगड़े हुए, दुश्चरित पुत्रों के कारनामों, न्याय की धाँधली तथा बेकारी की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। जान वार्थिविक पार्लियामेंट का सदस्य है, उसका लड़का जैक्स, जोन्स नामक साईस की कुसंगति में पड़कर

शराबी हो जाता है । एक दिन एक भलेमानस के घर से चाँदी की डिबिया और कुछ रुपये चुरा लाता है, परन्तु अपराध गरीब जोन्स के सिर मढ देता है । परन्तु बाद में जब जाँच होती है, तो सच्चे रहस्य का पता चलता है, न्यायालय मे वार्थिविक तथा उसके परिवार की भद्द होती है । भारत में भी जमीदारों के बिगड़े पुत्रों की यही कथा है । बेकारी की समस्या हमारे देश में भी उग्र रूप से है । अतः नाटक का वातावरण हमारे देश की परिस्थितियो से मिलता जुलता है । अन्त मे न्यायालय मे वार्थिविक की सिफारिश के कारण उसका लड़का दोष मुक्त घोषित होता है । निर्दोष जोन्स को एक माह का दण्ड मिलता है । भारत में न्याय तथा धाँधली ठीक इसी प्रकार है, जहाँ दोषी चैन की बंशी बजाते हैं, और निर्दोष सजा भोगते हैं । इसी को ध्यान में रखकर प्रेमचन्द ने गाल्सवर्दी के इन यथार्थवादी नाटकों का अनुवाद किया । टेकनीक की दृष्टि से इन नाटकों का कथानक सरल, सम्वाद संक्षिप्त तथा इसमें अभिनेय तत्वों की पूर्णता है । गाल्सवर्दी के नाटक इब्सन और शा की परम्परा में यथार्थवादी टेकनीक के सफल उदाहरण हैं । हिन्दी में भी इसी टेकनीक की ओर लेखकों का ध्यान जा रहा था, इसीलिये उनके अनूदित स्वरूप सामने आये ।

धोखा धड़ी

गाल्सवर्दी के 'स्किन गेम्स' का अनुवाद ललिताप्रसाद सुकुल द्वारा हुआ । हिल क्राइस्ट एक देहाती रईस है, उनका एक पुराना आसामी जो उनके मकान में, किराये पर पिछले बीस वर्षो से रहता है, उनके पास आकर शिकायत करता है, कि उसके घर को हार्न क्लोअर नामक रईस ने खरीद लिया है, और वह वहाँ एक चिमनी खड़ी करना चाहता है । हिल क्राइस्ट की पत्नी बड़ी चालाक है, वह हार्न क्लोअर को झुका देती है । बैनामे पर उससे चालाकी से हस्ताक्षर करा लेती है, जमीन और घर को बचा लेती है । जिल हिल क्राइस्ट की पुत्री है । वह अपने पिता से एक स्थान पर कहती है, कि "जब तक बूढ़ों से पिंड न छूटेगा तब तक संसार रहने-योग्य ही नही होगा' । परिणामतः नाटक में नवीन और प्राचीन विचारों का संघर्ष है, जो आज दिन भारत की एक ज्वलंत समस्या है । गाल्सवर्दी के नाटकों में कथावस्तु तथा टैकनीक दोनों दृष्टिकोण से पुराने नाटकों से आकाश पाताल का अन्तर दिखाई देता है । हिन्दी नाटकों में भी इसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई देने लगा, क्योंकि उनका ढाँचा पश्चिम नाटकों के आधार पर बना ।

सभ्यता का शाप

टालस्टाय के एक नाटक का अनुवाद ठाकुर राजबहादुरसिंह ने किया ।

प्रथम अध्याय में यथार्थवादी परम्परा का विकास बतलाते हुए रूस के टालस्टाय चेखब और गोर्की का नाम लिया गया है। टालस्टाय एक उच्च विचारों का लेखक था, जिसने अपना सारा जीवन गरीबों की सेवा में लगा दिया। टालस्टाय की रचनायें भारतीय मनोवृत्ति के अनुकूल है, क्योंकि रूस देश की सामाजिक और राजनीतिर्क दशा भारत के समान ही रही है। हमारे देश के जमींदारों और रईसों की भांति रूस में भी जारशाही का प्रबल आतंक दीन-किसानों पर बना हुआ था। रूसी जमींदार भोग विलास में लिप्त साधारण जनता को कुत्ते और बिल्ली के रूप में समझते थे। वे धनभक्त थे। इस नाटक में रूस के टल्लेनवीस रईस का वर्णन है, जो प्रेतात्माओं को बुलाया करते थे। लियोनिड फ्रेडरिच ६० एकड़ जमीन का ऐसा भूमिपति है, जो प्रेमात्मा में विश्वास रखता है। उसकी स्त्री एनापावलोना भारतीय नारियो की भांति अन्ध विश्वासी है। थियोडोर आइवेन्स एक सुधारक है। नाटक की सारी घटनाएँ मास्को नगर में घटती हैं। एना किसानों को धक्के देकर निकलवा देती है, क्योंकि उनके कपड़ों में कीटाणु भरे पड़े है। अतः वह सारे घर को फिनायल से धुलवा डालती है। तान्या एक दासी है, वह साइमन से विवाह करना चाहती है, पर उसे प्रेतात्माओं का दौरा होता है। वह ज्योंही मेज पर झपकी लेता है, मेज हिलती हुई दिखाई देती है। क्लब मे शराब का दौरा चलता है। सभी लोग पोल्का मजकी नृत्य करते है। सारा नाटक रूस के दीन किसानों तथा धनी लोगों के दैनिक जीवन की घटनाओं से भरा पड़ा है।

कलाकार की करतूत

टालस्टाय के दूसरे नाटक 'द फर्स्ट डिस्टिलर' का अनुवाद है, जो सस्ता साहित्य मंडल द्वारा क्षेमानन्द राहत ने किया है। इस नाटक में शराब के दुष्परिणामों का चित्रण है। अनाज के रस से शराब तैयार करके, नाटक का प्रमुख नायक पीता है, तथा अन्य कृषकों को पिलाता है। नाटक के अन्त में धन के समान वितरण पर जोर दिया गया है, जिसमें साम्यवादी विचारधारा की झलक है।

अंधेरे में उजाला

टालस्टाय के 'एंड लाइट शाइन्स इन डार्कनेस' का अनुवाद क्षेमानन्द राहत द्वारा हुआ। इसमें कल्पित पात्रों की आड़ में टालस्टाय अपने जीवन की कथा स्वयं सुनाता है। नाटक का नायक टालस्टाय की तरह अपनी सारी संपत्ति गरीबों को दान देना चाहता है, परन्तु उसकी स्त्री विरोध में खड़ी होती है। इस नाटक की टेकनीक पूर्ण यथार्थवादी है।

जिन्दा लाश

टालस्टाय के 'द लिविंग कार्प्स आर रिडेम्शन' का उसी लेखक द्वारा अनुवाद है। इस नाटक का नायक फीडिया अपनी स्त्री के दुराचार से संतप्त हो कर नदी के किनारे अपना कोट रखकर कहीं अदृश्य हो जाता है, और इस तरह लोग उसके डूब मरने का सन्देह करते है। दूसरे की लाश पाकर उसे दफन करते हैं। यह सारा रहस्य एक मनुष्य को मालूम था। फीडिया नदी मे तैर कर जीवित निकलता है, मजिस्ट्रेट को एक पत्र लिखकर अपनी पत्नी के दुराचार के विषय में कहता है। स्वयं न्यायालय मे जाता है। उसकी स्त्री लिसा और उसका प्रेमी पकड़ा जाता है। परन्तु अन्त मे, जीवन से निराश होकर फीडिया अपनी आत्महत्या कर लेता है। नाटक मे रूस के वैवाहिक जीवन का यथार्थवादी चित्र है। वातावरण में परिवर्तन नहीं हुआ है।

पाप और प्रकाश

टालस्टाय के 'द पावर आफ डार्कनेस' का अनुवाद जैनेन्द्रकुमार द्वारा हुआ है। पात्रों के नाम तथा वातावरण के चित्रण में भारतीय वातावरण उपस्थित किया गया है। जोधराम एक साधारण किसान है। उसी के पारिवारिक जीवन, और उसकी दुर्बलताओं का चित्रण इसमें किया गया है।

बालकों का विवेक

टालस्टाय के 'द मारल्स आफ माइन डक्स' का अनुवाद रामनाथ सुमन द्वारा हुआ। इसमे बालकों मे ईश्वर का निवास रहता है, इसी का चित्रण है।

टालस्टाय के इन नाटको मे दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है। दीन हीन रूसी गरीबों और मजदूरों के शोषित तथा दुखी पारिवारिक जीवन का चित्रण, पूँजीपतियों का अत्याचार तथा कृषकों के जीवन में रोजगार की योजना। टालस्टाय स्वयं एक उच्च विचारों का व्यक्ति था। वह स्वयं एक धनी भूमिपति था, परन्तु उसने अपनी सम्पत्ति को दीनों की सेवा में अर्पण कर दिया। उसके सामाजिक सिद्धान्त उसके 'रिसुरेक्शन वार एण्ड पीस' और 'ऐना करिन्ना' नामक उपन्यासों में भरे पडे हैं। पाशविक जीवन को दमन करके, सदाचार पूर्ण जीवन बिताने का समर्थक था। हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी टालस्टाय के आदर्शों से प्रभावित थे। वे टालस्टाय को अपना गुरु मानते थे। उन्होंने अहिंसा का सिद्धान्त टालस्टाय से ही लिया। हिन्दी के अनेक नाटककारों और उपन्यास लेखकों पर टालस्टाय की विचारधारा और उसके सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा है। भारत की वही परिस्थिति है, जो रूस की थी। अतः उसकी कृतियाँ बहुत कुछ हमारे देश के लिये, अनुकूल

सिद्ध होती हैं। हिन्दी नाटकों पर टालस्टाय की विचारधारा का कितना प्रबल प्रभाव है, इन अनुवादों से स्पष्ट सिद्ध होता है। रूस के समान ही भारत भी एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ किसानों की संख्या बहुत अधिक है। रूस के ज़ारों की भाँति भारतीय जमीदार भी विलासिता तथा आलस के प्रतीक थे। और उनका अत्याचार दीन किसानों पर अत्यन्त निर्मम रूप से होता था। दोनो देशों के वातावरण मे बहुत कुछ साम्य है।

प्रेम की पराकाष्ठा

सत्यजीवन वर्मा द्वारा 'द डचेस आफ पादुआ' का अनुवाद है। आस्कर वाइल्ड कला के लिये कला के सिद्धान्त का समर्थक था।[१] उसने अपनी कृतियो में नग्न यथार्थवाद का चित्रण किया। हिन्दी के अनेक उपन्यासकारों तथा नाटककारों पर आस्कर वाइल्ड के नग्न यथार्थवाद का प्रभाव पड़ा। 'प्रेम की पराकाष्ठा' एक दुखान्त नाटक है, जिसमें गाइडों, जो एक राजा के यहाँ राजदूत था, उसकी रानी को प्रेम करने लगता है। रानी स्वयं उसके प्रेम में इतनी उन्मत्त हो जाती है, कि अपने पति राजा की हत्या कर डालती है, अन्त में गाइडो बन्दीगृह में डाल दिया जाता है। रानी भी विषपान करके मर जाती है। सारा नाटक प्रेम चर्चा, चुम्बन, आलिंगन, हत्या, बध तथा विषपान के भयानक वातावरण से भरा पड़ा है। कौतूहल और आकस्मिकता के तत्त्व आदि से अन्त तक मौजूद है। शैली आकर्षक तथा चुस्त है। टेकनीक की दृष्टि से यह बड़ा ही सफल नाटक है। यही कारण है, कि उग्र, ऋषभचरण जैन, आदि लेखकों पर आस्कर वाइल्ड का प्रभाव पड़ा है।

प्रो० रामकृष्ण शिलीमुख ने गोल्डस्मिथ के 'शी स्टुप्स टु कानक्वर' नाम सुखान्त नाटक का अनुवाद हः हः हः के नाम से किया। जैसा कि, नाटक के नाम से ही प्रकट है, इसमें हास्य तथा विनोद की प्रचुर सामग्री उपस्थित है। नाटक में भारतीय वातावरण है, परन्तु मूल नाटक के उल्लास को पकड़ने की चेष्टा लेखक ने की है।

सारांश

उपर्युक्त यूरोपीय नाटको के अनुवादो से यह स्पष्ट है कि हिन्दी विद्वानों तथा नाटककारों का ध्यान केवल अंगरेजी नाटकों की ओर ही न जाकर जर्मन, फ्रेंच, रूसी, भाषाओं के नाटककारों की ओर गया। इतना ही नहीं, वेलजियम के मैटरलिंक तथा आयरलैंड के आस्कर वाइल्ड की कृतियों की ओर भी हिन्दी

१—'द वर्ल्ड ड्रामा'—निकोल, पृ० ७४३।

लेखकों का ध्यान गया। इन अनुवादों से स्पष्ट है, कि नाटककारों का ध्यान उदात्तवादी (क्लैसिकल) या स्वच्छन्दतावादी नाटकों की ओर कम परन्तु यथार्थवादी नाटकों की ओर अधिक गया। फलतः यथार्थवादी वातावरण के चित्रण तथा टेकनीक के अनुसरण की प्रवृत्ति बड़े जोर से हिन्दी नाटक क्षेत्र में बढने लगी। आगे चलकर, हम देखेंगे कि नारवे के इब्सन नामक नाटककार का, जिसकी कृतियों से सारे यूरोप मे विषय तथा टेकनीक दोनों के दृष्टिकोण से एक युगान्तर उपस्थित हो गया, हिन्दी नाटक पर प्रभूत प्रभाव पड़ा। फलतः हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य अनेक देशों की कृतियों और सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव हम देखते है। इनमें से कुछ अनुवाद मूल से तथा बहुत अंग्रेजी माध्यम से हुए। इन नाटकों में विषय विस्तार की दृष्टि से उच्च वर्ग के जीवन का त्याग तथा मध्यम तथा निम्न वर्ग की परिस्थितियों का चित्रण अधिक हुआ। टेकनीक की दृष्टि से सरल रंगमंच विधान, पद्य के स्थान पर गद्य के प्रयोग को अपनाया गया। क्लासिकल नाटकों की प्रवृत्तियों को त्यागने की प्रवृत्ति अधिकतर दिखाई पड़ी। हिन्दी नाटको पर भी कथानक तथा टेकनीक दोनों में तद्नुकूल महान परिवर्तन हुआ। संस्कृत नाटकों के जटिल नियमों तथा परम्पराओं को त्याग कर सरल दृश्यों तथा कथानकों की ओर हिन्दी नाटककारों का ध्यान गया। उच्च वर्ग के राजा, रानियों तथा धनिकों के स्थान पर मध्यम वर्ग के नर नारियों तथा दीन किसानों और मजदूरों का चित्रण किया जाने लगा। स्वगत तथा पद्य का प्रयोग कम हुआ, और पारसी नाटकों की यथात्मकता सदा के लिये चली गई। रस परिपाक को महत्व न देकर, शील वैचित्र्य तथा संघर्ष को प्रधानता मिलने लगी। सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों में महान् परिवर्तन दिखाई पडा। जनतंत्र के विकास से जनतंत्रीय शासन तथा राजसत्ता का आन्दोलन प्रबल रूप से मुखरित हुआ। स्त्री-स्वतन्त्रता तथा समानाधिकार की आवाज भी गूंज उठी।

उपसंहार

प्रसाद-युग के नाटककारों पर 'प्रसाद' की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का विशेष अनुकरण हुआ। इन नाटककारों में प्रसाद एक प्रकाश-पुंज के समान थे, जिनकी प्रतिभा के दिव्य आलोक से हिन्दी काव्य और नाटक-साहित्य का प्रांगण जगमगा उठा। भारतेन्दु के पश्चात बहुत दिनों तक हिन्दी-नाटक क्षेत्र में कोई ओजस्वी और प्रतिभा सम्पन्न नाटककार नहीं आया था। प्रसाद ने हिन्दी नाटक-साहित्य को एक उत्कृष्ट साहित्य के रूप में परिवर्तित किया। उन्हें हिन्दी नाटक का शेक्सपीयर कहने में, हम तनिक भी संकोच नहीं करेंगे। इस युग के नाटकों में देशानुराग, स्वदेश भक्ति, हिन्दू मुसलिम एकता तथा व्यक्ति-

गत स्वतंत्रता तथा जन-शक्ति के विकास पर जोर दिया गया। उच्च वर्ग के राजे महराजे, तथा धनिकों के भोग लिप्सा का विरोध किया गया। परन्तु राजपूती शौर्य तथा वीरता को देश प्रेम तथा राष्ट्रीय जागरण के लिये ग्रहण किया गया। शताब्दियों से पुरुष की लौह-श्रृङ्खला में बद्ध नारी को स्वच्छन्द वायु में घूमने का अवसर मिला। उसके अधिकारों तथा स्वतंत्र विचारों का भी प्रकाशन होने लगा। यथार्थवादी नाटकों में, विधवा-विवाह का समर्थन किया गया। पर्दा, बालविवाह तथा नारी अशिक्षा का विरोध किया गया। उन्मुक्त प्रेम, तलाक तथा समानाधिकार की भी मर्मर ध्वनि मुखरित हुई, जो आगे चल कर एक उच्च घोष के रूप में बदल गई।

टैकनीक की दृष्टि से पाश्चात्य नाटकों के आदर्शों का पालन अधिक हुआ परन्तु संस्कृत नाटकों के नियमों का सम्पर्क भी बना रहा। शेक्सपीयर के रोमांटिक नाटकों के वातावरण को अधिक प्रश्रय मिला। अंगरेजी के अतिरिक्त अन्य यूरोपीय साहित्य के मंथन तथा अध्ययन की ओर भारतीय विद्वानों का ध्यान अधिक गया। फलतः जर्मनी, फ्रांस, तथा रूस के नाटककारों की कृतियों का अनुवाद तथा उनकी नाटकीय विशेषताओं को अपनाने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई दी। एक प्रकार से आधुनिक नाटक साहित्य की सारी आधार-भूमि बीज रूप में प्रसाद युग के नाटककारों द्वारा विकीर्ण हो गई थी, जो आगे चलकर महान वृक्ष के रूप में पल्लवित तथा पुष्पित हुई।

—*—*—

पंचम अध्याय

प्रसादोत्तर-युग के नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव

युग प्रवृत्ति, विचारधारा तथा सिद्धान्त

पाश्चात्य देशों में विज्ञान के ग्राविष्कारों के कारण ग्रावागमन, रहन-सहन तथा भौतिक साधनों की उपलब्धि में दिन प्रतिदिन उन्नति होती जारही थी। मानव ने प्रकृति पर विजय पाने की चेष्टा में ग्राशातीत सफलता प्राप्त कर ली थी। योरुप में पोप का प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, ग्रतः धर्म ग्रौर ईश्वर का स्थान तर्क तथा बुद्धि ने ग्रहण कर लिया था। जीवन की प्रत्येक समस्या पर मनुष्य ने वैज्ञानिक या बौद्धिक दृष्टि से विचार करना प्रारम्भ किया। विचार स्वतंत्रता की बढ़ती हुई शक्ति के कारण समाज, राजनीति धर्म तथा दर्शन की पुरानी परम्परायें ढहने लगीं ग्रौर उनके मूल्यों में एक महान परिवर्तन उपस्थित हुग्रा। सारे यूरोप में एक बौद्धिक चेतना की लहर फैल उठी। जिसका उत्कर्ष उपयोगितावाद के रूप में हुग्रा। इसका सूत्रपात सबसे प्रथम जान स्टुग्रर्ट मिल ने किया था।

उपयोगितावाद

उन्नीसवी शताब्दी में यूरोप में वैज्ञानिक ग्राविष्कारों के प्रसार ने विचार स्वातंत्र्य तथा जनतन्त्र की वृद्धि में बहुत सहायता दी। इसी समय कुछ ऐसे

विचारक उत्पन्न हुए, जिन्होंने उपयोगितावाद के सिद्धान्त का प्रवल रूप से समर्थन किया। यह सिद्धान्त 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख' को लेकर चला। इसके प्रधान समर्थको में वेन्थम, जेम्स मिल, आस्टिन तथा जान स्टुअर्ट मिल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये सभी विचारक अंग्रेज थे। वैसे मानव कल्याण को लेकर चलने वाले दार्शनिकों में लॉक और ह्यूम का नाम सबसे प्रथम आता है। इसका प्रारम्भ सबसे प्रथम रिचर्ड कम्बरलैंड ने सत्तरहवी शताब्दी में किया, परन्तु इसका विकास बाद में उपर्युक्त विचारकों द्वारा हुआ। इन दार्शनिकों ने जनता के कल्याण के लिये केवल सिद्धान्तों द्वारा ही समर्थन नहीं किया, वरन् उसके लिये महान् आन्दोलन भी किया। जिसके कारण पार्लियामेन्ट के कई कानूनों में परिवर्तन किया गया। कारखानों के मजदूरों की दशा में सुधार किया गया। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के निर्वाचन मे मताधिकार का क्षेत्र इतना अधिक विकसित हुआ कि सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार न केवल सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया बल्कि उसे व्यावहारिक रूप भी दिया गया। चार्टिस्ट आन्दोलन कार्नलाज, तथा दीनों सम्बन्धी कानून (Poor Laws) के समर्थन में इन लोगों का स्वर प्रमुख था। जिसका परिणाम यह हुआ कि मानवतावाद का नारा यूरोप में बड़े जोर शोर से गूंज उठा।

जेरेमी वेन्थम ने वास्तव में उपयोगितावाद का शिलान्यास किया। उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जितने भी सुधार हुये, सब पर वेन्थम का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा उसका जन्म १५ फरवरी १७४८ को लन्दन के एक मुहल्ले में हुआ था। परम्परागत उसने अपने पिता की भाँति बकालत का व्यवसाय उठाया। वह युवावस्था में ही बहुत ही मेधावी था। अन्त में कानूनों के सुधार की ओर उन्मुख हुआ। उसकी अनेक पुस्तकों में A Theory of Punishment and Rewards, तथा An Introduction to the Principles of Morals and Legislation अधिक ख्याति पूर्ण हैं। वेन्थम का कथन है कि दुःख और सुख ही मानव जीवन के दो प्रधान पहलू हैं, हम दुख से बचना चाहते हैं और सुख पाना चाहते है। हमारे सम्पूर्ण कर्त्तव्यों की एकमात्र कसौटी उनकी उपयोगिता है।[1]

वह पहला व्यक्तिवादी था, जिसने मनवतावाद की नींव डाली। उसके

1. Nalure has placed mankind, under the governance of two sovereign masters pain and pleasure It is for them alone to point out what we ought to do. Benthan.
—*Principles of Moral and legis lation*, P. I.

विचारों का प्रभाव समस्त यूरोप पर पड़ा। भारत में भी लार्ड विलियम बैंटिक के अनेक सुधारों पर बेन्थम का स्पष्ट प्रभाव पड़ा।

जेम्स मिल स्काटलैण्ड का निवासी था। उसके पिता एक साधारण मोची थे। उसकी शिक्षा दीक्षा एडिनबरा विश्वविद्यालय में हुई थी। बाद में वह पादरी के पद पर नियुक्त हुआ और उसने दर्शन तथा राजनीति का गहन अध्ययन किया। कुछ दिनों पश्चात् वह लन्दन गया और बेन्थम के सम्पर्क मे आया। उसकी सबसे प्रथम पुस्तक कार्न ट्रेड (Corn Trade) १८०४ में प्रकाशित हुई। इसके पश्चात उसने भारत का इतिहास लिखा, जिसकी बडी ख्याति हुई। उसने उपयोगितावाद को मानव मनोविज्ञान पर आधारित किया, क्योंकि उसका वह महान पण्डित था। प्रतिनिधि शासन तथा वयस्क मताधिकार का समर्थन उसने बड़े जोरों से किया। वह धार्मिक शिक्षा का विरोधी था, लौकिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधियों की शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थी को देनी चाहिए, इसका उसने विशेष समर्थन किया। उसने मानवतावाद के सिद्धान्त को विकसित किया।

जान आस्टिन (John Austin) न्याय का महान पंडित था। उसका जन्म १७६० में हुआ था। बचपन में शिक्षा की पूर्ण सुविधा उसे न मिली, कुछ दिन सेना में रहा, बाद में उसने बैरिस्टरी पास की। परन्तु उसकी वकालत असफल रही। कुछ दिनों के लिये वह जर्मनी भी गया, और वहाँ न्यायशास्त्र का उसने अध्ययन किया। उसने सर्वोच्च सत्ता की परिभाषा व्यापक रूप से की। उसने उपयोगितावाद का अध्ययन न्याय शास्त्र के आधार पर किया।

जान स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill)

विचार-स्वातन्त्र्य तथा उपयोगितावाद का चरम विकास जान स्टुअर्ट मिल ने किया इसलिये सच्चे अर्थों में हम उसे उपयोगितावाद का पैगम्बर कह सकते हैं। उसका जन्म २६ मई १८०६ को हुआ था। उसके पिता जेम्स मिल उपयोगितावाद के महान विचारकों में से थे, यह हम ऊपर देख चुके हैं। जेम्स मिल बेन्थम का घनिष्ट मित्र था। दोनों जान स्टुअर्ट मिल को उपयोगितावाद के विचारों से दीक्षित करना चाहते थे। जान स्टुअर्ट मिल की शिक्षा का भार उसके पिता ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया। ग्रीक भाषा का गहरा अध्ययन उसने बचपन में किया था। चौदह वर्ष की अवस्था में बेन्थम भाइयों के साथ वह फ्रांस गया, वहाँ जीव शास्त्र तथा वनस्पति शास्त्र का अध्ययन उसने किया। उसकी भाषण शक्ति का विकास करने के लिये उसे 'यूटीलिटेरियन सोसाइटी' में भेजा गया। कुछ दिनों के पश्चात उसे इण्डिया आफिस में नौकरी मिल गई। सन् १८५६ में उसने कम्पनी के अधि कारों के

सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेंट को एक आवेदन पत्र दिया जिसकी बड़ी सराहना की जाती है। १८५१ में मिसेज टेलर नामक विचक्षण तथा कुलीन महिला से उसका विवाह हुआ, जिसने मिल के विचार दर्शन को बहुत अधिक प्रभावित किया। उसका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ On Liberty उसकी पत्नी को ही समर्पित है। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट का वह एक अत्यन्त सम्माननीय सदस्य था, जिसके विचारों का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जब तक वह पार्लियामेन्ट का सदस्य था उसने तीन बातों के लिये व्यापक आन्दोलन किया। १—आयरलैंड में भूमि सम्बन्धी सुधारों के लिये, २—स्त्रियों को विचार स्वातंत्र्य तथा मताधिकार दिलाने के लिये, तथा ३—दीन मजदूरों की आर्थिक दशा में सुधार के लिये फलतः यूरोप की तत्कालीन विचारधारा पर इन आन्दोलनों का व्यापक प्रभाव पड़ा। उसकी मृत्यु फ्रांस में ८ मई १८७३ को हुई।

मिल के उपयोगितावादी विचार—मिल की महत्वपूर्ण पुस्तकों में A Treatise on Liberty (१८५९) तथा प्रतिनिधि शासन (Constitution on Rkpresentative Govt.) १९६९ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। प्रथम पुस्तक ने यूरोपीय विचारधारा में महान क्रान्ति उपस्थित की। उसने व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन बड़े जोरदार शब्दों में किया। उसका कहना था कि व्यक्ति को उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये अधिक से अधिक अधिकार और सुविधायें राज्य द्वारा मिलनी चाहिए। परन्तु इस प्रकार की समानता और स्वतन्त्रता एक साथ सबको न देकर केवल परिपक्व बुद्धि वाले को ही देनी चाहिए, अन्यथा वे लोग उसका दुरुपयोग करेंगे। विचार स्वतंन्त्रता के साथ, भाषण स्वतन्त्रता का भी समर्थन प्रवल रूप से मिल ने किया, जिससे मनुष्य न केवल लौकिक; वरन आध्यात्मिक और मानसिक विकास की ओर भी प्रगतिशील हो।[1] उसका कहना था कि व्यक्ति को अपने विचारों के प्रकाश में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। यहाँ तक कि यदि किसी के विचार त्रुटिपूर्ण या अर्ध सत्य हैं, तो उनके प्रकाशन की भी स्वतंत्रता उसे मिलनी चाहिए। क्योंकि इन्हीं त्रुटिपूर्ण विचारों में से शाश्वत सत्य रूपी सूर्य अपनी प्रभा को बिखेरता है और सत्य की प्राप्ति होती है। विचार स्वातंत्र्य के साथ ही साथ व्यक्ति को 'कार्य करने की

1—'From conception of liberty as External freedom of action necessary for the discovery and pursuit of his material interest, Mill rose to the conception of liberty as free play for that spritual originality with all its result in Individual vigour and manifold diveristy which alone can constitude a rich, balanced and developed society.

—*E. Barker* :Political thought p. 10.

पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। व्यक्ति की इच्छाओं का दमन करना उसके व्यक्तित्व के विकास में रोड़े डालना है इसलिये प्रतिनिधि शासन ही उसके विचार से सर्वोच्च शासन है, जहाँ व्यक्ति स्वातंत्र्य को पूरा अवसर मिलता है। मताधिकार ही वह आधारशिला है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। मिल ने युगों की परवशता तथा शृङ्खला की कड़ियों में बद्ध नारी-जगत को उन्मुक्त वातावरण में साँस लेने का आन्दोलन किया। वह नारी की बौद्धिक क्षमता को पुरुष की अपेक्षाकृत तनिक भी कम नहीं समझता था। इसलिये स्त्रियों को दासता तथा पराधीनता के पास से उन्मुक्त करने के लिये तथा उन्हें उचित शिक्षा तथा समानाधिकार के लिये घोर आन्दोलन किया। नारी-स्वातन्त्र्य का जो रूप आज हमें प्राप्त होता है, उसके निर्माण में जान स्टुअर्ट मिल का बहुत बड़ा हाथ था।

सारांश यह है कि यूरोप में अठारहवी शताब्दी के पश्चात औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उपयोगितावादी विचारकों के प्रबल आन्दोलनों के कारण समानता, स्वतंत्रता तथा मानवतावाद की स्थापना हूई जिसका काव्य तथा नाटको पर बहुत प्रभाव पड़ा। उदात्त वादी (Classical) नाटकों की अपेक्षा यथार्थवादी नाटकों की ओर लोगों का ध्यान बड़े जोरों से उन्मुख हुआ। भावना, कल्पना तथा धर्म का स्थान तर्क तथा बुद्धिवाद ने ग्रहण किया। नारी स्वतंत्रता की आवाज वुलन्द हुई। इब्सन तथा वर्नाड शा, इसी वातावरण की उपज है, जिनसे संसार के नाटक साहित्य में यथार्थवाद का स्वर मुखरित हुआ। हमारे देश का वातावरण अंग्रेजों के आने के पश्चात् इसी रूप मे बना जिसका प्रभाव आधुनिक नाटकों पर पड़ा है।

उपयोगितावाद, यूरोपीय मनीषा का एक जागरूक सिद्धान्त हो गया, जिस ने वहाँ के साहित्य तथा दर्शन पर शक्तिशाली प्रभाव डाला[1]। आगे चल कर हर्बर्ट स्पेन्सर भी इसका प्रबल समर्थक हो गया। हर्बर्ट स्पेन्सर डारविन तथा हक्सले का परम मित्र था। इन दोनों विचारकों के प्रभाव से उसने विकासवाद के सिद्धान्त को आगे बढ़ाया। अपने प्रसिद्ध निबंध 'प्रोग्रेस : इट्स लाज एंड काज' में उसने घोषित किया कि मनुष्य संघ से पृथक होकर ही अपनी पूर्ण उन्नति को प्राप्त करता है। उपयोगितावाद का सबसे प्रबल समर्थक फ्रांसीसी विद्वान कामटे था। वह प्रत्येक वस्तु का महत्व, उसकी सामाजिक उपयोगिता में ही समझता था। उसका कथन था कि समाज की उन्नति के लिये इतना ही आवश्यक नहीं है, कि धर्म पर राजनीति का प्रभुत्व रहे, वरन् यह

१—'द इंग्लिश युटिलिटेरियन्स'–लेसेले स्टिफेन्स, वाल्यू० १, २ और ३।

भी अनिवार्य है कि हमारे आचरण के सिद्धान्त सुन्दर हों, धन का समान वितरण हो, पारिवारिक जीवन के आदर्श समुचित हों, तथा वैवाहिक विचारों का विकास हो।[२]

फलतः, मानवतावाद एक बौद्धिक आंदोलन के रूप में चल पड़ा। नारी-स्वतंत्रता भी इसी बौद्धिक आंदोलन का एक रूप था। जान स्टूअर्ट ने 'आन द सब्जेक्शन आफ विमेन' नामक निबंध में नारी के ऊपर, पुरुष के एकाधिपत्य की आलोचना की। जोन आफ आर्क, तथा महारानी एलिजाबेथ के उदाहरणों को लेकर उसने सिद्ध किया, कि यदि पर्याप्त सुविधाएं मिलें, और रूढियों का बंधन नारी के मार्ग से हटा दिया जाय, तो सभी स्त्रियां, इसी प्रकार से शारीरिक तथा बौद्धिक शिखर पर पहुँच सकती हैं।

कार्ल मार्क्स

बीसवीं शताब्दी के साहित्य को जितना अधिक मार्क्सवादी दर्शन ने प्रभावित किया है, उतना अन्य किसी दर्शन ने नहीं। मार्क्स का जन्म सन् १८१८ में जर्मनी के एक यहूदी परिवार में हुआ था। यद्यपि बचपन में उसे वकालत की शिक्षा दी गई थी, परन्तु उसकी तरफ उसका ध्यान नहीं लगा। वह दर्शन की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। इसलिये वाइमर विश्व विद्यालय में हीगेल के दर्शन का अध्ययन उसने गहरे ढंग से किया। कुछ दिनों पश्चात् अर्थशास्त्र के अध्ययन की ओर झुका। बर्लिन विश्व विद्यालय में अर्थशास्त्र का उसने गहन अध्ययन किया। उसके कड़े विचारों के कारण जर्मन सरकार ने उसे अपने देश से निकाल दिया। इसके बाद फ्रांस में वह कुछ दिन तक रहा। वहाँ भी उसे देश छोड़ना पडा जिससे वह इंगलैंड, अमेरिका आदि देशों में घूमता रहा। इन्हीं दिनों उसका परिचय प्रसिद्ध विद्वान एंजिल से हुआ, जिसने मार्क्स की विचार धारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। उसकी मृत्यु १८८३ में हुई।

विचार और दर्शन—मार्क्स के अनेक ग्रन्थों में दि कैपिटल(The Capital) तथा मेनीफेस्टो आफ कम्यूनिस्ट पार्टी, (Manifesto of the Communist Party) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मार्क्स पर सबसे अधिक प्रभाव हीगेल

2—"Society can only be regenerated by the greater subordination of politics to morals by the moralization of capital, by the renovation of the family, by a higher conception of marriage and so on. These ends can only be reached by heartier development of sympathic instincts. The sympathetic instincts can only be developed by the religion of community."

—*Encyclopaedia Britanica*, Vol VI. p. 194.

का ही पड़ा । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मार्क्स का प्रसिद्ध दर्शन है, जिस पर हीगेल की विचार धारा का स्पष्ट प्रभाव है । परन्तु दोनों की विचार धारा में बहुत अन्तर है । मार्क्स ने हीगेल के द्वन्द्ववाद को तो जरूर ग्रहण किया, परन्तु उसके कल्पना प्रधान तत्व को उसने छोड़ दिया है । हीगल अंतिम सत्य विचार तत्व को मानता है, परन्तु मार्क्स भौतिक तत्व को अंतिम सत्य मानता है । हीगेल अध्यात्म का तत्व मानकर चलता है, परन्तु मार्क्स भौतिक तत्व को विशेष महत्व देता है । मार्क्स का कहना है, भौतिक जगत मे एक निरन्तर संघर्ष या द्वन्द्व चला करता है । पुराने मूल्यों में परिवर्तन होता है, उनके स्थान पर नये मूल्य तथा आस्थाओ का निर्माण होता है । इस विचार धारा को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialisn) की संज्ञा दी गई है । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से मार्क्स ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) की ओर बढ़ता है । भौतिक जगत मे उत्पादन की शक्तियों में परिवर्तन विकास को जन्म देता है । समाज पूँजीवाद तथा श्रम जीवी दो प्रमुख वर्गों में विभाजित हैं । जिनका संघर्ष सनातन रूप से चला आया है । परन्तु उसका पूर्ण विश्वास था अन्त में पूँजीवाद का समूल उन्मूलन होगा, और सारे विश्व में समाजवादी व्यवस्था व्यापक रूप से स्थापित होगी । इसीलिए हम उसे समाजवाद के जनक के रूप में मानते है । उसका कहना है कि एक समय पूँजीवादी व्यवस्था इतने उत्कर्ष को धारण करेगी कि, अधिकांश लोग निर्धन हो जायँगे, और फिर उनकी ओर से एक महान् क्रांति होगी, जिसके परिणाम स्वरूप वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी । राज्य आप से आप हट जायगा । मार्क्स की विचार धारा रूस में ही नहीं आज सारे विश्व में व्याप्त है, जिससे आज का साहित्य प्रबल रूप से प्रभावित हुआ है । प्रगतिवादी साहित्य पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रमुख प्रभाव पड़ा है ।

बौद्धिक आन्दोलन का दूसरा रूप, यूरोपीय देशों में कार्ल मार्क्स के समाजवाद द्वारा आर्थिक संगठन तथा उसके समान वितरण पर जोर दिया गया । मार्क्स का 'दास कैपिटल' जो समाजवादियों का धर्मग्रन्थ है, तीन खंडों में प्रकाशित हुआ । मार्क्स ने मानवता के विकास में अन्तर्निहित, एक मूल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जिसकी प्रेरणा उसे जर्मन दार्शनिक हीगेल से प्राप्त हुई थी । हीगेल का मत यह था कि भूत, वर्तमान और भविष्य एक निश्चित क्रम से आते हैं । वर्ग-घृणा और वर्ग-संघर्ष सृष्टि के आदि से मानवता का इतिहास रहा है । शक्तिसम्पन्न वर्ग ने सदा दुर्बलों पर राज्य किया है । पूँजीपतियों के प्रभुत्व के पश्चात् शोषितों का प्रभुत्व होगा, मजदूरों तथा गरीबों का राज्य होगा, यही आजकल हम देख भी रहे हैं । परन्तु इसके पश्चात् एक ऐसो

भी स्थिति आएगी, जब ऐसे समाज की स्थापना होगी जो वर्गविहीन होगा और जिसमें न कोई द्वन्द्व होगा, न संघर्ष। अतः मार्क्स ने समाज में शोषक और शोषित केवल दो वर्गों की मान्यता को स्वीकार किया। समाज में कष्ट तथा विपन्नता का सारा उत्तरदायित्व पूंजीपतियों पर है। अतः पूंजीवाद का समूल उन्मूलन ही मार्क्स का सिद्धान्त था। यह महान कार्य, शोषितों के सगठन द्वारा ही सिद्ध हो सकता है। साम्यवाद के प्रसिद्ध घोषणापत्र के अंतिम शब्द इसी विचार को स्पष्ट करते है।[1]

"समाजवादी क्रांति के कारण शासकवर्गों को कांपने दो। उनका कुछ भी नष्ट नहीं होगा, केवल उनके बंधन कटेंगे। समग्र विश्व का वैभव उनका है, जिसके लिये उनको संघबद्ध होना चाहिए[1]।"

परिणामतया, सारे यूरोप मे एक महान क्रान्ति मच गई। मार्क्सवाद के आधार पर समस्त मानवजाति, शोषक और शोषित, दो वर्गों में विभाजित हो गई। मजदूर, किसान तथा स्त्रियों की गणना शोषितों में की गई। यूरोप में कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना सन् १९२७ में हुई। इसके पश्चात् सन् १९३५ में ई० एम० फारेस्टर की अध्यक्षता में साम्यवादी लेखकों की एक बैठक पेरिस में हुई। इसी वर्ष मुल्कराज आनंद के सहयोग से, 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की बैठक लंदन में हुई। प्रेमचंद के सभापतित्व में लखनऊ में प्रगतिवादी लेखकों की भी एक सभा हुई। प्रेमचन्द स्वयं इसके महान समर्थक थे। उसी समय से हिन्दी साहित्य के काव्य, उपन्यास, कहानी, निबंध तथा नाटक प्रायः सभी अंगों पर साम्यवादी विचारधारा का प्रबल प्रभाव पड़ रहा है। हिन्दी नाटकों पर भी साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रभाव कितना शक्तिशाली रहा, इसकी व्याख्या क्रमशः की जायगी। साम्यवाद के प्रभाव स्वरूप, साहित्य के मूल्यों में महान परिवर्तन हो गया। उसके अनुसार पुराना साहित्य, जिसमे उच्च वर्ग के राजाओं और धनिकों की प्रधानता थी सामन्तवादी कहा गया। उनके स्थान पर काव्य और नाटक में, गरीबों, मजदूरों तथा शोषितों की असहाय परिस्थितियों का चित्रण होने लगा। नारी स्वतंत्रता की आवाज ऊँची की गई। आस्तिकता तथा धार्मिक आस्था का स्थान तर्क ने ले लिया। नारायण के स्थान पर नर की उपासना होने लगी। मैथ्यू आर्नल्ड के शब्दों में 'अस्वस्थ

1—"Let the governing classes tremble before the Communist revolution. The proletarians have nothing to lose in it but their chains. They have the whole world to gain. Proletarians of countries united."

—*Communist Manifesto.*

चंचलता तथा स्वार्थपरायणता' जीवन के प्रत्येक अङ्ग में व्यापक हो गयी ।

नाटक साहित्य में विषय के अतिरिक्त शैलीगत परिवर्तन भी पर्याप्त रूप मे हुआ । प्राचीन छंद, अलंकार और शास्त्रीय बंधन हटाये गये । नाटको में भी भावुकता तथा रोमांस का पूर्ण विरोध हुआ । दैनिक जीवन के अनुभवों के प्रकाशन का माध्यम, पद्य के स्थान पर गद्य बनाया गया । नाटकों में पात्र तथा घटना विस्तार की जटिलता को त्याग कर सरल दृश्य-विधान तथा मित-व्ययिता को अपनाया गया । रगमंच की सफलता के लिये अनेक वैज्ञानिक साधनो जैसे बिजली, ध्वनियत्र तथा रेडियो का भी उपयोग किया गया । बौद्धिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरोपीय नाट्य जगत में यथार्थवाद का आदोलन चला, जो रोमांटिसिज्म के प्रतिक्रिया स्वरूप था । पहले अध्याय में यूरोप के विभिन्न देशो में, यथार्थवाद का किस रूप से क्रमिक विकास हुआ इसकी व्याख्या की जा चुकी है ।

यथार्थवाद की एक दूसरी शाखा, जोला के स्वाभाविकतावाद के रूप में विकसित हुई । जोला ने जीवन के सूक्ष्म चित्रण को अधिक महत्व दिया । उन्होंने घोषित किया कि 'या तो नाटक का सदा के लिये अन्त हो जायगा, या वह आधुनिक और यथार्थवादी होगा ।'[1] जोला ने स्वच्छन्दतावादी नाटकों में वर्णित भावुकता तथा रोमांस का विरोध किया तथा जीवन के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया । ऐसा चित्रण जो एक फोटोग्राफर की भांति स्वाभाविक और सूक्ष्म हो ।[2]

यथार्थवादी नाटकों की चरमोन्नति, नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार हेनरिक इब्सन द्वारा हुई । इब्सन के नाटकों ने योरुप के नाट्य-जगत में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया । नाटक के सिद्धान्तों, तथा प्राचीन मान्यताओ में महान परिवर्तन हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि नाट्य जगत् मे विचार प्रधान समस्या नाटकों की उत्पत्ति हुई । यूरोप के सैकड़ों नाटककारों ने समस्या नाटक

1—"The drama will either die or become modern or realistic.
—*World Drama* : A. Nicoll, p 480.

2—"Zola wanted complete objectivity, the depictions of the real with photographic exactitude. He wishes the drama, to submit to follow the method of science by studying men dispassionately. There should be no longer any school he cries, no standard of any sort, there is only life itself and immense field, where each may study and create as he likes."
— *Word Drama*, A. Nicoll, p. 488.

की कला को ही पूर्णता पर पहुँचाया। आज के प्रत्येक नाटक की विशेषता विचारों की प्रधानता है। इसका समर्थन यूरोप के सभी प्रसिद्ध नाटककारों ने किया है। प्रोफेसर बर्टन का कथन है कि जिस नाटक में जीवन के प्रति कोई निर्णय न हो, वह नाटक नहीं है।[1]

इब्सन का सबसे प्रधान समर्थक जार्ज बर्नार्ड का है, जिसके नाटकों में विचारों की प्रधानता मिलती है। वह सृजनात्मक विकासवाद को (क्रिएटिव इवोल्यूशन को) मानता है। उसका कहना है कि जीवनशक्ति, मनुष्य जाति के विकास में निरन्तर सचेष्ट रहती है। बर्नार्ड शा, नारी को पुरुष की अपेक्षा अधिक सशक्त मानता है। मनुष्य कल्पनाओं में रहने वाला, रोमांस का प्रेमी तथा नारी के हाथ का कठपुतला मात्र है। उसीसे सृष्टि का विकास होता है। परतु एक आध ऐसे भी मनुष्य होते है, जो नारी के प्रेमपाश में नहीं पड़ते। ऐसे ही मनुष्य मानवता को नई दृष्टि देकर अपना जन्म सफल करते है।

शा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'क्विट एसेन्स आफ इब्सनिज़म' में इब्सन के सिद्धान्तों की प्रशंसा करते हुए, समस्या नाटकों का समर्थन बड़े जोरदार शब्दों में किया है। इसको उसने अपने 'प्लेज अनप्लेजेन्ट' नामक पुस्तक में संगृहीत 'मिसेस वैरेन्स प्रोफेसन्स' नामक नाटक की भूमिका में स्पष्ट कर दिया है। उसने यह बताया है कि—

"केवल समस्या नाटक ही सच्चा नाटक है, क्योंकि यथार्थ चित्रण मात्र ही नाटक नहीं है। नाटक मानव की इच्छा तथा उसकी परिस्थिति के बीच के संघर्ष अर्थात् समस्या को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करता है।"[2]

पाश्चात्य समस्या नाटक और शिल्प-विधान

१—ऐतिहासिक युग की गौरव गाथा को त्याग कर समस्या नाटककार वर्तमान समाज से नाटकों के लिये कथानक लेने लगे। प्रेम, तलाक, नारी स्वतन्त्रता, युवक तथा वृद्धों के सिद्धान्तों में संघर्ष, अधिकार रक्षा तथा व्यक्ति-

---

1—"A play without an opinion of life beneath is a flabby invertebrate."—*Prof. Burton,* Aspects of Modern Drama, Chandler.

2—"It will be seen, that only in the problem play there is any real drama, because drama is no more setting up of camera to nature. It is the presentation in parable of the conflict between the man's will and his environment in a word of proble.'

—*Preface to Mrs. Warrens Profession : B. Shaw.*

गत स्वातन्त्र्य की समस्यायें, वाद-विवाद प्रतियोगिता की भाँति इन नाटकों में चित्रित की जाने लगी। इन नाटको मे समाज और जीवन की प्राचीन मान्यताओं और रूढियों पर लेखक निर्ममता तथा व्यंगपूर्ण शैली से चोट करता है। क्योंकि उसका पूर्ण विश्वास है कि ये मान्यतायें उसे धोखे मे डाल सकती है। अपने 'ब्रन्ड' नामक नाटक में इब्सन ने इसी प्रकार के झूठे आदर्शों के धारण करने वालो पर कस कर चोट किया है। 'दी लीग ऑफ यूथ' का 'स्टेंसगार्ड' और 'दी पिलर्स आफ सोसायटी' का 'कर्नल बेरनिक' इसी प्रकार के मक्कार व्यक्ति है, जो कहते कुछ और करते कुछ है और जो अपने स्वार्थ के आ जाने पर अपने सिद्धान्तो को छोड़ने मे तनिक भी मुँह नही मोडते। 'गुड़िया का घर' (ए डाल्स हाउस) तथा 'घोस्ट्स' मे वैवाहिक रूढियो पर इब्सन व्यंग करता है।

२—इन समस्या नाटकों मे चरित्रो के संकलन में भी प्राचीन नाटकों की अपेक्षा नवीन पथ अपनाया जाने लगा। नाटक के पात्र उच्च वर्ग के सम्पन्न राजा महाराजा या धनी न होकर दीन मजदूर, क्लर्क, किसान होने लगे। उन्हीं के जीवन की कठिनाइयों का चित्रण होने लगा। हाप्टमैन के 'दी वीवर्स' मे जुलाहों के सघर्ष का चित्रण है। गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ़' में मिल के मजदूरों की हड़ताल और उनके शोषण की कहानी है। सारांश यह है कि अधिकांश नाटकों के चरित्र मध्यम तथा निम्न वर्ग से आने लगे।

३—बाह्य सघर्ष की अपेक्षा अन्तर्संङ्घर्ष को प्रधानता दी गई। समस्या नाटककार के लिये बाहरी संघर्ष का कोई मूल्य नहीं है। अपने विचारों या सिद्धान्तों के समर्थन के लिये समस्या नाटककार को यदि किसी पात्र को बुलाना पड़ा तो उसका प्रवेश अकस्मात् हवाई जहाज से भी गिरा कर वह कर देगा। नाटकीय टेकनीक की दृष्टि से चाहे यह कितनी ही बड़ी त्रुटि हो, लेखक को इसका ध्यान नहीं रहता, उसे तो अपने विचारो का प्रतिपादन करना है। 'डाक्टर्स डाइलेमा' के पहले अंक में ही जार्ज बर्नार्ड शा अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिये एक पात्र से कहता है 'नवयुवक बाहर चले जाओ' (गेट आउट यंग मैंन)। दूसरे नाटक 'गेटिंग मेरेड' में एक स्थल पर वह कहता है—

Cecil—I must speek to you particularly, Papa go away,
Go away Every, body. (Getting Married, p. 147)

इब्सन के लिये विचार की प्रधानता नाटक के कथानक से भी अधिक है।

शेक्सपीयर के लिये कथा तथा चरित्र ही प्रधान होते थे।[१] विचारों का यह संघर्ष सर्वदा बौद्धिक धरातल पर चलता है। उदाहरण के लिये शा के 'मेजर बारबेरा' नामक नाटक में दर्शक का सारा ध्यान इसमे लगा रहेगा कि किसका सिद्धान्त विजयी होता है, बारबेरा का या अन्डर शेफट्स का।

४—समस्या नाटको में पात्रों के चुनाव तथा घटनाओं के सङ्कलन मे नाटककार अपनी स्वेच्छा का सम्पादन करता है। उसे घटनाओं के स्वाभाविक विकास का ध्यान नही रहता है, वरन् केवल अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन का। तड़क-भड़क के रंगीन दृश्यों के योजना की तथा रोमेन्टिक नाटकों के भावुकता की उसे कोई आवश्यकता नहीं होती है। स्वगत भाषण, पद्य, गीत को छोड़ कर सरलता का आश्रय उसे लेना होता है। नाटको मे एक या दो दृश्यों के साथ उसका काम सिद्ध हो जाता है। स्थान के लिये कोई ड्राइंग कमरा या बगीचा काफी है। कार्य-व्यापार की अपेक्षा संवाद की महत्ता अधिक होती है। यह घरेलू बातचीत के समान टूटा-फूटा और अकृत्रिम होता है। कथोपकथन की योजना चरित्र तथा परिस्थिति को लक्ष्य करके नही, वरन् प्रतिपाद्य सिद्धान्त को लेकर होती है। प्रायः यह संवाद भाषण या प्रचार का रूप धारण कर लेता है। शा अपने 'गेटिंग मेरेड' में एक स्थान पर कहता है—

Boys—I am going to preach you a lesson, on the morals of the days proceeding. (Getting Married, p. 346)

अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये शा ने अपने नाटको के प्रारम्भ मे लम्बी भूमिकाएं दी है, जो उसके नाटकों से भी अधिक तर्कसम्मत तथा सुलझी हुई दिखाई देती है। अनेक आलोचको की राय मे यह उसके नाटको की कला की महान् त्रुटि है, जिसके समर्थन में उसे भूमिका लिखकर विचारों की प्रशंसा करनी पड़ती है। शेक्सपीयर ने अपने नाटकों के प्रचार या समर्थन के लिये कोई भूमिका नहीं लिखी। सच्ची कला प्रचार से कोसो दूर रहती है। अतः प्रचार उसके नाटकीय कला की अपूर्णता को व्यक्त करता है। परिणामतया समस्या नाटकों के चरित्र लेखक से सिद्धान्तों के हाथ मेंकठपुतली की भाँतिनाचते है।[२]

1—With Ibsen the idea transcends the story in importance whereas with Shakespeare the story and the character stand supreme.

Aspects of Modern Drama, F. W. Chandler p. 2.

2—The Character is drawn not by words but also by the expression through the whole appearance of the Actor of a definite state of mind. 'The position of B. Shaw in European Drama and Philosophy.

Martin Ellehauge, p. 47.

५—इन समस्या नाटकों मे अंत: संघर्ष के चित्रण मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अधिक प्रधानता दी गई। मनोविश्लेषण फ्रायड के सिद्धान्तो और खोजो के फलस्वरूप योरोपीय साहित्य मे आया। फ्रायड का जन्म ६ मई १८५६ को जर्मनी मे हुआ था। उसने हिस्टीरिया के कुछ रोगियों मे उनकी दबी हुई स्मृतियों को जो अर्द्धचेतन अवस्था में सुप्त पड़ी थी, जानकर अच्छा किया। इस प्रयास के फलस्वरूप उसने मनोविश्लेषण के सिद्धान्त की स्थापना की। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे अचेतन मन मे वे सभी वासनायें तथा इच्छायें सुप्त पड़ी रही है, जिनकी पूर्ति समाज के बधनों के कारण हम जाग्रत जीवन मे नही कर सकते। ये सुप्त वासनाये यौन-मूलक (सेक्सुअल) होती हैं। इसका प्रारम्भ बालक के मन ही से हो जाता है। बालक अपनी माता का स्तनपान वात्सल्य भाव से करता है, परन्तु यह उसी काम प्रवृत्ति का आरम्भिक रूप है जो आगे चलकर विकसित हो जाता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न भी दमित इच्छाओं का प्रतीक रूप मे प्रकाशन है। परिणामतया दबी हुई इच्छाओं का प्रकटीकरण मनोविश्लेषण के द्वारा फ्री एशोसियेशन के आधार पर होता है, जिसमें मानसिक विश्राम की अवस्था मे मनुष्य अनजाने अपनी पूर्व स्मृतियों का स्वत: रहस्योद्घाटन करने लगता है।

फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का समर्थन एडलर और युंग ने किया। उनके सहयोग से मनोविश्लेषण भावना की अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस की बैठक हुई जिसके द्वारा इन सिद्धान्तों का प्रचार किया गया है। अगले अध्याय मे इनके सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या की जायगी। काव्य तथा नाटकों में फ्रायड के सिद्धान्तों का प्रभाव यह हुआ कि सेक्स तथा काम-प्रवृत्ति को समस्त मानव प्रवृत्तियों की मूल प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया। अब नाटको के चरित्र अपने अवचेतन मन की सुप्त भावनाओं को स्वतंत्र रूप से प्रकट करने लगे। आगे चलकर बताया जायगा कि हिन्दी के नाटककारों पर फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का कितना गहरा प्रभाव पड़ा है।

सारांश यह है कि नैतिक स्तर पर यूरोप में एक ओर उपयोगितावाद के कारण मानवता के सहानुभूति की भावना बढ़ी, दूसरी ओर आर्थिक स्तर पर मार्क्स के साम्यवाद से शोषितों के चित्रण की प्रवृत्ति प्रधान हुई। मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड, एडलर तथा युंग के मनोविश्लेषण सिद्धान्तों का प्रयोग नाटकों के चरित्र-चित्रण में किया जाने लगा। उधर सत्तरहवीं और अट्ठारवीं शताब्दी के योरुप के रोमान्टिक नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप एक बौद्धिक आन्दोलन हुआ जिसमें विचार प्रधान समस्या नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें विषय तथा शैली दोनों के दृष्टिकोण से प्राचीन नाटकों से अपेक्षाकृत महान

परिवर्तन था। नवीन नाट्य सिद्धान्तों के साथ नवीन रंगमंच का भी निर्माण हुआ जो युगानुकूल था। ऐसे नाटकों को सुनिर्मित नाटक (वेल मेड प्लेज) कहते थे, जिनका जन्म फ्रांस से हुआ। इनमे परिस्थिति का निर्माण सिद्धान्तो तथा विचारो के आधार पर हुआ। पात्र और कथानक का स्थान गौण हो गया। इस प्रकार के नाटकों को इब्सन और शा ने चरम सीमा पर पहुँचाया। हिन्दी के नाटको पर इन विचार प्रधान समस्या नाटको का पूर्ण प्रभाव पड़ा। फलत: पाश्चात्य समस्या नाटको की रचना पद्धति की सभी विशेषताएँ हिन्दी नाटककारों द्वारा गृहीत हुई। जिस प्रकार शेक्सपीयर के स्वच्छंदवादी नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप यूरोप मे इब्सन तथा शा के विचार प्रधान यथार्थवादी नाटकों का विकास हुआ उसी प्रकार हिन्दी में प्रसाद तथा द्विजेन्द्रलाल राय के रोमान्टिक तथा स्वच्छन्दतावादी, प्रेम तथा भावुकता से लदे नाटकों के विरोध मे लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी में समस्या नाटको के विकास तथा उन पर पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव की व्याख्या आगे चलकर की जायगी।

हिन्दी के समस्या नाटक और नाटककार

आधुनिक हिन्दी साहित्य में बुद्धिवाद का अनेक रूपों में प्रवेश यूरोपीय बुद्धिवाद या रैशनेलिज्म के आधार पर हुआ है। हमारे देश के विचारकों ने इसका हार्दिक स्वागत किया। रवि बाबू ने एक स्थान पर कहा था कि यूरोप को दिग्विजय तथा उसके साथ यूरोपीय बुद्धिवाद का भारत में प्रवेश, सौभाग्य-प्रद घटनायें है, परंतु यह बुद्धिवाद जो अपने देश में प्रवेश पा रहा है, विदेशी कलम है, ऐसा हिन्दी के अनेक आलोचकों ने स्वीकार भी किया है।[1]

सामाजिक समस्याओं का चित्रण हिन्दी में भारतेन्दु काल से ही हो चला था। भारतेन्दु के 'प्रेम जोगिनी' और 'भारत दुर्दशा' में सर्वप्रथम तत्कालीन समाज का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। बाद में भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में इस वर्ग में अनेक सामाजिक नाटको का वर्णन मिलता है जिनका उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी' भी इस दिशा में एक सफल प्रयत्न है।

सामाजिक और समस्या नाटकों के शिल्प-विधान में अन्तर

जैसा कि पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, सामाजिक नाटको और समस्या नाटकों की शैली तथा टेकनीक में महान अन्तर है। सामाजिक नाटकों में लेखक

१—'नया साहित्य, नये प्रश्न'—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० २२८।

ममाज तथा जीवन की यथार्थ परिस्थितियों को रखते हुए भी, आदर्श के साथ उनकी समाप्ति करता है। परन्तु समस्या नाटकों में यह बात नहीं मिलती। वहाँ केवल व्यक्ति तथा समाज के संघर्षों का ही चित्रण रहता है। आदर्श की ओर लेखक का ध्यान नहीं जाता। एक और विशेष बात समस्या नाटकों में मिलेगी— वह यह है कि इनमें व्यक्ति, व्यक्ति का नहीं वरन् किसी समुदाय का प्रतिनिधि बन कर आता है। इसके अतिरिक्त इन नाटकों में विचारों या सिद्धान्तों की प्रधानता रहती है। पात्र, कथानक तथा घटना का स्थान अत्यंत गौण रहता है। उपर्युक्त विशेषताओं के अनिरिक्त जो इन नाटको के विषय मे सम्बन्धित हैं, नाटकों की शैली मे भी, सामाजिक नाटकों की अपेक्षा विशेष अन्तर दिखाई देता है। सामाजिक नाटकों मे व्यंग्य तथा कटूक्तियों की इतनी तीव्रता नहीं होती जितनी समस्या नाटकों मे। व्यंग्य भावना की तीव्रता के कारण इन नाटकों की शैली बहुत ही प्रभावशाली होती है। यद्यपि हिन्दी में समस्या की उत्पत्ति अनेक आलोचकों ने भारतेन्दु तथा प्रसाद के नाटकों से ही मानी है परन्तु समस्या नाटकों का विकसित तथा प्रौढ़ रूप इब्सन तथा शा के आदर्शों पर, लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों से ही पाया जाता है। फलतः लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दी के प्रथम समस्या नाटककार के रूप में आते है। क्योंकि प्रसाद तथा द्विजेन्द्रलाल राय के रोमान्टिक नाटकों के विरोध में, सबसे पहले बौद्धिकता का प्रतिपादन उन्होंने ही हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में किया।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

फ्रांसीसी विद्वान रोम्याँ रौला के अनुसार कलाकार को अपने युग की जिन्दगी बितानी चाहिए। इस कथन का अनुसरण लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटकों में किया है। वर्तमान समाज की जटिल तथा उलझनभरी समस्याओं को नाटक का विषय मिश्र जी ने ही बनाया। इन समस्याओं के चित्रण में उन्होंने बुद्धिवादी दृष्टिकोण को अपनाया है, जो पाश्चात्य देशों की देन है। पश्चिम में शेक्सपीयर के नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप इब्सन तथा शा ने विचार प्रधान यथार्थवादी नाटकों को लिखा। उन्हीं की देखादेखी मिश्र जी ने प्रसाद तथा द्विजेन्द्रलाल राय के कल्पना प्रधान नाटकों के विरोध में अपने समस्या नाटकों को प्रस्तुत किया। कल्पना और भावुकता के विरोध में उन्होंने स्वयं बहुत कुछ लिख कर अपने बुद्धिवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया।

'कला का अन्त स्वप्न की फुलवारी में नहीं होता—उसका अंत तो होता है, जीवन समुद्र के उस किनारे जहाँ आँधी है और वज्र है, बिजली और उल्कापात है—जहाँ मानव जीवन की विषमताएँ एक के बाद दूसरी भयंकर

लहरों के रूप में उठती और बैठती हैं [1] ।

'मुक्ति का रहस्य' नाटक की भूमिका मे 'मै बुद्धिवादी क्यों हूँ ?' इसका कारण उन्होंने बडी ही तर्क सम्मत शब्दावली मे प्रकट किया है । उक्त निबंध में वे कहते है कि 'लेखक की सबसे बड़ी चीज उसकी भावुकता नहीं उसकी ईमानदारी है । वह 'साधक है—दलाल नही । हमारे अधिकांश लेखक जिंदगी की ओर से आँखें बन्द करके कल्पना और भावुकता का मोह पैदा कर जिस नये जगत् का निर्माण कर रहे हैं, उसमें जिन्दगी की धड़कन नही । मनुष्य की आत्मा की बात कौन कहे, वहाँ तो मनुष्य का रक्त माँस भी नहीं मिलता। शायद मोम के रगे पुतलों से लेखक जो चाहता है, कराता है । लेखक जब चाहता है, पुतला हंस देता है, रो देता है, व्याख्यान देने लगता है, या प्रेम करने लगता है, उसकी अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती । कल्पना का जीव कल्पना से आगे नहीं बढ़ता । वास्तविक जगत् के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं । ऐसे समय मे जबकि साहित्य में झूठी भावुकता और गन्दे मनोवेगों का तूफान चल रहा है, साहित्य और कला के नाम पर विकारों की सजावट हो रही है ।[1]

अत सच्चाई और ईमानदारी को कला का मूल उद्देश्य मानकर, उसके प्रकाशन के लिये मिश्र जी ने अपने नाटकों में बुद्धिवाद को ग्रहण किया है । उनका कथन है कि जीवन और जगत् की जटिल समस्यायें भावुकता और कल्पना के द्वारा नहीं वरन् विवेक द्वारा सुलझाई जा सकती हैं । जो लोग कल्पना और भावुकता को जीवन का आधार मान कर चलते हैं, वे धोखा खाते हैं । 'बुद्धिवाद किसी तरह का हो, किसी कोटि का हो, समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता ।' मिश्र जी के नाटकों को ध्यान में रख कर अब हम उनके सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे । मिश्र जी के नाटक तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं ।

१—समस्या नाटक ।

२—ऐतिहासिक नाटक ।

३—इब्सन के समस्या नाटकों के अनुवाद ।

उनके प्रमुख समस्या नाटकों में (१) 'राक्षस का मंदिर' (१६३१), (२) 'संन्यासी' (१६३१), (३) 'मुक्ति का रहस्य' (१६३२), (४) 'सिन्दूर की

१—'राक्षस का मंदिर'—लक्ष्मीनारायण मिश्र, (मेरा दृष्टिकोण) पृ० १ ।

२—'मुक्ति का रहस्य'—लक्ष्मीनारायण मिश्र, (भूमिका—मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ ?), पृ० १८ ।

होली' (१६३४), (५) 'राजयोग' (१६३४) और (६) 'आधी रात' (१६३७) हैं।

ऐतिहासिक नाटकों मे (१) 'अशोक' (१६३६), (२) 'गरुड़ध्वज' (१६४६), (३) 'वत्सराज' (१६५०), (४) 'नारद की वीणा' (५) 'वितस्ता की लहरें (१६५३), (६) 'दशाश्वमेध' (१६५४) हैं।

अनूदित नाटकों में (१) 'समाज के स्तम्भ' (२) 'गुड़िया का घर' हैं।

समस्या नाटकों में वर्तमान नारी की समस्याओं को चित्रित करने का प्रयत्न मिश्र जी ने किया है। अनेक युगों से नारी-पुरुष की लौह-शृंखला में जकड़ी, असहाय और प्रताड़ित होती रही है। यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में नारी जगत् मे एक नई चेतना का संचार हुआ। जान स्टुअर्ट मिल ने नारी स्वतन्त्रता का उच्च घोष किया। फलतः स्त्रियों ने अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को पहिचाना। राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषो के समान स्त्रियों ने भी मताधिकार की माँग की, सामाजिक क्षेत्र में समानाधिकार का दावा किया। शिक्षा तथा रहन-सहन मे उसने पुरुषों की भाँति समानता और स्वतन्त्रता की आवाज उठाई। प्रेम के क्षेत्र मे भी आत्म-समर्पण या पति के अधीन रहने की भावना का उसने विरोध किया। अयोग्य पति के विरोध में तलाक को न्याय युक्त समझा गया। इब्सन ने अपने 'गुड़िया का घर' (ए डाल्स हाउस) मे नारी स्वतंत्रता की प्रथम रणभेरी निनादित की। सारे यूरोप में इस नाटक ने सदा के लिये सनसनी पैदा कर दी। इस नाटक की नायिका नोरा का अपने पति हेल्मर को छोड़कर, घर छोड़ना, नारी-समाज की युगों से परिवेष्ठित शृङ्खला को तोड़ना है। जिस समय यह नाटक खेला गया, लोगों ने इब्सन को गालियाँ दीं कि वह धर्म और कर्म दोनों को नष्ट कर रहा है, परन्तु इब्सन को चाहे कितनी भी बौछारें सहनी पड़ीं, उसका नारी-स्वातंत्र्य का सन्देश विश्वव्यापी हो उठा। यही सन्देश शा ने अपने 'मैन' और 'सुपर मैन' में दिया। मिश्रजी ने अपने नाटकों में नारी समस्या का चित्राङ्कन इब्सन और शा के ही नाटकों के आधार पर किया है, इसमें वे कितने सफल हो सके हैं, इसकी व्याख्या बाद में होगी। आधुनिक जीवन और जगत् की खरी और स्पष्ट आलोचना ही उनके नाटकों की मूल भित्ति है। उनमें न कल्पना की अतिरंजना है, न भावुकता का अनुरोध और न रोमांस का अस्वाभाविक आकर्षण। उनमें है जीवन का कटु और तीव्र सत्य, वेदना मिश्रित कचोट तथा समाज और उसकी रूढ़ियों के प्रति एक मार्मिक व्यंग्य।

'राक्षस का मंदिर', 'राजयोग', 'आधी रात' तथा 'सिन्दूर की होली' में पूर्णतया नारी समस्या को सुलझाया गया है। 'संन्यासी' और 'मुक्ति का रहस्य'

में भी यही समस्या प्रधान है। मिश्र जी के नारी चरित्रों को सुविधा के लिये दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे स्त्रियाँ आती हैं जो पाश्चात्य अथवा आधुनिक शिक्षा तथा संस्कृति के वातावरण से प्रभावित हैं। इनमें आशादेवी (मुक्ति का रहस्य), मालती (संन्यासी), मायावती (आधी रात), अश्गरी एवं ललिता (राक्षस का मंदिर) तथा चन्द्रकला (सिन्दूर की होली) है। दूसरे वर्ग में वे स्त्रियाँ आती है जो सामाजिक रूढ़ियों और अत्याचारों के कारण दुखी है। इनमें दुर्गा (राक्षस का मन्दिर), चम्पा, (राजयोग), किरणमयी (संन्यासी) तथा मनोरमा (सिन्दूर की होली) है।

'संन्यासी' में किरणमयी तथा मालती के प्रेम की समस्या का चित्रण है। मालती में बुद्धिवाद समन्वित प्रेम तथा किरणमयी में विषम तथा असफल प्रेम की चर्चा है। मालती का प्रेम विश्वकांत के प्रति है जो उसके कालेज जीवन का मित्र है। उधर प्रो० रमाशंकर भी मालती को प्रेम दृष्टि से देखते है। मालती के मेज पर विश्वकांत का एक पत्र पाकर प्रोफेसर रमाशंकर विश्वकांत से ईर्ष्या करने लगता है और द्वेषवश उसे दो वर्ष के लिये कालेज से निकलवा देता है। इसी बीच में विश्वकांत एक पत्र का सहायक सम्पादक हो जाता है, परन्तु दुर्भाग्यवश एक सम्पादकीय लेख के कारण उसे तीन वर्ष के लिये जेल जाना पड़ता है। जेल से निकलने पर वह जीवन का आदर्शवादी दृष्टिकोण अपना कर काबुल में जाकर एशियाई संघ की स्थापना करता है। मालती रोमांस से घृणा करती है और इब्सन की नारी की भाँति बुद्धिवाद के समर्थन में प्रो० रमाशंकर से विवाह करके जीवन से समझौता कर लेती है। उधर किरणमयी का विवाह वृद्ध प्रो० दीनानाथ से हो जाता है। दीनानाथ की अवस्था किरणमयी के पिता के बराबर है, वह इनसे असंतुष्ट है। अतः वह स्पष्ट कहती है कि 'हम लोगों का नाता स्वाभाविक नहीं बनावटी है।' अपनी अतृप्त वासना की शान्ति वह एक मजदूर के साथ करती है। वह कहती है कि अगर मजदूर बुड्ढा नहीं होता तो शान से सुखी रहती (पृ० ८८)। इसका प्रेमी मुरलीधर भी है जिससे वह एकान्त में मिलती है अपने को रोक नहीं पाती। अतः किरण के विषम प्रेम में भारतीय वृद्ध विवाह की समस्या पर लेखक ने व्यंग्य किया है।

'राक्षस के मन्दिर' में दूसरे प्रकार की समस्या का चित्रण है। नाटक की भूमिका में ही लेखक ने अपने मनोभावों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मैंने अपना लेसेंट बेदरदी से इस्तेमाल किया है। जिनके सदाचार का स्वरूप सड़क पर दूसरे तरह का, कमरे में दूसरे तरह का है, यह नाटक मैंने उन्हीं की मुक्ति के लिये लिखा है। "मुनीश्वर ऐसे ही व्यक्ति हैं जो सिद्धान्त और कृत में कुछ

और सोचते हैं, तथा वासनाएं उनको दूसरी ओर खींच रही हैं । लेखक के शब्दों में मुनीश्वर के अन्दर विवेक और प्रवृत्ति का यह द्वन्द्व आज के शिक्षित समुदाय की सबसे बड़ी समस्या है । मुनीश्वर एक ओर तो उग्र विचारों का समर्थक है, दूसरी ओर सीमा से अधिक काम पीड़ित । उसके चरित्र पर इब्सन के समाज में स्तम्भ के कान्सल वर्निक की छाया है । रामलाल पक्का शराबी है, पर अपनी समस्त संपत्ति वेश्या सुधार में दे डालना चाहता है । असगरी वेश्या होते हुए भी अन्त मे मातृ मंदिर के संचालन के लिये अपनी सारी संपत्ति दान कर देती है । प्राय: प्रत्येक चरित्र द्वन्द्व से भरा है । इस नाटक में समाज सेवकों की मक्कारी का चित्रण इब्सन के 'पिलर्स आफ सोसायटी' के आधार पर किया गया है ।

'मुक्ति का रहस्य' मे मिश्र जी ने पाप से मुक्ति पाने का रहस्य बतलाया है । आशा देवी, उमाशंकर शर्मा से प्रेम करती है । यह प्रेम इस सीमा तक बढ़ जाता है कि आशा देवी शर्मा जी की रुग्ण स्त्री को आठ बूंद विष देकर उसकी हत्या कर डालती ही । इस जघन्य कार्य को वह डा० त्रिभुवननाथ की सहायता से करती है, जो इसका अनुचित लाभ उठाकर उसके सतीत्व को भंग करता है । इस तरह आशा द्वारा दो पाप होते हैं, एक तो उमाशंकर की पत्नी की हत्या, दूसरे डा० त्रिभुवन नाथ द्वारा व्यभिचार । पर अन्त में उमाशंकर के योग्य अपने को पवित्र न पाकर, उनकी कामना दूसरे जन्म में करती हुई वह उन्हें त्याग देती है । आधुनिक नारी का यह कितना प्रवंचनामय रूप है, जिससे इस लोक मे तो हत्या और व्यभिचार करती है, दूसरे लोक में उसी पुरुष को चाहती है, जिसकी पत्नी को विष देकर मार डालती है ।

'राजयोग' में भी वैवाहिक जीवन की विषमता का चित्रण किया गया है । इसमें मिश्रजी का बुद्धिवाद बहुत ही स्वस्थ और सुलझे रूप में दिखाई देता है । चम्पा आधुनिक शिक्षा और संस्कार में पली एक ग्रेज्युयेट लड़की है । सह-शिक्षा के कारण उसका प्रेम नरेन्द्र से हो जाता है, जो दीवान रघुबंश सिंह का पुत्र है । परन्तु राजा शत्रुसूदन अपने धन के बल से एक पत्नी के होते हुए भी चम्पा से विवाह कर लेते हैं । इस तरह से दोनों का जीवन सदा असफल बना रहता है । इस तरह मिश्र जी ने बहु-विवाह प्रथा तथा वैवाहिक जीवन की विषमता के पहलू पर इसमें प्रकाश डाला है । इधर नरेन्द्र को जीवन से वैराग्य हो जाता है, वह बाहर जाकर मेस्मेरिज्म विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लेता है । शत्रुसूदन को जब मालूम हुआ कि उनकी पत्नी चम्पा का प्रेम पहिले नरेन्द्र से था, तो वे किसी बहाने से नरेन्द्र के पिता को दीवान के पद से हटा

देते हैं। नरेन्द्र अपनी रहस्य विद्या के बल पर चम्पा और शत्रुसूदन में समझौता करा देता है। नाटक की इस मुख्य कथा के साथ गजराज के जीवन की घटना जुड़ी हुई है। चम्पा, गजराज के द्वारा उसकी माता से अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न हुई बालिका है। अतः इस बात को जानकर शत्रुसूदन और गजराज और चम्पा तीनों के मन का अनुताप और द्वन्द्व एक चरम सीमा पर पहुँच जाता है। नाटक के कथासूत्र और उसकी योजना से स्पष्ट है कि जिस मनोवैज्ञानिकता को लेखक नाटक में आधार भूमि बना कर चलता है, उसका उचित रूप से निर्वाह अन्त तक नहीं कर पाता है। गजराज का मानसिक द्वन्द्व उसमें एक पहेली बन कर रह गया है। दूसरे चम्पा का विवाह शत्रुसूदन से उसकी इच्छा के विरुद्ध होता है। वह मां बाप द्वारा एक धनी परन्तु विषम पुरुष के गले मढ़ दी गई है। यह तो भारतीय नारी, जीवन की एक ज्वलंत समस्या अवश्य है, पर उसका हल मिश्र जी ने निकाला है, वह अस्वाभाविक और त्रुटिपूर्ण है। अन्त में उसका शत्रुसूदन से समझौता होता है। क्या इस प्रकार के असम विवाह की समस्या का यहाँ परिणाम होना चाहिए। इससे तो समस्यायें सुलझने के स्थान पर और उलझ रही हैं।

'आधी रात' में भी मिश्र जी नाटक में वर्णित समस्या का ठीक समाधान नहीं कर पाये हैं। मिश्र जी के अन्य नाटकों की भाँति इसमें भी नारी की विवशता का चित्र खींचा गया है। मायावती विलायत में शिक्षित एक आधुनिक ढंग की स्त्री है। उससे दो व्यक्ति प्रेम करते हैं। दोनों में पारस्परिक ईर्ष्या होती है। एक की मृत्यु दूसरे की पिस्तौल के निशाने से होती है। फलतः राधाचरण को कालेपानी का दंड होता है। परन्तु सम्राट के अभिषेकोत्सव के उपलक्ष्य में उसको अवधि-दान मिलता है और वह छूट कर घर आ जाता है। उधर पहले प्रेमी की मृत आत्मा प्रेत का रूप धारण करती है। ऐसी दशा में जबकि माया असहाय और अनाथ है, प्रकाशचन्द को अपना पति बना लेती है। दोनों स्वभाव की समानता से एक दूसरे को चाहते हैं। अतः माया ने प्रकाशचन्द से पुनर्विवाह-किया। इसी बीच राधाचरण काले पानी से लौट आता है। अपनी स्त्री को दूसरे पति के साथ जीवन का आनन्द अपने ही मकान मे मनाते देखकर उसके मन में एक विचित्र उदासीनता का प्रवेश होता है। वह प्रेतात्माओं से बातचीत को सीख कर अपने मित्र की प्रेमात्मा को शक्ति देता है।

'सिन्दूर की होली' में समस्या-नाटक का अत्यंत सुलझा हुआ तथा उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है। मिश्र जी के और नाटकों की भाँति इसमें भी वैवाहिक जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। मनोरमा एक प्रकार की समस्या को लेकर चलती है, जो विवाह के सामाजिक तथा बाह्य विधान को

ही सर्वस्व समझती है। चन्द्रकला दूसरे प्रकार की समस्या को प्रस्तुत करती है, जो मानसिक वरण को सामाजिक रूढ़ियों और वैवाहिक बाह्य परंपराओं से श्रेष्ठ मानती है। दोनों पक्षों को लेखक पूर्ण रूप से तर्क सम्मत विचारों द्वारा प्रस्तुत करता है और शायद इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दोनों पक्ष एक दूसरे के पूरक है। इधर मनोरमा की अपनी व्यक्तिगत समस्या भी है। जब वह दस वर्ष की थी, तभी विधवा हो गई। अठारह वर्ष की युवती जब हुई तो डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल के यहाँ आश्रय पाती है। परंतु उसके उत्फुल्ल यौवन को देखकर, विधवा होने पर भी मुरारीलाल की दृष्टि उस पर चली जाती है। मनोजशंकर भी उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। इस द्वन्द्व में वह वैधव्य ही को उचित समझती है, वह किसकी ओर जाय मुरारी लाल या मनोजशंकर की ओर। यह मिश्र जी के बुद्धिवाद का ज्वलंत प्रतीक है। वह मनोजशकर से कहती है—'संसार की समस्यायें, जिनके लिये आजकल इतना शोर मचा है, तराजू के पलड़े पर नहीं सुलझाई जा सकतीं। वे पैदा हुई हैं, बुद्धि से और उनका उत्तर भी बुद्धि से और उनका उत्तर भी बुद्धि से ही मिलेगा।'

पुरुषों के संबंध में मनोरमा सोचती है और ठीक-ठीक सोचती है कि पुरुष आँख के लोलुप होते हैं, विशेषतः स्त्रियों के सम्बन्ध में। मृत्यु शैया पर भी सुन्दर स्त्री इनके लिये सबसे बड़ी लोभ की चीज हो जाती है। 'मनोरमा के इस कथन द्वारा मिश्र जी ने कितने सुन्दर मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन किया है।

चन्द्रकला की समस्या एक दूसरे प्रकार की है जो वैवाहिक रूढ़ियों की परवाह न करके प्रथम दर्शन से उत्पन्न प्रेम की प्रेरणा से मानसिक वरण को अधिक महत्त्व देती है। मनोजशंकर की ओर उसका प्रेम पहिले दिखाई देता है, परन्तु बाद में रजनीकान्त की एक मधुर मुसकान का उसके हृदय-साम्राज्य पर अमिट अधिकार हो जाता है। यद्यपि वह जानती है कि रजनीकान्त विवाहित है, उसके एक छोटा लड़का भी है, परन्तु भावुकता के आधिक्य से मरणोन्मुख रजनीकान्त के हाथ से अपने मस्तक पर सिंदूर लगवाकर आत्म-समर्पण कर देती है। मिश्र जी जो भावुकता और रोमांस के विरोधी हैं, चन्द्रकला के मानसिक वरण में भावुकता तथा रोमांस की चरम सीमा पर पहुँचे हुए दिखाई देते हैं।

भगवंत सिंह एक तीसरे प्रकार की समस्या लेकर सामने आता है जो रिश्वत देकर अपने भतीजे रजनीकान्त को मरवा डालने के लिये तनिक भी नहीं हिचकिचाता। धन के लिये प्रिय से प्रिय सम्बन्धी का गला घोंटने में उसे तनिक

भी आपत्ति नहीं। इस प्रकार के चरित्र समाज में प्रचुरता से मिलते हैं। मुरारीलाल पाप के ऊपर पाप करता जाता है। अपने मित्र की हत्या नाव से ढकेलकर कर देता है, परंतु प्रायश्चित स्वरूप उसके लड़के मनोजशंकर का लालन पालन पुत्रवत करता है। शायद इस लालच से कि उसका विवाह चन्द्रकला से हो जाय। मनोरमा को अपनी पुत्री की शिक्षा के लिये आश्रय देता है, परंतु बाद मे उससे प्रेम प्रदर्शित करने लगता है। उधर माहिर अली जो मुरारीलाल का चपरासी था, जिसने मुरारीलाल को मित्र की हत्या करते देखा उसके मन में भी यह द्वन्द्व है कि वह रहस्य का उद्घाटन करे या न करे। इस प्रकार नाटक में अनेक प्रकार की समस्याओं का संघर्ष है। कुछ व्यक्तिगत कुछ सामाजिक कुछ वैज्ञानिक।

परन्तु इन सभी समस्याओं के मूल में नारी के प्रेम और विवाह से पूर्ण सेक्स की समस्या है। नारी स्वतन्त्रता का आन्दोलन भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ हो गया था, जो मिश्र जी के समय तक आकर चरम सीमा पर पहुँचता दिखाई देता है। सेक्स शब्द का प्रयोग विलास और कामुकता तथा नर नारी के स्वतंत्र और उन्मुक्त प्रेम से लिया जाता है। यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि इस प्रकार का सेक्सवाद फायड के प्रभाव से हिन्दी में विचित्र होरहा है। फ्रायड ने कामवासना को जीवन की मूल वासना के रूप में स्वीकार किया है। भारतीय समाज में नर और नारी का प्रेम विवाह के पवित्र बन्धन में केन्द्रीभूत तथा आदर्श के दिव्य घेरे में बाँधा गया था। वह एक आध्यात्मिक संस्कार था जहाँ पुरुष और नारी मिलकर एक पूर्ण जीवन की इकाई की सृष्टि करते थे। दोनों की एक दूसरे में श्रद्धा थी। एक को दूसरे की शिकायत का अवसर न मिलता था। पश्चिम के समस्या नाटकों तथा फ्रायड के सेक्सवाद ने वैवाहिक बन्धन की मर्यादा को रूढ़िबद्ध और संकुचित घोषित किया और बताया कि नारी पुरुष की भोग्या दासी और उसके हाथ की कठपुतली नहीं है वरन् पुरुष की भाँति स्वतंत्र है। पुरुष की भाँति ही प्रेम के साम्राज्य में उसे भी उन्मुक्त खेल खेलने का अधिकार है। भारतीय जीवन में भी इस विचारधारा का प्रभाव पड़ा। फलतः वैवाहिक बन्धन का रूढ़िग्रस्त और संकुचित माना जाने लगा। नारी पुरुष का साहचर्य और प्रेम पाने के लिये व्याकुल हो उठी, अतः वैवाहिक बन्धन की चहारदीवारी को तोड़कर उसने खुले मैदान में आने का प्रयत्न किया। मिश्र जी ने नाटकों में विवाह और प्रेम को एक दूसरे का पूरक न मानकर पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से अलग-अलग स्थान दिया है। आशा देवी डा० त्रिभुवन नाथ को वासना की तृप्ति के लिये अपने को समर्पित करने में आनाकानी नहीं करती। उधर सिंदूर की होली मे मनोरमा मनोजशंकर

से कहती है कि 'मैं तुम्हे अपना दूल्हा तो नही बना सकती, प्रेमी अवश्य बना लूंगी ।' असगरी भी मुनीश्वर से भोग करने मे प्राकृतिक लाभ का आनन्द उठाती है

सेक्स की प्रधान समस्या के साथ ही साथ मिश्र जी के नाटकों में छोटी मोटी अनेक समस्याओं का समावेश हुआ है, जैसे घूसखोरी की समस्या, एशियाई सघ की स्थापना की राजनीतिक समस्या, वेश्या-सुधार की समस्या । ये छोटी मोटी समस्यायें नाटक के कथानक में ताने बाने के समान उलझी हुई हैं। इन समस्याओं के उलझे हुए रूप को मिश्र जी ने प्रस्तुत करने का प्रयत्न अवश्य किया है, परन्तु उन्हें वे सुलझा नहीं सके है । बहुत से आलोचक तो उन्हें सच्चे अर्थ में समस्या नाटककार भी मानने को तैयार नहीं हैं । इसका कारण यह है कि इन समस्याओ के चित्रण में एक ओर तो उन्होंने अपने नाटकों में सर्वत्र बुद्धिवाद की दुहाई दी है दूसरी ओर उन्होंने अपने को भारतीय परंपरा का नाटककार भी माना है । 'गरुणध्वज' तथा 'वत्सराज' नाटकों की भूमिका में उन्होंने सर्वत्र भारतीय परंपरा के कर्म और भोग के समन्वय की घोषणा की है, उनके नायक धीरोदात्त है । इन पंक्तियों के लेखक से एक अवसर पर उनका विचार विमर्श हुआ, जिनमें उन्होंने प्रसाद को सस्ता और छिछले रोमांस का सृजन करने वाला बताया और अपने को भारतीय परंपरा का श्रेष्ठ प्रतिनिधि लेखक; परन्तु इसमें एक बड़ा भारी विरोध और असामंजस्य यह है कि सच्चा बुद्धिवादी कलाकार अपने को परपरावादी नहीं कहता । बुद्धिवादी कलाकार तो परंपराओ का उन्मूलन चाहता है । मिश्र जी अपने को एक ही साँस में परंपरावादी और बुद्धिवादी दोनों कह जाते है । अत: नन्ददुलारे वाजपेयी का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि 'कलाकार के रूप में उनकी कला यथार्थोन्मुख है; लेकिन विचारों के क्षेत्र मे वे आदर्शवादी और परंपरावादी है ।'[1] उनके मत से बुद्धिवाद एक अधूरी जीवन दृष्टि है । दूसरे मिश्र जी का बुद्धिवाद प्रसाद के नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप है, उसमें स्वस्थता तथा रचनात्मक शक्ति का अभाव है, यही कारण है उनके नाटकों में समस्यायें उलझी हुई सी है । समस्या नाटककार की दृष्टि समस्या के मूल में जाकर गहरा संबंध स्थापित करती है । वह समाज के नग्न यथार्थ को प्रस्तुत करके उसके झूठे आदर्शों और खोखली मान्यताओं की खिल्ली उड़ाता है । वह हमारे सामने एक विशिष्ट चिन्तक के रूप में आकर हमारी विचार शक्ति को जागृत करता है । मिश्र जी ने न तो समस्याओं का गहरा अध्ययन ही किया है न उसे सुलझा ही सके हैं । 'वे किसी

१—'नया साहित्य नये प्रश्न'—नन्ददुलारे वाजपेयी (नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र) पृ० १६७-६८ ।

चिन्तनधारा के अभाव में इधर-उधर भटकते दिखाई देते है, जैसे उनके बुद्धिवाद की कोई मजिल ही नही। ऐसा लगता है कि समस्याओं से उनका गहरा परिचय नहीं है। उन्होने जीवन पर थोड़ा बहुत विचार तो किया है, पर जैसे उसे देखा नही है, इसलिये उनके निर्णय कन्विंसिग नही है। वे पाठक की चेतना को झकझोरने की शक्ति नहीं रखते[1]।

मिश्र जी ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि बुद्धिवादी दृष्टिकोण तथा समस्या नाटकों की विचारधारा को उन्होने इब्सन और शा से ग्रहण किया है। परन्तु अपने समस्या नाटकों में व्यक्ति और समाज की दुर्बलताओं पर मिश्र जी ने उतनी निर्मम तथा तीखी चोटें नहीं की है, जितना शा ने की। इसका प्रधान कारण यह है कि शा की भाँति इनकी शैली में व्यंग्यात्मकता की कमी है। शा फेवियन समाजवादी था। सामाजिक व्यवस्था को वह नया रूप देना चाहता था। अतः उसने समाज की मान्यताओं को खोखला और असंगत सिद्ध करने मे कोई कसर नहीं उठा रखी। उसका एक प्रसिद्ध नाटक 'मैन एण्ड सुपरमैन' है। इसकी नायिका 'एन' है जो सुन्दर, स्वस्थ और चंचल है, पर उसमें भावुकता और कामुकता नही है। उसके दो प्रेमी है। आक्टेवियस, जो प्राणों से भी अधिक उसे प्यार करता है, दूसरा प्रेमी टेनर है, जो स्वतन्त्र विचारों वाला मनुष्य; परंपरा तथा भावुकता का विरोधी है। वह स्त्रियों पर व्यंग्य करता है। एक स्थान पर वह आक्टेवियस से कहता है 'तुम जानते नही स्त्रियों का आकर्षण दानवी है, वह तो अपने आकर्षण द्वारा तुममें स्वयं ही विनाश की बुद्धि पैदा कर देती है।...........उनका प्यार तो मकड़ी का जाल है, अथवा बिल्ली चूहे का खेल है। वह तुम्हें अपनाती और दुलार करती है, इस खेल से वह कभी नहीं ऊबती।'

'एन' और 'टेनर' दोनों विवाह के विरोधी हैं। आक्टेवियस से विवाह का विरोध करते हुए ऐन एक स्थल पर कहती है 'मैं तुम्हारी आराध्य देवी हूँ। पर मैं हमेशा तुम्हारी आराध्य देवी बनी रहूँगी। शादी के बाद तुम्हारी पूजा भंग हो जायगी। क्या मैं इसे सहन कर सकूँगी। इससे अच्छा तो यही है कि तुम हमेशा मेरी पूजा करते रहो, तुम्हारी आराध्या बनी रहूँ। यह तभी संभव है, जब मैं तुमसे अलग रहूँ।'

मिश्र जी के नाटकों में जब समस्यायें उलझ जाती हैं तो वे समझौते द्वारा एक ऐसे निर्णय पर पहुँचते है, जो तर्कसम्मत न होकर और उलझा देने वाला होता है। आशादेवी 'मुक्ति का रहस्य' में उमाशंकर को पाने के लिये उनकी

१—'आलोचना' नाटक विशेषाङ्क जुलाई १६५६ पृ० ६६।

पत्नी को विष पान कराकर मार डालती है, पर अन्त मे डा० त्रिभुवननाथ द्वारा उपभोग की जाती है, इस डर से कि कही डा० साहब उसकी हत्या का रहस्य न खोल दें । क्या समस्या का यही सुलझाव है । भय या संकोच से नारी प्रेमी को छोड़ कर जब चाहे जिसे अपने को समर्पण कर दे उसके लिये क्या यही उचित है । चन्द्रकला आकृष्ट तो होती है मनोजशंकर की ओर, पर अन्त में विवाहित रजनीकान्त की एक मुसकान पर लुट जाती है और अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है । हाँ मनोजशंकर यह जानते हुए भी कि मुरारीलाल ने उसके बाप का वध किया, यदि चन्द्रकला को स्वीकार करता तो शायद यह समस्या का सुन्दर सुलझाव होता है । उसी प्रकार उमाशंकर त्रिभुवन नाथ द्वारा उपभोग कर लेने पर भी यदि आशादेवी को अपने शरण मे रखते तो अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते । परन्तु ऐसा न करके किसी आकस्मिक असहाय परिस्थिति मे जकड़ जाने के कारण मिश्र जी ने अपने चरित्रो से कुछ का कुछ करने को विवश कर दिया है । मिश्र जी की विचारधारा के सम्बन्ध मे दूसरी खटकने वाली बात यह है कि बुद्धिवाद के समर्थन मे उसने भावुकता और रोमांस का विरोध केवल विरोध के लिये किया है । एक तरफ तो वे कहते है 'मैंने जानबूझ कर मनोरंजन के लिये या धोखा देने के लिये, किसी को पापी या पुण्यात्मा नही बनाया है, मैने अपने चरित्रों को जिन्दगी की सड़क पर लाकर छोड़ दिया है, मैंने विद्रोह के लिये विद्रोह नही किया है ।' 'परन्तु सच पूछिये तो उन्होने विरोध के लिये विरोध किया है । भावुकता और रोमांस के विरोध मे उन्होने द्विजेन्द्रलाल राय को अन्तःकरण का अन्धा साहित्यकार माना है, प्रसाद जी को छिछले रोमान्स का तथा सस्ती भावुकता का सृजन करने वाला बताया है । पर सच पूछिये तो उन्होंने स्वय सस्ती भावुकता तथा छिछले रोमास की सृष्टि की हे । प्रसाद की देवसेना, मालविका, अलका तथा कल्याणी मे जो गंभीरता तथा दिव्यता है, वह चन्द्रकला, मनोरमा और आशादेवी मे नहीं । प्रेम के नाम पर जितना छिछला और वासनाजन्य प्रदर्शन मिश्र जी के नाटको में मिलता है । उतना प्रसाद में नहीं । फलतः जिस भावुकता और रोमांस के विरोध मे मिश्र जी ने आकाश-पाताल को एक कर दिया है, खेद की बात है उससे अपने नाटको में वे स्वयं मुक्त नहीं हो सके हैं

समस्या नाटकों में एक प्रधान दोष, यह देखा जाता है, कि लेखक का पूरा ध्यान समस्याओं के सुलझाने या चित्रित करने में इतना लगा रहता है कि उसे नाटकीय तत्वों के निर्वाह का ध्यान ही नहीं रह जाता । वह अपने समस्याओं के प्रतिपादन मे सब कुछ भूल जाता है । दूसरी प्रधान बात यह होती है कि चरित्रो तथा घटनाओ का विकास स्वतः स्वाभाविक गति से न होकर-सम-

स्याओं के प्रतिपादन के लिये होता है, फलतः नाटककार जब चाहता है किसी चरित्र की अकस्मात् अवतारणा कर देता है। शा के नाटकों के सम्बन्ध मे यह कथन भली भाँति लागू होता है। शा ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिये नाटकीय तत्त्वों की अवहेलना की है। इतना ही नही अपने सिद्धान्तों के समर्थन के लिये उसने नाटकों के आरम्भ मे लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ भी लिखी है, जो बहुत ही तर्कपूर्ण और सुन्दर है, परंतु आलोचकों की राय में दोषपूर्ण है। मिश्र जी ने भी शा की भाँति अपने नाटको के प्रारंभ में छोटी भूमिकायें देकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया है। फलतः मिश्र जी द्वारा नाटकीय तत्वों की अवहेलना की गई है। व्यक्तिवाद और बुद्धिवाद की नकल शा के आधार पर की है, परन्तु शा की भाँति मिश्र जी नाटकों मे वर्णित समस्या का हल नहीं प्रस्तुत कर सके हैं।

समस्या नाटककार लम्बे कथोपकथन तथा स्वगत के विरोधी होते है। मिश्र जी ने भी इन दोनों का विरोध किया है। वे मूक अभिनय का समर्थन करते हैं। उनका कथन है कि पात्रों की भीतरी भावनाओं और प्रवृत्तियों को व्यक्त करने में जितना सहायक मूक अभिनय होता है, उतना स्वगत नहीं। दो हिस्सा स्वगत और एक हिस्सा स्वाभाविक कथोपकथन करा देने से नाटक का लिखना तो सरल हो जाता है, लेकिन नाटकत्व बिगड़ जाता है। अभिनय की जरूरत नहीं रहती।" (मुक्ति का रहस्य—मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ, पृ० २६) लम्बे संवादों के विरोधी होते हुए भी मिश्र जी इस दोष से, अपने नाटकों में सर्वथा मुक्त नहीं हो सके हैं। 'वत्सराज' में उदयन तथा यौगन्धरायण का बौद्ध धर्म के विरोध में, तथा 'सिंदूर' की होली' में मनोरमा के कुछ संवाद भाषण से प्रतीत होते हैं।

समस्या नाटककार भावुकता और रोमांस के विरोध में नाटकों में गीतों को स्थान नहीं देते है। जीवन के अकृत्रिम प्रवाह में सर्वत्र गीत कहाँ दिखाई पड़ता है। मिश्र जी के नाटक भी गीतों से मुक्त है। गीतों के प्रयोग के संबंध में उन्होंने स्वयं कहा है "मेरी राय में नाटक में गीत रखना कोई बहुत जरूरी नहीं। कभी-कभी तो गीत समस्याओं के प्रदर्शन में बाधक हो उठते हैं।.... नाटक में गीत का पक्षपाती मैं वहीं तक हूँ जहाँ तक इसे जीवन में देख पाता हूँ।" (मु० का र०—मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ, पृ० २५)।

इतना ही नहीं अपने नाटकों को पूर्ण अभिनेय बनाने के लिये मिश्र जी ने पाश्चात्य समस्या नाटकों की भाँति प्रत्येक नाटक में केवल तीन ही अंकों कोस्थान दिया है। नाटक के आरम्भ में रंगमंच निर्देश की योजना भी वातावरण के निर्माण के लिये उन्होने की है। रंगमंच के संबंध में भी उनका दृष्टिकोण बहुत ही

व्यावहारिक तथा तर्क सम्मत है ।" बार बार पर्दा गिराना और उठाना रंगमच को अस्वाभाविक वना देता है । रङ्गमच का सगठन ऐसा होना चाहिए कि दर्शको को ऐसा न मालूम हो कि हम लोग किसी अजनवी जगह या किसी जादू घर में आ गये हो । जिस स्वाभाविकता के साथ हम अपने घर मे रहते हैं, उसी स्वाभाविकता के साथ हमें रङ्गमंच पर भी रहना है, अथवा दूसरे शब्दों में रङ्गमंच और हमारे स्वाभाविक निवास मे कोई विशेष अन्तर नहीं व्यक्त होना चाहिए" (मुक्ति का रहस्य—मैं बुद्धिवादी क्यो हूँ, पृ० २४) ।

समस्या नाटको के अतिरिक्त मिश्र जी के 'अशोक', 'वत्सराज', 'गरुण-ध्वज', 'नारद की वीणा', 'वितस्ता की लहरें' और 'दशाश्वमेध' छः ऐतिहासिक नाटक भी है । यद्यपि इनके कथानक ऐतिहासिक है परन्तु इनका शिल्प-विधान पाश्चात्य शैली पर आधारित है । उनके ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय अतीत के स्वर्ण युग की झाँकी दिखाई गई है । 'अशोक' में उसके बौद्ध होने के पूर्व के कर्मठ जीवन का चित्र खींचा गया है । कलिंग युद्ध में भयानक संहार के रूप मे उसने रक्तपात अवश्य किया, पर इसी आधार पर अशोक को रक्त पिपासु बनाने की चेष्टा मिश्र जी ने की है, यह एक ऐतिहासिक भूल है । 'गरुणध्वज' मे शुंग वंश की गौरव-गाथा को चित्रित किया गया है । प्रसाद ने अपने स्कन्दगुप्त में मातृगुप्त (कालिदास) को अत्यंत कमनीय मोम की पुतली बना दिया है ।[1] उसी की प्रतिक्रिया स्वरूप 'गरुणध्वज' का कालिदास एक कवि होने के अतिरिक्त चन्दवरदाई की भाँति शूर वीर भी और काशिराज के विरुद्ध युद्ध-क्षेत्र में भी उतरता दिखाई देता है । यहाँ तक तो ठीक था मिश्र जी ने कालिदास को राज कवि होने के पूर्व एक बौद्ध भिक्षु कहा है और उसका जन्म स्थान उन्हीं के निवास स्थान आजमगढ़ में सरयू के किनारे बताया है, इस कथन में अधिक खींच तान की गई है । ''नारद की वीणा' में आर्य और अनार्य सभ्यताओं के समन्वय का चित्रण है । 'वत्सराज' में भरत वंशी वत्स-राज उदयन की गौरव गाथा तथा वैदिक और बौद्ध धर्म के विरोध की कथा का चित्रण है । वैदिक धर्म के समर्थन में बौद्ध धर्म को इतना हेय ठहराया गया है कि बुद्ध के ऊपर कायर, नपुंसक और विवेकहीन आदि अनेक लांछनों को बलात् लादा गया है । 'वितस्ता की लहरे' का आधार वितस्ता के तट पर सिकन्दर की सेना का पहुँचना, चोरी से नदी को पार करना तथा कैकय-वीर राजा पुरू के साथ युद्ध करना है जो इतिहास प्रसिद्ध घटना है । सिकन्दर को

१—श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र जी से व्यक्तिगत वार्ता—

इसमें कपटी, छली और बर्बर दिखाने की चेष्टा की गई है। 'दशाश्वमेध' में गंगा के तट पर दशाश्वमेध घाट पर वैदिक युग मे किए गए अनेक यज्ञों का वर्णन है। प्रायः सभी ऐतिहासिक नाटकों मे वैदिक धर्म के कर्म और वैभव के समन्वय का प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कही ऐतिहासिक त्रुटियाँ भी हो गई है जिनकी चर्चा की जा चुकी है। संस्कृत नाटकों की परम्परा का पालन नहीं के बराबर है। रस परिपाक के स्थान पर शील वैचित्र्य तथा अन्तःसंघर्ष पर विशेष जोर दिया गया है। प्रायः सभी नाटकों के चरित्र दुहरे व्यक्तित्व को वहन करते है। रामलाल, मुनीश्वर, अश्गरी (राक्षस का मंदिर), त्रिभुवन नाथ और आशा देवी (मुक्ति का रहस्य), मुरारीलाल, मनोजशंकर और चन्द्रकला (सिन्दूर की होली), गजराज और नरेन्द्र (राजयोग), विश्वकांत (संन्यासी), अशोक, वत्सराज मे उदयन तथा महासेन, गरुणध्वज में महामात्य आदि चरित्रों का दुहरा व्यक्तित्व दिखाया गया है अतः वे द्वन्द्व तथा शील वैचित्र्य के सुन्दर उदाहरण है। अभिनय की दृष्टि से 'सिन्दूर की होली' 'वत्सराज' तथा 'मुक्ति का रहस्य' सर्वश्रेष्ठ है, वैसे अन्य नाटकों के अभिनय में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं पाई जाती है।

मिश्र जी के अनूदित नाटक

मिश्र जी ने नार्वे के प्रसिद्ध नाटककार इब्सन की अत्यंत ख्यातिपूर्ण रचना 'ए डाल्स हाउस' (गुड़िया का घर) नाम से अनुवाद किया है। अनुवाद बहुत ही सुन्दर तथा स्वाभाविक है। मूल नाटक के भावों को सुरक्षित रखने की पूर्ण चेष्टा की गई है। इसका कारण यह है कि मिश्र जी ने इब्सन की कृतियों का गहरा अध्ययन किया है, साथ ही साथ उनके आदर्शो का अनुसरण भी किया है। अतः उनका अनुवाद सफल है। इस नाटक का सारा कथानक नोरा नामक नायिका के ऊपर केन्द्रित है। नोरा का जब हेल्मर से विवाह हुआ तो उसके पति की आर्थिक दशा शोचनीय थी। दुर्भाग्यवश वह रोगग्रस्त भी हो गया। डाक्टरों ने राय दी यदि हेल्पर वायु परिवर्तन के लिये कहीं बाहर नहीं जायेगा तो अवश्य उसकी मृत्यु हो जायगी। हेल्पर को यह रहस्य नहीं बताया गया, क्योंकि उसकी जानकारी से उसके रोग के अधिक बढ़ जाने की शंका थी। इस योजना में रुपए की आवश्यकता थी और उसका अभाव था। अतः उसकी व्यवस्था का सारा भार नोरा के ही ऊपर पड़ा। अन्ततोगत्वा नोरा अपने पिता का एक जाली हस्ताक्षर बना कर तथा एक हैड नोट लिखकर क्रागस्टेड से रुपया प्राप्त करती है। हेल्मर पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। नोरा से उसके बच्चे भी उत्पन्न होते हैं। नोरा का दाम्पत्य जीवन सुखी हो जाता है। इधर नोरा चुपचाप गृहस्थी से रुपया बचा कर कर्ज भी देती रहती है। उसके पति

को नोरा के इन कार्यों का कोई पता नहीं था । कुछ दिनों में हेल्मर एक बैंक का मैनेजर नियुक्त हो गया । क्रागस्टेड उसी बैंक मे एक साधारण कर्मचारी था, वह बहुत दुराचारी तथा षड़यंत्री पुरुष था । जाल करने के जुर्म मे उसे कई बार सजा हो चुकी थी । हेल्मर अपने बैंक में ऐसे व्यक्ति को नहीं रखना चाहता था । उसे झूठ फरेब से अत्यंत घृणा थी । उसने पद ग्रहण करते ही क्रागस्टेड को पदच्युत करने की सोची । क्रागस्टेड अपनी जान पर खेलने लगा, उसने नोरा से अपने लिये गुप्त रूप से सिफारिश की और उसे धमकी भी दी कि यदि वह न मानेगी तो उसका सारा रहस्य वह उसके पति हेल्मर से कह देगा । विचारी नोरा पति से यह सब बिना बताये ही उसके लिये सिफारिश करने लगी । हेल्पर ने उसकी सिफारिशो पर तनिक भी ध्यान न दिया और अन्त में उसे अपने स्थान से पदच्युत कर दिया । फलतः क्रागस्टेड ने भी नोरा के जाल की सारी कथा एक गुप्त पत्र द्वारा हेल्पर को बता दी । हेल्मर उस पत्र को पढ़ कर आग बबूला हो गया, उसने अपनी पत्नी के विश्वासघाती स्वभाव की पूर्ण भर्त्सना की । नोरा का व्यक्तिगत नारी भाव अपनी रक्षा के लिये मचल उठा उसने अपने पति से कहा कि तुमने (हेल्मर ने) सदा मुझे एक गुडिया की तरह समझा है । मुझे अपने भोगविलास का उपकरण माना है । लेकिन मैं अब घर के वातावरण से अलग रहकर स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती हूँ । संसार चाहे जो कुछ कहे । 'ऐसा कह कर पति के लाख मना करने पर भी नोरा ने पति का घर छोड दिया । यूरोप की रंगशालाओं मे जब यह नाटक खेला गया, योरप के दर्शकों में खलबली मच गई । क्योंकि इस नाटक द्वारा नारी-स्वतंत्रता का एक विजयघोष किया गया था, जो आगे चल कर एक क्रान्ति के रूप में उपस्थित हुआ । पत्रों में यह समाचार छपा कि नोरा अर्थात् नारी स्वतंत्र है, वह पुरुष के अधीन नहीं रहेगी । संसार की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद छप गया ।

इब्सन के नाटकों के अन्य अनुवाद

'परिवर्तन' इब्सन के (ए डल्स हाउस) का दूसरा अनुवाद बाबू गंगाप्रसाद द्वारा १९३७ में हुआ । इसका प्रकाशन भारतीय साहित्य मंदिर, चाँदनी चौक दिल्ली द्वारा हुआ । भावों तथा पात्रों के नामों में भारतीयकरण किया गया है । हेल्मर के स्थान पर रूढ़िदास, नोरा के स्थान पर उर्मिला । क्रागस्टेड के स्थान पर श्यामलाल वकील आदि पात्र रखे गये है । नाटक के प्रारम्भ में एक भूमिका भी निम्नांकित आशय की दी गई है । 'इस नाटक में वर्तमान महिला समाज के अधिकारों की चर्चा की गई है । नायक-नायिकाओं के निर्जीव मधुर मिलन और कल्पित वियोग की विषम वेदना वाले नाटकों का युग अब

समाप्त हो गया। इस नाटक में स्त्री समाज के शोचनीय पद के विरुद्ध आन्दोलन है। वर्तमान समाज में बालिका से पिता, स्त्री से पति वैसे ही प्रेम करता है, जैसे लड़की गुडियों से। भारतीय घर वर्तमान समय में गुड़िया घर हो रहे हैं। इन कठपुतलियों को अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं है। इस नाटक का उद्देश्य स्त्रियों को अपना अधिकार ज्ञान कराने का है। यूरोपीय नाटककार उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही इसको करते आ रहे हैं, भारत में इसका श्रीगणेश अभी हो रहा है।'

अनुवाद के विषय मे इतना ही कहा जा सकता है कि वातावरण में परिवर्तन करने पर भी यह बहुत सफल हुआ है।

इब्सन के दूसरे प्रसिद्ध नाटक 'दी पिलर्स आफ सोसायटी' का अनुवाद 'समाज के स्तम्भ' के नाम से श्री सीताचरण दीक्षित ने किया है। इस नाटक में दो मूल विचारों को रखा गया है। पहला यह है कि व्यावसायिक नेता तथा देश भक्त धोखेबाज होते हैं, वे देश भक्ति की आड मे स्वार्थ साधना मे अधिक तत्पर रहते है। दूसरा यह कि पत्नी को विलास की सामग्री मानने से पुरुष का पतन होता है। मूल के भावों और चरित्रों में इस अनुवाद में परिवर्तन नहीं किया गया है। नाटक का वातावरण भारतीय वातावरण से बहुत कुछ मिलता जुलता है। योरुप में समाज के स्तम्भ और व्यवस्थापक वहाँ के अन्धविश्वासी, कूप-मंडूक स्वार्थी तथा ढोंगी लोग ही माने जाते थे। भारत में भी इसी प्रकार के पाखंड, रूढ़िवादिता तथा कूप मंडूकता का साम्राज्य है।

इस नाटक का नायक कास्तर्न वर्निक एक नार्वे का युवक है। पिता की मृत्यु के पश्चात् विद्याध्ययन तथा पर्यटन के लिये वह बाहर चला जाता है। उसकी माता पैतृक व्यापार को संभालती है, परन्तु अनुभवहीनता के कारण उसे व्यापार में विशेष घाटा होता है। वर्निक विदेश से लौटकर कारोबार को अपने हाथों मे ले लेता है। फिर भी अर्थाभाव के कारण उसे व्यापार में घाटा होता है। फिर बर्निक लोना नामक युवती को प्यार करने लगता है। लोना के एक और बहिन थी जिसका नाम वेली था। उसके पास काफी संपत्ति थी। जब वर्निक को इसका पता चलता है तो इसी संपत्ति के लोभ से वह लोना को त्याग कर वेली से विवाह का निश्चय कर लेता है। इसी बीच मे बाहर से आई हुई एक विवाहित अभिनेत्री से भी वर्निक प्रेम करने लगता है। एक दिन उसके साथ जब वह अकस्मात पकड़ा जाता है तो खिड़की से कूद कर भाग जाता है। शहर मे उसके विरुद्ध अनेक अफवाहें सुनी जाती हैं। योहन वेली का छोटा भाई था, उसे शहर से दूर जाने को वर्निक प्रेरित करता है और उसके चले जाने पर अपने ऊपर के सारे दोषों को योहन के सिर मढ़ देता है।

इधर वनिक की परिस्थिति भी संभल जाती है, व्यापार में लाभ होता है, क्योंकि अपने को निर्दोष और योहन को दोषी बना देने मे वह सफल होता है। वनिक एक जहाज के कारखाने का मालिक हो जाता है। इसमें 'ताल तरु' तथा 'भारत वाला' नामक दो जहाज मरम्मत के लिये आते हैं। इसी बीच योहन लौट कर आता है और वनिक की मक्कारी को सुनकर अत्यन्त अप्रसन्न होता है। योहन के विरुद्ध वनिक एक षडयंत्र रचता है। वह जानता है कि जान 'भारत वाला' नामक जहाज से पुन: विदेश जाने वाला है, अत: कारखाने में जहाज की ऐसी कच्ची मरम्मत कराता है कि वह समुद्र में डूब जाय और योहन की मृत्यु हो जाय। परन्तु इस बीच योहन दूसरे जहाज से चला जाता है और कच्ची मरम्मत वाले जहाज के लिये वनिक का लडका स्वयं टिकट खरीद लेता है। अत: वनिक उस जहाज को रोक लेता है। नाटक में मक्कारी, तथा फरेब का जाल सा बिछा हुआ है। अन्त मे नाटककार इस निर्णय पर पहुँचता है कि समाज के सच्चे स्तम्भ दो है। सत्य की प्रेरणा तथा स्वतन्त्रता की स्फूर्ति। इब्सन स्वयं इन विचारों का समर्थक था। वह समाज मे व्याप्त असत्य, पाखंड तथा आडम्बर का समूल नाश करना चाहता था।

मिश्र जी ने 'राक्षस का मन्दिर' नामक नाटक में समाज सुधारकों की जो कलई खोली है, इब्सन के समाज के स्तम्भ के आधार पर ही वह है। मुनीश्वर के चरित्र में कास्तर्न वनिक की स्पष्ट छाया है।

इब्सन के 'एन इनिमी आफ दी पिपुल' (देश भर का दुश्मन) का अनुवाद प्रो० राजनाथ पांडेय, सागर विश्वविद्यालय द्वारा हुआ है। अनुवाद बहुत ही सफल और सुन्दर है। मूल नाटक के भावों में परिवर्तन नहीं किया गया है। लेखक ने इब्सन की वृत्तियों और उसकी विशेषताओं पर एक भूमिका नाटक के प्रारंभ मे दे दी है। इस नाटक मे समाज मे व्याप्त छल, कपट तथा असत्य की भयङ्करता का चित्रण है। नाटक आत्म कथात्मक है। इसका नायक डाक्टर स्तोकमैन अपने सिद्धान्त तथा सत्य की रक्षा के लिये परिवार, समाज तथा सारे देश का दुश्मन बन जाता है। उसके भाई और मित्र उसके घोर विरोधी हो जाते है। डा० स्तोकमैन अपने व्यवसाय से भी वंचित हो जाता है, साथ ही साथ उसकी पुत्री पेतरा की नौकरी छूट जाती है। डाक्टर स्तोकमैन उस नगर में लगने वाले जलकल व्यवस्था को अस्वास्थ्यकर बताता है, क्योंकि उसमे लाखों के स्वास्थ्य नष्ट होने का प्रश्न है। इस कटु सत्य का वह प्रकाशन नहीं कर पाता। क्योंकि उसके सगे भाई नगरपालिका के व्यवस्थापक हैं। चारों ओर उनका जोर दवाव है। उसके कारण डा० स्तोकमैन अपने स्वतन्त्र विचारों का प्रकाशन नहीं कर पाता। समाचार पत्र-सम्पादक उसके संवाद को

नहीं छापते और जहाँ कहीं वह भाषण देता है हुल्लड़ और अशान्ति मचाई जाती है। परन्तु महात्मा गाधी की भाँति डा० स्तोकमैन अपने सिद्धान्त पर हिमालय की भाँति अडिग है। सारे नगर-निवासी उसके विरोध में एकमत होकर पग-पग पर उसके मार्ग में रोडे डालते हैं। जिस मकान में वे किराये पर रहते हैं, उसका मालिक उसे खाली करने के लिये सूचना देता है। लोग घर घर घूम कर यह प्रचार करते है कि डाक्टर को फीस देकर कोई अपने घर न बुलावे। डा० के दोनों लड़के स्कूल से जहाँ वे पढते थे, निकाल दिये जाते है। उनके श्वसुर अपने वसीयतनामें में इनके बच्चों के लिये जो सम्पत्ति लिखी थी, उसे भी वसीयतनामा रद्द करके वापिस ले लेते है। यहाँ तक देश छोड़कर अमेरिका चले जाने के लिये, जिस जहाज के कप्तान से इन्होने टिकट ले लिया था, उस कप्तान को जहाज का मालिक नौकरी से पदच्युत कर देता है। परन्तु धन्य है डा० स्तोकमैन के साहस को। वह घुटने टेकने को तनिक भी तैयार नही है। कठिनाइयों के घोर झंझावात पर अट्टहास करता हुआ वह हिमालय की भाँति ऊँचा मस्तक किये अडिग खड़ा रहता है। पत्रकारों की धूर्तता, भेड़ियाधसान, जनता का अनावश्यक विरोध, डा० की पत्नी की कठिनाइयों के तूफान में पड़े हुये पति के साथ सहयोग की भावना, डा० स्तोकमैन की वाक्पटुता तथा विचार परिपक्वता का बड़ा ही सजीव और हृदयग्राही चित्रण इस नाटक में हुआ है। आज हमारे देश की शिक्षा-व्यवस्था और शासन प्रणाली में ठीक इसी प्रकार का असामंजस्य है, जहाँ तालियाँ बजाकर तथा वोट के नारों से जनता को मार्ग भ्रष्ट करके सत्य तथा न्याय का बलिदान करने के लिये जनता को प्रेरित किया जाता है। जहाँ घूस और सिफारिश का बाजार गर्म है, जहाँ जनतन्त्र के नाम पर पक्षपात का परिपोषण होता है। इस नाटक मे हमारे देश और समाज की वर्तमान समस्याओ का ज्वलन्त दृश्य देखा जा सकता है। हमारे देश की स्वायत्त संस्थाओं में सुधार के नाम पर कितना शोषण और अपव्यय होता है, अधिकारी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये सत्य और न्याय का किस प्रकार गला घोट सकते है, इसका सजीव चित्र इस नाटक में प्राप्त होता है। जहाँ तक अनुवाद का प्रश्न है, पांडेय जी ने मूल नाटक की विचारधारा को अक्षुण्य बनाये रखने का प्रयत्न किया है। भाषा तथा वाक्य-विन्यास योजना मे भी वे सफल हुए हैं।

नाटक के अन्त मे डा० स्तोकमैन तथा उनकी पत्नी की वार्ता इब्सन स्वयं अपनी सत्यवादिता तथा निर्भीकता का विजयघोष करते हुये पाया जाता है—
'डाक्टर—कैसी हल्की बात कहती है कत्रीन ! क्या में जनता के प्रभाव, ठोस बहुमत और इसी तरह के दूसरे शैतानपन के सामने घुटने टेक देने वाला आदमी

हूँ ? जी नहीं, आपको धन्यवाद है। बडी सीधी सादी और सटीक मेरी बाते है। मुझे इन कुत्तों के दिमाग मे बस यह बैठा देना है, ये अपने को उदारतावादी कहने वाले लोक स्वाधीन मनुष्य के सबसे बडे दुश्मन हैं, कि ये पार्टी के कार्यक्रम समस्त स्वस्थ और सजीव सत्यों का गला घोटते हैं और ये अवसरवादी न्याय और सदाचार को औंधा करके जीवन को वीभत्स बना देते है [1]।

हमारे देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ डा० स्तोकमैन के उपर्युक्त कथन से कितनी मिलती जुलती है, इसको पाठक स्वयं देख सकते हैं।

इब्सन के अन्तिम काल के नाटक, जैसे 'घोस्ट्स', 'दी वाइल्ड डक', 'रोजमरशोम', 'दी सी वीमेन' तथा 'हेडा गैबलर' प्रतीकात्मक शैली द्वारा सामाजिक, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत जीवन की विकृतियों तथा मान्यताओं की खिल्ली उड़ाते है। 'घोस्ट्स' (जिन्नात) में पति और पत्नी के अवांछित संबंध की चर्चा की गई है। श्रीमती एलविंग के विवाह द्वारा विवाह की भयंकरता का चित्रण किया गया है। इसकी चर्चा, 'कामेडी आफ लव' नामक नाटक में इब्सन ने बीस वर्ष पहले ही कर दिया था। वास्तव में उसका कहना यह है कि विवाह और प्रेम में कोई पारस्परिक संबंध हो, ऐसा अनिवार्य रूप से नहीं कहा जा सकता। जैसा कि उसने एक बार कहा था—'विवाह की कानूनी मुहर, प्रेम को समाप्त कर देती है। प्रेम जब एक रूढ़िबद्ध कर्त्तव्य के रूप में होता है, तो वह प्रेम नहीं रह जाता।'[2]

हिन्दी के अन्य समस्या नाटककार

हिन्दी समस्या नाटकों को सुविधानुसार चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

१—व्यक्तिगत तथा पारिवारिक समस्या नाटक।

२—सामाजिक समस्या नाटक।

३—राजनीतिक समस्या नाटक।

४—प्रतीकवादी या सांकेतिक समस्या नाटक

१—'देश भर का दुश्मन' (ऐन इनिमी आफ दी पिपुल), प्रो० राजनाथ पांडेय पृ० ८५।

2—"The legal sanction of marriage says Ibsen, tends to destroy love. The moment, love becomes a conventionalised duty, it dies.

—*Aspects of Modern Drama* : Chandlier; p. 5.

१—व्यक्तिगत तथा पारिवारिक समस्या नाटक

इस प्रकार के नाटक भी अनेक वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं। व्यक्ति तथा परिवार की समस्याएं; आज के युग मे और भी अधिक जटिल हो गई है। इकहरे व्यक्तित्व के स्थान पर, हम नाटको में दोहरे तथा बहुव्यक्तित्व की झलक भी पाते है। इस प्रकार का चित्रण पाश्चात्य नाटकों के आधार पर ही हो रहा है। व्यक्ति की समस्याएँ एक नहीं अनेक हैं जिनमें सबसे प्रधान समस्या सेक्स संबंधी समस्या है, जिसका अधिकांशतया चित्रण हिन्दी नाटकों में आजकल हो रहा है। नर और नारी के प्रेम की अनेक स्थितियों की कल्पना ही आज के नाटकों का मुख्य कथानक हो गया है सेक्स का प्रयोग प्रेम के अर्थ में नहीं किया जा रहा है, वरन् फ्रायड के अनुसार काम वासना या लालसा के अर्थ में अधिकतर हो रहा है। इस प्रकार के प्रमुख नाटकों में पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा', 'अपराधी', उदयशंकर भट्ट का 'कमला', हरिकृष्ण प्रेमी का 'छाया और बंधन' तथा उग्र जी का 'चुम्बन' और 'आवारा' नाटक उल्लेखनीय हैं और भी इस प्रकार के अनेक नाटककारों की कृतियों का वर्णन दिया गया है, जिनमें समस्याओं का मिला जुला रूप प्राप्त होता है।

पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा' तथा 'अपराधी' समस्या नाटकों की चर्चा पिछले अध्याय में हो चुकी है। 'दुविधा' में आज की शिक्षित नारी के उस संशय और द्वन्द्व का चित्रण है, जिसमें उन्मुक्त प्रेम तथा वैवाहिक जीवन की मर्यादा के बीच वह किसको स्वीकार करे, यह उसके सामने एक महान प्रश्न है। सुधा ऐसी ही एक नारी है। पहिले वह विनय से प्रेम करती है। इसके बाद इंग्लैण्ड जाकर वह केशव से भी प्रेम करने लगती है। परन्तु जब उसे यह पता चलता है कि केशव विवाहित है तो फिर उसकी ओर से हटकर विनय से प्रेम करने लगती है। भावी वैवाहिक जीवन का निर्णय वह किस रूप में करे, यह दुविधा के रूप में उसके मन में आदि अन्त तक बना हुआ है। निम्नलिखित कथन उसकी इस मनःस्थिति का पुष्ट प्रमाण है—

'मैं केशव से प्रेम करती हूँ, वह मुझ पर बलाएँ लेता है, और चाहिए भी क्या। परन्तु विनय मोहन कहता है, मैं चापलूसी को प्रेम समझती हूँ। मेरे हृदय का स्पन्दन अस्वाभाविक है। परन्तु नहीं, केशव मुझे सचमुच प्यार करता है। मेरे हृदय की धड़कन में तड़प है, जोवन है। विनय मोहन झूठा है, बिलकुल झूठा है।'[1]

'अपराधी' में अपराध की समस्या का चित्रण है जिसका मनोवैज्ञानिक समाधान करने की चेष्टा लेखक ने की है। जिसे समाज चोर कहता है, वह जन्मजात और स्वभावगत चोर नहीं, वरन् उसकी परिस्थितियाँ उसे चोरी करने

को विवश कर देती हैं। शायद गरीबी, या सामाजिक शोषण उनमें से प्रधान परिस्थितियाँ हैं। अतः चोरी का उत्तरदायित्व व्यक्ति के साथ समाज पर भी है। हमारा सामाजिक ढाँचा अस्त व्यस्त और नियमरहित है। व्यक्ति के विकास में आर्थिक विषमता, एक महान बाधा के रूप में खड़ी है। अतः सबके समान रूप से भरण पोषण की गुंजाइश की सुविधा समाज में प्राप्त नहीं है। इसलिये परिस्थितियो से लाचार होकर अगर कोई चोरी करने को विवश होता है तो उसके दोष का उत्तरदायित्व समाज पर भी है। आजकल इस प्रकार के चोरों को पाश्चात्य प्रथा के अनुसार मनोवैज्ञानिक दंड दिया जाने लगा है। उन्हें ऐसी परिस्थिति में रखा जाता है कि वे स्वयं यह सोचें कि उन्होंने त्रुटि की है। मातादीन को जिसने घड़ी चुरा ली है अशोक इसीलिये छोड़ देता है, क्योंकि उसकी चोरी का उत्तरदायित्व उस पर नही, वरन् सामाजिक परिस्थितियों पर है। अन्त में मातादीन स्वयं आकर अपनी चोरी को स्वीकार करता है। इस प्रकार की प्रेरणा उसे अपनी पत्नी आभा से प्राप्त होती है जो अशोक की कहानी सुनकर इस निष्कर्ष पर पहुँचती है। रेणु, लीला तथा आया का चरित्र अपराध के इसी स्वरूप को विकसित करने के उद्देश्य से रखा गया है। बच्चों की कहानी सोद्देश्य है, जो चरम सीमा पर पहुँचकर अपराधी के पता लगाने में सहायक होती है। अतः नाटक का सारा कथानक पूर्ण रूप से सुगठित तथा सुव्यवस्थित है।

पं० उदयशंकर भट्ट के 'कमला' तथा 'अन्तहीन अन्त' इसी प्रकार के समस्या नाटक है जिनमें शिक्षित नारी की प्रेम संबंधी जटिलताओं का चित्रण किया गया है। कमला एक शिक्षित लड़की है जिसका विवाह बूढ़े देवनारायण के साथ हो जाता है। वृद्ध तथा अनमेल विवाह का दुष्परिणाम भयंकर होता है। यही इस नाटक का कथानक है। देवनारायण कमला पर सदा संदेह किया करता है। वह स्वभाव का चिड़चिड़ा भी है। अन्त में उसका सन्देह और भी दृढ़ हो जाता है। वह भ्रमवश यह समझता है कि शशि कमला का ही पुत्र है, जो कमला की चरित्रहीनता के परिणामस्वरूप है। कमला इस अपमान को न सह कर नदी में डूब कर आत्म-हत्या कर लेती है। कमला के अविवाहित जीवन की त्रुटियाँ देवनारायण के संदेह को पक्का बना देती हैं। समाज ने शिक्षित नारी के दोनों तरफ खाई खोद रखी है, वृद्ध-विवाह में उसकी वासना की तृप्ति नहीं होती और उन्मुक्त प्रेम करने पर ही समाज की उँगली उसकी ओर उठी रहती है।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'छाया' और 'बंधन' में व्यक्तिगत तथा सामाजिक सम-

स्याओं का समन्वित रूप मिलता है। 'छाया' में कविप्रकाश तथा उसके प्रति सामाजिक दुर्व्यवहार तथा शोषण की कहानी है। आज का कवि और साहित्यकार कल्पना जगत् में बहुमूल्य रत्नों की सृष्टि करता हुआ भी व्यावहारिक जीवन में भर पेट भोजन पाने में असमर्थ है। इसी को प्रकाश के चरित्र द्वारा नाटककार ने इस नाटक में व्यक्त किया है। इन संकटपूर्ण परिस्थितियों में प्रकाश की स्त्री माया सहायक होती है। लेकिन अपने सतीत्व को खोकर। उसे अपनी लज्जा बेचकर पारिवारिक जीवन की व्यवस्था को संचालित करने के लिये पैसा लाना पड़ता है। उसका पतन हमारे ढोंगी समाज के पतन का सूचक है। 'बंधन' को हम व्यक्तिगत समस्या नाटकों की कोटि में नही रख सकते क्योंकि उसमें व्यक्तिगत समस्याओं के साथ-साथ समाज के स्वाभाविक संघर्ष का चित्रण गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' नामक नाटक के आधार पर किया गया है। इसमें पूँजीपतियों और मजदूरों के संघर्ष का चित्रण है। खजांची राम और मोहन दोनों अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। अंत में खजांची राम अपनी लड़की मालती का विवाह मोहन के साथ करके स्वयं साम्यवाद के प्रभाव में आता दिखाई देता है।

उग्र जी ने भारतीय मजदूर के दयनीय जीवन तथा उसकी असहाय जीवन की समस्याओं पर 'चुम्बन' नामक नाटक में प्रकाश डाला है। परंतु कहीं-कहीं पर इसके संवाद बड़े ही अश्लील हो गये हैं जो उग्र जी की नग्न यथार्थवादी कला के अनुकूल हैं। परतु हम इसे एक सफल कोटि का समस्या नाटक नहीं कह सकते। कथा-सौष्ठव तथा समस्या-चित्रण की दृष्टि से 'आवारा' नामक नाटक 'चुम्बन' से अच्छा बन पड़ा है। इस नाटक की भूमिका में जार्ज बर्नार्ड शा के नाटकों की आलोचना करते हुए उग्र जी ने लिखा है कि "मेरा दावा इतना ही है कि नाटक को आदि, मध्य और अन्त में पहले नाटक होना चाहिए।" इस सिद्धान्त का प्रयोग शायद उग्र जी ने इस नाटक में करने की चेष्टा की है परंतु ये उसमें कितने सफल हुए हैं, यह विचारणीय है। इस नाटक में श्रीपुर के चरित्रहीन जमींदार राजाराम के विलासी जीवन का चित्रण है। दयाराम पादरी द्वारा ईसाई धर्म की सेवा तथा प्रेम भावना का भी समर्थन नाटककार ने किया है।

सामाजिक समस्या नाटक

इस प्रकार के नाटकों की संख्या इस युग में अधिक है। इन समस्याओं में अधिकांश विवाह, प्रेम, तलाक दहेज प्रथा और वैवाहिक जीवन में विषम प्रेम आदि की समस्याएँ हैं साम्यवाद के प्रभाव स्वरूप, धन के विषम वितरण पर भी अधिक जोर दिया गया है। कृषि की समस्याओं का भी यत्र-तत्र चित्रण मिलता है जो हमारे देश के लिये बहुत उचित है। इस प्रकार के

प्रमुख नाटकों में प्रेमसहाय सिंह का 'नव युग', गोविन्दवल्लभ पंत का 'अंगूर की बेटी', शारदा देवी का 'विवाह मंडप', दयाशंकर पांडेय का 'एक ही रास्ता' तथा 'ग्राम सुधार' नाटक, सेठ गोविन्द दास के 'दुख क्यों', 'महत्व किसे', 'बडा पापी कौन', 'संतोष कहाँ' तथा उपेन्द्र नाथ अश्क के 'स्वर्ग की झलक', 'कैद और उड़ान' तथा 'छठा बेटा' आदि मुख्य हैं जो प्रसादोत्तर युग में आते हैं। इस परंपरा के और भी अनेक नाटकों का वर्णन आधुनिक युग के प्रसंग में किया जायगा।

इन सामाजिक समस्या नाटकों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण द्विवेदी तथा प्रसाद युग से ही आरंभ हो गया था। परन्तु प्रारम्भिक नाटकों को हम सामाजिक नाटकों की ही कोटि में रखते है जिसका उल्लेख हो चुका है। प्रसादोत्तर काल में समस्या नाटक ही अधिक संख्या में लिखे जाने लगे। प्रेम सहायक सिंह के 'नव युग' में हमारे देशवासियों पर पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता का प्रभाव दिखाया गया है। पंत जी के 'अंगूर की बेटी' में मद्यपान के दुष्परिणामों का चित्रण है।

दयाशंकर पाण्डेय का 'एक ही रास्ता' इस युग का एक प्रौढ़ समस्या नाटक है। नाटक की भूमिका में इब्सन के नाटकों की चर्चा की गई है। रंगमंच की आवश्यकताओं का भी ध्यान इस नाटक में किया गया है। लेखक के शब्दों में रंगमंच और साहित्य का जहाँ सुन्दर समन्वय हो, वही सफल नाटक कहलाने का अधिकारी है। इस नाटक में बेकारी तथा विवाह इन दो सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा लेखक ने की है। ग्रामोद्योग, रचनात्मक कार्य, समाजसेवा तथा श्रम के महत्व पर जोर दिया गया है। जितेन्द्र एक दीन विद्यार्थी है जो आज के विद्यार्थियों के सामने समाज सेवा तथा रचनात्मक कार्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है। कुमार और किशोर जितेन्द्र के सहपाठी है। आशा एक गरीब भिखारिणी है। कुसुम प्रो० मुलतानी की कन्या है, जो आधुनिक नारी का प्रतीक है। जितेन्द्र, आशा के पिता बूढ़े भिखारी के मन में भीख माँगने से विरक्ति पैदा करके, उसे खिलौने बेचने के व्यवसाय करने को उत्साहित करता है। इस प्रकार से हमारे देश की अनेक प्रधान समस्याओं में भिखमंगों की समस्या का हल निकालना भी एक है। इस समस्या के सुलझाने से श्रम का महत्त्व बढ़ेगा, इसी पर लेखक जोर देता है। आज देश के कोने-कोने में विशेष कर धार्मिक केन्द्रों और तीर्थ स्थानों में हट्टे-कट्टे भीख माँगने वाले युवकों और युवतियों की समस्या इस देश के लिये महान कलंक की बात है। विदेशों में इस प्रथा को हम कदापि नहीं पायेंगे। हमारी सामाजिक व्यवस्था के ऊपर यह घोर लांछन है। इस प्रकार के भिखमंगों पर दया दिखाना आलस्य तथा बेकारी

का बीजारोपण करना है । प्रसन्नता की बात है कि सेक्स तथा प्रेम की पिटी-पिटाई लकीर को छोड़कर लेखक ने अपने दृष्टिकोण की मौलिकता का परिचय देश की अन्य समस्याओं को छोड़कर भिखमंगों की समस्या को लेकर किया है । इतना ही नहीं आशा का बाप बूढ़ा भिखारी मरते समय अपने लड़की का हाथ जितेन्द्र के हाथ में देकर दोनों में विवाह संबंध स्थापित करके असवर्ण विवाह का भी आदर्श उपस्थित करता है । उधर कुमार कुसुम को लेकर भाग जाता है जो आधुनिक शिक्षित नारी के दैनिक जीवन का एक प्रधान पहलू है । कुसुम, इब्सन की नोरा की भाँति विवाह के बंधन को हेय ठहरा कर स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती है ।

कुसुम—"मैं वस्तुत: विवाह को बड़े हास्यपूर्ण दृष्टि से देखती हूँ । यह पुरुष वर्ग द्वारा निर्मित एक ऐसा बंधन है, जिससे नारी का व्यक्तित्व, उसकी स्वतत्रता, उसकी सुख शान्ति, उसका शरीर और हृदय और उसकी कामनाएँ पुरुष के स्वार्थ की चक्की में पिसकर चकनाचूर हो जाती हैं । विवाह के पश्चात् भारतीय नारी अपना व्यक्तित्व और अस्तित्व खोकर, पुरुष की हर अच्छी बुरी इच्छा पर नाचने वाली कठपुतली, उसकी चेरी, उसकी अनियंत्रित कामाग्नि को शांत करने का साधन और बच्चा पैदा करने की मशीन मात्र रह जाती है । लेकिन आज युग बदल रहा है । परंपरागत रूढ़िवादी शृंखला की कड़ियाँ टूट रही हैं । और वह दिन दूर नहीं है जब नारियाँ भी समाज में पुरुषों से भिन्न अपना स्वतन्त्र अस्तित्व उसी सम्मान और महत्व के साथ रहकर जीवन यापन करेंगी[1]

पाश्चात्य विचारों में ढली हुई आधुनिक नारी का कितना स्पष्ट चित्र इस कथन से प्राप्त होता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं । नाटक के अंत में जितेन्द्र अपने मित्र किशोर से जीवन का एक ही रास्ता क्या है, इसकी व्याख्या करता है ।

जितेन्द्र—"जीवन का उद्देश्य आत्म-सुख और सेवा के साथ समाज सेवा भी है । और भाई मेरे दृष्टिकोण से जीवन में सुख, शान्ति और सफलता तक पहुँचने का एक ही रास्ता है, और वह है आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता, नैतिकता, संयम और रचनात्मक कार्यक्रम । हमारे देश के स्कूल, कालेज डिग्रियाँ बाँटकर देश की जनता का पेट न भर पायेंगे । हमें ग्रामोद्योग और हस्तकला को प्रोत्साहन देना होगा ।"

परिणामतया इस नाटक का प्रधान विषय हमारे देश की अनेक समस्याओं में जैसे बेकारी की समस्या, श्रम का महत्त्व, नारी स्वतंत्रता, वैवाहिक बंधन

१—एक ही रास्ता, दयाशंकर पांडेय, पृ० ४५ ।

की हेयता तथा ग्रामोद्योग और रचनात्मक कार्य के महत्त्व को सुलझाना है। नाटक टेकनीक की दृष्टि से पूर्णतः अभिनेय है।

सैयद कासिम अली का 'ग्राम सुधार' नाटक इस युग का एक दूसरा समस्या नाटक है। देश की अनेक समस्याओं में भारत में ग्राम सुधार की समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि हमारा देश गाँवों में बसा हुआ है। सदियों से परतन्त्रता के बंधन में रहने से भारतीय ग्रामों की केन्द्रीभूत सत्ता तथा लोकतंत्रीय व्यवस्था लुप्त हो चली थी। एक समय था जब भारतीय ग्राम पूर्ण रूप से आत्म निर्भर और आदर्श थे। इस नाटक में गाँवो की अनेक कुरीतियों को सुलझाने का प्रयास किया है गया। अनेक साधनों मे शिक्षा प्रसार, स्वास्थ्य और सफाई, रोशनी, ग्राम पंचायत, हरिजनोद्धार तथा अपव्यय की रोक आदि पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु नाटक में कुछ त्रुटियाँ भी है। नाटकीय टेकनीक तथा अभिनेयता के अभाव में नाटक एक नागरिक शास्त्र की पुस्तक के रूप में बदल गया है। क्योंकि न तो इसमें कथा सूत्र की योजना पर ध्यान दिया गया है, न चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विकास और संघर्ष पर। प्रचारवादी दृष्टिकोण अधिक है जो समस्या नाटकों का मूल उद्देश्य रहता है। परन्तु इन सब अभावों के होते हुए भी हम इसे समस्या नाटक की ही कोटि में रखेंगे।

जयनारायण राव का 'जीवन संगिनी' (१९४१) एक समस्या नाटक है। लेखक ने इसमें नारी स्वतंत्रता तथा शिक्षा की समस्या को अपनाया है। नाटक की भूमिका मे कहा गया है "उम्र भर अंग्रेजी और फ्रेंच में लिखने के बाद आज पहली बार अपनी मातृ-भाषा में लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ। यह नाटक आजकल के मनोवैज्ञानिक नाटकों के आधार पर लिखा गया है। संभव है, इसमें पाश्चात्य बू बास हो। नाटक के पात्रों में दलीप महतो एक जमींदार है, कैलाश उसका लड़का है जो बैरिस्टरी उपाधि प्राप्त करने के लिये विलायत जाता है। जासो दिलीप महतो की पत्नी तथा उषा कैलाश की पत्नी है। मिस मेहता तथा मिस गुप्ता लंदन में रहकर शिक्षा प्राप्त करने वाली भारतीय स्त्रियाँ हैं। नाटक के प्रथम अंक में कैलाश शिक्षा प्राप्त करने के लिये विदेश जाता हुआ दिखाया गया है। दूसरे अंक में लन्दन में आयोजित विद्यार्थी संघ की बैठक का दृश्य आता है। कैलाश विदेश में जाकर भारतीयता को ताक पर रख कर मिस मेहता को प्यार करने लगता है। होटलों में शराब पीता है। अपने घर पर पिता और पत्नी को कोई पत्र नहीं देता। दिलीप महतो कैलाश की इस प्रवृत्ति से रुष्ट होकर अपनी सारी संपत्ति कैलाश की पत्नी के नाम दे देता है। इसी बीच मिस मेहता, जो कैलाश की प्रेमिका थी, बिना उससे कुछ कहे, भारत लौट आती है और आगरे के एक अस्पताल में लेडी डाक्टर के रूप में

नियुक्त होती है। जीवन का ध्येय उसने गरीबों की सेवा बना रखा है। भारतीय नारी भी आत्म-निर्भर होकर स्वतंत्र जीवन का ढांचा खड़ा कर सकती है। यही मिस मेहता के चरित्र द्वारा लेखक व्यक्त करना चाहता है। नाटक के अंत में कैलाश अपनी पत्नी उषा को पुनः ग्रहण करता है क्योंकि इधर कई वर्षों से उषा ने शिक्षा प्राप्त करके अपनी योग्यता बढ़ा ली है। पहिले वह निरक्षर थी। साक्षर स्त्री ही सच्ची जीवन संगिनी बन सकती है, यही नाटककार का मूल संदेश है। नाटक में कथोपकथन बहुत ही संक्षिप्त तथा व्यंग्यपूर्ण है। चरित्र-चित्रण भी मनोवैज्ञानिक तथा शील वैचित्र्य की भावना से परिपूर्ण है।

सेठ गोविन्ददास के समस्या नाटक

राष्ट्र सेवा के अतिरिक्त सेठ गोविन्ददास की साहित्य सेवा भी महत्त्वपूर्ण है। उनके नाटक प्राय: अनेक शैली में लिखे गए है जो लगभग सौ के संख्या में हो चुके हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, दार्शनिक और समस्या सभी प्रकार के नाटक हैं। शैली और टेकनीक की दृष्टि से इन्होंने बड़े नाटक, एकांकी तथा मोनोड्रामा सबमें सफल प्रयोग किया है। अपनी नाटकीय प्रतिभा की उत्पत्ति और विकास के संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है, "मेरी नाटक लिखने की प्रवृत्ति कदाचित् स्वाभाविक ही है। मैंने बड़े छोटे, पूरे और एकांकी-पौराणिक ऐतिहासिक, सामाजिक, दार्शनिक तथा समस्यामूलक सभी प्रकार के नाटक लिखे हैं। इनमें से अधिकांश नाटक खेले जा चुके हैं, कुछ के फिल्म भी बने हैं। मुझे संस्कृत के भास कवि, कालिदास, भवभूति, बंगला के द्विजेन्द्रलाल राय और पश्चिम के इब्सन तथा उनके अनुयायी इंग्लैंड के बर्नार्ड शा, गाल्संवदी, फ्रांस के ब्रूइक्स, जर्मनी के हाप्टमेन, इटली के पिरेन्डैलो, स्वीडन के स्ट्रिन्डबर्ग, अमेरिका के यू० जी० ओ० नील के नाटक पसन्द आये हैं, और इनसे मुझे प्रेरणा मिली है।"[१]

इस प्रकार प्रभाव की दृष्टि से सेठ जी ने अनेक विचारकों तथा नाटककारों का अनुकरण किया है। परंतु सबसे प्रमुख प्रभाव उन पर गांधीवाद का है। विचार के क्षेत्र में जहाँ सेठ जी गांधीवाद से प्रभावित हैं, वहाँ कला के क्षेत्र में उन्होंने रोम्यारोला तथा रस्किन से आदर्श ग्रहण किया है। रोम्यारोला की भाँति उन्होंने भी कला का मूल उद्देश्य संयमित, नियंत्रित तथा मर्यादित जीवन की व्याख्या करना माना है। रस्किन ने भी अपनी 'माडर्न पेंटर्स' नामक पुस्तक में एक स्थल पर लिखा है 'मैं तो उस वस्तु को कला की महान कृति मानता हूँ

१—'साहित्य संदेश' नाटक अंक, हिन्दी के नाटककार और उनके नाटक, अपनी-अपनी कलम से।

जो किसी भी प्रकार से हृदय में सबसे अधिक और महान विचारों को उत्पन्न कर सके।[1] सेठ जी की कला पर रस्किन के इस सिद्धान्त का भी प्रभाव पड़ा।

सेठ जी के पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में आधुनिक समस्याओं का चित्रण

इनके पौराणिक नाटकों में 'कर्तव्य' (दो भागों में १९३५), 'कर्ण' (१९४६) और ऐतिहासिक नाटकों मे 'हर्ष' (१९३५), 'कुलीनता' (१९४०) और 'शशिगुप्त' (१९४२) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'कर्तव्य' के प्रथम भाग मे भगवान रामचन्द्र कर्तव्य के संपादन में अपने जीवन को समर्पित करते हुए दिखाए गए हैं। मर्यादा पालन का आदर्श राम द्वारा पूर्ण होता है। दूसरे भाग में कृष्ण लोकहित की व्यापक दृष्टि से आवश्यकतानुसार नियम और मर्यादा का उल्लंघन करते हुए अपने कर्तव्य के संपादन में तल्लीन दिखाए गए हैं। दोनों नाटक एक ही भाव को पूर्ण करते हैं। 'हर्ष', 'कुलीनता' तथा 'शशिगुप्त' ऐतिहासिक नाटक है। 'हर्ष' में हर्ष के त्याग, बहिन राज्यश्री के प्रति स्नेह तथा प्रयाग में प्रति पाँचवे वर्ष के दान तथा उत्सव का चित्रण है। इसमें वर्नाड शा की तर्क प्रधान विचारधारा का प्रभाव है। 'कुलीनता' में त्रिपुरी के कलचुरी राजा विजयसिंह की पराजय तथा एक गोंड सैनिक यदुराय की वीरता और विजय की गाथा है। ऐतिहासिक कथानक के होते हुए भी इसकी मूल समस्या सामाजिक है। राजा विजय सिंह अकुलीन गोंड सरदार यदुराय का तिरस्कार करता है। यद्यपि वह गोंड सर्वश्रेष्ठ वीर अपने को प्रमाणित करता है, परन्तु राजकुमारी रेवा उसको तिलक नहीं लगाती। उसके प्रेम को जानकर उसका पिता राजकुमारी को देश से निकाल देता है। अन्त में त्रिपुरी पर यदुराय आक्रमण करता है और राजा विजय सिंह को पराजित करके राज्य पर अधिकार कर लेता है। फलतः राजा विजय सिंह अपनी कुलीन पुत्री को उसी अकुलीन के हाथों में देकर अपनी पराजय स्वीकार करता है। विजय सिंह की पराजय में नाटककार ने, आडम्बर से पूर्ण खोखली कुलीनता की पराजय तथा अकुलीनता की विजय घोषित की है, जो आज हमारे देश की ज्वलंत समस्याओं में से है।

ठीक इसी प्रकार की समस्या पौराणिक नाटक 'कर्ण' में भी रखी गयी है। कर्ण, अविवाहित कुन्ती का पुत्र था और सारथी द्वारा पालित था। उसके सामने दैवायत्तं कुले जन्मं मदायत्तं तु पौरुषम् की समस्या थी। इसी पौराणिक समस्या को लेखक ने आधुनिक रूप दिया है। अवैध पुत्र को क्या समाज स्वीकार कर सकता है? सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी, छोटे कुल में उत्पन्न व्यक्ति क्या

१—माडर्न पेंटर्स, जान रस्किन, भाग १, पृ० ११

सदवंश जात पुरुष के समान प्रतिष्ठा और गौरव को प्राप्त करके ? उसकी बराबरी कर सकता है ? इन्हीं दो समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न लेखक ने इस नाटक में किया है। आज भी भारतीय समाज के सामने दैवायत्तं कुले जन्मं और मदायत्तं तु पौरुषम् की समस्या अपने ज्वलंत रूप में उपस्थित है। नाटक में वर्णित कर्ण के प्रति भीम के शब्द आज भी हमारे कानों में गूँजते सुने जाते है।

'रे सूत ! तू अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करना चाहता था। यह महत्वाकांक्षा ! यह साहस ! जा जा अपने कुल धर्म के अनुसार प्रतोद लेकर रथ में बैठ, सारथी कर्म से जीविका चला।' आज भी अनेक अविवाहित नवयुवतियाँ अवैध सन्तानों को उत्पन्न करके फेंक देती हैं। हमारा समाज उन्हें वर्णशंकर कह कर हेय ठहराता है। यूरोप में इस प्रकार के बच्चों को समाज ग्रहण करता है, और सरकार उनका विधिवत् पालन पोषण करती है तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा होती है, पर भारतीय समाज उन्हे नहीं स्वीकार करता।

सेठ जी के सामाजिक तथा राजनीतिक समस्या नाटक

सेठजी के ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक भी सामाजिक समस्या के प्रश्नों से पूर्ण है, ऐसा ऊपर दिखाया जा चुका है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि आधुनिक युग में समस्याओं का चित्रण नाटक का मुख्य अंग हो गया है चाहे वे किसी प्रकार के नाटक हों। समस्याओं में राजनीतिक समस्याएँ भी मिली जुली हैं। दोनों का पृथक् स्वरूप कम मिलता है। इस प्रकार के नाटकों में निम्नांकित नाटक अधिक प्रसिद्ध हैं :—

१—प्रकाश (१९३५)
२—विकास (१९४१)
३—सेवापथ (१९४०)
४—दुःख क्यों (१९४६)
५—महत्व किसे (१९४७)
६—बड़ा पापी कौन (१९४८)
७—दलित कुसुम (१९४८)
८—पतित सुमन
९—हिंसा या अहिंसा
१०—संतोष कहाँ

इन समस्या नाटकों में विचारों और सिद्धान्तों की विवेचना इब्सन तथा शा के विचार प्रधान समस्या-नाटकों की भाँति की गई है। साथ ही साथ उनमें जीवन के प्रति आदर्शवादी और उदारवादी दृष्टिकोण भी रखा गया है, जो राष्ट्रीय तथा गांधीवादी विचारधारा के परिणामस्वरूप हैं। इस प्रकार के नाटकों में टालस्टाय के सदाचार पूर्ण उदारवादी सिद्धान्त तथा राजनीतिक नाटकों में जनतंत्र के सच्चे स्वरूप को स्थापित करने की चेष्टा की गई है। सत्य पालन, सेवा और अहिंसा उनके राजनीतिक नाटकों के मूल स्वर हैं, जिन

पर गांधीवादी विचार धारा के माध्यम से टालस्टाय का प्रभाव लक्षित होता है।

सेठजी का 'प्रकाश' प्रतीक परंपरा का राजनीतिक समस्या नाटक है, इसकी व्याख्या अगले अध्याय में इस प्रकार के नाटकों के प्रसङ्ग में की जायगी।

सेठजी के समस्या नाटकों की टेकनीक

कथानक तथा विषय विवेचन की दृष्टि से इन समस्या नाटकों के पृष्ठ-भूमि निर्माण में सेठजी ने कई बातों का ध्यान रक्खा है। उन्होंने पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानक जान बूझ कर चुना है। आधुनिक भारत की जीर्ण धमनियों में नव रक्त संचार करने के लिये अतीत भारत की गौरव गाथा का गान किया है। देश के वर्तमान संघर्षों की ओर भी उनका ध्यान गया है। इसके अतिरिक्त प्राचीनता को नवीन परिधान पहनाने की चेष्टा भी की है। इस प्रकार आधुनिकता का एक आदर्शवादी स्वरूप उपस्थित किया गया है। अपने समस्या नाटकों मे वाह्य तथा आंतरिक दोनों संघर्षो को रखने की चेष्टा उन्होंने की है।

सेठजी का सार्वजनिक जीवन से गहरा संबंध रहा है, इसलिये अपने समस्या नाटकों में सामाजिक और राजनीतिक जीवन की बुद्धिवादी व्याख्या इन्होंने की है। सेवा-पथ की मूल समस्या सेवा पथ ही है। इस नाटक के तीन चरित्र समाज के विभिन्न तीन स्तरों के प्रतीक है। (१) श्रीनिवास उच्च वर्ग का प्रतीक है जो देश सेवा का मूल उद्देश्य स्वार्थ साधना तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करना मानता है। (२) शक्ति पाल मध्यम वर्ग का प्रतिनिधि है, जो सुख और आराम को देश सेवा के लिये छोड़ने को प्रस्तुत नहीं है। (३) दीनानाथ निम्न श्रेणी का पुरुष है, जो गांधीवाद के आदर्श के आधार पर सेवा-पथ के लिये त्याग को सर्वश्रेष्ठ समझता है।

"दुःख क्यों" में दुःख का मूल कारण देश के नेताओं का स्वार्थान्ध तथा वंचक होना बताया गया है। इस नाटक का नायक यशपाल दोहरे व्यक्तित्व का चरित्र है। वह अवसरवादी है। असहयोग आन्दोलन के समर्थन मे वह वकालत नहीं छोड़ता, वरन् इसलिये छोड़ता है कि उसके साथी ब्रह्मदत्त को नीचा देखना पड़े। वह कांग्रेस का नेता बनता है, चुनाव लड़ता है तथा नेता-गीरी के सहारे नाम कमाता है। नाटक की नायिका दुखदा नैतिकता तथा ईमानदारी की प्रतीक है। आज देश में अधिकांश ऐसे नेता हैं, जो नेतागिरी को एक व्यवसाय के रूप में लेकर चलते हैं। उनकी मुख्य जीविका है, समाज

में नाम और प्रतिष्ठा कमाना, नेतागिरी की आड़ मे मूर्ख जनता का गला घोंटना, तथा उनके ऊपर रोब गालिब करके समाचार पत्रों का हीरो बनना। इस नाटक में इब्सन के 'समाज के स्तम्भ' (दी पिलर्स आफ दी सोसायटी) की स्पष्ट छाया है।

'महत्त्व किसे' नामक नाटक मे चुनाव तथा नेतागिरी के लिये धन को स्वाहा करके देश सेवा करना, ठीक माना जाय या धन कमाते हुए और स्वार्थ साधन करते हुए देश की सेवा की जाय, इन दो समस्याओं में पारस्परिक द्वन्द्व दिखाया गया है। सत्यभामा दूसरे वर्ग की प्रतीक है। कर्मचन्द प्रथम वर्ग का। कर्मचन्द सेठ जी का स्वयं प्रतिरूप है, जो एक स्थल पर कहता है—"मैं हमेशा तुमसे कहता था कि वह जमाना दूर नहीं जब दरिद्र नारायण की महिमा बढ़ेगी, धनवान घृणा की चीज़ और निर्धन पूजा की वस्तु होंगे। तुम्हारे ये आलीशान महल षटरस व्यंजन, वेशकीमती पोशाकें, नीची से नीची नज़र देखी जायंगी। टूटे झोपड़ों, खुरदरी खादी और मोटे खाने की इज़्जत होगी।"

'बड़ा पापी कौन' नामक नाटक में मनोवैज्ञानिकता तथा आंतरिक संघर्ष का अच्छा चित्रण किया गया है। देवनारायण एक वेश्यागामी हैं, जो समाज के सामने भी अपने इस कर्म को नहीं छिपाता। रमाकांत छिपे-छिपे अपनी साली को रखे हुए है। पर समाज की नजरों में बड़ा पापी देवनारायण है। देवनारायण में लाख गुण हों, वह उदार है, दानी है, नौकरों को सताता नहीं, उन्हें ठीक समय से वेतन देता है, पर उसके वेश्या प्रेम की मनोवृत्ति ने उसे समाज की नज़रों में नीचे गिरा दिया है। रमाकांत शोषक वृत्ति का है, देवनारायण के विरोध में षड़यंत्र करता है, पर फिर भी वह समाज की नजरों में पापी नहीं है। दुष्कर्म करना बुरा नहीं, वरन् उसको छिपाना बहुत बुरा है, इस दृष्टिकोण से रमाकान्त ही बड़ा पापी है। इन दोनों चरित्रों की दो विभिन्न समस्याओं को रखने का निर्णय लेखक ने पाठकों के ऊपर छोड़ दिया है।

'प्रेम या पाप' नामक नाटक में भी नरेन्द्र जो एक चलचित्र का डाइरेक्टर है, मिस जूलियाना से, जो उसकी टाइपिस्ट है, प्रेम करता है। यह अङ्कों चार का एक समस्या नाटक है। अवैध प्रेम को प्रेम माना जाय या पाप, यही एक प्रश्न के रूप में नाटककार ने सबके सामने रख दिया है। लेखक के दृष्टिकोण से यह महान् पाप है।

'संतोष कहाँ' पाँच अंकों का एक सामाजिक समस्या नाटक है। नाटक

मे केवल तीन चरित्र है। मनसा राम, उसका लड़का मनोहर तथा मनसा राम का मित्र नीतिव्रत। मनसा राम एक धनी व्यक्ति है। अनेक सार्वजनिक कार्यों के लिये चन्दा देता है। अन्त मे वह एक मिनिस्टर हो जाता है और गांधी-वादी दृष्टिकोण को अपनाता है। त्याग में सच्चा संतोष भरा है, यही इस का निष्कर्ष है। नाटक के अन्त में मनसाराम स्वयं इसका निर्णय देता है।

"इस जीवन में संतोष हुआ या नहीं, यह तो तुम जीवन समाप्त होते ही समय पूछ सकते हो। उसी समय शायद इसका उत्तर दिया जा सकता है। संतोष का मार्ग खोजते रहना चाहिए और सच्चा संतोष शायद असंतोष है।"
(पृ० ३६)

"त्याग या ग्रहण' पाच अंकों का दूसरा समस्या नाटक है।" रमाकांत देहाती पत्र का संपादक है। विमला एक युवती है। वह त्याग को जीवन का आदर्श मानती है। नीतिराज और धर्मध्वज ग्रहण और त्याग इन दो सिद्धान्तों के प्रतीक हैं। नीतिराज एक कामरेड है, वह विमला को बातों में फाँस कर उसके साथ व्यभिचार करता है। अन्त में विमला उसे छोड़कर धर्मध्वज से विवाह करती है। 'धर्मध्वज' नाटक के अन्त में त्याग के महत्व को समझाया गया है। वह कहना है कि—

"धर्मध्वज—समाज को जो नये तत्व जीतना चाहते हों, उनमें केवल बाह्य पार्थिव विज्ञान ही न हो, उनमें मनोविज्ञान तथा अध्यात्म विज्ञान का समावेश हो। उसकी अस्थि हो अध्यात्म विज्ञान, रक्त हो मनोविज्ञान, और त्वचा हो पार्थिक विज्ञान तीनों का सम्मिश्रण ही उचित मिश्रण है, तभी त्याग का महत्त्व है।"

जैसा कि इस नाटक की भूमिका से स्पष्ट है इसमें रूसी साम्यवाद का स्पष्ट प्रभाव है।

'गरीब की अमीरी' में रूसी साम्यवाद का प्रभाव है। इस नाटक के कथा-नक-निर्माण में सेठ गोविन्ददास ने प्रसिद्ध रूसी उपन्यास लेखक लियोनार्ड मारिक के उपन्यास 'हाउस आफ लीक' का प्रभाव है जिसमें एक निहिलिस्ट विचार धारा से सम्बन्धित कथानक की योजना की गई है। 'गरीब की अमीरी' में भी सन्तोष और त्याग को गरीब का सबसे बड़ा धन माना गया है।

सेठ जी के नाटकों में सामाजिक और राजनीतिक समस्याएँ पृथक्-पृथक् नहीं, वरन् मिश्रित रूप में रखी हुई है। 'महत्व किसे', 'दु:ख क्यों', 'संतोष कहां' में राजनीतिक और सामाजिक दोनों समस्याओं का समन्वित रूप मिलता है। इन नाटकों में सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा प्रचार में नाटकीय तत्वों का

ठीक निर्वाह नही हो पाया है। समस्याओं के चित्रण में भी सेठ जी मिश्र जी तथा पाश्चात्य समस्या नाटककारों की भाँति समस्याओं के ऊपरी रूप को ही समझ पाये हैं, उनकी गहराई में जाने की चेष्टा उन्होंने नहीं की है। अत: उनके नाटकों में संघर्ष की तीव्रता तथा जटिलता नहीं दिखाई देती। गांधीवादी नीति को आधार मानकर चलने के कारण सेक्स के मर्यादित और सरल रूप का ही चित्रण उन्होंने अधिक किया है, उसके विकृत रूप का नहीं। उनके नाटकों में रहस्य ग्रन्थि, आकस्मिकता तथा कौतूहल की सामग्री का सर्वथा अभाव है, परिणामतया उनमें अभिनेयता की पर्याप्त मात्रा में कमी दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त सेठ जी में इब्सन तथा मिश्र जी की भाँति सामाजिक परम्पराओं पर व्यंग्य करने को सामर्थ्य नहीं। व्यंग्य प्राय: सभी नाटकों के लिये विशेषकर समस्या नाटकों के लिये अचूक अस्त्र है। उदारवादी दृष्टिकोण के कारण सेठ जी की शैली व्याख्यात्मक अधिक और व्यंग्यात्मक कम है। वे समस्याओं के वाह्य धरातल पर ही तैरते दिखाई देते है। समस्या-सागर की गहराई में जाकर भाव मौक्तिकों की खोज करने में वे असमर्थ दिखाई देते हैं क्योंकि उनमें निर्मम चोट करने वाला तथा मिल मिलाकर उत्पन्न करने वाली व्यंग्यात्मक शैली नहीं मिली।"[1]

शैलीगत पाश्चात्य प्रभाव

सेठ जी के तीन नाटक की भूमिका से स्पष्ट है कि उन्होंने देशी और विदेशी नाटककारों की कृतियों का गहरा अध्ययन किया है तथा उनकी विभिन्न शैलियों को अपनाने की चेष्टा की है। इस चेष्टा में वे पूर्णत. सफल नहीं हो सके हैं, यह निर्विवाद सत्य है। अपने विचार प्रधान समस्या नाटकों में उन्होंने इब्सन तथा शा के नाटकों की तर्क प्रधान शैली को अपनाया है। अधिकांश नाटकों में स्वगत तथा कथोपकथन का निर्माण स्ट्रिन्डवर्ग के नाटकों के आधार पर किया है। उन्होंने अमेरिका के यूगेन ओ नील तथा स्ट्रिन्डवर्ग के नाटकों के प्रभाव से मोनोड्रामा भी लिखा है। अलवेला, प्रलय और सृष्टि तथा षट् दर्शन इसी प्रकार के नाटक हैं। इन नाटकों में पशुओं तथा निर्जीव पदार्थों को भी पात्रों के रूप में रखकर उनसे मूक अभिनय कराया गया है। 'प्रलय और सृष्टि' में हम इसी शैली को पाते हैं। 'सच्चा जीवन' में चरित्र आकाश की ओर मुँह कर के बोलते देखे जाते हैं। 'शाप और वर' में पात्रों का मूक अभिनय यूगेन

१—आधुनिक हिन्दी नाटक, डा० नगेन्द्र, पृ० ७५

ओ नील के नाटकों की भाँति दिखाया गया है। 'प्रकाश' में समस्या नाटकों के प्रतीक शैली का अनुसरण किया है, जो पूर्णतः पाश्चात्य टेकनीक है। इब्सन के अन्तिम चार नाटक 'दी लेडी फ्राम दी सी', 'वाइल्ड डक', 'हेडा गोवलर' तथा 'ह्वेन दी डेड अवेकेन' इसी शैली में लिखे गये हैं।

अपने नाटकों में अभिनेयता की वृद्धि के लिये सेठ गोविन्ददास ने बहुत ही विस्तृत तथा सुन्दर रंगमंच निर्देश दिया है, जो तत्कालीन वातावरण, स्थान-परिचय, पात्रों की वेश-भूषा और परिस्थिति के निर्माण में बहुत ही सहायक सिद्ध हुए हैं। 'कुलीनता' में प्रथम दृश्य के निर्माण के लिये ढाई पृष्ठ, 'महत्व किसे' में 'बड़ा पापी कौन' में और 'शशिगुप्त' मे डेढ पृष्ठ और 'कर्ण' में चार पृष्ठ तथा महत्व किसे में एक पृष्ठ का रंगमंच निर्देश रखा गया है। इन निर्देशों मे मेज, कुर्सी, फर्श, छत, पर्दे, दीवार के चित्रों तथा भावों की भाव भंगिमा की सूक्ष्म से सूक्ष्म बारीकियों को समझाने की लेखक ने चेष्टा की है। स्थान तथा वातावरण की उपयुक्तता पर विशेष ध्यान दिया गया है। कभी-कभी कार्य व्यापार मे सरलता तथा अभिनेयता लाने के लिये बीच-बीच मे लेखक निर्देश करता रहता है।

आधुनिक हिन्दी रंगमंच के निर्माण के लिये भी सेठ गोविन्ददास ने बहुत से सुझावों को प्रस्तुत किया है। बड़े नाटकों को रंगमंच पर खेलने के लिये घूमने वाले या रिवाल्विग स्टेज का उन्होंने समर्थन किया है, जिसमे एक दृश्य दिखाते समय दूसरे दृश्य की तैयारी भी पृष्ठ-भूमि के रंगमंच पर होती रहे। बिजली के प्रकाश, माइक्रोफोन तथा लाउडस्पीकर के प्रयोग की उपयुक्तता का समर्थन उन्होंने अपने नाटकों द्वारा किया है। प्रातः, दोपहर या संध्या बड़ी सरलता से विद्युत-प्रकाश में दिखाया जा सकता है। युद्ध, मेले तथा चुनाव के दृश्यों को दिखाने के लिये उन्होंने सफेद चादर के प्रयोग का समर्थन किया है। "तीन नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सेठ जी के नाटकों में नाटकीय तत्वों की अपेक्षा सिनेमा के तत्वों का अधिक प्रयोग हुआ है। कथावस्तु के निर्माण में दृश्यों की योजना, प्रारम्भ तथा उपसंहार चलचित्रों की आवश्यकतानुसार रखा गया है।" 'कर्ण' के उपसंहार के युद्ध सम्बन्धी दो दृश्यों का रंगमंच पर दिखलाना असंभव है। लेखक ने स्वयं इसके लिये निर्देश दिया है 'यहाँ तक का अंश सिनेमा में ही दिखाया जा सकता है।' 'कर्तव्य' में भूकम्प का दृश्य भी चलचित्र के लिये ही बनाया गया है, साधारण रंगमंच पर उसे दिखाना दुष्कर होगा। शिखरचन्द जैन के शब्दों में उनका 'कर्तव्य' या तो सीता चित्रपट की छाया है अथवा सीता चित्रपट कर्तव्य के आधार पर लिया

गया प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'प्रकाश' का प्रथम दृश्य भी चित्रपट के आधार पर तैयार किया गया है।'[१]

फलत: रंगमंच तथा चलचित्र दोनों के तत्वों के सम्मिश्रण से सेठ जी के रंगमंच सम्बन्धी सुझावों में अव्यावहारिकता तथा असामंजस्य दिखाई देता है। परिणामतया उनके नाटकों में अभिनेयात्मकता की दृष्टि से बड़ा ही विभ्रम हो गया है। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय तो रंगमंच तथा चलचित्र दोनों के उपादानों तथा आवश्यकताओं में महान अन्तर है। चित्रपट में फोटोग्राफी ध्वनियन्त्र तथा बिजली के साधनों के उपयोग द्वारा कठिन से कठिन दृश्यों, घटनाओं या भावभंगियों को सरलता से व्यक्त किया जा सकता है, पर रंगमंच में उन्हें प्रस्तुत करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। चित्रपट की अपेक्षा रंगमंच के साधन तथा क्षेत्र सीमित होते है। अत: दोनों के उपादानों को एक में मिलाकर रंगमंच का निर्माण नहीं किया जा सकता।

राजनीतिक समस्या नाटक

इन नाटकों में तत्कालीन राजनीति की जटिल समस्याएँ रखी गई हैं। इन नाटकों में वृन्दावनलाल वर्मा का 'धीरे-धीरे', उग्र जी का 'डिक्टेटर' तथा सेठ गोविन्ददास का 'सेवापथ' और 'पाकिस्तान' आदि नाटक हैं। 'धीरे-धीरे' नामक नाटक में यह दिखाया गया है कि कांग्रेस सरकार अपनी सुधारवादी योजनाओं को बहुत ही धीरे-धीरे संचालित करती है। सेठ गोविन्ददास के 'सेवापथ' में सेवा और त्याग के महत्व को गांधीवादी आदर्श पर समझाया गया है। 'पाकिस्तान' में सन् १९४२ के रक्तपात तथा वर्बरता का चित्रण है।

समस्या नाटकों की प्रतीक या संकेतात्मक शैली

समस्या नाटककार अपने नाटकों में यथार्थवादी तथा व्यंग्यात्मक शैली के अतिरिक्त प्रतीकात्मक शैली का भी प्रयोग करता है। यह प्रतीकात्मक शैली आदि से अन्त तक दुहरे अर्थ को वहन करती हुई नहीं पाई जाती, जैसा कि अध्यवसित नाटकों में मिलती है, वरन् ध्वनि या संकेत के रूप में नाटक के बीच-बीच में प्राप्त होती है। नाटककार इस प्रकार के ध्वनि तथा संकेत का प्रयोग उसी समय करता है जब उसे यह निश्चय हो जाता है कि उसके भावों के प्रकाशन के लिये यथार्थवादी भाषा बिलकुल असमर्थ और अशक्त है। प्रतीकों के द्वारा थोड़े से शब्दों में जो भाव व्यक्त हो सकता है, वह व्याख्यात्मक शैली द्वारा कदापि नहीं हो सकता। झंडा सारे राष्ट्र की पूज्य भावनाओं का प्रतीक

२—'हिन्दी नाट्य चिन्तन', शिखरचन्द जैन, पृ० १६३।

है, जिसके एक आह्वान पर राष्ट्र के करोड़ों नर-नारी प्राणों की होली खेलने को तैयार हो जाते है।

इब्सन ने स्वयं अपने नाटकों मे संकेत या प्रतीकों का आश्रय लिया है। प्रो० चन्डेलिया का कथन इस संबंध में महत्वपूर्ण है—

"But Ibsen is not merely a realist; he is also a symbolist. His aim is not only a chiefly to hold the mirror upto nature, rather he reads meanings into life. ... .The use of the opened door in 'A Dolls House' is a sign of freedom and reference to the white horses in 'Rosmesholm' as a token of death, gold and green forest in 'Little Eyolf' and vine leaves in love-longs hair in 'Hedda Gabler' are all symbolic uses."

(Aspects of Modern Drama, Chaudler, p. 13).

अर्थात् इब्सन केवल यथार्थवादी ही नहीं, प्रतीकवादी भी है। वह केवल प्रकृति का दर्पण ही नहीं दिखाता, वरन् जीवन में गहरे अर्थों को समझाता है। 'गुड़िया का घर' नामक नाटक मे खुले दरवाजे का प्रयोग स्वतन्त्रता का प्रतीक है, रोजमरशोम मे सफेद घोड़े मृत्यु के सूचक है, 'लिटिल इयोल्फ' में हरा और सुनहला जगल,'हेडा गेवलर' मे लववोर्ग के बालों में उलझी हुई अंगूर की पत्तियाँ प्रतीकात्मक अर्थ रखती है। इस प्रकार के संकेतात्मक प्रतीकों का प्रयोग सबसे पहले हम उसके 'दी वाइल्ड डक' में देखते है जिसमें उसका नायक हेल्मर इकडल अपने परिवार के साथ गरीबी का जीवन बिता रहा था। उसकी लड़की हेडविग एक लंगड़े जंगली बतख को पालतू बनाये हुए है। कुछ दिनों बाद ग्रेगर्स वेले आकर इकडल के सम्मुख एक भयानक रहस्य का उद्घाटन करता है। वह यह कि इकडल की स्त्री गिना कुछ दिन पहले वेर्ले के पिता की प्रेमिका थी और हेडविग उसकी नही, वरन् उसके पिता की पुत्री है। इसके लिये जंगली बत्तख के बलिदान का सुझाव वह देता है। शोक संतप्त बेचारी लड़की यह सुनकर पिस्तौल से अपनी आत्म-हत्या कर डालती है। कुछ दिन पहिले उसकी आँखें कमजोर हो गई थीं, जिसका प्रतीक की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। 'दी लेडी फ्राम दी सी' में इलिडा के मन में समुद्र के प्रति इतना महान् आकर्षण है कि वह अपने पति को छोड़कर एक अपरिचित के साथ समुद्र की ओर चल देती है। उसी प्रकार 'दी मास्टर बिल्डर' में इब्सन की प्रतीक परंपरा पूर्णता को पहुँची दिखाई देती है। इसका नायक लेल्वर्ड सालेन एक मिस्त्री है, जो अधेड़ आयु का व्यक्ति है। उसकी भेंट एक युवती लड़की से होती है, जो उसे महान् कामों के लिये उत्साहित करती है। एक दिन मिस्त्री अपने बनाये हुए एक मीनार पर चढ़ कर प्राण दे देता है। उसके मरते समय वह युवती नीचे रूमाल हिलाकर

उसकी मृत्यु का स्वागत करती है। युवती उत्साह और यौवन का प्रतीक है। मिस्त्री पहले गिरिजाघर की ऊँची मीनारे बनाया करता था, बाद में युवती ने उसे प्रेरित किया कि वह स्त्री पुरुषों के रहने योग्य सुन्दर घरों का निर्माण किया करे और अन्त में मृत्युलोक में जाकर उसने निर्माण किया । बहुत से आलोचकों का यह मत है कि इस नाटक में इब्सन ने स्वयं अपने जीवन का प्रतीक दुनियाँ के सामने रखा है। चर्च की मीनारे उसके आरंभिक रोमांटिक नाटकों के प्रतीक, सुखी मनुष्यों के घर यथार्थवादी नाटकों के प्रतीक तथा बाद के मकान उसके प्रतीक परंपरा के नाटकों के प्रतीक है।

हिंदी समस्या नाटकों की प्रतीक शैली

पश्चिम के सांकेतिक प्रतीक पद्धति के समस्या नाटकों की देखादेखी हिन्दी में भी इस प्रकार के नाटक लिखे जाने लगे। पूरे प्रतीक परंपरा के नाटकों का प्रारंभ तो बहुत पहिले प्राप्त होता है, परन्तु यथार्थवादी समस्याओं के चित्रण में सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग प्रसादोत्तर युग से ही प्रारंभ होता है । सेठ गोविन्ददास का 'प्रकाश' इस दिशा में पहला प्रयत्न है । आगे चलकर इस शैली पर हम ऐसे अनेक नाटकों को देखेंगे जिनमें सांकेतिक प्रतीक के प्रयोग द्वारा नाटककार समस्या नाटकों में दुहरे अर्थों और दुहरे व्यक्तित्व के चरित्रों को सामने लाते हैं। अश्क का 'छठा बेटा','कैद और उड़ान','चिलमन' (एकांकी), 'चरवाहे', 'स्वर्ग की झलक', डा० लक्ष्मीनारायण लाल का 'अंधा कुआँ' और 'ताजमहल के आँसू';'तीन आँखों वाली मछली' नरेश मेहता का 'सुबह के घंटे'; जयदेव मिश्र का 'रेशमी गांठ' इस दिशा में सफल प्रयत्न है । इसके अतिरिक्त सैकड़ों एकांकी नाटक भी इस पद्धति पर लिखे गये हैं, जिनका वर्णन एकांकी नाटकों के अध्याय में होगा। उपर्युक्त ढंग के अन्य नाटकों की व्याख्या आधुनिक काल के नाटकों के प्रसंग में की जायगी। यहाँ पर केवल दो नाटकों की चर्चा होगी। सेठ गोविन्ददास का 'प्रकाश' तथा उपेन्द्रनाथ अश्क का 'स्वर्ग की झलक।'

'प्रकाश' नाटक में सेठ गोविन्ददास ने इसी प्रतीक परंपरा का प्रयोग किया है। नाटक की टेकनीक पूर्णरीति से पाश्चात्य और हिन्दी के लिये नवीन है। नाटक के आरम्भ तथा अन्त में उपक्रम (प्रोलोग) तथा उपसंहार (इपीलोग) का प्रयोग किया गया है। उपक्रम में चीनी बर्तनों की एक वृद्ध की दूकान है, जिसमें एक साड़ घुस कर तोड़-फाड़ करना चाहता है। वृद्ध, सांड से रक्षा के लिये चिल्लाकर सहायता मांगता है। नाटक के समाप्त होने पर उपसंहार में भी उसी दूकान का दृश्य है जिसमें बर्तनों को नष्ट करने वाला सांड़ पकड़ा जाता है। 'साँड़' प्रतीक के रूप में प्रकाश के लिये प्रयुक्त हुआ जो है नाटक का नायक है। नाटक के कथानक के विश्लेषण से यह प्रतीक और इसका

रहस्य समझ में आ जायगा। 'प्रकाश' में एक राजनीतिक ढाँचे को अपनाया गया है। प्रकाश अपने आरंभिक जीवन में एक सरल ग्रामीण युवक है। उसमें धीरे-धीरे जनहित की भावना का विकास होता है और वह साधारण युवक से एक नेता बन जाता है। परन्तु नाटक का कथानक इसके पहिले ही प्रारंभ हो जाता है। राजा अजयसिंह के दो रानियाँ थीं, एक रानी को जब गर्भ हुआ, तो राजा साहब को किसी कारण से उस पर शंका हुई और उसको उन्होंने त्याग दिया। वास्तव मे यही रानी इन्दु 'प्रकाश' की माता है, जिसने अपना नाम बाद में तारा रख लिया। 'प्रकाश' परित्यक्ता रानी द्वारा अजयसिंह का पुत्र है, जिसका रहस्योद्घाटन नाटक के अन्त में होता है। गर्भवती रानी को छोड़ने के बीस वर्ष बाद नाटक की वास्तविक कथा का आरंभ होता है। राजा अजयसिंह गवर्नर को भोज देते हैं, जिसमें सभी धनी लोगों के लिये अलग-अलग स्थान है। साधारण लोगों को पूछने वाला कोई नही है। इसी भोज के बीच में नाटक का प्रधान पात्र प्रकाश आता है और वह इस भेद दृष्टि की आलोचना करने लगता है। उसके मर्मस्पर्शी व्याख्यान को सुनकर साधारण लोग उसकी तरफ हो जाते हैं और वे प्रकाश को अपना नेता बनाकर भोज से असहयोग करके चल देते हैं। भगवानदास और लक्ष्मी प्राचीन परंपरा के मानने वाले पति और पत्नी हैं। उनका पुत्र दामोदर दास नवीन शिक्षा तथा सभ्यता का उपासक है। प्रकाशचन्द्र अपने उदार नीति से दामोदर दास की स्वार्थपरता का विरोध करता है, जनता में इसलिये वह बहुत सम्मान को प्राप्त करता है। मनोरमा प्रकाशचंद से प्रेम प्रकट करती है। नेस्टफील्ड एक ईसाई बैरिस्टर है जो अजयसिंह को मूर्ख बनाकर उनसे पर्याप्त धन उड़ा लेता है। उसकी पुत्री थेरीजा दामोदरदास से प्रेम करती है। प्रकाश की माता तारा (इंदु) अपने पुत्र प्रकाश पर अगाध प्रेम भाव रखती है। एक दिन वह कल्याणी से अपने पूर्व जीवन का सारा वृत्तान्त बताकर कि वह राजा अजय सिंह की परित्यक्ता रानी है, और प्रकाश राजकुमार है, कहकर चल देती है अजय सिंह को यह कुछ मालूम न था। वे प्रकाशचन्द को गिरफ्तार करके पकड़ते हैं, परंतु उसी समय कल्याणी द्वारा उन्हें पता चलता है कि वह उन्हीं का प्रथम परित्यक्ता रानी का पुत्र है। मनोरमा भी प्रकाश पर अपना प्रेम प्रकाशन करती है। नाटक की कथा यहीं समाप्त होती है।

'प्रकाश' ही चीनी बर्तन वाले सांड़ का प्रतीक है जो बाद में पकड़ा जाता है। जिस प्रकार सांड़ दूकान के बर्तनों को नष्ट करने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार प्रकाश पुरानी मान्यताओं तथा उच्च वर्ग की खोखली प्रथाओं का विरोधी है। परन्तु इस नाटक में कई बातें खटकने वाली हैं। पहिले तो प्रतीक

का प्रयोग सफल और सुन्दर नही उतरा है। वह अनुभवहीन प्रयत्न के समान दिखाई देता है। दूसरे इस नाटक में घटनाएं और पात्रों का इतना विस्तार हो गया है कि लेखक उचित रीति से उसका निर्वाह नहीं कर पाया। कुछ चरित्रों का चित्रण अच्छा हुआ है। सर भगवानदास अपने सम्पत्ति के बल पर सर की उपाधि पाते है, उसका पुत्र दामोदर दास पाश्चात्य सभ्यता को मानने वाला व्यक्ति है जो उचित या अनुचित किसी रीति से धन कमाता है। धन-पाल एक ऐसे मिनिस्टर है, जो सिफारिश के आधार पर कांग्रेस का टिकट पा जाते है और एक बार जब चुनाव में विजयी होकर विधान सभा में घुसते है, तो अवसर पाकर सरकार की ओर मिल जाते हैं। वैसे और पात्रों की जटिलता के कारण नाटक का कार्य व्यापार शिथिल तथा टेकनीक त्रुटिपूर्ण हो गया है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात प्रतीक शैली का प्रयोग हैं, यद्यपि वह भी सफल नहीं हो पाया, परन्तु टेकनीक की दृष्टि से नवीनता का द्योतक है।

उपेन्द्रनाथ अश्क

विषय तथा शैली दौनों के दृष्टिकोण से अश्क ने पाश्चात्य प्रभाव को पूर्ण रीति से ग्रहण किया है। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में पाश्चात्य कलाकारों के आधार पर जो नवीन से नवीन प्रयोग और विधाएं प्राप्त हो रही हैं, सबका परिचय हम अश्क जी मे पाते हैं। उनके प्रारंभिक नाटक 'जय पराजय' को तो जाने दीजिये, उसे एक प्रयोग समझ लीजिए, परंतु 'स्वर्ग की झलक' से ही उनकी प्रतिभा का नया रूप दिखाई देता है, जो आगे चल कर अत्यंत सबल तथा स्वस्थ रूप धारण करता है। 'जय पराजय' को छोड़कर इनके सभी नाटक सामाजिक समस्या नाटक हैं। सेठ गोविन्ददास के सामाजिक नाटकों में समस्यायें रखी तो गई है परन्तु भोजन में नमक की अनुपस्थिति के समान वे फीकी लगती हैं। यह व्यंग्य नमक के रूप में है, जिसका कलात्मक और सफल प्रयोग अश्क ने अपने नाटकों में किया है। उनकी रचनाओं में एक कुशल तथा अनुभवी कलाकार की सतर्कता के दर्शन होते हैं। कहीं भी शैथिल्य या जोड़ (पैंच वर्क) का नाम भी नहीं। वे आलोचकों को उंगली तक उठाने का अवसर नहीं देते। संवाद तो उनके जादू का सा आकर्षण रखते है। वे अत्यंत स्वाभाविक, चुटीले तथा तिलमिलाहट उत्पन्न करने वाली कचोट से भरे रहते हैं। व्यंग्य प्रयोग तो मानो अश्क का एकाधिकार है। इनके समान व्यंग्य और हास्य का प्रयोग शायद ही किसी आधुनिक नाटककार मे मिलता हो। व्यंग्य के कारण ही इनके संवादों में चुस्ती, गतिशीलता तथा ऊंचे दरजे की वाग्विदग्धता देखने को मिलती है। उनके नाटकों में चरित्र सावन के वर्षा की फुहार के समान आते हैं और अपनी रंगरेलियों को दिखाकर अदृश्य हो जाते हैं। वास्तव में लेखक की कुशल

कला तथा परिपक्व प्रतिभा के पीछे विस्तृत अध्ययन तथा अनुभव का इतिहास छिपा हुआ है। उन्हीं के शब्दो में उनकी नाटक रचना का रहस्य सुनिये—

"मैने सामाजिक, राजनीतिक, सांकेतिक, मनोवैज्ञानिक, सभी प्रकार के नाटक लिखे और पढ़े हैं। पश्चिम के प्रसिद्ध नाटककारों में मुझे इब्सन, मैतरलिंक स्टिडवर्ग, चेखोव, सिनोनोव, ओ नील, काफमैन, माह्म, वेरी, प्रीस्टले ने सदा नाटक लिखने की प्रेरणा दी है। मैंने शा, गाल्सवर्दी, पिरेन्दिलो और दूसरे अमरीकी, जापानी और योरुपीय नाटककारो को भी पढ़ा है।...मैंटर लिंक या ओ नील का नाटक मैं चाहे दूसरी या तीसरी बार ही क्यों न पढ़ूँ सदैव मुझे नाटक लिखने के लिये प्रेरित करते है। और उसे पढकर मेरे मस्तिष्क में नाटक के जो आधारभूत विचार रहे होते है, उनमं से कोई न कोई अस्पष्ट विचार, सर्वथा स्पष्ट होकर नाटक का रूप धारण कर लेता है।...वास्तव में नाटक लिखने की क्रिया भिन्न रसायनिक द्रव्यों के समावेश से नया द्रव्य तैयार करने ऐसी ही है। कहाँ-कहाँ से क्या मिला कर एक नई कृति तैयार हो जाती है, इसका ब्यौरा ठीक से देना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।"[1]

अश्क ने अनेक नाटकों में एक ऐसी टेकनीक को अपनाया है जिसमे पाश्चात्य कलाकारों के आधार पर नवीन टेकनीक और शैली के दर्शन होते हैं, उसका चित्रण आधुनिक युग के नाटकों के प्रसंग से किया जायगा। प्रसादोत्तर काल में उनकी प्रतिभा का सूत्रपात कितने कलात्मक ढंग से हुआ इसकी हल्की सी झलक उनके अरंभिक नाटक 'स्वर्ग की झलक' से दी जायगी।

'स्वर्ग की झलक' (१९३९) उनके आरंभिक काल की रचना है जो 'जय पराजय' (१९३७) के पश्चात् लिखी गई है। 'जय पराजय' के अतिरिक्त उनके सभी नाटक सामाजिक हैं। सामाजिक नाटक ही उनकी रुचि के अधिक अनुकूल हैं। 'स्वर्ग की झलक' की भूमिका में उन्होंने लिखा है "मेरे अपने विचार से आज हमें सामाजिक नाटकों की अधिक आवश्यकता है।"

('स्वर्ग की झलक' में आधुनिक शिक्षा के दुष्परिणाम तथा विवाह की समस्या का चित्रण है। यह चार अङ्कों का एक व्यंग्य नाटक है। आज के शिक्षित नवयुवक आजकल की शिक्षित नवयुवतियों की बाहरी टीमटाम, चमक-दमक, क्रीम तथा पाउडर से सुसज्जित तितलियों के रूप में देखकर अपना सर्वस्व खो बैठते है, वे सोचते है कि उनके साहचर्य में जीवन स्वर्ग हो जायगा,

---

१—आदि मार्ग की भूमिका, मैं नाटक कैसे लिखता हूँ; अश्क, पृ० १८-२२।

परन्तु जब वे उस स्वर्ग के निकट जाते हैं तो उन्हें विदित होता है कि वह एक मृग मरीचिका तथा उनके मस्तिष्क की महज रंगीनी थी। आधुनिक युवकों के इसी भ्रम को यह नाटक दूर करता है। उमा आधुनिक शिक्षित तथा स्वतन्त्रता को जीवन का परम ध्येय मानने वाली इसी प्रकार की एक नारी है। वह सर्वदा अपने अधिकारों का ही ध्यान रखती है। कर्तव्यों को उसने ताक पर रख दिया है। आधुनिक युग की विषमता अवसाद तथा निराशा का मूल कारण उमा के स्वभाव की इसी विचित्रता में छिपा हुआ है। आधुनिक नारी प्राचीन नारी के पातिव्रत पतिपरायणता, सेवा और त्याग के आदर्श को एकदम विस्मृत करके अपने अधिकारों के उपभोग, इच्छाओं की पूर्त्ति, स्वार्थलिप्सा तथा अपनी-सजावट को ही जीवन का सर्वस्व समझती है। परिणामतया उसका दाम्पत्य जीवन भार और नरक तुल्य हो गया है इसी उमा के पीछे रघुनन्दन पागल सा हो गया था। उसको अपना कर वह अपना स्वर्ग बसाना चाहता था। परन्तु जब उसके वास्तविक स्वभाव से उसका परिचय होता है, तब वह उमा से उदासीन होकर उसे छोड़ देता है और एक कम पढ़ी लिखी लड़की रक्षा को अपनी जीवन संगिनी बनाता है। श्रीमती अशोक और श्रीमती राजेन्द्र भी आधुनिक नारी के रूप हैं, जिनके कारण मिस्टर अशोक और राजेन्द्र का स्वर्ग तुल्य पारिवारिक जीवन जिसकी वे कल्पना किए हुए थे, नरक तुल्य बना हुआ है। श्रीमती राजेन्द्र की बच्ची ज्वर से बेसुध है, परन्तु उसका उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं। उसे पति की गोद में तड़पती छोड़ कर वे कंसर्ट (नृत्य) के लिये चली जाती हैं। जाते समय वे उल्टे ही पति के ऊपर बच्चों का उत्तर-दायित्व रखते हुये कहती है—

'मेरी चिन्ता आप न कीजियेगा। रात को मुझे देर हो जायगी, शाम का खाना भी मैं मिसेज दयाल के यहाँ खा लूँगी। और बच्चे का ध्यान रखियेगा। मुझे सूचना देना न भूलियेगा। मुझे चिन्ता रहेगी।'

दाम्पत्य जीवन के इसी नीरस और बनावटी रूप का दर्शन अशोक और उनकी पत्नी के जीवन से प्राप्त होता है। श्रीमती अशोक दो रोटियों के पकाने में विशेष कष्ट का अनुभव करती हैं चीखती चिल्लाती हैं, पर कंसर्ट में जाने के नाम पर अत्यन्त प्रसन्नता दिखलाती हैं। नाटक के दूसरे और तीसरे दृश्य में श्रीमती अशोक के चरित्र-चित्रण ने कितने सुन्दर व्यंग्य का प्रयोग किया है।

श्रीमती अशोक—"मैंने कह दिया मुझ में स्वयं हिम्मत नहीं है।"

मिस्टर अशोक—"(मनुहार के स्वर में) देखो सीता! खीर तो मैंने पका ही डाली है, सब्जी मैं ले आया हूँ। तुम उसे चढ़ा देती और चार रोटियाँ (चुटकी बजाता है)।"

श्रीमती अशोक—"मैंने कभी बनाई भी हो।"

इसी बीच में रघुनन्दन आ जाता है, जब अशोक गला फाड़-फाड़ कर श्रीमती अशोक को उठाने लगा था।

रघुनन्दन—क्या बात है, इतने चीख रहे हो। (श्रीमती अशोक से) नमस्ते जी!

मिस्टर अशोक (बेज़ारी से) चीख रहा हूँ। क्या करूँ बीस बार कहा कि भाई आराम करो। समय पर एक घड़ी का आराम बाद को एक वर्ष की मुसीबत से बचाता है, पर यह मानती ही नहीं। (थके स्वर मे) स्वास्थ्य इनका खराब है, रात में ये सोई नहीं, पर ज्योंही सुबह मैंने बताया कि तुम्हारा खाना है, तो झट रसोई में जा बैठीं। मैं सब्जी लेने गया था—मेरे आते ही आते इन्होने खीर बना डाली। (हँसते है) खीर बनाने मे तो सीता जी बस निपुण हैं। मुझे लग गई देर। वापस आया तो बड़ी मुश्किल से रसोई घर से उठाया कि भाई आराम करो, फिर मुझे डाक्टरों के पीछे मारा-मारा फिरना पड़ेगा।"

मिस्टर अशोक के इस कथन में कितना खिलखिलाहट की हंसी उत्पन्न करने वाला व्यंग्य है। व्यंग्य भरी इसी सजीव शैली के कारण रंगमंच पर उनके नाटक जब प्रस्तुत किए जाते है, तो दर्शक को आकुलता का अनुभव नहीं होता। 'एक घूंट' मे पूरे नाटक का रस वह ले लेना चाहता है। वास्तव में उनकी नाटकीय शैली का यह आरम्भिक रूप है जो आगे चलकर चरम विकास को प्राप्त होता है।

उपसंहार

सारांश यह है कि प्रसादोत्तर काल में लेखकों का ध्यान ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों की ओर कम परन्तु सामाजिक नाटकों की ओर अधिक रहा। ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों मे भी सामाजिक समस्याओं के चित्रण की ओर लेखकों का ध्यान रहा। पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'नारद की वीणा', सेठ गोविन्ददास के 'हर्ष' और 'कर्ण' इसी प्रकार के नाटकों के उदाहरण हैं। सामाजिक समस्याओं के चित्रण में जान स्टुअर्ट मिल के उपयोगितावाद, टालस्टाय के शान्ति, अहिंसा तथा सेवा भाव, इब्सन तथा शा के विचार प्रधान तर्क शैली के नाटकों का, तथा फ्रायड के सेक्स सिद्धान्त और ओनील, इब्सन तथा स्ट्रिन्डबर्ग की सांकेतिक प्रतीकवादी शैली का प्रभाव अधिक मिलता है। अनुवादों में सामाजिक तथा यथार्थ परम्परा के नाटकों के अनुवाद अधिक हुए है। पाश्चात्य नाटकीय रचना की अनेक शैलियाँ इस युग में प्रस्तुत की गई जिसका विकास आधुनिक युग से हुआ।

—:०:—

छठवाँ अध्याय

आधुनिक हिन्दी नाटक और नाटककार तथा पाश्चात्य प्रभाव

यूरोपीय युग-धर्म, नवीन मान्यताएँ और प्रयोग

इब्सन का अन्तिम नाटक 'ह्वेन वी डेड अवेकेन' (१८९९) मे लिखा गया था। उसके पश्चात् नाटकीय क्षेत्र में अब तक का समय नाटककारों ने विभिन्न प्रयोगों और नाटकीय स्वरूपों के निर्माण में लगाया है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तथा उत्तरार्द्ध में सारे यूरोप में पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विघटन का प्रसार हो चला था। बेकारी और मंहगी की समस्या बढ़ रही थी। राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रीयता का सङ्गठन एक युग धर्म बन रहा था। जर्मनी में हिटलर, इटली में मुसोलिनी तथा इंग्लैड और फ्रांस में नेताओं के प्रतिस्पर्द्धा स्वरूप नवीन शस्त्रीकरण का आयोजन हो रहा था, जिससे परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व महायुद्ध छिड़ा। धन और जन का अपार संहार हुआ। अणु बम की विजय हुई, परन्तु ऐसी विजय जो सदियों की निर्मित विभिन्न संस्कृति और मानवता के भस्मी-भूत अस्थिपंजर पर अट्टहास करने वाली थी। युद्ध में विजयी राष्ट्रों की धन और जन की शक्ति तो कुछ दिन के लिए पंगु सी बन गई। खाद्यान्न तथा जीविका निर्वाह के लिये अन्य साधनों पर नियन्त्रण हुआ, परिणाम तथा बेकारी, मँहगाई तथा कुत्सित अनैतिकता, चोर बाजारी और मुनाफाखोरी स्पष्ट रूप में

सारी दुनियाँ मे व्यापक हो उठी । युद्ध के परिणामस्वरूप इस प्रकार की अनैतिकता ने साहित्य और सस्कृति पर महान प्रभाव डाला । निराशा, अवसाद तथा मानसिक कुण्ठा का वातावरण सर्वत्र फैल गया । प्राचीन परम्पराओं और सिद्धान्तो के प्रति अनास्था का उदय हुआ फलत: साहित्य और कला के क्षेत्र में कलाकार अन्तस की व्याकुलता तथा पीड़ा को छिपाये नवीन सिद्धान्तों तथा प्रयोगो की खोज मे लगे रहे । नाटक के क्षेत्र में भी इसी प्रकार का परिवर्तन हुआ । एक वाद से दूसरे वाद का आश्रय ग्रहण करना, एक प्रकार के प्रयोग से दूसरे प्रयोग के लिये बेचैन रहना, युग धर्म सा बन गया । व्यक्तिवादिता तथा अहं का सर्वत्र व्यापक प्रसार हुआ और इस व्यक्तिवादी भावना के परिणामस्वरूप प्रकृतवाद (नेचुरैलिज्म), अतियथार्थवाद (सुर-रियलिज़्म) समाजवादी यथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद (साइकोनेलिज़्म), प्रतीकवाद तथा अभिव्यंजनावाद (इक्सप्रेसनिज़्म) विभिन्न विचार धाराओ के रूप मे अभिव्यक्त हुई । प्रथम अध्याय मे इस प्रकार के वादों तथा 'नाटकीय सिद्धान्तों का नाम लिया जा चुका है । जोला, हाप्टमैन, गोर्की, चेखव, आदि नाटककारों ने प्रकृत वाद के अन्दर जीवन के जघन्य से जघन्य तथा कुत्सिक भावनाओं का चित्रण यथार्थवाद के नाम पर चित्रित किया । आत्महत्या, अपराध, अवैध प्रेम, नारी अपहरण, बलात्कार तथा प्रपच और छल नाटको के लिये साधारण विषय बन गए । वासना मूलक प्रेम तथा सेक्स की छान बीन अनेक रूपों में हुई । अचेतन मन की तहें एक के बाद एक खोली जाने लगीं । इस सम्बन्ध में फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद ने साहित्य, राजनीति तथा दर्शन के क्षेत्र में युगान्तरकारी प्रभाव उपस्थित किया ।

सिगमन्ड फ्रायड (१८५६-१९३९) का नामोल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका है । मनोविश्लेषण के पूर्व उन्होंने चिकित्सा के क्षेत्र मे बड़ा काम किया था, क्योंकि वे एक डाक्टर थे । अनेक शारीरिक तथा मानसिक व्याधियों के अध्ययन के पश्चात् वे इस अनुभव पर पहुँचे कि अनेक शारीरिक बीमारियों का कारण मानसिक चिंतन होता है । इस प्रकार की बीमारियों के लिये बाहरी चिकित्सा के बदले मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता है । उन्होंने फ्रांस के कूए महाशय की देखरेख में हिस्टीरिया के अनेक रोगियों को अच्छा किया । इसके बाद का सारा जीवन उन्होंने अवचेतन मन की क्रियाओं के अध्ययन में लगाया । फ्रायड ने मानसिक जीवन के तीन भाग बताए हैं । चेतन मन (कान्सस माइन्ड), चेतनोन्मुख (प्रीकान्सस) तथा अवचेतन (अनकान्सस) । चेतन मन की परिधि छोटी होती है । इसमें ज्ञान जीवन की समस्त क्रियाओं का संचालन मन द्वारा होता है । चेतनोन्मुख मन के स्तर में वे इच्छाएं तथा

भावनाएं रहती हैं, जो प्रकाशित नहीं हैं और जो इकट्ठी पड़ी रहती हैं और चेतन मन में आने के लिये प्रस्तुत रहती है । अचेतन का क्षेत्र काफी विस्तृत है, इसमें हमारी आदि प्रवृत्तियाँ भरी रहती है । इसके द्वारा असंख्य अनैतिक तथा असामाजिक भावनाएं निरन्तर चेतना में आती रहती हैं किन्तु विवेक उन्हे दबा देता है । इसमे द्वन्द्व उत्पन्न होता है । फ्रायड ने मन की तुलना एक नाट्यशाला से की है । चेतन मन रंगमंच के समान है, जहाँ अनेक पात्र अभिनय करने आते हैं और उसके पश्चात् अदृश्य हो जाते है । अचेतन मन नाट्यशाला के सजावट के कमरे (ग्रीन रूम) के समान है, जहाँ अभिनेता अभिनय की तैयारी में लगे रहते है । चेतनोन्मुख मन रंगशाला में घुसने के फाटक के समान है । चेतन और अचेतन मन के बीच एक प्रतिबन्धक (सेन्सर) रहता है, परन्तु अचेतन मन की अनेक भावनाएं विशेषकर वासना संबंधी स्वप्न के रूप में प्रकाशित होती है । फ्रायड के अनुसार अचेतन मन की सबसे प्रवल वासना काम वासना है । सामाजिक तथा नैतिक विषयों के कारण काम वासना का मनुष्य विशेषकर नियंत्रण करता रहता है । अतः यह वासना स्वप्न, सांकेतिक चेष्टाओं तथा मानसिक रोगों और अनेक ग्रन्थियों (कामप्लेक्सेज़) के रूप में प्रकट होती हैं । इनमें आडिप्स ग्रन्थि (आडिपस काम्प्लेक्स), न्यूरेटिक ग्रंथि (न्यूरेटिक काम्प्लेक्स), उन्माद आदि मुख्य हैं ।

एडलर तथा युंग ने फ्रायड के सिद्धान्तों को आगे बढ़ाया । एडलर का सिद्धान्त है कि मनुष्य की सबसे प्रबल इच्छा आत्म-प्रकाशन और बड़प्पन प्राप्त करने (सेल्फ एसेर्शन) की भावना है । जब इस आत्म प्रकाशन की भावना में बाधा पड़ती है, तब मनुष्य अपने को हीन समझने लगता है, फलतः उसमें आत्म-हीनता ग्रन्थि (इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स) का विकास होने लगता है और उसमें अनेक मानसिक रोग पैदा हो जाते हैं । चलने फिरने वाले स्वप्न, अकारण भय, चिन्ता, द्विव्यक्तित्व (डबल पर्सनालिटी) तथा बहुव्यक्तित्व (मल्टिपुल पर्सनालिटी) इन्हीं रोगों में से मुख्य हैं । इस अध्याय मे ऐसे अनेक पात्रों के दर्शन होंगे जो मानसिक रोग से ग्रस्त हैं ।

युंग ने समाज में रहने की भावना को मनुष्य की सबसे प्रबल वासना बताया । वह समाज द्वारा आदर चाहता है । समाज का कृपापात्र बनना चाहता है। उसका कथन है कि प्रेरणा शक्ति (लिविडो) के अनेक स्वरूप होते हैं । बालक में वह भूख के रूप में रहती है और बड़े बनने पर काम वासना के रूप में परिवर्तित हो जाती है । उन्होंने बताया कि मनुष्य के मन में केवल अनैतिक तथा बुरी वासनायें ही नही होतीं, वरन् नैतिक तथा धार्मिक भाव भी रहते हैं । इसी आधार पर उन्होंने मनुष्यों को दो वर्गों में बाँटा है । बहिर्मुखी

(इक्सट्रोवर्ट) तथा अन्तर्मुखी (इन्ट्रोवर्ट)। वहिर्मुखी व्यक्ति सामाजिक होता है। वह धन तथा यश प्राप्ति के लिये बाह्य जगत् के कार्यकलापों में निरन्तर लगा रहता है। एकान्त विचारक कलाकार, कवि तथा दार्शनिक अन्तर्मुखी वृत्ति के होते हैं। वहिर्मुखी व्यक्ति अपनी झूठी प्रशंसा चाहता है। नेतागिरी के फेर में रहता है तथा अवसरवादी होकर समाज को धोखा देता है, वह तर्क या विचार को लेकर अपने जीवन सबंधी आदर्शों का निश्चय करता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति ठीक इसके प्रतिकूल आचरण करता है। उसे राग द्वेष या प्रशंसा से कोई मतलब नही। इन अनेक प्रकार के चरित्रों को हम नाटकों में भी देखेंगे, इसीलिये यहाँ उनकी व्याख्या आवश्यक जान पड़ती है।

युंग महोदय का यह भी कहना है कि एक सामूहिक अचेतन (कलेक्टिव अनकान्सस) की भी प्रवृत्ति होती है, जिसमे अनियमित रूप से अनेक भाव आते जाते रहते है, यही तथ्यातिरेकवादियों की (सुर्रियलिस्ट्स) की चेतना धारा (स्ट्रीम आव कान्सस) है। जिनके विषय में उनका यह कथन है कि मनुष्य के मनोभाव किसी क्रम से नहीं आते, वरन् अत्यंत असंगत, अव्यवस्थित तथा अधूरे रूप में आते है। अत: उपन्यास तथा नाटकों के क्षेत्र में भी इसी अव्यवस्थित रूप से चरित्र का मानसिक विश्लेषण होना चाहिये।

आधुनिक नाटकों में मनोविश्लेषण के उपर्युक्त सिद्धान्तों का पग-पग पर व्यापक प्रभाव और प्रयोग दिखाई देता है। चरित्रो में अंतर्द्वन्द्व तो साधारण वस्तु है जिसका प्रयोग आदिकाल से होता आ रहा है। काम वासना के अनेक विकृत रूपो जैसे आडिपस ग्रंथि (आडिपस कामप्लेक्स), नारसिस्टिक ग्रन्थि, आत्मरतिग्रन्थि चरित्रों का चित्रण होने लगा है। चरित्र के दुहरे तथा अनेक रूप (मल्टीपुल पर्सनालिटी) का चित्रण तो साधारण सी बातें है। रूसी नाटककार एवरेनाव ने इस प्रकार के बहुव्यक्तित्व पर बहुत जोर दिया है। उसका इस सबंध में निम्नांकित कथन बहुत महत्वपूर्ण है। वह लिखता है कि "मनुष्य का अहं कई स्तरों में विभक्त किया जा सकता है। मैं अकेला नहीं, वरन् कई मैं का समन्वित रूप है। व्यवहार में हम कह सकते हैं कि उसके तीन प्रधान रूप हैं। पहला तर्क, दूसरा भावना और तीसरा शाश्वत्तीय वृत्ति है। इस प्रकार की तीनों वृत्तियों का चरित्र उसने "दी विन्ग्स आफ दी सोल" नामक नाटक में खींचा है। १९१३ मे उसने रंगमंच पर एक प्रसिद्ध पत्र लिखा जिसमें उसने घोषित किया कि नाटककार को बाहरी घटनाओं के जंजाल से अपने को एकदम मुक्त करके आत्मा तथा मन की प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना चाहिये।[१] पिरेन्डेलो का स्थान इस रूप में योरोपीय नाटककारों में

१—वर्ल्ड, ड्रामा, ए० निकल, पृ० ७१८।

सर्वश्रेष्ठ है। उसके चरित्र बहुव्यक्तित्व के ज्वलन्त स्वरूप है। जैसा कि पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है नाटकीय क्षेत्र मे अनेक वादों तथा सिद्धान्तो का प्रयोग किया गया। इनमे से अभिव्यंजनावाद, तथ्यातिरेकवाद, भविष्यवाद और प्रतीकवाद प्रसिद्ध है।

अभिव्यंजनावाद का संचालन जर्मनी से हुआ जो प्रकृतवाद तथा प्रभाववाद की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। इसमें अचेतन तथा अर्धचेतन मानसिक संघर्षों तथा उलझनों का चित्रण हुआ। सच्चे अभिव्यंजनावादी नाटक में केवल एक मुख्य पात्र होता है, जिसके अन्दर संघर्ष चलता रहता है। मोनोलाग, एसाइड तथा मौन अभिनय का प्रयोग इसके द्वारा होता है। नाटक के क्षेत्र में अभिव्यंजनावाद एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में हुआ जिसका प्रभाव समस्त यूरोप तथा अमेरिका के नाटककारों पर पड़ा है। स्ट्रिंडवर्ग के स्वप्न नाटकों मे इसका मूल स्वरूप दिखाई देता है। प्रारंभ से अन्त तक उसके सभी नाटकों में व्यक्तिवाद की स्पष्ट झलक है। उसने नाटको की घटनाओं और चरित्रों को अपने ही से संबंधित देखा। 'आफ्टर दी फायर' उसके इस प्रकार के नाटकों मे प्रमुख हैं।[1] इसी वाद के अन्दर इटली के मेरिनेटी ने भविष्यवाद (फ्यूचरिज़्म) नामक आन्दोलन चलाया जिसके मूल मे रूढ़ियो के विरोध की भावना थी। मेरिनेटी ने अपने ग्रन्थों में अपूर्ण वाक्य संज्ञा, क्रिया का प्रयोग किया, विराम चिह्नों का प्रयोग नहीं किया। उनके बदले टाइप के विचित्र रूप प्रयुक्त किए। इन लोगों ने संश्लिष्ट रंगमंच की स्थापना की, जिस पर एक साथ कई दृश्य दिखाए जा सकें। पिरेन्दैलो ने ग्रोटेस्क्यू थियेटर की स्थापना इसी के प्रेरणा स्वरूप की। १९१२ में मास्को के भविष्यवादी कलाकारों ने क्यूबो फ्यूचरिज़्म या अभिनव भविष्यवाद की स्थापना की। इन लोगों ने युगानुकूल चलने का समर्थन किया और कला और साहित्य के तमाम पुरानी परंपराओं, नियमों तथा सिद्धान्तो का विरोध अपने एक घोषणा पत्र द्वारा किया जिसका शीर्षक था "लोक रुचि के मुंह पर तमाचा।" जर्मनी के केसर आयरलेंड के सीन ओ कैसे, इटली के पिरेन्डिलो तथा अमेरिका के ओ नील प्रसिद्ध अभिव्यंजनावादी कलाकार हैं। इनके नाटकों मे निराशावाद, हत्या, दुःख, मानसिक कुंठा तथा मानसिक ग्रन्थियों से पूर्ण अनेक चरित्रों के चित्र प्राप्त होते है। पिरेन्डिलो ने तो निराशावाद को एक कला का रूप दे दिया। उसने जीवन विकृतियों का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। यूगेन ओ नील ने दुःख तथा उत्पीड़न को मूर्त्तिमान कर दिया है। उसके सैंतीस नाटकों में केवल पाँच ही ऐसे है जिनमे आत्म-हत्या, पागल पन, मृत्यु तथा रक्तपात के चित्र नहीं हैं।

१—वही, पृ० ५२०।

फ्रायड के मनोविश्लेषण संबंधी खोजों का उसने अधिक से अधिक प्रयोग अपने नाटकों में किया है ।

अस्तित्ववाद—निराशा तथा दुःख का चित्रण अस्तित्ववाद (इक्जीस्टेंस-लिज्म) के परिणाम स्वरूप हुआ, जिसकी स्थापना जीन पाल सात्रे ने द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् की । उसका सिद्धान्त है कि मनुष्य जो कुछ है या जो कुछ करता है उसके लिये वह स्वयं उत्तरदायी है । मनुष्य को अपनी सत्ता या परि-स्थिति के बाहर कोई गुण तत्व अलग नहीं है । इसके आधार पर निराशा, पतन, दुःख तथा नास्तिकता का घोर चित्रण नाटको के क्षेत्र में हुआ । सात्रे ने अपने प्रसिद्ध नाटक लमोचे (१९४३) में प्रतीकों के प्रयोग द्वारा अनैतिकता तथा पीड़ा और दुःख का चित्रण किया है । इस नाटक में ग्रीक कथानक का प्रतीक द्वारा नवीन अर्थ ग्रहण किया गया । प्रथम दृश्य में जर्मन युद्ध की भयंकरता तथा नर संहार का प्रतीक है । रगमच मे सड़ी हुई लाशों की दुर्गन्ध भिनभिनाती मक्खियों का स्वर, शोक संतप्त नारियो का आर्त्त क्रन्दन सुनाई पड़ता है । इतना वीभत्स और घिनौना वातावरण शायद ही कहीं देखने को मिले । सात्रे का कहना है कि मानव जीवन विरोधाभास तथा व्यंग्य से भरा हुआ है, इस प्रकार की भावनाओं का चित्रण करना ही अस्तित्ववादी कला-कारों का कर्त्तव्य है ।[1] मनुष्य अपनी सामाजिक दुनियां स्वयं बनाता है और वह अपने को ऐसी परिस्थितियों मे घिरा हुआ पाता है जिन पर स्वयं उसका कोई वश नहीं है । इस तरह से जिस प्रकार के वातावरण से वह घिरा रहता है, वह ग्रीक दुखान्त नाटकों के वातावरण से मिला जुला है । अन्तर यह है कि ग्रीक नाटकों में महानता तथा उच्चता का दर्शन भी साथ मिलता है । परन्तु अस्तित्ववादी नाटककारों ने जीवन के अन्धकार पक्ष का ही कटु अनुभव किया है । १९४४ में उसका दूसरा नाटक (विसियस सर्किल आर नो इक्जीट) लिखा गया जिसमे गारसिन, इस्टेली तथा इंज तीन मृत व्यक्ति नरक में दिखाए गए हैं । तीनों व्यक्तियो ने जघन्य अपराध किया है । इनको एक भयानक तथा दुःखदायी कमरे में अनन्त काल तक के लिये डाल दिया गया है, जिससे बचने का कोई उपाय नहीं है । इनमें एक अत्याचारी पुरुष है, दूसरी एक व्यभिचा-रिणी स्त्री तथा तीसरी भी एक शिशुहता नारी है । नंगी दीवारे खिड़कियाँ ईंटों से चुनी हुई जिससे दिन रात का अन्तर ही मिट गया है । दर्पण की

1—In human life, there is ever present irony and paradox. It it precisely this paradoxical irony that the existantia-lists claim, should be the subjecs matter of the art.

—*World Drama*, A. Nicoll, p. 906.

खाली जगह, खाली इसलिये कि अनन्त काल में विजड़ित मानव अपनी ओर देख नहीं सकेगा, दूसरे को ही देख सकेगा। इन सबमें भयंकर उत्पीड़न के बीज भरे है। इस भयंकरता में आशा उल्लास दोनों नहीं है। नरक की सृष्टि मनुष्य स्वयं अपने कर्मों द्वारा करता है, पराये ही नरक की सृष्टि करते है (हेल इज़ अदर पिपुल) यही इस नाटक का मूल संदेश है। सार्त्रे के बाद निराशावाद का और भी गहन तथा व्यापक चित्रण अन्य नाटककारों ने किया है। फ्रांस में आर्मन्द सेलेक्रा, जीन एनाउल और अमेरिका में टेनेसे विलियम्स तथा आर्थर मिलर ने भय तथा निराशा के विभिन्न रूपो का चित्रण किया है। टेनेसे विलियम्स पिरेन्देलो से प्रभावित हैं और आर्थर मिलर इब्सन से प्रभावित है। इन नाटककारों ने मनोविज्ञान के सूक्ष्म नवीनतम खोजों का उपयोग अपने नाटकों में किया है।

तथ्यातिरेकवाद (सुर्रियलिज्म)—अस्तित्ववाद की मूलभूत भावनाओं में तथ्यातिरेकवाद की भावना थी। इन लोगों का मत था कि वास्तविकता की मान्य सीमा के बाहर नाटक में उन विषयों का चित्रण किया जाय, जिनका चित्रण अब तक नहीं हुआ है। फलतः स्वप्न तथा स्वयं संबद्ध मानस तथा अचेतन मन की सारी कुंठाओं को व्यक्त किया जाने लगा। इस वाद की प्रमुख विचारधाराओं का निर्माण फ्रायड ने हीगेल तथा मार्क्स के सिद्धान्तों को ही मिलाकर किया। तथ्यातिरेकवादी एकरूपता के स्थान पर विभिन्नता के समर्थक हैं। इन विचारकों ने दादावाद (डाडाइस्ट्स) से भी प्रेरणा ग्रहण की जिसका संचालन ट्रीस्टनजारा ने किया है। जारा पुरानी मान्यताओं तथा कला और साहित्य के मानदंडों का घोर विरोधी था। सुररियज्म चित्रकला तथा शिल्पकला की एक विशेष शैली थी जिसके द्वारा अचेतन मन की कुंठाओं का चित्रण किया गया। इसके सबसे अच्छे आलोचक तथा विचारक हरबर्ट रीड हैं। जिन्होंने 'मीनिंग आफ 'आर्ट' और 'आर्ट नाउ' नामक पुस्तकों द्वारा इस वाद की विशेषताओं की व्याख्या की है। फ्रांस के पश्चात् इस वाद का प्रचार अमेरिका में हुआ जहाँ नाटकों में नये प्रतीक तथा संकेतों का प्रयोग बिम्ब के रूप में ग्रहण किया गया। इस वाद का सबसे प्रमुख नाटककार जीन काकतो है जिसने विभिन्न शैलियों में नाटक की रचना की है। आरफी नाटक (१९२५) में उसने मृत्यु को सुन्दर स्त्री के रूप में चित्रित किया है। इन नाटककारों के अतिरिक्त फ्रांस का जीन जिराउदो (१८८२-१९४४) मे अदम्य आशावादिता का चित्रण अपने नाटकों में करता है। लोर्की ने महायुद्ध के बाद भी निराशा तथा पीड़ा को स्पेन के नाटकों में मूर्तिमान कर दिया है।

फलतः विगत ७५ वर्षों में यूरोप के नाटकीय क्षेत्र के विभिन्न कलाकारों ने

विभिन्न वादों तथा सिद्धान्तों का प्रयोग किया है। शा और इब्सन के पश्चात् नाटकीय प्रतिभा का विकास स्पेन के लोर्का, फ्रांस में क्लाउदेल, जिराउदो, सात्रे, एनाउल, इटली में पिरेन्देलो, अमेरिका में ओ नील, विलियम्स और मिलर, रूस में एन्ड्रीव, एनोनाव तथा गोर्की तथा इंग्लैंड में टी० यस० इलियट के द्वारा हुआ है। इन नाटककारों ने असंतुलित जीवन की भयंकरताओं तथा अर्धचेतन मन की विभिन्न सरणियों का चित्रण अधिक किया है। निराशा, नास्तिकता, पीड़ा तथा घुटन नाटक का सर्वमान्य विषय हो गया है। इन नये नाटककारों ने हमारी आस्था को झकझोर दिया है। व्यक्ति तथा समाज दोनों बौद्धिक जिज्ञासा के विषय बन गये हैं। चरित्रों का चित्रण संसार से न लेकर मनोविज्ञान की खोजों के आधार पर होने लगा है अतः चरित्र फ्रायड, एडलर तथा युंग के सिद्धान्तों की परिधि में घूमते दिखाई देते है, उनसे बचकर शायद कोई चरित्र मिले। सिनेमा तथा टेलीविज़न के प्रचार ने नाटकों के स्वाभाविक विकास में महान बाधा उपस्थित की है। उससे लोक रुचि विकृत हो गई है। अनेक प्रयोगों तथा प्रतीकों के झाड़ झंखाड़ में आधुनिक नाटक की भाषा रहस्यमय तथा शास्त्रीय हो गई है। नाटक जनसाधारण का साहित्य न होकर बुद्धिवादियों तथा तत्वचिन्तकों के समझने की वस्तु हो गया है। जीवन में व्याप्त अशान्ति, नग्नता तथा निराशा ही एकमात्र नाटक के विषय बन गये हैं।

आधुनिक युग में अव्यवसायी रंगमंच की स्थापना रंगमंच के विकास में महत्वपूर्ण सोपान है। यद्यपि सिनेमा तथा टेलीविजन से उसकी निरंतर प्रतियोगिता हो रही है।

फलतः आज का नाटककार विषय, शैली तथा रंगमंच की दृष्टि से नई प्रणालियों की निरन्तर उधेड़ बुन में लगा है। आणविक-युग (ऐटम एज) में विज्ञान सर्जनात्मक विकास की ओर उन्मुक्त होगा। पीड़ा, निराशा तथा अनास्था की विषादमय घड़ियाँ जारही हैं और वह दिन शीघ्र आने वाला है जब नई आस्था, नई चेतना तथा नवीन जीवन दर्शन का चित्रण नाटकों द्वारा होगा।

हिन्दी नाटकों का आधुनिक युग

सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थिति और युग चेतना

विज्ञान के आविष्कारों, मनोविश्लेषण के खोजों, तथा पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतिक्रिया भारतीय समाज और साहित्य पर भी पड़ी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतव्यापी जन आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो चुका था। गांधी-इरविन पैक्ट तथा गोलमेज सभाओं के

दो बार के प्रयत्न करने पर भी भारत की राजनीतिक समस्या किसी शान्ति पूर्ण निर्णय की ओर अग्रसर न हो सकी। १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र (ह्वाइट पेपर) प्रकाशित करके भारत में संघ शासन की स्थापना की, जिससे प्रान्तों में स्वायत्त शासन की नींव पड़ी। प्रथम बार काँग्रेस मंत्रि-मंडल का निर्माण बहुमत से हुआ, परन्तु इस संघ-व्यवस्था में गवर्नर तथा गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों की संख्या इतनी अधिक थी कि शीघ्र ही मंत्रियों से अनबन हो गई। इसी बीच द्वितीय विश्व महायुद्ध के छिड़ने से भारत को बलात अंग्रेजों ने इसमे खीच लिया, फलत: कांग्रेस मन्त्रिमंडल ने त्यागपत्र दे दिया। युद्ध के पश्चात् भारत के भावी विधान के निर्माण की समस्या को लेकर क्रिप्स महोदय आये परन्तु उनकी योजना को कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। ८ अगस्त १९४० को काँग्रेस ने बंबई में 'भारत छोडो' का प्रसिद्ध प्रस्ताव पास किया, जिसके कारण विदेशी सरकार की दमन-नीति और भी उग्र हो उठी। फलतः १९४२ की देशव्यापी क्रोधाग्नि जनता में भड़क उठी। इस अप्रतिक्रिया स्वरूप केबिनेट मिशन ने भारत की भावी योजना का निर्माण किया। काँग्रेस द्वारा अंतःकालीन सरकार की स्थापना हुई परन्तु मुसलिम लीग ने इसका विरोध किया। १६ अगस्त १९४६ को कलकत्ते तथा नोआखाली मे साम्प्रदायिक दंगों के फलस्वरूप हजारों नर नारी तलवार के घाट उतारे गये। भयंकर रक्तपात, कठोर बर्बरता तथा अराजकता का साम्राज्य छा गया। १६ मई १९४७ की घोषणा के परिणामस्वरूप भारत का विभाजन हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान, के रूप में हो गया। पाकिस्तान में सिंध, पश्चिमी पंजाब, सीमा प्रान्त, बिलोचिस्तान, पूर्वी बंगाल तथा सिलहट के प्रांत आ गये। १५ अगस्त १९४७ को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारतीय शासन का भार हस्तांतरित कर दिया। २६ जनवरी १९५० को भारतवर्ष एक गणतंत्रात्मक राज्य घोषित किया गया। इधर शरणार्थियों की समस्या सुलझाने में पुनः पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल में भयंकर लूटपाट, रक्तपात तथा बर्बरता का दृश्य उपस्थित हो गया। बंगाल के अतिरिक्त सारे देश में दुर्भिक्ष तथा महामारी का प्रकोप फैला। राजनीतिक अशान्ति तथा युद्धों के कारण घोर अशाति, अनैतिकता तथा निराशा का साम्राज्य छा गया। जन जीवन में जिस निराशा तथा अवसाद का राज्य यूरोपीय देशों में फैला, उसी का प्रसार हमारे देश में भी हो गया। बेकारी और मंहगाई सर्वत्र फैल गई। मुनाफाखोरी, चोरबाजारी घर-घर में फैल गई। देश में स्वतंत्रता की प्राप्ति से पुनर्निर्माण तथा विकास की योजनाओं का तांता लग गया। राष्ट्र का जो जर्जर ढांचा विदेशी शासक अपनी शोषण नीति के फलस्वरूप छोड़ गये थे, उसमें नये रक्त तथा नई चेतना संचारित

करने का महान उत्तरदायित्व देश के कर्णधारों पर पड़ा । परन्तु द्वितीय महा-युद्ध, अकाल तथा राजनीतिक अशांति के कारण सारे राष्ट्र में जो अव्यवस्था तथा अराजकता फैली थी, वह शीघ्रता से संभल न सकी । सामाजिक क्षेत्र में छूआछूत तथा जाति पांति के बन्धन ढीले पड़ने लगे । सर्वोदय समाज द्वारा धार्मिक तथा सामाजिक समन्वय की प्रबल चेष्टा की जाने लगी । पूँजीवाद के अन्तर्विरोधों के फलस्वरूप मध्यम वर्ग के समाज में घोर व्यक्तिवादी प्रवृत्तियो का और विचारधाराओ का विकास हुआ । साथ ही साथ उसी प्रकार के नए प्रभाव के परिणामस्वरूप एक ऐसी बुद्धिजीवी क्रान्ति की उत्पत्ति हुई जिसके लिये वास्तविक लोकतंत्रात्मक प्रजातंत्र की स्थापना के लिये, वर्ग विहीन समाज का अस्तित्व आवश्यक समझा गया । फलतः देश के कुछ विचारक वर्ग संघर्ष की भावना को तीव्र करके पूंजीवाद का विनाश समाज के लिये कल्याण-कर समझने लगे ।

आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रायः पाश्चीत्य अनेक नाटककारों, उनकी विभिन्न नाट्यशैलियों तथा प्रयोगों का सशक्त प्रभाव पड़ा है । यूरोप में जिन वादों तथा सिद्धान्तों का विकास और परिपोषण सैकड़ों वर्ष में हुआ था हिन्दी में उनमें अधिकांश १९२० से १९२५ तक के अल्पकाल में ही आ गए । इब्सन तथा शा के अनुकरण पर विचार प्रधान नाटकों का सृजन लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, पृथ्वीनाथ शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा और अश्क के नाटकों में हुआ । इनमें कुछ टेकनीक संबंधी अन्तर भी रहा है, इसकी व्याख्या की जा चुकी है । पंत के हिन्दी के प्रतीक नाटकों पर विलियम बटलर ईट्स तथा मैटरलिक के नाटको का प्रभाव पड़ा । अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर तथा धर्मवीर भारती पर स्ट्रिन्डवर्ग, पिरेन्डेलो ओ नील की नाट्य कला का प्रभाव स्पष्ट है । अश्क ने स्ट्रिन्डवर्ग की भांति अचेतन मन के संघर्षों का चित्रण किया है । इनकी विस्तृत व्याख्या अगले पृष्ठों में की जायगी । निराशा तथा विरूपता का चित्रण पाश्चात्य नाटककारों के अनुकरण पर हिन्दी में भी प्रचुर रूप से होने लगा है। प्रभाकर माचवे ने इसका समर्थन स्पष्ट शब्दो में किया है ।

"आधुनिक कला में असुन्दर का चित्र बढ़ता जा रहा है । उसी प्रकार आधुनिक साहित्य में विद्रूप, वीभत्स और विकृत रूपों का निरूपण भी एक समस्या बन गई है । आलोचकों के लिये यह चिन्ता का विषय हो रहा है । रोंदा और एफ़ताइन का शिल्प, पिकासो तथा पालक्ली के चित्र, जार्ज ज्वायस तथा सार्त्रे के नाटक और उपन्यास आज सिद्ध करते हैं कि कला में ऐसी असं-तुलित रचना एक विश्वव्यापी समस्या है । आज के साहित्य में भी दुरूहता, अशिष्ट विषयों की चर्चा, मनोविकृति पूर्ण चरित्रों का चित्रण, यौन तथा अन्य

मनोविकारों से ग्रस्त मानवों के संज्ञा प्रवाह का यथातथ्य वर्णन, कुण्ठा और त्रास मनोदौर्बल्य और हताश तथा आत्महन्तामयी खीझ का वर्णन बराबर बढता जा रहा है।"[1]

आधुनिक हिन्दी नाटककार

आधुनिक भारत की समस्यायें

सुप्रसिद्ध नाटककार गाल्सवर्दी से एक बार किसी ने नाटक के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न किया था। 'उन्नतिशील' नाट्यकला की बुनियाद क्या है ? उनका उत्तर था 'सच्चाई और खरापन, लेखक की वफादारी, अपने अनुभूति के प्रति, अपने पर्यवेक्षण के प्रति, अपने व्यक्तित्व के प्रति।' आज के हिन्दी नाटककारों में अधिकांश के प्रति गाल्सवर्दी का यह कथन लागू हो सकता है। देश की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं की गहराई और उलझनों को देखने की निरन्तर चेष्टा में आज का नाटककार व्यस्त है। उसकी आँखें देश-विदेश के अनेक प्रयोग तथा शैलियों की ओर लगी हुई है। आज के मानव का जीवन भी इतना व्यस्त हो चुका है कि उसे अपनी बाहरी प्रतिष्ठा, टीमटाम, पारिवारिक उलझन, सामाजिक बन्धन तथा आर्थिक कठिनाइयों से एक क्षण भर के लिये दूर हटने तथा दूसरों के विषय में सोचने का अवकाश नहीं है। मकड़ी की भाँति अपने-अपने जाले के निर्माण में सभी लगे हैं। सामूहिक जीवन की भावना उसमें एकदम विलुप्त नहीं हुई है परन्तु उसमें खोखलापन और निर्जीवता है। पश्चिम की देखादेखी सम्मिलित परिवार प्रथा टूट रही है। आज के भारतीय परिवार का प्रत्येक धनोपार्जन करने वाला व्यक्ति अपना स्वयं का नीड़ अलग बसाना चाहता है। आधुनिक नवयुवक वयोवृद्ध के नियन्त्रण में रहना पसन्द नहीं करता। धर्म के बन्धन ढीले हो गये हैं, जहाँ पचास वर्ष पूर्व लोग दूसरे के यहाँ जल भी ग्रहण करने में संकोच करते थे, उन्हीं लोगों के संरक्षण में नगरों में पग-पग पर होटल, रेस्टोरेन्ट, काफी घर तथा चाय घर बस रहे हैं। खान पान, छुआछूत की भावना अपनी अन्तिम साँसें ले रही है। उद्योग धंधों के प्रसार के कारण, जीविकोपार्जन के साधनों का गाँवों में अभाव तथा शहरों में आधिक्य होने से पढ़े लिखे लोगों को गाँवों से अरुचि तथा नागरिक जीवन से अत्यन्त प्रेम हो गया है। अतः इस प्रकार के सभी लोग नागरिक जीवन से किसी न किसी रूप में चिपके रहना चाहते

१—'संतुलन', प्रभाकर माचवे, चौथा अध्याय, आधुनिक साहित्य और मनोविकृति, पृ० ३५

हैं। देश प्रेम तथा राष्ट्र प्रेम को कितने ही लोग व्यवसाय बना कर जनता का गला घोट कर अपने स्वार्थों की पूर्त्ति कर रहे हैं। लीडरी को पेशा बनाकर चलने वाले अवसरवादी रंगे सियारों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ रही है। गांधी के अहिंसा तथा सत्य के आदर्शों को लोग भूलने लगे है। दुरभिमान तथा आडम्बर देश को तबाह कर रहा है। कपट तथा मक्कारी में निरन्तर वृद्धि हो रही है। जमीदारी के उन्मूलन से विलास, वैभव, आलस्य की वृद्धि उच्च वर्ग की अपेक्षा मध्यम तथा निम्नवर्ग में हो रही है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् ग्रामोद्धार की समस्या सरकार की प्रमुख समस्या बन गई है, जिसके अन्तर्गत अनेक विकास की योजनाओं को सक्रिय रूप देने के लिये सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं को चालू किया है; जिनमें अपार धनराशि तथा जीवन शक्ति का उपयोग हो रहा है। प्रतिवर्ष दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने वाली देश की जन संख्या के लिये खाद्यान्न तथा भरण पोषण के साधनों का अभाव बढ़ता जा रहा है, जिससे मंहगाई प्रत्येक भारतीय के लिये एक विकट समस्या हो गई है। परन्तु इस समस्या में विकास का उत्तरदायित्व शासन तथा नियंत्रण के शिथिल स्वरूप पर है। फलतः चोर बाजारी एक साधारण सी वस्तु हो गई है। शुद्ध वस्तुओं में मिश्रण करके सस्ते दामों में विक्रय करना प्रत्येक विक्रेता का स्वभाव सा बन गया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनैतिकता तथा कृत्रिमता का प्राधान्य है। प्राचीन तथा नवीन का संघर्ष प्रत्येक भारतीय परिवार में इतने चरम रूप को कभी नही पहुँचा था। फलतः नवयुवकों का प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं के प्रति विरोध भी बढ़ चला है। बेकारी की समस्या दिन प्रतिदिन उग्र रूप धारण करती जा रही है। चलचित्रों के प्रसार तथा पाश्चात्य शिक्षा ने देश के तरुण बालक-बालिकाओं में फैशन परस्ती तथा अपव्ययता को इतना बढ़ा दिया है कि उससे पारिवारिक बजट में विशेष प्रभाव पड़ रहा है। आज के युवक युवती फलतः धर्म तथा माता-पिता के भय और आदर से विमुक्त होकर अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन हो रहे हैं, साथ ही अधिकारों की माँग में निरन्तर अग्रसर होते दीख रहे हैं। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप मिलों तथा कारखानों की निरन्तर वृद्धि हो रही है। शोषकों का शोषितों के प्रति अत्याचार बढ़ रहा है, साथ ही साथ शोषितों में शोषकों के प्रति विद्रोह तथा परस्पर संगठन भी बढ़ रहा है। पर्दे की प्रथा शिक्षित जनता से समूल नष्ट हो रही है फलतः नारी अपने को पाश्चात्य प्रत्येक स्वर और ताल पर मोड़ रही है। पातिव्रत-सेवा, त्याग और सरलता से वह दूर हटकर बाहरी टीमटाम, दिखावे तथा आडम्बर का शिकार बन रही है। सांरांश यह है कि जीवन की जटिलता

के साथ व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिक समस्याओं की जटिलता में व्यापक प्रसार हुआ है, जिसका पर्यवेक्षण और चित्रण नाटककार निकट से करने लगे हैं। आधुनिक नाटककारों में अनेक तो इन समस्याओं की ऊपरी सतह का ही चित्रण कर सके हैं, परन्तु उनमे से कुछ इनकी गहराई में पहुँच कर उनकी उधेड़बुन में लगे हुए हैं। नाटकीय टेकनीक तथा शैली में भी महान परिवर्तन हो चला है। छोटे संवाद, चुभते व्यंग्य तथा सरल रंगमंच विधान के प्रति नाटककारों का आकर्षण बढ़ रहा है। पाठ्य नाटकों की अपेक्षा अभिनेय नाटकों की संख्या बढ़ रही है। इन अनेक लेखकों में कुछ प्रमुख आधुनिक हिन्दी नाटककारों और उनकी कृतियों का उल्लेख निम्नांकित है। इन नाटककारों में हैं—

१—सेठ गोविन्ददास
२—उदयशङ्कर भट्ट
३—वृन्दावनलाल वर्मा
४—पृथ्वीनाथ शर्मा
५—उपेन्द्रनाथ अश्क
६—जगदीशचन्द्र माथुर
७—विष्णु प्रभाकर
८—डा० लक्ष्मीनारायणलाल
९—भगवतीचरण वर्मा
१०—रामनरेश त्रिपाठी
११—मोहनलाल महतो वियोगी
१२—रामवृक्ष बेनीपुरी
१३—धर्मवीर भारती
१४—नरेश मेहता
१५—सुधीन्द्र
१६—वीरदेव वीर

इनके अतिरिक्त सैकड़ों उदीयमान नाटककार अपने एकांकी नाटकों, ध्वनि रूपकों से देश की अनेक समस्याओं का सुन्दर चित्रण कर रहे हैं। इन लेखकों तथा उनकी कृतियों का अध्ययन एकांकी-कला के अध्याय में पर्याप्त रूप से किया जायगा। उपर्युक्त सूची में से गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा तथा उपेन्द्रनाथ अश्क की कुछ कृतियों का अध्ययन काल क्रम के अनुसार पिछले अध्याय में हो चुका है। उनके पिष्टपेषण की आवश्यकता यहाँ नहीं है। इन नाटककारों के कुछ नाटक जो रचना क्रम से आधुनिक

काल में आते हैं, तथा जिन पर नवीनतम पाश्चात्य विचारधारा तथा शैली का प्रभाव है, उन्हीं का अध्ययन इस अध्याय में किया जायगा।

इस अध्याय के प्रारम्भ में फ्रायड, एडलर तथा युंग के मनोविश्लेषण सम्बन्धी खोजों का उल्लेख किया जा चुका है। इन खोजों के आधार पर अनेक मानसिक ग्रन्थियों तथा रोगों का भी वर्णन किया है जिनका उपयोग पश्चिमी नाटककारों ने अपने नाटकों में किया है। पिनरो, हाप्टस् मैन, गोर्की, सन्डरमेन, स्ट्रिन्डवर्ग तथा चेखोव के नाटकों मे इस प्रकार के विकृत प्रेम तथा मानसिक रोगों और ग्रन्थियों का परिचय मिलता है। हिन्दी नाटककारो में लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों से ही फ्रायड के सिद्धान्त का प्रभाव पाते है। "सिन्दूर की होली" मे मनोजशकर के मुख से फ्रायड के ही सिद्धान्तों को दुहराया गया हैं। "आप लोग प्रत्येक बीमारी की शारीरिक दवा करते हैं और शरीर को ही उसका कारण समझते है, गोकि अधिकांश बीमारियाँ मानसिक विक्षोभ के कारण होती हैं।"

सेक्स सम्बन्धी मानसिक रोगों का वर्णन सेठ गोविन्ददास के 'पतित सुमन' और उदयशंकर भट्ट के 'नया समाज' में भी किया गया है। 'पतित सुमन' में एक ही पिता की दो माताओं से उत्पन्न सन्तान हैं। उन्हें बहुत दिनों तक यह भेद मालूम नहीं होता। एक साथ रहने से उनमें प्रेम का उदय होता है, परन्तु जब वे कामातुर होकर काम वासना की तृप्ति के लिए अग्रसर होते हैं, तो यह रहस्य बताया जाता है कि वे भाई और बहन हैं। सामाजिक नियमों के कारण उनके काम पिपासा में बाधा पड़ती है फलतः दोनों अपनी काम वृत्ति का निरोध करते हैं, परन्तु आगे चलकर दोनों का जीवन दुःखमय हो जाता है और अन्त में सुमन गंगा मे डूब कर मर जाती है। इस नाटक में लेखक का उद्देश्य यह चित्रित करता है कि नर और नारी का यौन सम्बन्ध आदिम तथा जन्मजात है। समाज तथा धर्म ने भाई, बहिन, माँ, बाप, धर्म, अधर्म, पुण्य और पाप के कृत्रिम सम्बन्धों को बनाकर स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक यौन सम्बन्धों पर संयम, नैतिकता का बन्धन लगा दिया है। परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के मानसिक रोगों तथा ग्रन्थियों का विकास हो गया है। फ्रायड के अतिरिक्त 'पतित सुमन' पर ब्रूइक्स के 'दी इस्केप' का स्पष्ट प्रभाव है। ब्रइक्स के 'दी इस्केप' (१९१३) नामक नाटक में भी इसी प्रकार की भयानक ट्रैजडी जीन तथा ल्यूसियानी के जीवन में घटित होती है।

उदयशंकर भट्ट के 'नया समाज' की कथावस्तु मनोविश्लेषण शास्त्र की आडिपस ग्रन्थि तथा आत्मरति ग्रन्थि (नारसिस्टिक कामप्लेक्स) के आधार पर निर्मित हुई है। इस नाटक में 'कामना' की काम-पिपासा शान्त नहीं होती,

अतः वह मानसिक रोग से पीड़ित है। उसे कोई मनुष्य पसन्द ही नहीं आता, यदि किसी को चाहती है तो रूपा नौकर को क्योंकि रूपा की आँखें कामना के पिता और उसके भाई की आँखों की तरह की है। कुछ दिनों के बाद उसे जब मालूम होता है कि रूपा लड़का नहीं लड़की है, तो उसके हृदय को बड़ी ठेस लगती है।

'यही अकेला मुझे अच्छा लगता था। इसकी आँखों मे मुझे अपनापन दिखाई देता था। मैं ऐसा रूप चाहती थी, मैं ऐसी आँखो को चाहती थी। मैं अब शादी नहीं कर सकती। मुझे बाबा जैसी आँखें अच्छी लगती हैं। चन्द्र जैसी आँखें अच्छी लगती हैं। रूपा जैसी आँखें अच्छी लगती हैं। यह मुझे क्या हो गया। मैं अपने मन से परेशान हूँ, मै अपने से परेशान हूँ।'

रूपा के प्रति कामना के वास्तविक प्रेम का कारण यह है कि उसके रूप में वह अपने ही सौन्दर्य का दर्शन करती है। इस रूप-साम्य का रहस्य बाद में खुलता है। रूपा भी कामना के पिता मनोहर सिंह की ही अवैध सन्तान है। इस तरह भट्ट जी ने पाश्चात्य मनोविज्ञान के ही आधार पर आत्म-रति ग्रन्थि (नारसिस्टिक कामप्लेक्स) का चित्रण इस नाटक में किया है।

पृथ्वीनाथ शर्मा के 'दुविधा' और 'अपराधी' की सामाजिक समस्याओं का उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। उनके तीसरे नाटक 'साध' में काम वृत्ति के दूसरे स्वरूप पुत्रेषणा की समस्या का चित्रण हुआ है। सन्तानोत्पत्ति सृष्टि के विकास के लिए अनिवार्य माना गया है भारत में आर्य प्राचीन काल में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके एक सन्तान उत्पन्न करने के पश्चात् ही काम-वासना से मुक्ति ले लेते थे। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से आधुनिक युग में गृहस्थाश्रम का प्राचीन स्वरूप विशिष्ट हो चुका है। स्त्रियों को लोग बच्चा पैदा करने की मशीन समझने लगे हैं। आधुनिक युग में स्त्री और पुरुष विवाह के बन्धन को रूढ़िवादी तथा कृत्रिम समझते हैं। वे उन्मुक्त प्रेम तथा अविवाहित जीवन का समर्थन करते हैं। वैवाहिक जीवन पुरुष और स्त्री के स्वच्छन्दता के मार्गों में एक महान बाधा है। परिवार तथा बच्चों का उत्तरदायित्व उनके ऊपर एक भार स्वरूप है। अतः वे पशुओं की भाँति अनियन्त्रित प्रेम का समर्थन करते हैं। अतः विवाह न करते हुए भी अपनी काम-प्रवृत्ति को रोक नहीं पाते, फलतः अवैध सन्तानों की वृद्धि तथा अनेक मानसिक ग्रन्थियों की उत्पत्ति पुरुष और स्त्री में हो जाती है। पृथ्वीनाथ शर्मा के 'साध' की नायिका कुमुद उन्मुक्त प्रेम तथा अनियंत्रित जीवन की अभिलाषिनी है। वह प्रोफेसर अजीत से इसी शर्त पर विवाह करती है कि दोनों सन्तान नहीं

उत्पन्न करेंगे। काम-वासना की तृप्ति करते हुए भी सन्तान-निरोध का प्रचलन पश्चिमी देशो में सर्वत्र फैल गया है। उसी का अनुकरण हमारे देश में भी धीरे-धीरे हो रहा है। प्रोफेसर अजीत तथा कुमुद भी सन्तानोत्पत्ति के भय से यौन सम्बन्ध में नहीं पड़ते, परन्तु प्रो० अजीत मनोविज्ञान के ढंग से कुमुद के मन में सन्तानोत्पत्ति की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न करता है, परिणामतया कुमुद उससे प्रभावित होती है और अपने पति से कहती है,"मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा एक प्रतिरूप तुम्हें भेंट करूँ।" इस प्रकार कुमुद अपने हृदय की काम-पिपासा को स्वाभाविक 'साध' के रूप में प्रकट करती है। सन्तान विरोध तथा पुत्रेषणा की प्रवृत्ति का दमन भी अनेक मानसिक रोगों तथा ग्रन्थियों के विकास का कारण होता है। यही नाटककार के दिखाने का यहाँ उद्देश्य है। फलतः काम वृत्ति की भाँति सतानोत्पत्ति की वृत्ति का दमन अस्वाभाविक तथा हानिकर बताया गया है।

वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक समस्या नाटकों का वर्णन पीछे हो चुका है। 'धीरे-धीरे' में राजनीतिक समस्याओं पर व्यंग्य किया गया है। कांग्रेस की ढुलमुल नीति के कारण योजनाएँ तो बड़े जल्दी बन जाती हैं, पर उनको कार्यान्वित करने में कितनी देर होती है, यही इस नाटक का कथानक है। नेतागिरी को व्यवसाय बनाकर जनता को पथभ्रष्ट करना ही आजकल के अधिकांश सुधारकों का उद्देश्य रहता है। चुनावों मे विजयी होने के लिए किस प्रकार लोग अनेक सत्-असत् नियमों से जनता को प्रभावित करते है, एक बार निर्वाचित हो जाने पर जनहित की भावना से वे किस प्रकार तटस्थ और उदासीन हो जाते है। इसी का अतिरंजित चित्र सगुनचन्द के चरित्र द्वारा खींचा गया है। वर्मा जी ने समस्याओं की गहराई में न पैठ कर ऊपर ही ऊपर देखने का प्रयास किया है। व्यंग्य भी उनके तीखे और कटु नहीं। टेकनीक की दृष्टि से भी इसमें कलात्मकता तथा सफाई की कमी है।

उपेन्द्रनाथ अश्क में विषय निर्वाह, रूप गठन तथा टेकनीक के दृष्टिकोण से एक परिपक्व कलाकार का दर्शन हम करते हैं। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, वे चेखब, स्ट्रिन्डवर्ग, मैटरलिक, काफमेन तथा ओ' नील से अपने नाटकों के लिए प्रेरणा ग्रहण करते है। वे समस्याओं के ऊपरी सतह का ही वर्णन न करके उनकी गहराई में उतर कर उनकी उधेड़ बुन में सचेष्ट दिखाई पड़ते है। प्रेमचंद की भाँति वे उर्दू से हिंदी में आये, अतः उनकी भाषा में सफाई और चुस्ती है। शैली में चुभता हुआ तथा तीखा है। व्यंग्य—स्ट्रिन्डवर्ग तथा ओ' नील तथा काफमैन की भाँति उनके नाटकों का विषय प्रेम और विवाह की समस्या पर आधारित है। धर्मवीर भारती के शब्दों में

"जहाँ तक शैली और रूपगठन का सम्बन्ध है, अश्क अपने किसी पूर्ववर्ती भारतीय नाटककार की बजाय चैखव, मेतरलिंक, स्ट्रिंडवर्ग, ओ' नील और इसी परम्परा के अन्य आधुनिक वातावरण प्रधान मनोवैज्ञानिक नाटककारों के अधिक निकट हैं। अश्क ने एक दूसरी ही दिशा अपनाई। अर्थात् वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के चक्कर में उलझे हुए मानव के अन्तर मे बसने वाली पीड़ा, घायल संस्कार और प्यासी खूँखार प्रवृत्तियों का चित्रण। जैसा स्वयं उनका कहना है कि वे नाटकों मे स्ट्रिन्डवर्ग जैसी गहराई और तीखापन लाना पसंद करते हैं, लेकिन स्ट्रिन्डवर्ग जैसी काली अंधकारमयी निराशा से बचने का प्रयास करते हैं।[1]'

'कैद' और 'उड़ान' अलग अलग दो नाटक होते हुए (१९४५), (१९४६) भी एक ही चित्र के दो दृष्टिकोण है। 'कैद' में नारी बंध गई है। अपनी आत्मा की मंजिल और अपने सपनों के देवता से दूर, पारिवारिक बन्धनों और सामाजिक रूढ़ियों में आबद्ध वह चट्टानों पर सर पटकती हुई, पछड़े खाती हुई जलधारा की तरह टूट टूट कर बिखर रही है। 'उड़ान' में वही नारी आदिम पुरुष की हिंस्र वासना, कवि हृदय की अपार्थिव उपासना और स्वामी की अधिकार लोलुपता का निबंध करती हुई, पीले चाँद की रूमानी छाया में, यथार्थ की चट्टानों पर घायल, लेकिन अपराजित उन्मुक्त हिरनी की तरह एक स्वस्थ समाधान की खोजों के निमित्त निकल जाती है।...जो नारी 'कैद' में निष्क्रिय, असमर्थ और कारावद्ध है, वह उड़ान में सक्रिय, विद्रोहिणी और अपने पथ की खोज में विकल है। इन दोनों नाटकों में कलाकार ने प्रगति के दो डग भरे हैं।[2]"

'कैद' की अप्पी असहाय व मध्यवर्गीय पतनोन्मुख समाज के शिकंजों में जकड़ी हुई विवश एक नारी है। दिलीप के प्रति उसके हृदय में सच्चा प्रेम और आकर्षण है। उसके प्रति उसके हृदय में सम्मान और श्रद्धा की भावना है। परिस्थितियों के विरोध में उसका विवाह प्राणनाथ से हो जाता है। प्राणनाथ अखनूर घाटी का रेंजर है। उसका विवाह पहले अप्पी की बड़ी बहिन दिप्पो से हुआ था। अप्पी उसकी साली थी। दिप्पो की मृत्यु के बाद उसके माँ बाप ने प्राणनाथ की गृहस्थी संभालने के लिये अप्पी को भेज दिया। इस तरह वह पुरुष के शिकंजे में पड़ गई। अप्पो पुष्प की भाँति सुकुमार और हंसमुख है। कली की भाँति सुकुमार तथा हिरनी की भाँति चंचल तथा मस्त है। परन्तु उसका सारा

१—'कैद' और 'उड़ान' की भूमिका, धर्मवीर भारती, पृ० २४, २५।

२—वही, पृ० १४।

सौन्दर्य, सारी चंचलता और प्रफुल्लता ग्रीष्म की लू में झुलस जाने वाली कोमल पुष्पलता की भाँति अदृश्य हो गई। प्राणनाथ सरकारी नौकर है, उसके पास धन है। मान प्रतिष्ठा है, पर यह सब अप्पी की शारीरिक और मानसिक भूख को नही बुझा सकते। वह अपने को निर्वासित सी, असह्य वेदना का अनुभव करती हुई दिखाई देती है। 'अप्पी' असंख्य भारतीय नारियों की प्रतीक है, जो माँ बाप द्वारा बलात ऐसे पुरुषों के शिकंजे मे जकड़ दी गई है, जिनको न उन्होने कभी देखा, सुना या जाना था और जिनसे उनके मन का किसी प्रकार भी मेल नही है। फलतः कटघरे मे पड़े हुए दो विरोधी प्रवृत्ति के हिंस्र पशुओं की भाँति दोनों छुटकारे के लिये आर्त्त नाद कर रहे हैं। भारतीय वैवाहिक पद्धति पर कैसा कठोर और क्रूर व्यंग्य लेखक ने 'कैद' में अप्पी के चरित्र द्वारा किया है।

इस नाटक में वैवाहिक तथा नारी-प्रेम की समस्याओं के चित्रण में प्रतीकों का बहुत ही सुन्दर तथा सफल प्रयोग अश्क जी ने किया है। प्रतीकों के प्रयोग में अश्क जी ने कमाल दिखाया है। प्राणनाथ एक शिकारी है जिसकी तुलना किंगकांग के जंगली और भयानक वनमानस से की गई है।

प्राणनाथ—किंगकांग ! किंगकांग !

अप्पी—एक भयानक फिल्म का नाम है, जिसमें एक वनमानस एक सुन्दर लड़की को उठाकर ले जाता है। उसी जैसा भयानक और निडर है यह बंदर [1]।

यहाँ पर यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है कि प्राणनाथ ही वह भयानक वनमानस का प्रतीक है; जिसने अप्पी जैसी सुन्दरी लड़की को अपने कैद में रखा है।

इस घुटनभरी 'कैद' में अप्पी का हृदय शीतल समीर के झोंके के रूप में दिलीप के प्यार के लिये तड़पता है जिसे वह हृदय से चाहती है, जिसके लिये उसके शरीर के नस-नस में बेचैनी भरी है और जिसके आने की सूचना मात्र ही उसके मृतप्राय धमनियों में नवीन रक्त और जीवन का संचार कर देती है। उसके मुरझाये गालों में सुर्खी दौड़ जाती है।

जम्मू (काश्मीर मे) से १८ मील दूर एक पहाड़ी घर मे, चिनाब नदी के किनारे अप्पी बीमार पड़ी हुई है। प्रकृति के उस स्वर्गीय और मनोहर प्रांगण में भी उसका दिल सूना-सूना लग रहा है। इसी बीच में उसका प्रेमी दिलीप आ जाता है। दिलीप कवि और भावुकता का प्रेमी है। उसको देखकर दिलीप सहम सा जाता है।

१—'कैद और उड़ान' उपेन्द्र नाथ अश्क, पृ० २६।

'दिलीप—(अप्पी से) यह सारे का सारा जीवन एक काला पानी है। अप्पी ! गालिब ने ठीक ही तो जिन्दगी को कैद का नाम दिया है। (कैदेहयात् और बन्दे गम) गुनगुनाते हुए खिड़की के पास खड़ा हो जाता है। यह इतनी सुन्दरता, यह भी तो शायद आजाद नहीं। समय की कैद में बंधी है और आत्मा जिसे लोग स्वतंत्र कहते है, तन की कारा में बन्द रहती है और यह तन जीवन की बेड़ियों मे जकड़ा है। इन जंजीरों का अन्त नहीं। एक बेड़ी से निकल कर दूसरी बेड़ी मे और दूसरी बेड़ी से निकल कर तीसरी में फंसना अनिवार्य है। अनदेखी, अनजानी बेड़ियाँ सदा आत्मा को, शरीर को, सुन्दरता को, जीवन को जकड़े रहती है।

'उड़ान' श्री अश्क के शब्दों मे १९४३ में लिखा गया। उसका पहला नाम शिकारी था। यह पहिले सात दृश्यों का नाटक था। बाद में इसके कलेवर में परिवर्तन किया गया है, यह नाटकीय कला की दृष्टि से परिपक्व है। क्योंकि 'क़ैद' और 'उड़ान' दोनों के लिखने में लेखक को वर्षों परिश्रम करना पड़ा है। उड़ान की नारी वर्तमान जगत् की नहीं भविष्य की नारी का प्रतीक है। शंकर, मदन और रमेश पुरुष की तीन प्रवृत्तियों के प्रतीक है। शकर पुरुष की उस उन्मत्त प्रकृति का प्रतीक है, जो नारी को अपनी वासनाओं की क्रीड़ा मात्र समझता है। मदन नारी को अपनी संपत्ति समझ कर उस अपना अपना अधिकार जमाना चाहता है। रमेश उस पुरुष का प्रतीत है जो नारी को श्रद्धा और पूजा के भाव से देखता है, और उसे देवी के आसन पर बैठाना चाहता है। फलतः माया के प्रतीक द्वारा लेखक ने नारी की तीन समस्यायें हमारे सामने रखी है। नारी को श्रद्धा या पूजा की वस्तु समझी जाय, वासना तृप्ति का साधन माना जाय या संपत्ति रूप में उस पर अधिकार किया जाय। लेखक इन तीनों प्रतीकों को संकेत से हल करना चाहता है। उसका निष्कर्ष यह है कि नारी इन तीनों में से कोई नहीं है, वह एक जीवन रूपी गाड़ी चलाने के लिये पुरुष के समान एक सच्चे साथी की भाँति है।

माया स्वयं इसे एक स्थल पर स्पष्ट करती है, जो लेखक का ही कथन है। 'एक आकाश में बसता है, दूसरा गहरे अंधियारे खड्ड का वासी है। मैं दोनों (शंकर और रमेश) से डरती हूँ। ऊँचाई या गहराई मेरा आदर्श नही है। गहरे गड्ढों या ऊँचे शिखरों से मैं ऊब गई हूँ। मैं समतल धरती चाहती हूँ।'[1]

वातावरण के चित्रण में अश्क ने अपनी पूर्ण कुशलता का परिचय दिया है। शंकर का कैंप वर्मा की पहाड़ियों में लगा हुआ है, जहाँ बाँस के जंगल एक

१—'उड़ान', उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० १३३।

रूमानी वातावरण उपस्थित करते हैं। शंकर वहाँ हिरन का शिकार करता है। उसी समय माया थकी माँदी वहाँ पहुँच जाती है। शंकर माया को गोद मे भर लेता है। वह उबल पड़ती है। चीखने और रोने लगती है। मदन माया से उलाहना देता है कि वह शंकर और रमेश को प्रेम-दृष्टि से देखती है। माया इसका विरोध करती है। अन्त में माया किसी की नहीं होती और वह 'माया' की भाँति सबका तिरस्कार करती दिखाई देती है। नाटक के अन्तिम दृश्य में मदन, शंकर और रमेश सबके प्रति अपनी बारी-बारी से उदासीनता प्रकट करती हुई माया कहती है—'तुम एक दासी, खिलौना या देवी चाहते हो, संगिनी की तुममें से किसी को आवश्यकता नहीं।'

माया के इस वाक्य द्वारा अश्क यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि नारी जीवन संगिनी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रतीकात्मक संवादों का सफल प्रयोग कैद की तरह उड़ान में भी कई स्थलों पर हुआ है। रमेश की भावुकता प्रतीक के कल-कल मे एक जगह मुखरित हो उठती है।

रमेश—पतझड़ और मौन—दोनो उस महाशिकारी के तीर नहीं, उस महान केमिस्ट की रसायनशाला के आसव हैं। सृष्टि के शरीर से झुर्रियों को मिटाकर उसमें नित्य नया रक्त भरते हैं। सूखे पत्ते झड़ जाते है, इसलिये कि नये आवें और जीवन की यह अमरबेलि फलती-फूलती बढ़ती चली जाय।'

रमेश और शंकर के संवाद मे भी प्रतीकात्मक संकेतों का प्रयोग हुआ है।

रमेश—तुम इस निखरी सुन्दरता को भूल कर शिकार की खोज में बढ़े चले जाते हो। मैं इस सुन्दरता मे खोकर शिकार को भूल जाता हूँ। यही कारण है कि मेरी गोली अपने पीछे महज एक धुंवा छोड़ती है और तुम्हारी एक तड़पता हुआ पक्षी।

शंकर—और तुम शिकारी बनने के बदले पक्षी बनने की इच्छा किया करते हो।

इन संवादों में सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग हर एक वाक्य को गूढ़ अर्थों से भर देता है। 'कैद' के अन्त में काश्मीर की चोटियों पर बरसने वाले, धीरे-धीरे जमने वाले हिम का चित्रण किया गया है। यह उस हिम का प्रतीक है जो अप्पी के मुख पर आसुओं की धार की पर्त्तों में जमता चला जाता है। वातावरण-निर्माण में भी संकेतों का प्रयोग सोद्देश्य हुआ है। 'कैद' में पार्वतीय वातावरण मनोहर और रूमानी है, 'उड़ान' में जाकर वह कठोर और ऊबड़-खाबड़ हो गया है। संवादों द्वारा चरित्र में मानसिक संस्कार, उनकी अवचेतन प्रतिक्रिया में तथा उनका प्रारंभ और अन्त सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिये प्राणनाथ के मुह से दिलीप के आगमन की सूचना पाकर अप्पी

मुरझाई कमलिनी की भाँति एकदम खिल जाती है । वह जो उदासीनता, निश्चेष्टता तथा आलस्य की मूर्ति बनी बैठी थी, एकदम स्फूर्तिमय हो जाती है । जिन बच्चो के प्रति क्रोध का प्रकाशन कर चुकी थी, उन्हीं को प्यार करने तथा नहलाने-धुलाने लगती है । इस सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि न जाने कितने दिनों के अंधेरे कैद के बाद पहली बार उजाले की किरन वातायन से झाँकती दिखाई देती है ।

अश्क की इस नाटकीय कला में स्ट्रिन्डवर्ग के नाटकों के अन्तर्मन की बारीकियों का चित्रण, फ्रायड के अवचेतन मन की प्रवृत्तियों की झलक तथा ओ' नील की अभिव्यंजनात्मक शैली और काफमैन का तीव्र और सांकेतिक व्यंग्य मिलता है । सबका समन्वित और रासायनिक मिश्रण अश्क के टेकनीक मे प्राप्त होता है । इस परिपक्व टेकनीक को जब हम पढ़ते हैं तब 'आदि मार्ग' की भूमिका में दिए गए उनके नाटकीय लेखक के रहस्य पर कितना अटूट विश्वास करने लगते हैं, जिसमें उन्होंने अपने को इब्सन, मैतरलिंक, स्ट्रिन्डवर्ग, काफमैन ओ' नील तथा वेरी के नाटकों से अनुप्रेरित बताया है और अपने नाटक लिखने की क्रिया को भिन्न-भिन्न रासायनिक द्रव्यों से मिलजुल कर एक द्रव्य बनाने ऐसा कहा है ।[1]

छठा बेटा (१९५९)

'छठा बेटा' स्ट्रिन्डवर्ग के 'दी अन्डर स्टार्म' (१९१३) की भाँति एक स्वप्न नाटक है, जिसमें चुभते व्यंग्यों, सांकेतिक प्रतीकों तथा नाटकीय कौशल सबका समन्वित एक उत्कृष्ट कोटि का कलात्मक रूप दिखाई पड़ता है। पं० बसंतलाल की समस्या आधुनिक समाज की एक ज्वलंत समस्या है। पं० बसंतलाल एक शराबी पिता है, जिनके मानसिक तहों के बारीक से बारीक स्तरों को उघेड़ने मे लेखक ने काफी सफलता प्राप्त की है । शराबी होते हुए भी वे भावुक, उदार, दयालु तथा रुपया उड़ाने मे पूर्ण कुशल हैं फलत: उनके चरित्र का कोई भी अंश कृत्रिम और अस्वाभाविक सा नहीं लगता । उनके छः लड़के डा० हंसराज, हरिनाथ (हरेन्द्र), देवनारायण, कैलासपति, गुरुनारायण तथा दयालचंद हैं । 'छठा बेटा' दयालचंद बहुत दिनों से लापता हो गया था । शेष पांचों लड़के पिता को घृणा की दृष्टि से देखते हैं । कोई भी उसकी तनिक सेवा नही करना चाहता । वे परिवार में भार स्वरूप जीवन को ढो रहे है । बड़े पुत्र डा० हंसराज की स्त्री कमला भी पंडित जी से तटस्थ रहती है । एक

१—'आदि मार्ग' की भूमिका, मैं नाटक कैसे लिखता हूँ, उपेन्द्रनाथ अश्क; पृ० १८-२२

दिन आटा लाने के लिये कमला जब उन्हें दस रुपये का नोट देकर बाजार भेजती है, तो वे कुछ रुपयों से शराब पीकर तथा शेष से एक लाटरी खरीद कर लौटते हैं। डा० हंसराज पिता को नशे में चूर देखकर अपनी पत्नी कमला को फटकारते है कि उन्हें आटा लाने के लिये दस रुपया क्यों दिया गया ? लेकिन भाग्यवश जब उसी टिकट से तीन लाख की लाटरी मिल जाती है तो पाँचों लड़के जी जान से पिता की सेवा करने को तैयार हो जाते है। लड़के शराब पिला पिलाकर पिता का धन धीरे-धीरे हड़प कर लेते है और धनरहित पिता फिर किंगलियर की भाँति अपने पाँचों पुत्रों द्वारा ठुकरा दिया जाता है। नाटक के अन्त मे पाँचों पुत्रों की 'छाया' की अवतारणा बसंतलाल के स्वप्न के रूप मे दी गई है जो स्ट्रिन्डवर्ग तथा मेतरलिंक के टेकनीक के आधार पर है। पंडित जी अपराह्न में चारपाई पर लेटे स्वप्नलोक मे विचर रहे हैं पाँचों पुत्रों की छाया बारी-बारी से उनके मन मे आती है। लड़कों के प्रति वे उदासीनता तथा घृणा का भाव प्रगट करते है। स्वप्न निरंतर चल रहा है। अंतिम छाया उनके छठे लडके दयालचन्द की होती है जो बहुत ही अस्पष्ट तथा धुंधली है क्योंकि वह बहुत दिनों से लापता है। वह औंधे मुंह बाजार में शराब के नशे में मस्त पं० बसंतलाल की स्वप्न में सेवा करने का आश्वासन देता है। इसी बीच पं० जी का स्वप्न जो इस सुखद अन्त को पहुँचा था टूट जाता है और जब वे आँख खोलकर यथार्थ जगत् को देखते है तो रीतिकालीन नायिका की भाँति न कही घन दिखाई देता है, न घनश्याम वरन् सावन की फुहार आँखों से आसुओं के रूप में झड़ती हुई दिखाई पड़ती है। परदा गिर जाता है। न कहीं दयालचन्द है न कोई सेवा करने वाला। वास्तव में बसंतलाल के इस स्वप्न चित्रण में फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त तथा स्ट्रिन्डवर्ग और मेतरलिंक के स्वप्न नाटकों की समन्वित कला का दर्शन हमें अश्क जी के इस नाटक में मिलता है। स्वप्न में अपने छठे बेटे दयालचन्द को लौटा हुआ देखना पं० बसन्तलाल के अवचेतन मन की इच्छाओं का अमूर्त्त रूप है। उनके अवचेतन मन मे यह विचार धारा दृढ़तापूर्वक जमी हुई है कि यदि उनका छठां बेटा होता तो इस आपत्ति के समय उनकी अवश्य ही सेवा करता। यथार्थ रूप में यदि वह होता तो वह भी पाँचों भाइयों के समान ही धनहीन दुर्व्यसनी पिता का तिरस्कार करता। वास्तव में छठां बेटा मानव की उस अभिलाषा का प्रतीक है, जो कभी नहीं पूरी होती। इसलिये उसका चित्रण स्वप्न की छाया के रूप में किया गया है। परिणामतया अवचेतन मन की अमूर्त्त इच्छा जो कहीं कोने में दबी पड़ी है, धुंधले स्वप्न के रूप में बसन्तलाल के निद्रा में आती है। उन्हें थोड़ी देर के लिए मृगतृष्णा की भाँति छठें बेटे द्वारा सुख प्राप्ति का अनु-

भव होता है। रंगमंच पर स्वप्न तथा छाया मूर्तियों का यह विधान अश्क की नाटकीय कुशलता का परिचायक है।

धन के रहने तथा चले जाने पर बसंतलाल के प्रति पुत्रों के व्यवहार में आकस्मिक परिवर्तन नाटक को 'इल्यूजन' या भ्रम रूप प्रदान करता है, जो पाश्चात्य टेकनीक का एक नवीन रूप है।

व्यंग्य तथा हास्य का इतना प्रचुर तथा सफल प्रयोग अश्क के शायद ही किसी नाटक मे मिले। इस साफल्य की प्राप्ति के लिये अश्क ने डा० सत्येन्द्र के शब्दों में अपने तरकस के सभी अचूक तीर छोड़े है। जिससे उनके संवादों में चुस्ती, गतिशीलता तथा स्वाभाविकता का पूर्ण समावेश हो गया है। 'छठां बेटा' की व्यंग्यात्मक शैली पर अमेरिका के जार्ज काफमैन की 'दी मैन हू केम टू डिनर' (१९३९) तथा 'डिनर ऐट येट' (१९३२) की शैली की स्पष्ट छाप है। काफमैन के इन नाटकों की भांति अश्क के 'छठां बेटा' में भी प्रारम्भ से अन्त तक हंसी की फुलझड़ियाँ छूटती दिखाई गई है। ब्रैकेट के अन्दर दिए गए रंगमंच के संकेत दुहरे अर्थों को सामने लाकर दर्शकों को हँसी से लोट पोट कर देने में अपूर्व क्षमता रखते हैं। परन्तु जिस प्रकार काफमैन के हास्य-स्रोत के पीछे सामाजिक समस्याओं की गंभीर गुत्थियाँ सुलझाई जाती है[1] ठीक उसी प्रकार अश्क के 'छठाँ बेठा' में हास्य तथा व्यंग्य के द्वारा चरित्र के अन्तर्मन तथा परिस्थितियों की विवशता का अनुपम चित्र मिलता है। नाटक के प्रारंभ से ही हास्य का स्रोत्र फूटता दिखाई देता है जो दर्शक तथा पाठक दोनों को आकर्षित कर लेता है। यह आकर्षण नाटक के अन्त तक समान गति से बना रहता है। नाटक के प्रारंभ में रंगमंच के निर्देश की सूचनाएं हल्के से व्यंग्य का पुट लिए हुए हैं। डा० हंसराज जब कहते है 'मैं डाक्टर हूँ। मेरी पोजीशन है। मेरे यहाँ बड़े-बड़े पदाधिकारी आते है। (पृ० २७) इसके पहले कोष्ठक में लिखा है (जैसे वे डा० विधानचन्द्र राय से क्या कुछ कम हैं)। गुरुनारायण अपने बाप की आलोचना करते हुए कहता है—

गुरु—(भावी आई० सी० यस०) वे मूछें रखते है, जिन पर नीम्बू टिक सके और हमारे ऐसा भी मालूम नहीं होता कि देव ने उन्हें कभी पैदा भी किया था। वे सिर घुटा कर रखते हैं—चटियल मैदान की भाँति। और हम दो दो महीने इस मामले में नाई को कष्ट नहीं देते। वे कमीज और तहबंद

1—Beneath his outward merriment, courses a clear cnrrent of serious purpose make his works of considerable importance.

—*World Drama*, A. Nicoll, p. 847.

पहने अनारकली में घूम सकते हैं, और हम सोते समय भी सूट उतारने में हिचकिचाते हैं।

(चानन राम तुम अभी बच्चे हो। तुम्हारी यह चंचलता क्षम्य है के से भाव से हंसते हैं।)

भावी आई० सी० यस० में कितना सुन्दर व्यंग है। लाटरी के मिलने पर धन के लोभ में वे ही पुत्र जो पिता की जी जान से आलोचना पर तुले हुए थे अब 'डा० हसराज बहुत देर तक अपने पिता को नशे के बिना नही रहने देते। कैलाशपति टाँगे दबाने के लिये वही बैठा है। जब वे टाँगें तिपाई पर रख देते हैं, वह उन्हे दबाना शुरू कर देता है। देव जो एक बार बोतल तथा गिलास लाता है तो उन्हे लिये खड़ा रहता है। जब डा० साहब उससे लेकर मदिरा गिलास से उड़ेल देते है, तो वह बोतल थाम लेता है। पंडित जी जब गिलास खाली कर देते है तो वह उसे थाम लेता है दूसरों को भी जब कोई काम नहीं होता तो वे अपने पिता के कंधे अथवा बाजू आदि दबाने लगते हैं।

बसन्तलाल के अधिक आग्रह पर उसका मित्र दीनदयाल नही नहीं करता हुआ अन्त मे उसके द्वारा शराब की गिलास जल्दी मे ले लेता है और (एक ही घूंट मे गिलास को खाली करके और पेय की कड़वाहट के कारण तनिक खाँस कर और रूमाल से मुंह साफ करते) कहता है "तुम्हें तो पता है बसन्तलाल, मैं रवि और मंगल के दिन नही पीता।" और बसंतलाल का प्रशंसात्मक उत्तर और ये सब कहते है कि तुम शराबी हो। (गिलास खाली करके अपने पुत्रों को संबोधित करते हुए) देखो। कितना संयम है दीनदयाल में। मंगल और रविवार के दिन यह बिलकुल नही पीता। (शून्य में हाथ से घेरा बनाते हुए) यह युग का राजा जनक है, धन और ऐश्वर्य में रहते हुए भी सर्वथा निर्लिप्त।'

(पृ० ६४)।

व्यंग्यपूर्ण इन संवादों को पढ़ने से जब इतनी हंसी आती है, तो रंगमंच पर दर्शकों में किस ठहाके को ये उत्पन्न करेंगे, लिखने की आवश्यकता नहीं है। कहीं-कहीं बसन्तलाल के द्वारा लेखक का व्यंग्य बड़ा ही तीव्र है। आधुनिक सभ्यता की सारी भित्ति धन पर आश्रित है। इस पर बसंतलाल के मुख से अश्क ने कितना तीखा व्यंग्य किया है।

पं० बसन्तलाल (कुर्सी में धंसते हुए) सभ्यता ! आजकल की सभ्यता में है क्या ? उसमें साहस कहाँ है ? सहिष्णुता, दया और कृतज्ञता कहाँ है ? यह सभ्यता दिखाने की सभ्यता है। छल, कपट, और प्रपंच की सभ्यता है। ब्राह्मण की सभ्यता नहीं, क्षत्रिय की सभ्यता नहीं, यह वैश्य की सभ्यता है। रुपए के बल पर पुत्र को पिता के विरुद्ध खरीद लो। भाई को भाई के विरुद्ध,

देश सेवक को राष्ट्र के विरुद्ध खरीद लो। तुम किस सभ्यता का जिक्र करते हो। आज पैसे के बल पर मैं सारी दुनियाँ और उसकी सभ्यता को खरीद सकता हूँ। सभ्यता (हंसते है और नशे में कुर्सी पर ही झूलते है) मैं पूछता हूँ इसमे हड्डी कहाँ है। स्थायित्व कहाँ है। इस लचलचाती, खोखली सभ्यता की दुहाई देकर तुम मेरा उपहास उड़ाना चाहते हो कम्बख्त[१]!'

अलग अलग रास्ते (१९५४)—अश्क जी का तीन अङ्कों का एक सामाजिक समस्या नाटक है, जिसमें विवाह, प्रेम तथा सम्मिलित परिवार की समस्या को यथार्थवादी प्रतीक शैली में प्रस्तुत किया गया है। नारी-समाज में प्राचीन तथा नवीन का महान संघर्ष आज चल रहा है। नारी आज स्वतंत्र होना चाहती है। प्राचीन परंपरा में और संस्कार उसके पैर पीछे की ओर खींच रहे हैं, नवीन क्रान्ति की भावना उसे आगे बढ़ने को प्रेरित करती है। यही उसके जीवन का आज एक विकट द्वन्द्व है।

पं० ताराचन्द की तीन सन्तानें हैं। राज और रानी, दो लड़कियाँ और पूरन एक लड़का। दोनों लड़कियों का विवाह हो चुका था। पहली लड़की राज का पति प्रोफेसर मदन है, जो अपनी स्त्री को छोड़कर एक दूसरी लड़की से, जिसका नाम सुदर्शन है और जो एम० ए० तक पढ़ी लिखी है, प्रेम करता है। राज प्राचीन आदर्शों के अनुकूल पति से त्याग दिए जाने पर उनके प्रति असीम भक्ति रखती है जो बंधनों को शृङ्गार और पति के अत्याचारों को सहन करना अपना धर्म समझती है। राज के पति प्रोफेसर मदन की समस्या सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनों है। वह स्त्री से प्रेम नहीं करता, क्योंकि वह उसके गले जबर्दस्ती मढ़ दी गई है। एक दिन उन्होंने राज से कहा कि 'क्यों न हम लोग दो मित्रों की तरह रहें। मैं तुमसे इतनी घृणा करता हूँ और तुम मेरे पाँव दबाना चाहती हो।' राज उसे वैवाहिक बन्धन की महत्ता का स्मरण दिलाते हुए कहती है—"मेरा भी अधिकार है, मैं आपकी परिणीता हूँ, इतने बारातियों के सामने, यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके आप मुझे व्याह लाये हैं।"

प्रोफेसर मदन का उत्तर एक मनोवैज्ञानिक तथा तार्किक का उत्तर है—"तुम्हारे अधिकार की नींव एक सामाजिक प्रथा पर टिकी है। हृदय से उसका कोई संबंध नहीं। सुदर्शन का अधिकार मेरे हृदय से संबंध रखता है। बारातियों, पंडितों, पुरोहितों ने, हमारे माता पिता ने, यज्ञ की अग्नि ने हमें एक दूसरे के शरीर सौंप दिए हैं, हृदय तो नहीं सौंपे।" (पृ० ५३ अलग अलग

१—'छठा बेटा' उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ८५

रास्ते) दोनों पक्षों के कथन द्वारा कितना संतुलित और सफल द्वन्द्व अश्क जी ने हमारे सम्मुख रख दिया है

मदन वैवाहिक रूढियों और परम्पराओं को ठोकर मारने वाले अनेक युवकों का प्रतीक है, जो विवाह को हृदय का सौदा, पारस्परिक प्रेम का बधन समझता है, पंडितों तथा पुरोहितों के द्वारा बलात गले मढ़ देने का बन्धन नहीं मानता। उधर राज अपने पति द्वारा तिरस्कृत होने पर भी प्रोफेसर मदन के दूसरी शादी कर लेने पर भी अपने देवता तुल्य ससुर के यहाँ चलने को तत्पर है क्योंकि वह सोचती है कि यह तो उसकी किस्मत में लिखा था।

दूसरी लडकी का विवाह त्रिलोक से होता है। जो एक वकील है। अपनी वकालत की नीति के अनुसार वह श्वसुर से दहेज में उनकी कोठी और एक कार चाहता था, परन्तु उसके न मिलने पर रानी से उदासीन होकर उसे छोड़ देता है। फलतः रानी भी राज की तरह परित्यक्ता होकर पिता के घर पर ही रहती है रानी वर्तमान नारी का प्रतीक है जो अपने अधिकारों के प्रति सजग है, जो पुरुष से समानाधिकार का दावा करती है। उसके पिता ताराचंद प्राचीन संस्कारों का भय दिलाते हुए उसे पति-परायणता का उपदेश देते हुए कहते हैं—

'तू नहीं जानती, अपने पति के विरुद्ध सपने में भी बुरी बात सोचना कितना बड़ा पाप है? तू नहीं जानती, तूने एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, तू किसी चाँडाल के घर उत्पन्न नहीं हुई।'

रानी का उत्तर एक स्वतन्त्र आधुनिक पुत्री का उत्तर है—'आपके धर्म की बातें मैंने बहुत सुन लीं, पिताजी आपका धर्म भी पुरुषों का धर्म है।

उसका पति त्रिलोकचन्द जब उसे लोभ देकर अपनी ओर खींचता है, वह उबल पड़ती है "आप क्या मुझे मूर्ख समझते है। क्या आपका ख्याल है कि उस अपमान, निरादर और घोर मानसिक यन्त्रणा के बाद, जो आपने दो बरस मुझे दिए, मैं इतनी भोली हूँ कि आपकी इन झूठी मीठी बातों के भुलावे में आ जाऊँगी। आप जाइये······पिता जी से मकान लीजिये मोटर लीजिये। मुझे उस मकान मोटर की कोई जरूरत नहीं।"[1]

परिणामतया वह पति और पिता दोनों को छोड़ती है। अस्तु राज और रानी क्रमशः प्राचीन संस्कारों तथा नवीन सामाजिक चेतना के दो रूपों को इस नाटक में रख कर पूर्ण विकास पर पहुँचा देता है। इन दोनों समस्याओं को क्लाइमेक्स पर लेखक ने पहुँचा दिया है।) रानी अपने प्राचीन संस्कारों के समर्थक पिता ताराचन्द तथा अपने पति वकील त्रिलोकचन्द दोनों को छोड़

१—'अलग अलग रास्ते' उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ६०

कर चल देती है और राज पति के दुर्व्यवहार को पूज्य समझ कर अपने कष्ट-प्रद जीवन से समझौता कर लेती है। रानी इब्सन की नोरा की तरह जाते समय कहती है—"आज से हमारे रास्ते अलग होंगे। राजो ! मैं प्रार्थना करूँगी कि तुम सुखी रहो।'

पूरन पंडित ताराचन्द का एक मात्र लड़का, नवीन सभ्यता तथा विचारों का समर्थक है। इस दृष्टिकोण से वह अपने पिता के विचारों का विरोधी है। प्राचीन वैवाहिक परम्परा के विरोध में एक स्थल पर कहता है—

'ब्याह तो आजकल अंधेरे में तीर मारने के बराबर है। निशाने पर लग गया तो ठीक। नहीं हाथ से निकला तीर तो वापस आता नहीं। जब दोनों पक्ष झूठ बोलने में एक दूसरे से बाजी मारने की फिक्र में हों तो सच का पता पाना मुश्किल है।"

अपनी बहन रानी की भांति स्वतन्त्रता तथा सामाजिक क्रान्ति का पूरन भी समर्थक है। अपने बहन के समर्थन में वह कहता है-—"इन पिताओं और पतियों में कोई अन्तर नहीं है।" रानी के प्रति त्रिलोक से पूरनचन्द आधुनिक नारी के अधिकारों की व्याख्या करते हुए कहता है—'आप चाहे जो अत्याचार करें, वह पतिव्रता बनी रहेगी ? लेकिन वकील साहब आज हिन्दू नारी बदल रही है। हिन्दू, मुसलमान क्या भारत की नारी मात्र बदल रही है उसके सपने बदल रहे हैं।'[1]

त्रिलोक और पं० ताराचन्द एक ही विचारों के समर्थक हैं। त्रिलोक संमिलित परिवार प्रथा के समर्थन में एक स्थल पर कहता है—'ज्वाइंट फेमिली का दुर्ग, कम दुर्गम नहीं भाई। माँ बाप के एहसान, भाई बहनों की मुहब्बत, कुल की लाज, पुरुषों का नाम, गत की महत्ता, आगत की संमिलित शक्ति के सपने न जाने कितनी दीवारें ज्वाइण्ट फेमिली की चहारदीवारी को तोड़ भागने वाले के रास्ते में आ खड़ी होती हैं।'[2]

सारांश यह है कि 'अलग-अलग रास्ते' के सभी पात्र अपना अलग व्यक्तित्व रखते हैं। पं० ताराचन्द, पं० उदयशङ्कर, त्रिलोक, तथा राज पुरानी परम्परा के समर्थक और रानी तथा पूरनचन्द नवीन सामाजिक चेतना के हिमायती हैं। इन वर्गों के द्वारा समस्या का बहुत ही स्वस्थ और सुलझा हुआ रूप हमारे सामने रखा गया है। साथ ही साथ इन समस्याओं के समाधान की भी चेष्टा लेखक द्वारा की गई है।

१—'अलग-अलग रास्ते', उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० १११

२—वही, पृ० ७३

रंगमंचीय कला की दृष्टि से यह नाटक अश्क के विकास का एक सीमाचिन्ह प्रस्तुत करता है। इसमें समय, स्थान और कार्य संपादन की एकता का कलात्मक ढंग से निर्वाह किया गया है। सबसे बड़ी बात यह है कि अलग-अलग रास्ते बिना किसी अतिरंजना के, समाज का ऐसा चित्र साकार कर सकता है कि नाटक के रस का साधारणीकरण सहज ही संभव है। एक ही कमरे की सेटिंग मे पूरा नाटक समाप्त हो जाता है। तीनों अङ्कों का दृश्य स्थान एक ही है।

अपने अन्य नाटकों की अपेक्षा वातावरण निर्माण के लिये जो रंग संकेत अश्क ने दिए है, वे अत्यंत सार्थक और अनुकूल है। कमरे मे प्राचीन देवताओं और अवतारो के चित्र प्राचीन परम्परा के प्रतीक तथा गांधी और मार्क्स के चित्र नवीन सामाजिक चेतना तथा क्रांति के उद्बोधक है। चित्रों की विविधता भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में प्राचीन तथा नवीन के संघर्ष का भी प्रतीक है।

वैवाहिक जीवन की असफलता को अश्क ने अपने प्रायः प्रत्येक नाटकों का कथानक बनाया है। इस प्रकार के अनेक पाश्चात्य नाटककारों का उदाहरण दिया जा सकता है जिन्होंने यह बताया है कि विवाह और प्रेम दोनों पृथक्-पृथक् वस्तुएँ हैं।

पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव

विषय तथा टेकनीक दोनों दृष्टियों से अश्क के इन नाटकों पर पाश्चात्य नाटकों की स्पष्ट छाया है। वैवाहिक जीवन की असफलता को लेकर पिनरो, हाप्ट्समैन, ब्रूइक्स तथा स्ट्रिन्डबर्ग के अनेक नाटक लिखे गए हैं। पिनरो के 'दी प्राफ्लीगेट,' 'दी सेकेन्ड मिसेज टैक्वेर' (१८९४) तथा 'दी थंडर बोल्ट' (१९०९) इस शैली के प्रसिद्ध नाटक हैं। पहले नाटक में नायक विषम परिस्थितियों के कारण आत्महत्या कर लेता है। दूसरे और तीसरे नाटकों मे भी वैवाहिक जीवन की असफलता का चित्रण किया गया है। स्ट्रिन्डबर्ग के अनेक नाटक जैसे 'दी डान्स आफ डेथ', क्रेडिटर्स', 'दी लिंक', 'दी फादर', 'कामरेड्स', 'डेबिट एण्ड क्रेडिट' और 'देयर आर क्राइम्स एण्ड क्राइम्स' इसी विषय का अत्यंत सफल चित्रण करते हैं। स्ट्रिन्डबर्ग स्वयं विवाह का घोर विरोधी था। अपने नाटकों में उसने एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उसका कथन है कि पति और पत्नी के रात दिन के तू-तू मैं-मैं तथा अधिकार और कर्त्तव्य के द्वन्द्व से यह अच्छा है कि विवाह ही नहीं किया जाय। उसने पति और पत्नी की तुलना कैंची के दो धारों से की है जो कभी अलग नहीं हो

सकते। और सर्वदा विरोधी दिशाओं में जाकर उनके बीच जो आ जाय उसे काटने के लिए तैयार रहते हैं।[1]

अश्क के नाटकों पर पश्चिम के इन्हीं कलाकारों की शैली की छाप दिखाई पड़ती है। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि वे स्ट्रिण्डवर्ग के नाटकों की विचार धारा से विशेष प्रभावित हुए हैं। उनके दो-एक और नाटकों का उल्लेख करके हम यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि पाश्चात्य आदर्शों से वे किस रूप मे प्रभावित हुए हैं।

अंजो दीदी

यह दो अङ्कों का चरित्र प्रधान एक सामाजिक समस्या नाटक है जिसमें मनोविकारों के घात-प्रतिघात तथा उसकी प्रतिक्रिया की कथा का अत्यंत मनोवैज्ञानिक चित्रण है अंजो (अंजली) आधुनिक ढङ्ग की नारी है जिसके पति इन्द्रनारायण जी मद्यपान के दुर्व्यसन में बुरी तरह ग्रस्त हैं। रहन-सहन तथा दैनिक जीवन के अन्य कार्यों में वे बड़े लापरवाह हैं। न उन्हें अपने कपड़े की चिन्ता न भोजन की चिन्ता। पत्नी अंजली पति पर पूर्ण नियंत्रण रखती है। परन्तु पति का अधिक मद्यपान पत्नी के हृदय पर सहसा ठेस पहुँचाता है और अन्त मे अंजो निम्नांकित आशय का पत्र लिख कर विष पान करके आत्महत्या कर लेती है।

"मैं मर रही हूं, अब आप शौक से पीजिये, दिन्नरात पीजिये।" पत्नी की आकस्मिक मृत्यु से वकील साहब के हृदय में महान आघात पहुँचता है, फलतः उनके स्वभाव में सहसा विशेष परिवर्तन हो जाता है। वे अत्यंत संयमित तथा नियमित जीवन बिताने लगते है। शराब तो वे छूते तक नहीं, सिगरेट तक उन्होंने छोड़ दिया। पहले उनका जोवन एक दम अनियमित रहता था—अब वे समय से सोकर उठने लगे तथा समय से भोजन और जलपान करने लगे। साथ ही साथ उन्होंने शराब न पीने का शपथ ले लिया है, जिसे वे जीवन के अन्त तक निभाते हैं। मानसिक प्रवृत्तियों के उतार चढ़ाव का इतना सुन्दर मनोवैज्ञानिक अध्ययन कम मिलेगा। अश्क चरित्र की मानसिक गाँठों को

1—Strindberg objects to marriage on the ground that it is nerve-racking to be thus daily malicious and hateful. In jest he compared husband and wife to a pair of shears so joined that they connot be separated, often moving in opposite directions yet always punishing any who comes, between them.

—*Aspects of Modern Drama*, Chandler, p. 181,

खोलने में अत्यंत निपुण हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय परिवार का भी उन्होंने सुन्दर अध्ययन किया है। अंजो दीदी स्ट्रिन्डबर्ग के जूली या थेका (क्रेडिटर्स) की प्रतिरूप है। पुरुष और स्त्री मे स्ट्रिन्डबर्ग स्त्री को अधिक प्रभावशाली मानता था और पुरुष को प्रत्येक दशा मे उसका कृतज्ञ होना पड़ता था[1]। अंजो दीदी भी स्ट्रिन्डबर्ग की नायिकाओं की भाँति पुरुष पर जब तक जीती रही, नियंत्रण करती रही और मरने के बाद तो उसका नियंत्रण अदृश्य रूप से और भी कठोर हो गया। अंजो का भाई उसके इस कठोर शासन के संबंध में एक स्थान पर कहता है—

श्रीपत—मैं ठीक कहता हूं, अंजो सख्त मारबिड और जालिम थी। क्योंकि उसके नाना और जालिम थे। वह इस घर को घड़ी की तरह चलाना चाहती थी। पर वह न जानती थी कि घड़ी मशीन है। इंशान मशीन नही, जब इंशान मशीन बन जायगा वह दिन दुनियाँ के लिये सबसे बड़े खतरे का होगा।[2] इतना ही नहीं विवाह के बन्धन और शिष्टाचार को श्रीपत स्ट्रिन्ड-बर्ग की भाँति आवश्यक समझता है।

श्रीपत—'शिष्टाचार विवाह का कह लो, बंधन का प्रतीक है। उधर आपका विवाह हुआ, इधर आपके गले में शिष्टाचार का जुआ पड़ा है।···मेरे विचार में आचार विचार के सभी नियम, उपनियम विवाहित लोगों के अधेड़ दिमागों की उपज है। इसीलिये मैं केवल विवाह की कल्पना ही करता हूँ, उसके बन्धन में नहीं फंसता[3]।

नाटकीय कौशल की दृष्टि से भी 'अंजो दीदी' की कला आधुनिक नाटकों के विकास में एक महत्वपूर्ण मंजिल है। नाटक में वर्णित बीस वर्ष के कथानक को दो अंकों में बांध लेना अश्क की नाटकीय कला (स्टैज क्राफ्ट) का अनुपम प्रमाण है। एक ही कमरे से नाटक का सारा दृश्य दिखाया जा सकता है, अतः संकलन के सिद्धान्त को भी पूर्णरूपेण पालन किया गया है।

रंग-संकेत तथा बाह्य वातावरण ही नहीं अश्क चरित्र के अन्तर्मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म विशेषताओं को प्रकट करने की क्षमता रखते हैं, उदाहरण के लिये "अंजली यद्यपि अनिमा की समवयस्क है, किन्तु उससे पाँच एक वर्ष बड़ी दिखाई देती है। पतले छरहरे शरीर की दुर्बल नसों वाली युवती, जो न केवल

1—The nature of women according to Strindberg is such that men must be always her creditor.

—*Aspects of Modern Drama*, Chandler, p. 205.

२—"अंजो दीदी", उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० १३६।

३—वही, पृ० ८७।

विवाह की चक्की में जुटी हुई है, वरन पूरी गंभीरता और निष्ठा से जुटी हुई है। सुन्दर मुख पर अभी से हल्की सी लकीरें बन गई हैं।"[१]

रंगमंच के इन संकेतों पर इब्सन, तथा पिनरो के यथार्थवादी नाटकों तथा मैतरलिंक और पाश्चात्य नाटककारों के प्रतीक प्रधान नाटकों का स्पष्ट प्रभाव है, जिनमें संकेत प्रतीकों के प्रयोग द्वारा चरित्र के अन्तर्मन की गांठों को भी खोलने में सहायता ली गई है।

व्यंग्य तथा हास्य का घुला मिला रूप जो न कि अश्क के 'अंजो दीदी' वरन् और सभी नाटकों में मिलता है, उस पर अमेरिका के ओ' नील तथा काफमैन की शैली का प्रभाव है। 'अंजो दीदी' की मानसिक अस्तव्यस्तता तथा सनक (ह्विमज़िकेलिटी) ओ' नील के 'गेह् वाइल्डरमैन की मिसेज मिलर के समान है। पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि काफमैन के नाटकों की तरह अश्क की व्यंग्य तथा हास्य मिश्रित शैली के भीतर सामाजिक समस्याओं के सुलझाव की गंभीर प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस प्रकार अश्क ने अनेक पाश्चात्य नाटककारों के आदर्शों तथा शैलियों को ग्रहण करके अपने रसायनिक प्रतिभा के द्वारा अपने नाटको में एक अनुपम मिश्रण प्रस्तुत किया है जिनका हिन्दी नाटकों के विकास में ऐतिहासिक महत्व है। अश्क के एकांकी नाटकों में भी जिनका वर्णन एकांकी नाटकों के प्रसंग में किया जायगा, उपर्युक्त कथन उन पर पूर्ण तौर से लागू होता है।

जगदीशचन्द्र माथुर

टेकनीक तथा रंगमंचीय पटुता के दृष्टिकोण से आधुनिक नाटककारों में जगदीशचन्द्र माथुर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। रंगमंच पर अभिनय करने का बचपन से ही उन्हें शौक रहा। अत: उनके नाटकों मे अभिनेयात्मक तत्वों की प्रचुरता दिखाई देती है। उनके नाटकों में रंगमंचीय संकेत विस्तृत रूप से मिलता है। कहीं-कहीं नाटकों में चित्रों को देकर रंगमंच तथा अभिनय के लिये उपर्युक्त वातावरण प्रस्तुत कर दिया गया है। उनके एकांकियों में पाश्चात्य नाटकों के नवीन से नवीन प्रयोगों तथा शैलियों की झलक मिलती है। पाश्चात्य नाटकों के प्रोलोग और एपीलोग के आधार पर उन्होंने अपने नाटकों में उपक्रम तथा उपसंहार का प्रयोग किया है। उनके एकाङ्की हिन्दी एकाङ्की के विकास में उत्कृष्ट कला के परिचायक हैं। उनके नाटकों में वर्तमान मध्य-कालीन जीवन के जीते जागते, हंसते-खेलते और जीवन संघर्षों में कराहते हुए चरित्रों के मनोवैज्ञानिक चित्र मिलते हैं। वर्तमान समाज की जटिल से जटिल

१—वही, पृ० ७२।

समस्याओं, उसके संघर्षों तथा विवशताओं का उन्होंने कलात्मक चित्र अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है। उनके जीवन का अध्ययन गहन तथा स्पष्ट है। मध्यवर्गीय समाज की उलझनें उनके नाटकों में कलात्मकता से मुखरित हुई है। सामाजिक मर्यादाओं और रूढ़ियों की बाहरी टीमटाम उनके अन्दर का खोखलापन, वर्तमान नारी के रोमांस, तरुणों में क्रान्ति तथा नवचेतना का अभ्युदय, सम्मिलित पारिवारिक प्रथा की शिथिलता, अधिकारों का द्वन्द्व, कला तथा साहित्य का राष्ट्र-जागरण में उपयोग इन अनेक समस्याओं को अपनी तूलिका के स्पर्श मात्र से ही माथुर जी ने जीवन दान दे दिया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा इतनी सशक्त, परिमार्जित तथा शैली इतनी व्यंग्यपूर्ण है कि उसमे नीरसता का तनिक भी आभास मात्र नहीं मिलता। यही कारण है कि उनके नाटकों की लोकप्रियता इतनी व्यापक और प्रचुर रूप में इतने अल्प काल में ही हो गई। 'कुंवर सिंह', 'शारदीया,' 'बन्दी' और 'कोणार्क' उनके नवीन नाटक है। बन्दी में पाश्चात्य शैली के आधार पर नवीन प्रयोग किया गया है। विषय निर्वाचन, संवाद पटुता तथा रङ्गमंचीय दृष्टिकोण से उनका 'कोणार्क' एक अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की परिमार्जित तथा कलात्मक रचना है।

कोणार्क

जगदीशचन्द्र माथुर की नाटकीय प्रतिभा, टेकनीक तथा रँगमंचीय अनुभव का पूर्ण विकास हम उनके ऐतिहासिक कला प्रधान नाटक 'कोणार्क' में पाते हैं। इसमें पूर्वी तथा पाश्चात्य नाट्य शैलियों का समन्वय है। संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना तथा पाश्चात्य नाटकों के प्रोलोग तथा एपीलोग के आधार पर उपक्रम तथा उपसंहार का प्रयोग किया गया है। पंत जी के शब्दों में 'हिन्दी में नाट्यकला की ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण सृष्टि अन्यत्र नहीं है। छोटे-छोटे तीन अङ्कों के भीतर एक विराट युग के जीवन का स्पन्दन, कम्पन—गागर में सागर की तरह छलक उठता है। इसके उपक्रम तथा उपसंहार में लेखक के अत्यंत मौलिक प्रयोग हैं जिनमें नाटक की सीमायें एक रहस्य विस्तार में खो सी गई हैं। उपक्रम में आँखों के सामने एक विस्तृत ऐतिहासिक युग का ध्वंस शेष कल्पना में समुद्र की तरह आरपार उद्वेलित होकर साकार हो उठता है, जिसकी तरङ्गों के व्यथा-द्रवित उत्थान-पतन में करुण विद्रोह भरा नाटक का कथानक मन की आँखों के सम्मुख प्रत्यक्ष हो जाता है। उपसंहार में नाटक की अमर अमिट अनुगूंज हृदय के श्रवणों में अविराम गूंजती रहती है।

१—'भूमिका कोणार्क', सुमित्रानंदन पंत।

उपक्रम में झीने अन्धकार में पर्दे पर कोणार्क के खंडहर की हल्की सी झलक देख पड़ती है। तीन स्वर नेपथ्य से आकर वातावरण के निर्माण में सहायक होते हैं। पहले दो स्वर कोणार्क के सोये हुए खंडहर के अविराम सौन्दर्य की झलक दिखाते है। तीसरा स्वर ध्वस्त मंदिर के ऐतिहासिक कथा-वस्तु का परिचय देता है।

सात सौ वर्ष पूर्व की बात है, उड़ीसा प्रदेश में परम पराक्रमी महाराज नरसिंह देव का राज्य है। उनका मुख्य स्थापित महाशिल्पी विशु है जिसने एक के बाद एक चार अद्भुत मन्दिरों का भुवनेश्वर में निर्माण किया। फिर भी राजा कीं कामना और शिल्पी की साधना पूरी नही हुई। अतः महाशिल्पी विशु अपनी निखरी हुई कला का अभूत चमकार कोणार्क के रूप में प्रस्तुत करता है। बारह सौ शिल्पियों और मजदूरों की बारह बरस की लम्बी साधना और कठोर परिश्रम के बाद विशु की विराट कल्पना इस भव्य मन्दिर के रूप में साकार हुई है। इसका स्वरूप पाषाण के एक विशाल रथ का सा है, जिसका क्षेत्रफल सैकड़ों गज लम्बा चौड़ा है। जिसकी प्राचीर दुर्ग सदृश्य हैं जिसमें बारह चक्र और सात भव्य घोड़े जुते हुए हैं। मन्दिर के भीतर महाशिल्पी विशु की कला का एक विचित्र चमत्कार भगवान सूर्य की मूर्ति के रूप में है, जो अत्यंत ज्वाजल्यमान चुम्बक पत्थर के आकर्षण से निराधार शून्य में लटकी हुई है। मन्दिर के निर्माण का कार्य समाप्तप्राय है केवल उसके शिखर की पूर्णाहुति का अभिषेक बाकी है। अत: उसे देखने के लिये सारे उत्कल की आँखें कोणार्क की ओर लगी हुई हैं कि कब उसका शिखर पूरा होगा और उस पर केसरी पताका फहरायेगी।

पहले अंक में महाशिल्पी विशु का निर्माण कक्ष, अम्ल के ऊपर त्रिपट घर के स्थापित करने की कठिनाइयाँ, धर्मपद नामक एक नये शिल्पी का आगमन, राजा नरसिंह देव के महामात्य द्वारा मंत्रियों पर अत्याचार तथा राज के विरुद्ध विद्रोह और षड्यंत्र का वर्णन है। महामात्य शिल्पियों पर अत्याचार कर रहा है। राज्य की ओर से उन्हें जो वित्त सहायतार्थ मिलता था, वह बंद कर दिया गया है। दूर दूर तक उसके अत्याचारों की कथा फैल रही है। इस राजनीतिक अशांति तथा आन्दोलन से दूर कोणार्क के निर्माण कक्ष में महाशिल्पी विशु अपनी साधना की पूर्णाहुति में लगा हूआ है। एक दिन वह अपनी कला की प्रेरक शक्ति की कथा सुनाता है। जंगल में चन्द्रलेखा नामक एक शवर मुग्धा बालिका के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर विशु ने उसे अपनी प्रेमिका बना लिया। जब उसकी प्रेयसी गर्भिणी हुई उस समय परिस्थितियों के दबाव से विशु ने चन्द्रलेखा को छोड़ दिया, जाते समय उसने अपनी प्रेयसी

को स्मृति स्वरूप एक कामदेव की प्रतिमा दी थी, बदले में उसे प्रेमोपहार स्वरूप चन्द्रलेखा ने एक भुजबंध दिया था। इसके पश्चात् का समय विशु ने भुवनेश्वर के मंदिर के निर्माण में राजा नरसिंह देव की छत्रछाया में बिताया। प्रेयसी के विरह से उसकी कला में और भी निखार हुआ। एक दिन जब महाशिल्पी विशु अपनी कला साधना में तल्लीन है, धर्मपद् नाम का एक तेजस्वी युवक शिल्पी मंदिर के प्रांगण में आकर शिल्पियों पर महामात्य द्वारा किए गए अत्याचार का वर्णन करता है, वह विशु से यौवन तथा विलास के लिये कला के उपयोग को मना करता है इसी बीच महामात्य क्रुद्ध होकर कहता है "कोणार्क के निर्माण में राज्य कोष का सारा धन नष्ट हो रहा है, शिल्पी और मजदूर कार्य संपादन में आलस्य दिखा रहे हैं। अतः वह विशु को चेतावनी देता है कि यदि एक सप्ताह के अन्दर कलश नहीं स्थापित हो सका, तो शिल्पियों के हाथ काट डाले जायंगे।"

इस चेतावनी का अत्यधिक प्रभाव नवागंतुक धर्मपद पर भी पड़ता है। किसी गुरु से दीक्षित न होते हुए भी उसमें एक महान प्रतिभा है, जिसके द्वारा वह कलश निर्माण का कार्य पूर्ण करा देता है, परन्तु इस शर्त पर कि मन्दिर की स्थापना के दिन महाशिल्पी विशु अपने सारे अधिकार उसे सौंप देगा।

दूसरे अङ्क में नाटक की कथा आगे बढ़ती है। कोणार्क की कल्पना साकार हो उठी है। उत्कल नरेश शत्रु को पराजित करके लौटे हैं। कोणार्क के सौंदर्य को देखकर आत्मविभोर हो उठे है। शिल्पियों को उपहार दे रहे हैं। इसी बीच उन्हें महामात्य के षड़यंत्र तथा आक्रमण की सूचना मिलती है। कोणार्क एक रणक्षेत्र के रूप में बदल जाता है। धर्मपद दुर्गपति होकर कोणार्क की रक्षा कर भार अपने ऊपर ले लेता है।

तीसरे अङ्क में कथावस्तु अपने चरम सीमा पर द्रुतगति से पहुँचती है। महाशिल्पी विशु को धर्मपद के अपने पुत्र होने के रहस्य का पता चल जाता है। वह उसके प्रति वात्सल्य भाव से भर जाता है। इधर शत्रुओं का वीरतापूर्वक सामना करने में धर्मपद घायल और मूर्च्छित हो जाता है। शत्रु भी उसकी वीरता का लोहा मान लेते हैं, उन्हें रुकना पड़ता है। अकस्मात् मंदिर के एक गुप्त द्वार से शत्रु सेना मंदिर के अन्दर घुस पड़ती है। इधर विशु के मन में घोर अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ है। वह शत्रु के हाथों अपनी उच्चतम साधना की पूर्णाहुति अधिकृत नहीं होने देना चाहता। ठीक उस समय जब महामात्य मंदिर के गर्भ गृह में प्रवेश करता है, विशु चुम्बक को तोड़ कर सूर्य की विशाल प्रतिमा गिरा देता है और उसमें दब कर सभी चकनाचूर हो जाते है। इस प्रकार वह महामात्य से बदला लेता है। विमान टूटते हैं, महामात्य तथा

उसके सैनिकों का विनाश हुआ और विशु जिसकी विराट कल्पना ने कोणार्क को साकार किया था, उसी मंदिर की गोद में अंतिम निद्रा में आश्रय पाता है।

आज भी उस मंदिर का ध्वंसावशेष, वह कला की जोत अटल विश्वास जगाये खंडहर सो रहा है। पुरी से १८ मील दूर समुद्र तट पर आज भी यह मंदिर जीर्णशीर्ण रूप में पड़ा हुआ है। इसका विमान टूटा पड़ा है। अनेक विद्वानों का मत है कि यह कभी व्यवहार में नहीं आया, कारण स्पष्ट है। मंदिर समाप्त होते ही, महामात्य के विद्रोह स्वरूप इसका विनाश हो गया।

इस नाटक में विशु के चन्द्रलेखा के प्रति प्रेम से उत्पन्न उसकी कला में निखार, धर्म पद की कला कुशलता, वीरता, संगठन तथा देश प्रेम का अच्छा चित्रण किया गया है। आरम्भ से अन्त तक घटनाओं के विकास और चरम परिणति में नाटक में आकर्षण बना रहता है।

'कलाकार का बदला जीवन सौंदर्य को ही चुनौती नही देता, अत्याचारी को भी जैसे सूर्यहीन लोक के अतल अंधकार में डाल देता है। सहनशील विशु तथा विद्रोही धर्मपद में जैसे कला के प्राचीन और नवीन युग मूर्तिमान हो उठे हैं। धर्मपद में आधुनिक कलाकार का विद्रोह ही जैसे व्यक्तित्व ग्रहण कर लेता है। आज के राजनीतिक, आर्थिक संघर्ष के जर्जर युग मे कोणार्क के द्वारा कला और सस्कृति जैसे अपनी चिरन्तन उपेक्षा का विद्रोह पूर्ण संदेश मनुष्य के पास पहुँचा रही है।[1]

धर्मपद नवीन चेतना तथा क्रान्ति का प्रतीक है, जिसमें व्यक्तित्व निर्माण पाश्चात्य साम्यवाद के प्रभाव से दिखाई देता है। महामात्य के आक्रमण की सूचना पाते ही धर्मपद जन शक्ति के संगठन में तत्पर होकर महामात्य को वीरतापूर्ण चुनौती देता है—

"धर्म—(सोल्लास) तो सुनो शैवालिक! अपने नये स्वामी के पास यह अंगारों भरा संदेशा ले जाओ कि कलिंग नरेश श्री नरसिंह देव महाराज, अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिंता नही करते। वे आज अकेले नहीं हैं। आज उनके पीछे वह शक्ति है जिससे धरती थर्रा उठेगी, दीन निर्धन प्रजा की शक्ति जो कोणार्क के शिल्पियों और मजदूरों में दुदम सेनाओं का बल भर देगी।"[2]

फलतः उसके सेना के सिपाही होते हैं कोणार्क की चहारदीवारी के भीतर के पाँच हजार कुल, बारह सौ शिल्पी और शेष मजदूर इत्यादि और उनका

१—'भूमिका कोणार्क' सुमित्रानन्दन पन्त

२—'कोणार्क", जगदीशचंद्र माथुर, पृ० ५३।

हथियार होता है कुदाल, दण्ड, हथौड़े और पत्थर जिनसे मन्दिर का निर्माण कार्य चल रहा था।

नाटक के अन्त के दो अध्याय निर्देशक और अभिनेताओ के लिए तथा उदय की वेला मे हिंदी रंगमंच और नाटक में लेखक अभिनय सम्बंधी अनुभव का सुन्दर परिचय मिलता है। उदय को बेला में हिंदी रंगमंच में हिंदी के भावी रंगमंच पर पाश्चात्य नाटककारों और आलोचकों का आधार ग्रहण करना कितना आवश्यक है, इस पर माथुर साहब लिखते हैं कि "अधिकतर लेखक आधुनिक पाश्चात्य नाटककारों, इब्सन, गाल्सवर्दी, शा इत्यादि से प्रभावित होकर ही कलम उठाते हैं। लेकिन इन नाटककारों के पीछे अविच्छिन्न नाट्य साहित्य की परम्परा है जिसका उद्गम है प्राचीन यूनानी नाटक। पाश्चात्य नाटककार प्रायः थ्री यूनिटीज, ट्रैजेडी के द्वन्द्वात्मक आधार, चारित्रिक उत्थान, कथानक में चरम विन्दु का समावेश आदि सिद्धांतों से परिचित होते हैं। अरस्तू, वेन जानसन, गेटे, ब्रैडले, और कतिपय आधुनिक समालोचकों ने नाट्य कला के विषय में जो सिद्धांत प्रतिपादित किए है, वे उदीयमान पाश्चात्य नाटककार के लिए एक मानसिक पृष्ठभूमि का काम देते हैं। यदि मैं कहूँ कि कुछ ऐसी ही मानसिक पृष्ठभूमि की हमारे यहाँ भी आवश्यकता है, तो इसे सृजनात्मक प्रवृत्ति पर शास्त्रीय बंधन लगाने की चेष्टा न समझा जायेगा।"[1]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

नई पीढ़ी के उदीयमान नाटककारों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल का स्थान प्रमुख है। इनके नाटकों में समाज की यथार्थवादी तथा विकृत रूढ़ियाँ और दुर्बलताएँ तूलिका के एक हलके स्पर्श से ही मूर्तिमान हो उठी हैं। व्यंग्य तथा मुहाविरों का इतना सुन्दर समन्वय आधुनिक हिन्दी के कुछ ही नाटककारों की शैली में दिखाई देता है।

अंधा कुआँ (१९५५)

ग्रामीण सामाजिकता का प्रतीक शैली में लिखा गया एक अत्यंत कलापूर्ण दुःखान्त समस्या नाटक है। अभिनय की सुविधा के लिये इस नाटक मे मंच-सज्जा भी दी गई है। नाटक की अभिनय अवधि ३ घंटों की है। एक ही मंच रेखा से संपूर्ण नाटक खेला जा सकता है। प्रयाग आरटिस्ट असोसियेशन द्वारा ११ नवम्बर १९५५ को लक्ष्मी टाकीज में इसका सफल अभिनय भी हुआ। ग्रामीण

१—'कोणार्क' उदय की वेला में हिंदी रंगमंच, जगदीशचन्द्र माथुर, पृ० ९९

समाज का इसमें मानवीय और करुण चित्र दिया हुआ है। कमालपुर गाँव की पूर्ण सामाजिकता, उस गाँव की अनुपम सूका (जो इस प्रसिद्ध नाटक-की नायिका है), उसका शराबी पति भगवती, जो पत्नी की दारुण यातना में कोई कोर कसर नहीं रखता, उस गाँव का अंधा कुआँ जिसमें एक रात सूका पति द्वारा बेतरह मारे जाने पर कूद पड़ती है, परन्तु अन्त में निकाल ली जाती है, इत्यादि घटनाओं को लेकर लेखक ने भारतीय ग्राम नारी की करुण गाथा को इतने यथार्थ और सुन्दर शैली में प्रकाशित किया है कि वह अपने ढङ्ग की एक अनुपम कृति हो गई है। भारतीय गाँवों की अनपढ़ नारी की मूक-कथा का चित्र इतनी सुन्दर शैली मे आधुनिक हिन्दी साहित्य में बहुत कम दिखाई देगा। प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों और कहानियों में ग्रामीण सामाजिकता का चित्र अत्यंत आकर्षक भाषा और शैली द्वारा व्यक्त किया है, वे इस विषय के सिद्धहस्त और प्रख्यात लेखक हैं, परन्तु लक्ष्मीनारायण लाल तो ग्रामीण जीवन की नारी की करुण कथा के बीच मानो रम से गये हैं। वे इसकी नस-नस से परिचित मालूम होते हैं।

नाटक का कथानक संक्षेप में यह है कि सूका कमालपुर गाँव की अनपढ़ नारी अपने गुणों और अवगुणों के साथ चित्रित की गई है। उसका पति भगौती जो शराबी है, सूका को पशु से भी अधिक कठोर दंड देता है। ऐसा दंड जिसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जायँ। उसे बाँधकर लटका देना, उसके पश्चात् पशु तुल्य उसे डंडों से प्रहार, जलते लोहे से शरीर में दागना, भोजन और वस्त्र से सर्वदा वंचित रखना और उस पर भी कटूक्तियों और व्यंग्यों के कशाघात से उसके जीवन को नरक तुल्य बना देना, भगौती के लिये सूका के प्रति साधारण दैनिक बातें हैं। एक नहीं असंख्य सूका आज देहातों में इसी करुण और मौन व्यथा को छिपाये पड़ी हैं और उनकी परिस्थिति के उत्तरदायी भगौती भी एक नहीं अनेक हैं। सूका अत्यधिक मारपीट तथा यातना के परिणामस्वरूप कई बार घर से भाग जाती है, परन्तु फिर सशक्त भगवती उसे पकड़ कर उसे पिंजड़े में आर्त्तनाद करते पक्षी की भाँति बन्द कर देता है। एक बार तो एक कुयें में अपनी ऐहिक जीवन की नारकीय लीला से मुक्ति पाने के लिये कूद पड़ती है, परन्तु दुर्भाग्य! वहाँ भी उसका दुर्भाग्य उसे धोखा देता है, वह निकाल ली जाती है और फिर उसी कठघरे में बन्द कर दी जाती है। भगौती जान-बूझकर दूसरा विवाह करके लच्छी के रूप में इसलिये लाता है कि वह सूका के ऊपर और भी कठोर नियंत्रण रखे। परन्तु देव विधान दोनों में अनुपम प्रेम तथा मेल हो जाता है। लच्छी भी सूका के प्रति किए गए दुर्व्यवहार के परिणामस्वरूप भगौती से घृणा करती है और एक रात अपने पहिले मंगेतर के

यहाँ भाग जाती है। सूका उसके भागने में पूर्ण सहायता करती है। सूका का भी पुराना मंगेतर इंदर था वह भगौती के साथ घोर शत्रुता रखता है। वह भगौती की झोंपडी जला देता है। कई बार गुप्त रूप से सूका से मिलकर उसके भगाने का उपक्रम रचता है। नाटक का अंतिम अङ्क उस समय चरम सीमा पर पहुँचता है, इन्दर गड़ासा लेकर रोगी भगौती पर प्रहार करने दौड़ता है और वही सूका जिसका जीवन भगौती ने पशु तुल्य और नारकीय बना डाला था, पति की रक्षा के लिये अपनी गर्दन को गड़ासे की धार को सौंप कर अपने निर्मम तथा क्रूर पति की प्राण रक्षा करती है और अपने प्राणों का बलिदान करती है। यह है भारतीय नारी की पतिपरायणता, जो सूका के हृदय के एक कोने में अपने राक्षस पति के लिये भी वर्तमान है। उसके चरित्र का सुन्दर उतार चढ़ाव और द्वन्द्व बड़े ही कलात्मक रूप में रखा गया है 'अंधा कुआं' एक भारतीय वैवाहिक प्रथा का एक प्रतीक है, जिससे मुक्त होने का भारतीय नारी के पास कोई साधन नहीं है। सूका के शब्दों में लेखक स्वयं उस प्रतीक का विश्लेषण करता है—

सूका— अंधा कुआं यही है, जिसके संग मैं ब्याही गई हूँ जिसमें एक बार मैं गिरी और ऐसी गिरी की फिर न उबरी। न मुझे कोई निकाल पाया न मैं खुद निकल सकी। न कभी निकल पाऊंगी, बस इसी में चुक कर मर जाऊंगी।

भारतीय नारी के वैवाहिक जीवन पर कितना मार्मिक और कठोर व्यंग्य है, जहाँ पति और पत्नी दो विरोधी प्रवृत्ति के पशुओं की भाँति एक दूसरे को अन देखे और अनजाने माँ बाप द्वारा आजन्म के लिये पारिवारिक जीवन के कठघरे में बाँध दिए जाते हैं, जिससे परित्राण का न कोई उपाय है और न अवसर।

वातावरण निर्माण में लेखक ने अपनी उत्कृष्ट कोटि की कुशलता का परिचय दिया है। सावन का महीना है हरी अमराइयों में सूका की सखियाँ गा गा कर झूम झूम कर मस्ती में झूलती हैं—

नगरी पै कगवा बोलन लागे
छोटे नेबुलवा के पातर डरिया
तापे सुगनवा अरे डोलन लागे
बिरही की रतिया, अरे सालन लागे।

कहाँ पुरवाई हवा के झोकों से झूमती, इठलाती गाँव की नवेलियों का उल्लास, कहाँ सूका के करुणार्द्र हृदय की विषमता, कितना सुन्दर वातावरण है।

शैली ऐसी आकर्षक और सजीव जो ग्रामीण सामाजिकता का चित्र खड़ा कर देती है। एक एक वाक्य में मुहावरे, तुलसी की चौपाइयाँ तथा भारतीय किसानों के सरल ठेठ प्रयोगों और निर्मल विचारों से सिक्त जैसे 'ठाँव कुठाँव लगना', 'छठी का दूध याद आ जाना', 'दहिजरा', 'बूड़न धसनां' 'अजोरिया रात', 'तन खोरही मखमलं क भगवा', 'गोहार देना' आदि शब्द और मुहाविरे यत्रतत्र ग्रामीण बोली का चित्र सा खड़ा कर देते हैं। विषय तथा टेकनीक के दृष्टिकोण से पाश्चात्य नाटकों के हाप्ट्समैन, सन्डरमैन, गोर्वी आदि स्वाभाविकतावादी (नेचुरिलिस्ट) नाटककारों का विशेष प्रभाव पड़ा है। हाप्ट्समैन का 'बीफोर सन राइज़' इसी तरह का एक नाटक है जिसमे क्रूज़ नामक निर्धन परन्तु दुश्चरित्र किसीन और उसकी स्त्री हेलेन की करुण गाथा अंकित की गई है। वह 'अंधा कुआँ' के कथानक से विशेष साम्य रखता है। स्वाभाविकतावादी नाटकों की सभी विशेषताए इसमें प्राप्त होती हैं। सरल संक्षिप्त कथानक, ठेठ देहाती भाषा मे संवाद, पृष्ठभूमि-चित्रण, ग्रामीण यथार्थ का विकृत और नग्न चित्र, व्यक्ति संघर्ष तथा वातावरण की महत्ता आदि पर विशेष जोर दिया गया है। प्रो० चन्डेलियर ने स्वाभाविकतावादी नाटकों की इन विशेषताओं को अत्यंत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है—

"The true, the great Naturalist loves to see what is not to be seet every day. In techniquc, it minimises of the elements of plor movement. and the old romantic devices asides and monologue. It rejoices in dialect. It uses simple language and rude gesture to reveal hidden depth of thought and feeling and to the extent it relies like symbolism upon suggestion rather than complete compression. It selects scenes from the realm of the proletariat setting forth the life of lower-middle class. It disdains nothing however, its insistence is upon the evil that exists, rather than upon the good for which they long.

(अर्थात् सच्चा स्वाभाविकतावादी वही देखना चाहता है, जो कभी न देखा गया हो। टेकनीक में कथानक को संक्षिप्त चाहता है, तथा पुराने रौमान्टिक नाटकों के स्वागत तथा भावुकता प्रधान प्रलापों का उपयोग नहीं करता। इसकी भाषा देशी और सरल होती है। कुछ ऐसी भाव भंगिमाओं का प्रयोग इसमें किया जाता है जिससे चरित्र के मन के रहस्यों का पता चले। प्रतीकवाद की भाँति यह विश्लेषण या व्याख्या के स्थान पर लाक्षणिकता का प्रयोग करता है। इसमें निम्न मध्यम वर्ग के दीन मानवता का चित्र रहता है। विरूप चित्र इसमें लाया जा सकता है क्योंकि भावी सुन्दर के स्थान पर असुन्दर के चित्रण पर यह अधिक जोर देता है।)

डा० लक्ष्मीनारायणलाल के नाटकों में ये सभी विशेषताएं उपस्थित हैं। आगे चल कर उनके एकांकी नाटकों में जो नाटकीय कला की दृष्टि से और भी प्रभावशाली हुए हैं, हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि उन्होंने अपनी कृतियों में पाश्चात्य नाटकीय आदर्शों को किस रूप में अपनाया है।

भगवतीचरण वर्मा

रुपया तुम्हे खा गया (१९५५)—यह सांकेतिक शैली में लिखा गया एक समस्या मूलक नाटक है। आज की भौतिक और पूँजीवादी संस्कृति जिन मान्यताओं पर स्थापित है, वे निराधार और असत्य हैं, यही इस नाटक का कथानक है। आज की दुनियाँ का प्रत्येक मानव रुपए को ही महत्व देता है और जब एक बार रुपए की महत्ता स्वीकार कर लेता है तो वह रुपए का दास बन जाता है। इस नाटक का नायक मानिकचन्द है जो रुपए की पूजा देवता की तरह आराध्य वस्तु समझ कर करता है। पहिले तो दस हजार इकट्ठा करने के फेर में है। धीरे-धीरे करोड़पति हो जाता है, पर उसके समान हृदयहीन और अभागा शायद ही कोई संसार का प्राणी हो। सहानुभूति, दया और प्रेम उसमें लेश मात्रा में भी नहीं है। उसके मनुष्योचित उदारता तथा व्यक्ति को रुपया खा जाता है। नाटक का कथानक चरम सीमा पर नाटक के अन्त में पहुँचता है। मानिक चन्द महीनों की बीमारी के कारण उन्मादी की भाँति बकता है। सन्निपात में बक झक कर रहा है, परन्तु फिर भी टेलीफोन माँगता है और सौदा करने की इच्छा रखता है। बार-बार चिल्लाता है घाटा नहीं दूंगा। अन्त मे रुपया तुम्हें खा गया यही चिल्ला चिल्ला कर मर जाता है। नाटककार आज के आर्थिक और पूँजीवादी संस्कृति के खोललेपन को ही इसमें दिखलाना चाहता है। नाटक रंगमंग के उपादानों को ही ध्यान में रख कर लिखा गया है। पात्र तथा कथानक संक्षिप्त हैं, घटना व्यापार छिप्र गति से चरम सीमा की ओर बढ़ते हैं। फलतः यह पूर्णतः अभिनेय है।

मोहनलाल महतो वियोगी

इनके चार नाटक 'अफजल वध', 'डंडी यात्रा' तथा 'कसाई' और 'वे दिन' हैं। अफजल वध ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें शिवा जी की वीरता, हिन्दू संस्कृति के प्रति उनके अगाध प्रेम तथा अफजल की मक्कारी और उसके वध का वर्णन है। 'डंडी यात्रा' में गाँधी जी के नमक कर के विरोध में प्रसिद्ध राजनीतिक घटना डंडी यात्रा का वर्णन है। परन्तु सबसे सुन्दर नाटक 'कसाई' है जिसमें पश्चिम के स्वाभाविकतावादी नाटकों की टेकनीक को पूर्ण रीति से

लिया गया है। यह प्रतीक शैली पर लिखा गया समस्या मूलक नाटक है। नाटककार ने इसकी भूमिका में स्वयं जीवन के तथा समाज की विकृत परिस्थितियों के चित्रण पर जोर देते हुए कहा है—

'वह लेखक जो नमक मिर्च लगाकर खूबसूरत बातों को ही लिखा करता है, उस पतित रसोइये से भी गया बीता है, जो सड़ा गला माँस अपने मालिक को मिर्च मसाला डाल कर इस चालाकी से खिला देता है कि किसी को कुछ पता न चले। यह प्रयत्न साफ-साफ जहर खोरी है। लेखक भलमनसाहत का झूठा नकाब लगाकर समाज और देश का गला ही घोंटता है। मैने माना कि संसार मे केवल गंदगी ही नहीं है, परन्तु यह भी है कि थोड़ी गन्दगी बगीचे के फूलों की सारी सुगन्ध समाप्त कर देती है। सुगन्ध फैला कर, बदबू को दबा देना तो घृणित तरीका है। दिमागी कोढ़ है। गंदगी उठाकर फेंक देना ही उचित है, जिससे ताजी स्वस्थ हवा आ सके।[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि पाश्चात्य स्वाभाविकतावादी नाटकों की भाँति समाज के भीतर सड़ने तथा दुर्गन्ध भरे घावों को नश्तर लगा कर साफ करने की चेष्टा लेखक ने इस नाटक में की है। द्वितीय विश्व महायुद्ध के परिणाम स्वरूप देश में जितनी अनैतिकता तथा हृदयहीनता का प्रचार हो गया है, यही इस नाटक का कथानक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बंगाल के अकाल से उत्पन्न भीषण हाहाकार, भारत विभाजन के पश्चात् पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी पंजाब के हिन्दुओं पर मुसलमानों द्वारा भीषण अत्याचार की करुण कथा है। पश्चिमी देशों में भी युद्ध के नाम पर मानवता की कितनी महान क्षति हुई है, धन और जन का कितना संहार हुआ है, इसकी ओर भी लेखक ने संकेत किया है। युद्ध में किराये के सिपाही साग मूली की तरह कट रहे हैं, युद्ध प्रेमी राजनीतिज्ञ गद्दीदार कुर्सियों पर बैठ कर युद्ध की योजनाएं बना रहे हैं। किस मोर्चे पर कितने टन बम की वर्षा शत्रु पर की जाय इसी का हिसाब लगाया जा रहा है। मनुष्य के जीवन का उनके सामने कोई मोह नहीं है। कितने निर्दोष तलवार के घाट उतारे जा रहे हैं। कितनी स्त्रियाँ विधवा हो रही हैं, कितने घर उजाड़ हो रहे हैं, इसकी उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं।

सेठ देवीदयाल जो नाटक का नायक है, लड़ाई के दिनों में अनैतिक व्यापार से लाखों रुपए कमा रहा है। उसने -फौज को गाय बैल का माँस पहुँचाने का ठीका ले रखा है। घर में राम राम, हरे राम, हरे कृष्ण की माला घुमाता है पर हजारों मूक पशुओं के करुण आर्त्तनाद उसी के कारण आकाश में गूँजते हैं, इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं। उसके यहाँ एक अलसेसियर कुत्ता जर्मनी से

१—देखिए 'भूमिका' 'कसाई', मोहनलाल महतो वियोगी।

मंगाया गया है, मांस और दूध ही उसका मुख्य आहार है। तीन बार भोजन पाने पर भी वह दुवला हो रहा है। सेठ इससे बहुत परेशान हैं। कुत्ते को नहलाने धुलाने तथा उसकी सेवा के लिये सेठ ने तीन नौकर रख छोड़े हैं। सेठ का कथन है कि यदि वह कुत्ता किसी अंग्रेज के यहाँ होता तो फूलों की सेज पर सोता।

नाटक के दूसरे अंक में बंगाल के अकाल का भयानक चित्र खींचा गया है। लोग चूहे, केंकडे, मेढक तक खा रहे हैं। मछली फौज के लिये भेज दी जाती है। घरों में बच्चे पाँच-पाँच दिन से अन्न के दाने दाने को तवाह हो रहे है। कितने हत्यारे छोटे-छोटे बच्चों को पकड़ कर बेच देते हैं, लोग उन्हें खा जाते हैं। कसाई गाय बैल खरीद कर फौज के सिपाहियों के लिये भेज देते है। कई दिन से क्षुधा की ज्वाला से संतप्त एक मनुष्य कहता है कि 'कोई आता इस शरीर को भी खरीद ले जाता।'

अपने ही देश के भाई पूंजीपति, अंग्रेजों की भाँति क्रूर बनकर अपने ही भाइयों का रक्त चूस रहे हैं। रहीम को सेठ जी ने लड़कियों के व्यापार के लिये नियुक्त कर रखा है। वह इस फन में उस्ताद है। स्त्रियाँ अपना सतीत्व पैसों पर बेचकर शरीर का पालन कर रही हैं। पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी पंजाब से लड़कियाँ भगाई जा रही हैं और वे सस्ते दामों बेच दी जारही है। कहीं कहीं तो माँ बाप स्वयं अपनी ही लड़की या बच्चे को बेचकर परिवार का खर्च चला रहे है। बच्चों की कीमत दस रुपए, लड़कियो की कीमत २५ रुपए तक है, खरीदने वाले लड़कियों का सतीत्व लूटते हैं, फिर उन्हें फौज में भेज देते है। आश्चर्य है कि सेठ जी को इस जघन्य व्यापार के लिये भगवान स्वयं स्वप्न में प्रेरणा देते हैं—

सेठ—एक दिन सपने में भगवान आये, कहने लगे फौज की ठेकेदारी करो लड़कियों का व्यापार करो। हरे राम। हरे राम ! हरे राम !

आस्तिकता तथा धर्म की आड़ में पाप और राक्षसी वृत्ति को प्रोत्साहन देने वाले सेठों और पूंजीपतियों पर कितना कठोर व्यंग्य नाटककार ने किया है जो धर्म के नाम पर कुत्सित से कुत्सित कर्म करने में संकोच नहीं करते। फलतः इस जघन्य व्यापार से सेठ जी न कि पैसा कमाते हैं, वरन् अधिकारियों को भी प्रसन्न करते हैं। वे उनको प्रसन्न करने के लिये कैम्प में लड़कियों को भी भेजते हैं। उनके हाथ एक स्त्री लग गई है, जो गर्भिणी है। जब वह अपना सतीत्व लुटाने पर राजी नहीं होती तो उसे बुरी तरह पीटते हैं। इधर सेठ जी अस्वस्थ हो जाते है। चिकित्सालय में उनकी औषधि हो रही है, वहाँ एक परिचारिका (नर्स) पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करने लगते हैं। सेठानी जी

घर के एक नौकर पर बेतरह रीझी हुई हैं, वे सेठ जी को विष देने का प्रयत्न करती हैं। पश्चिमी नाटकों के स्वाभाविकतावादी कथानक का पूर्ण रूप से अनुसरण किया गया है। सेठ जी का पुत्र आदित्य नाटककार का प्रतिरूप है। वह पूंजीवाद, अत्याचार तथा सेठ जी के कुकृत्यों का पूर्ण विरोधी है। अपने पापी पिता को वह स्वयं एक दिन गोली का शिकार बनाता है। जुगेश नामक पात्र द्वारा महतो जी वर्तमान राजनीति तथा शासन के खोखलेपन पर व्यंग्य करते हैं—

'गणेश—मानव दानव हो रहा है। तुम रेल, जहाज, एयरोप्लेन और मशीनों को उन्नति के चिह्न मानते हो। ये सारी चीजें दानवता की देन हैं। मानव ने मानव को निगलने के लिये जिस जाल को फैलाया है, उसी के ये ताने बाने हैं। गणतंत्र, जनतंत्र, अपहरण तंत्र, शोषण तंत्र सभी एक हैं। जनता को सुव्यवस्था के नाम पर गला घोटने वाले।'

शैली में आदि से अन्त तक आकर्षण, सजीवता और प्रवाह बना हुआ है जिससे औत्सुक्य तथा कौतूहल की निरन्तर वृद्धि होती है। समाज की विकृतियों का इतना सुन्दर चित्रण शायद ही कहीं मिले। देश के विभाजन के समय पाकिस्तान में हिन्दुओं की परिस्थिति अत्यंत भयावह तथा संकटापन्न हो गई थी। कुछ महीनों के लिये वहाँ पूर्ण अराजकता का साम्राज्य था। इसके पश्चात् शरणार्थी समस्या का विकट प्रश्न भारत सरकार के संमुख आया। उधर बङ्गाल के दुर्भिक्ष ने समस्त बंगाल में ही नहीं सारे भारत में हाहाकार का एक करुण दृश्य उपस्थित कर दिया था। इन्हीं घटनाओं को नाटककार ने अपनी आकर्षक शैली से मूर्तिमान कर दिया है।

रामवृक्ष बेनीपुरी

बिहार के दूसरे नाटककार हैं जिन्होंने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त सामाजिक समस्या नाटकों में भी पाश्चात्य शैली का अनुसरण किया है। 'तथागत' 'शकुन्तला' 'सीता की माँ' 'अम्बपाली' तथा 'अमरज्योति' इनके पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक हैं जिनका टेकनीक सर्वथा नवीन है। 'खून की याद', 'गांव का देवता,' 'विजेता' तथा 'नया समाज' उनके सामाजिक नाटक हैं। 'गांव के देवता' पर गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव है, साथ ही साथ प्राचीन रूढ़ियो और परंपराओं पर व्यंग्य भी किया गया है। 'नया समाज' में रूसी विचार धारा का प्रभाव है।

रामनरेश त्रिपाठी

इनकी प्रतिभा का विकास यद्यपि काव्य-क्षेत्र में अधिक हुआ है, परन्तु

हिन्दी में मौलिक नाटकों के अभाव को देखकर उस ओर भी कदम बढ़ाया । १९३४ में आपका 'जयंत' नामक नाटक प्रकाशित हुआ । उसके पश्चात् 'प्रेम लोक' (१९३५), 'वफाती चाचा' (१९५४) अनजबी तथा पैसा परमेश्वर (१९५४) नामक नाटकों में पाश्चात्य शैली के आधार पर सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है ।

'पैसा परमेश्वर' आज के पूंजीवादी सभ्यता पर एक व्यंग्य है । डाक्टर, वकील, महाजन, अध्यापक, तथा नेता सभी पैसे की महत्ता और उपयोगिता पर जोर देते हैं । पैसे के कारण शील. स्नेह तथा उदारता से एक का दूसरे से किस प्रकार नाता टूट जाता है, चाहे वह अपना सगा से सगा क्यों न हो, इसी का चित्रण इसमें किया गया है । आधुनिक सभ्यता और संस्कृति को, पैसे ने किस प्रकार खोखला और उद्देश्यहीन बना दिया है, यही दिखलाना इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है । व्यंग्य तथा हास्य के उचित प्रयोग से नाटक की भाषा सशक्त और शैली सजीव हो गई है । 'वफाती चाचा' में अंग्रेजी शासन के पूर्व भारतीय गाँवों में व्याप्त हिन्दू मुसलिम एकता का चित्रण किया गया है ।

श्री विनोद रस्तोगी

आजादी के बाद

इसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत का शोषण करके उसे किस दयनीय परिस्थिति में छोड़ा था, तथा उनके जाने के पश्चात् देश के नेताओं के सामने चोर बाजारी, संग्रह मुनाफाखोरी तथा अनैतिकता आदि की अनेक समस्यायें किस प्रकार जन-जीवन को अराजकता में परिणत करते हुए उपस्थित हुईं, इसी का व्यंग्यपूर्ण शैली में वर्णन इस नाटक में किया गया है । देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त करने में अनेक शहीदों ने अपने प्राणों का बलिदान किया था, इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिये था, परन्तु उनका उल्लेख भी नहीं है, उन वीरों का अमर स्मारक लेखक के दृष्टिकोण में होना चाहिए ।

नाटक के प्रथम अंक का दृश्य कानपुर के सिविल लाइन में स्थित सेठ मानिकचन्द के कोठी का है । सेठ ने चोरबाजारी और मुनाफाखोरी से अपार धन-राशि इकट्ठी कर ली है । एक तरफ तो पूंजीपतियों के घर में खाद्य पदार्थों को कुत्ते और बिल्ली तक नहीं पूंछते, उधर सेठ हीरालाल की दूकान पर भिखारी जूठन के पत्तलों को झपट कर छीनते तथा अपनी क्षुधा ज्वाला

बुझाते दिखाए गए हैं। रमैश के शब्दों में लेखक राष्ट्र निर्माण के मार्ग में खड़ी अनेक बाधाओं पर भी संकेत करता है—

'रमेश—कहने को हम स्वतंत्र है। पर क्या यही सच्ची स्वतंत्रता है। हमें स्वतंत्र होना है, भूख की ज्वाला से, निर्धनता के शाप से, बेकारी के पाश से, स्वयं अपनी दुर्बलताओं से, वह होगी हमारी सच्ची स्वतंत्रता[1]।'

आधुनिक पाश्चात्य समस्या नाटकों की भाँति इसमें केवल तीन ही अङ्क हैं। भाषा सरल तथा सजीव है। संवाद संक्षिप्त है। समस्याओं का न केवल चित्रण किया गया है, वरन् उनके सुलझाने के लिये रचनात्मक विचारों को भी लेखक ने रखने की चेष्टा की है। उपदेशात्मकता की मात्रा कम है। हाँ, घटनों के विभाजन में कौतूहल तथा औत्सुक्य की वृद्धि पर कम ध्यान दिया है। इतना होते हुए भी अभिनेयता के तत्व इस नाटक में उपस्थित हैं।

सुबह के घंटे (१९५६) नरेश मेहता द्वारा लिखा गया राजनीतिक नाटक है। इसमें भारतीय राजनीति की घटनाए पृष्ठभूमि के रूप में दी गई हैं। नाटक में समस्या नाटकों की प्रतीक शैली को स्वीकार किया गया है। नाटक के कथानक का संबंध एमन नामक क्रान्तिकारी से है, जो क्रान्ति द्वारा ब्रिटिश राजा को भारत से हटाना चाहता है। चरित्र-चित्रण तथा संवाद की दृष्टि से नाटक सफल नहीं हुआ है, पर वातावरण-चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। प्रथम अंक में कथावस्तु का वातावरण समुद्र तट पर स्थित बन्दी गृह से लिया गया है जहाँ फाँसी के लिये कैदियों को रखा जाता है। एमन एक राजनीतिक क्रान्तिकारी है जिसे राज विद्रोह के लिये फाँसी का दंड मिला है। एमन के पैरों में लोहे के बड़े-बड़े कड़े तथा दोनों हाथों में हथकड़ियाँ हैं। बन्दीगृह समुद्र के किनारे अंग्रेजी किले में बना हुआ है। उसका फाटक सदा बन्द रहता है। केवल संतरी के आने जाने के लिए एक खिड़की खुली रहती है। सागर की उत्ताल तरंगें और उसका गर्जन सुनाई पड़ता है। चांदनी रात में अर्द्ध रात्रि का दृश्य है, बारह का गजर बज रहा है, हो हो की भयानक आवाज सुनाई दे रही है। एमन की मृत्यु की घड़ियाँ निकट हैं, फिर भी वह बड़ा निर्भीक है। अंत में एमन का पुत्र भी पकड़ा जाता है। पिता, पुत्र दोनों की फाँसी हो जाती है। सुबह के घंटे दोनों की मृत्यु के घंटे हैं।

नित्यानन्द हीरानन्द वात्सायन

मुकुट (१९४९)—श्री नित्यानन्द हीरानन्द वात्सायन का दो अङ्कों का समस्या नाटक है। लेखक ने नाटक की भूमिका (अपनी सफाई) में अपने

१—'जयंत", श्री विनोद रस्तोगी, पृ० २७।

उद्दश्य को अधिक स्पष्ट किया है—'मुकुट द्विअङ्की नाटक है। मुझे पता नहीं कि द्विअंकी नाटक शास्त्र सम्मत है या नही, पाँच, चार, तीन तथा एक अंक के नाटक तो लिखे जाते हैं, परन्तु दो अङ्कों के नहीं। मैंने यह द्विअङ्की नाटक इसी अभाव की पूर्त्ति के लिये लिखा है किन्तु विद्रोहात्मक भाव से नहीं। जब कि सिनेमा ने लोगों को एकदम वशीभूत कर रखा है, जब कि आधुनिक जीवन में पाँच छः घटे बैठना दर्शक पसन्द नहीं करेंगे, तब नाटकों को भी नवीन रुचि के अनुकूल होना पड़ेगा। सिनेमा के साथ सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्द्धा करने के लिये नाटक को भी सिनेमा का सा होना होगा। यानी नाटक का अभिनय काल—उतना हो—लगभग दो घण्टे का हो उससे अधिक नहीं। इस दो घंटे के अन्दर भी दर्शकों को जरा हाथ पाँव हिलाने का अवसर मिलना चाहिए, जैसे सिनेमा में विश्रान्ति काल होता है। सिनेमा में यह विश्रान्ति काल घड़ी की सुई पर निर्भर करता है, फलस्वरूप कभी-कभी तो एक दृश्य के अन्दर ही दर्शकों का ध्यान भंग कर दिया जाता है, किन्तु नाटक में हमें ख्याल रखना पड़ेगा कि कथानक बीच से न टूटे। अपितु दर्शकों की भावात्मकता इतनी विचलित हो उठे कि वे विश्राम काल के बाद की घटनाओं के क्लाइमेक्स तथा ऐन्टीक्लाइमेक्स के बीच पूर्ण रूपेण भावोद्रेक से अभिभूत रहें……! नाटक का प्रथम भाग दर्शकों को कथानक और पात्रों से परिचित करा दे, तथा उनमें उत्सुकता, कौतूहल आदि भावों को जगाकर अभिनय में प्रदर्शित भावों के ग्रहण योग्य बना दे।'

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि अभिनेयता के उपयुक्त ऊपर लिखे गए तत्वों की योजना इस नाटक में सफल रूप से हुई है।

नाटक के कथानक और टेकनीक पर गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' का पूर्ण प्रभाव है। रायबहादुर जगदीशचन्द्र 'स्ट्राइफ' के जान एन्थोनी की भाँति 'ह्वाटशीला' ताँबे की मिल का मालिक है। ('जान एन्थोनी टिन की मिल का मालिक है)। गोपाल कारखाने के मजदूरों का सरदार है, जो स्ट्राइफ के डेविड राबर्ट्स का प्रतिरूप है, उसी प्रकार इस नाटक में गोपाल की पत्नी रत्ना भी बीमार पड़ती है। जिसकी समता 'स्ट्राइक' में रावर्ट्स की पत्नी से की जा सकती है।

रायबहादुर जगदीशचन्द्र का लड़का कैलाशचन्द्र मिल मजदूरों के साथ सख्ती करता है। गोपाल अपनी अस्वस्थ पत्नी की सेवा के लिये नौकरी से कुछ दिन की छुट्टी माँगता है। डाक्टर का प्रमाण पत्र, पत्नी की अस्वस्थता के लिये दिखलाता है, परन्तु कैलाश उसे छुट्टी नहीं देता और उससे उसके बदले में एक आदमी एवज (सब्स्टीट्यूट) देने को कहता है। गोपाल एक समाजवादी नेता है। मजदूरों को सुसंगठित करके उनमें पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति की

भावना फैलाता है। गोपाल की स्त्री क्षय रोग से बीमार है, क्योंकि वह एक मजदूर की स्त्री है, अतः भोजन तथा चिकित्सा की आवश्यक सुविधायें उसे नहीं प्राप्त होती। गोपाल की विधवा बहन भी एक है जो अध्यापिका है। डा० मोहन कारखाने के अस्पताल का डाक्टर है, वह रायबहादुर की पुत्री कमला से प्रेम करता है। रायबहादुर इसे बिलकुल नहीं चाहता। उधर रायबहादुर का लड़का कैलाश जिसने गोपाल को छुट्टी देना अस्वीकार किया था गोपाल की अध्यापिका बहन से प्रेम करता है। उसके घर जाता है, उसके भाई का वेतन दुगुना करने का बचन देता है और उसे अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उसको प्रेम पाश में डालना चाहता है। इसी बीच रत्ना का पति गोपाल आ जाता है और कैलाश के ऊपर क्रोध प्रकट करता है।

नाटक के दूसरे अङ्क में कथानक चरम सीमा पर पहुँचता है। कारखाने में रस्सी के टूटने से एक दुर्घटना हो जाती है जिसमें तीन मजदूरों की मृत्यु हो जाती है। दो को सख्त चोट लगती है। उनमें से एक गोपाल भी है। उसका एक पैर और हाथ जाता रहता है, भविष्य में वह काम करने के अयोग्य रह जाता है। रायबहादुर को संदेह था कि रस्सी टूटी नहीं वरन् काटी गई है और यह सब उसके लड़के कैलाशचन्द्र के द्वारा हुआ है। कैलाश डा० मोहन के ऊपर दुश्चरित्रता का दोष लगाकर उसे अस्पताल से हटा देने की धमकी देता है। इधर डा० मोहन स्वयं त्यागपत्र देकर अपने सम्मान का परिचय देता है। वह मजदूरों का नेता बन जाता है और उनके संगठन में लग जाता है। डा० मोहन ने कारखाने में हड़ताल कराने की धमकी दे दी यदि मजदूरों की माँगें नहीं स्वीकार की जातीं। उनमें से पहली माँग यह थी कि गोपाल जिसका हाथ और एक पैर दुर्घटना के फलस्वरूप टूट गया था उसके जीवन भर के भरण-पोषण का खर्चा मिल मालिक दें। उधर कैलाश डा० मोहन पर यह दोषारोपण करता है कि उसने गोपाल की चिकित्सा ठीक ढंग से नहीं की अन्यथा हड्डी जुड़ सकती थी। कैलाश ने डा० मोहन के पद त्याग देने के पश्चात् डा० प्रकाश नाम के एक नवीन डाक्टर की नियुक्ति कर ली थी।

इधर मिल में हड़ताल शुरू हो जाती है। डा० प्रकाश ने मजदूरों को चिकित्सालय से दवा देने से अस्वीकार कर दिया। अनवरत हड़ताल के कारण पैसे के अभाव में गोपाल के यहाँ के प्राणी भूखों मरने लगते हैं और उसकी पत्नी रत्ना की बीमारी चरम सींमा पर पहुँच जाती है क्योंकि इधर औषधि सम्बन्धी कोई सुविधा उसे नहीं प्राप्त हुई थी। यहाँ पर उसके घर की परिस्थिति 'स्ट्राइफ' के राबर्ट्स के घर के समान हो जाती है क्योंकि राबर्ट्स की पत्नी भी 'स्ट्राइफ' में अस्वस्थ है। इतना ही नहीं जिस प्रकार जान एन्थोनी मिल

मालिक की पुत्री 'स्ट्राइफ' में राबर्ट्स के घर दया और सहानुभूति प्रदर्शन के लिये जाती है, ठीक उसी प्रकार इस नाटक मे कमला भी गोपाल के घर जाती है। क्योंकि रत्ना उसकी सखी है। कैलाश इस नाटक का खल पात्र है। वह डा० मानिकचन्द के द्वारा १५०० रुपए का घूस देकर मोहन को पकड़वा लेता है। रत्ना को कैलाश पाना चाहता है, रत्ना स्वीकार भी कर लेती है, पर कमला इस बीच मे हस्तक्षेप भी करती है। रायबहादुर कैलाश को डांट कर मजदूरों की माँग स्वीकार कराता है, हड़ताल समाप्त हो जाती है। 'रायबहादुर—(मजदूरों से) आओ भाइयो ! हाँ हड़ताल समाप्त कर दो। बहुत कष्ट भोग चुके। तुम्हारी सभी माँगे मैं स्वीकार करता हूँ। आशा है कि इतने दिनों के कष्ट के लिये तुम मेरे प्रति दुर्भावना नहीं रखोगे।'[1]

डा० मोहन फिर अपने पद पर नियुक्त किया जाता है। राय बहादुर अपनी लड़की कमला का विवाह डा० मोहन से कर देते हैं। फूलों का एक मुकुट मोहन कमला को पहना देता है। इस प्रकार पूंजीवाद की पराजय तथा मजदूरों की विजय होती है।

लेखक ने मजदूरों में दुर्व्यसन को उनके विलास और मनोविनोद का प्रतीक नहीं, वरन् उनकी विवशता माना है। माणिकचन्द और एक मजदूर की बातचीत से यह कितना स्पष्ट हो जाता है।

माणिकचन्द—लेकिन भाई अगर जो पाते हो, उसे ही समय पर खर्च करो, तो क्या काम न चले। तुम लोग ताड़ी पीना छोड़ दो, जुआ छोड़ दो, तो क्या तुम्हारे बच्चे भर पेट भोजन न पाये।

एक मजदूर—ताड़ी क्या शौक से पीते है। दिन भर की मेहनत के बाद बच्चों का रोना धोना अच्छा नही लगता। ताड़ी पी लेने पर उससे तो छुटकारा मिल जाता है[2]।'

इस प्रकार से कई बातो में वात्स्यायन जी का मुकुट, गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' से एकदम मिलता-जुलता है। ऐसा मालूम होता है कि यह उसी की नकल है। 'स्ट्राइफ' में राबर्ट्स की पत्नी की मृत्यु हो जाती है। इसके बाद दोनों दलों में समझौता हो जाता है 'मुकुट' में भी रत्ना की मृत्यु तो नहीं होती राय बहादुर समझौता कर लेते हैं।

हिन्दी के अनेक नाटकों पर गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' का प्रभाव पड़ा है परन्तु जितना स्पष्ट प्रभाव 'मुकुट' में मिलता है उतना और किसी नाटक में नहीं। इस नाटक के पढ़ने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि हमारे देश में

१—'मुकुट', नित्यानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, पृ० ११३
२—वही, पृ० ७५

भी वर्ग संघर्ष की भावना पाश्चात्य देशों के आधार पर तीव्रता को पहुँच रही है।

धरती और आकाश—डा० शम्भूनाथसिंह की एक नवीनतम कृति है जिसमें गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' और हाप्ट्समैन के 'दी वीवर्स' की भाँति, पूंजीपति तथा मजदूर दोनों दलों का संघर्ष अत्यन्त यथार्थ तथा तीव्रतम रूप में प्रस्तुत किया गया है। सेठ लक्ष्मीपति और उनकी फैक्टरी के मजदूरों के बीच संघर्ष है। धरती पर मजदूर, उपेक्षित तथा दयनीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, इधर आकाश में पूंजीपति डकारें ले रहे है। दोनों का समन्वय ही जीवन में शान्ति और सुख की व्यवस्था कर सकेगा यही नाटककार का संदेश है। नाटक प्रतीक शैली में लिखा गया है। इसलिये इसकी विस्तृत व्याख्या प्रतीक परम्परा के नाटकों के साथ की जायगी।

आधुनिक अन्य नाटककार

आधुनिक नाटक के क्षेत्र में पाश्चात्य नाटकों की शैली मे अनेक आधुनिक हिन्दी नाटककार सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के चित्रण में संलग्न हैं। उनमें से अनेक नाटककारों ने केवल समस्याओं के प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, वरन् उनके सुलझाव का भी प्रयास किया है।

चतुरसेन शास्त्री कृत 'पग ध्वनि' का कथानक राजनीतिक समस्या है। इसमें बारह भाव मूर्त्तियों को पात्रों के रूप मे रखकर आधुनिक हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में एक नवीन शैली का प्रयोग दिखाया गया है। कथानक की चरम सीमा नाटक के चतुर्थ अङ्क में पहुँचती है, जिसमें आगा खाँ के महल में राष्ट्रमाता कस्तूर बा की मृत्यु का दृश्य प्रस्तुत किया गया है।

राजा राधिकारमण सिंह के दो उल्लेखनीय नाटक 'अपना पराया' तथा तथा 'धर्म की धुरी' हैं। इन दोनों में आधुनिक समाज की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। 'अपना पराया' में पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के सांचे में ढली हुई आधुनिक भारतीय सभ्यता के खोखलेपन' तथा अनैतिक और गुप्त प्रेम की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। इन नाटकों की टेकनीक भी पाश्चात्य समस्या नाटकों जैसी है।

वीरदेव 'वीर' के दो नाटक 'भूख' और 'न्याय' सामाजिक समस्याओं को लेकर चलते हैं। 'भूख' में आधुनिक शासकों की अव्यवस्था तथा अनुभवहीनता को दिखाया गया है। चोरबाजारी, मुनाफाखोरी तथा महाजनों की स्वार्थवृत्ति के परिणामस्वरूप जनता में, उत्पन्न भुखमरी का करुण चित्र चित्रित किया गया है। 'न्याय' पर गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' का प्रभाव है। इसमें वर्तमान

न्याय व्यवस्था और उसकी अपूर्णता की आलोचना की गई है। नेतागीरी को व्यवसाय बनाकर चलने वाले एक ढोंगी रायबहादुर की खिल्ली उड़ाई गई है, जो गरीबों का गला घोंट कर मालदार बना हुआ है।

पं० गौरीशंकर मिश्र ने सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के आधार पर अनेक नाटकों की रचना की है। 'ठोस आजादी किसे' मे आधुनिक प्रचलित अनेक राजनीतिक वादों की व्यंग्यपूर्ण आलोचना की गई है। 'हिन्दूराज—पाकिस्तानी स्वप्न कब तक' में हिन्दू मुसलिम एकता का समर्थन तथा सांप्रदायिकता की भावना का विरोध किया गया है। 'हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान के विभाजन से देश में अनेक बाधाएं उपस्थित हुई हैं। अतः इस प्रकार के साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त पर राष्ट्रीय नीति के निर्माण को त्रुटिपूर्ण बतलाकर सच्चे गणतंत्र की विशेषताओं को जिसमें सभी धर्मोंको सम्मान एवं समानाधिकार प्राप्त हों, चित्रित किया गया है। 'हिन्दुस्तान पाकिस्तान साथ रहेंगे' में दोनों राज्य की एकता पर जोर दिया गया है। 'आजाद हिन्दुस्तान से नशा ले चल' में मद्य निषेध की समस्या का प्रकाशन किया गया है। 'शबरी अछूत' में अछूत समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

विष्णु प्रभाकर के 'नव प्रभात' में प्राचीन और नवीन का संघर्ष दिखलाकर नवीन राष्ट्र की अनेक रचनात्मक योजनाओं का वर्णन किया गया है। भैरवलाल व्यास के 'करुणा' में समाज में शान्ति और सुख के स्थापन की विधि बताई गई है। आधि भौतिक त्याग से समाज का व्यावहारिक जीवन शान्तिपूर्ण हो सकता है, परन्तु आध्यात्मिक त्याग से समाज का आन्तरिक जीवन शान्ति की ओर अग्रसर होता है. इन सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने की चेष्टा इस नाटक में की गई है। श्री रामनारायण शास्त्री कृत 'देवता' में धन की निस्सारता तथा मानव जीवन की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

महात्मा गांधी के जीवन तथा आधुनिक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर गांधीवाद के प्रभाव को लेकर आजकल अनेक नाटक लिखे गए हैं। श्री मातादीन भागेरिया का 'तीन दृश्य', प्रो० रामचरण महेन्दु का 'उजले—नोआखाली में प्रकाश 'श्री देवीलाल सामर का 'बापू', श्री प्रभाकर माचवे का' 'गांधी की राह पर' और 'सेवाग्राम का संत', श्री विष्णु प्रभाकर का 'स्वाधीनता संग्राम', श्री दीनदयाल दिनेश का 'सत्याग्रह', ठाकुर लक्ष्मण सिंह का' असहयोग, डा० सुधीन्द्र का 'ज्वाला और ज्योति' मधुकर खरे का 'नव निर्माण श्री विराज का 'तिरंगा झंडा' और 'सीमान्त का सन्तरी', श्री राजेन्द्र सक्सेना का 'नव युग का प्रारम्भ' जयनाथ नलिन का 'डिमोक्रसी', उदयशंकर भट्ट का 'गांधी जी का राम राज्य', 'एकला चलो रे', सेठ गोविन्ददास के 'सूखे सन्तरे'

'कृषि यज्ञ', भूदान यज्ञ', 'भूदान यज्ञ' श्री रामचन्द्र तिवारी के 'स्वतंत्रता', राष्ट्र निर्माण' और 'शक्ति' आदि नाटकों में गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है। विष्णु प्रभाकर का 'शक्ति का स्रोत' तथा पं० हरिशंकर शर्मा कृत 'बापू का स्वर्ग में स्वागत समारोह' तथा यज्ञदत शर्मा का 'विश्व शांति के पथ पर' नाटक के क्षेत्र में नवीनतम कृतियाँ हैं।

सौन्दर्य प्रतियोगिता (१९५६) गोपाल शर्मा-एक आधुनिक मध्य वर्गीय परिवार का चित्र है। धनीराम सौन्दर्य प्रतियोगिता का निर्णायक होने जा रहा है, उसकी लड़की विमला उसमें भाग लेने जा रही है। धनीराम की स्त्री इसका पूर्ण विरोध करती है।

माँ—हाय हाय में क्या करू । इन पश्चिम की हवाओं ने हत्यारों के दिमाग ही खतम कर दिए हैं।

धनीराम पश्चिमी सभ्यता के अनुसार सौन्दर्य निरीक्षण लज्जा की वस्तु नहीं समझता।

धनीराम—हट ! नारी के सौन्दर्य की कद्रदानी सदियों से हमारे देश में होती चली आ रही है। लोग निहायत दकियानूस हैं। इसमें और उन्नतिशील राष्ट्र के लोगों में यही फर्क है। हमारे यहाँ चीज को चीज मानकर देखा ही नहीं जाता।'

धर्मानन्द पहिले तो इसका विरोधी था, बाद में उसे घूस देकर फोड़ लिया गया। धर्मानन्द देश के ऐसे दिखावटी कोरे आदर्शवादियों का प्रतीक है, जो लम्बी चौड़ी आदर्श की बातें बहुत करते हैं परन्तु पैसे पर ईमान और आदर्श को बेचते उन्हें देर नहीं लगती। धनीराम के शब्दों में लेखक ऐसे आदर्शवादियों की पोल-खोलता है।

धनीराम—'उस बेईमान ने (धर्मानन्द) जो अभी कुछ घंटे पहिले संस्कृति की दुहाई दे रहा था उसी ने इनाम बाँटे। ओह हो। यह है हालत सार्वजनिक क्षेत्र के कुकुरमुत्तो की। बगैर बोए उग बड़ते हैं। दिखावा तो बड़ी मजबूती से करते हैं। मगर किस वक्त कौन उन्हें सुनहला फूंक मार कर उड़ा ले जाए, यह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता।"

उपसंहार

आधुनिक युग के नाटकों पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो विदित होता हैं कि पौराणिक तथा ऐतिहासिक इतिवृत्ति संबंधी नाटकों की संख्या कम तथा सामाजिक समस्या नाटकों की संख्या अधिक रही है। समस्या नाटकों में भी सेक्स' नारी, विवाह के अतिरिक्त अन्य सामाजिक तथा राष्ट्र निर्माण संबंधी

समस्याओं के चित्रण द्वारा नाटक के क्षेत्र में विविधता तथा सर्वाङ्गीणता का प्रवेश हुआ। पद्य के स्थान पर नाटक मे भावों के प्रकाशन का माध्यम सरल गद्य हो गया। गीत तथा स्वगत एकदम कम हो गए। पश्चिमी नाटकों के यथार्थवादी स्वाभाविकतावादी अभिव्यंजनावादी अनेक नाटकीय शैलियों का पूर्ण रूप से अनुसरण किया गया फलतः इब्सन और शा के पश्चात् पिरेंडेलो, ओ नील, स्ट्रिन्डवर्ग, मैतरलिंग, काफमैन, गाल्सवर्दी तथा हाप्ट्समैन, चैखव और गोर्की के नाटकों के आधार पर अनेक हिन्दी नाटकों का शिल्प-विधान हुआ। पश्चिमी विचारकों में हक्सले, डारविन, मिल तथा टालस्टाय, यच०जी० वेल्स और बर्टेन्ड रसेल के सिद्धान्तों का विशेष प्रभाव पड़ा है। रंगमंच संबंधी निर्देशों तथा संकेतों में भी पश्चिम का अनुसरण किया गया। समस्याओं का प्रकाशन सांकेतिक तथा प्रतीक शैली में हुआ। मोनोलाग, स्वप्न नाटक, छाया चित्र, आदि अनेक शैलियों का अनुसरण आज हिन्दी नाटक क्षेत्र में पाश्चात्य नाटकों की शैली पर ही हो रहा है।

—: ० :—

सातवां अध्याय

एकांकी तथा ध्वनि नाटक

उत्पत्तिकी पृष्ठभूमि

जिस प्रकार कथा साहित्य में कहानी, आधुनिक गद्य साहित्य का एक व्यापक और अत्यंत लोकप्रिय साधन हो चला है, उसी प्रकार नाटकों के क्षेत्र में आज का युग एकांकी नाटकों का युग कहा जा सकता है। आधुनिक युग में जीवन की व्यस्तता, अशांति, कार्य बाहुल्य, अवकाश-न्यूनता तथा मानव जीवन के उत्तरोतर बढ़ते हुए द्वन्द्व ने एकांकी नाटकों को जन्म दिया है और उसी से इसका प्रसार और लोकप्रियता भी बढ़ती जा रही है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् यूरोप का सारा वातावरण भौतिकवादी और अर्थ प्रधान हो गया। हस्तकला के स्थान पर कल, कारखाने तथा मशीनों की प्रधानता हो गई। अतः ऐसे छोटे-छोटे साहित्यिक माध्यमों का जन्म हुआ जो थोड़े समय में कार्य व्यस्त तथा थके हुए मानव को उचित मनोरंजन दे सकें। क्योंकि मनुष्य के पास इतना समय नहीं था, कि वह दस सर्गों के लम्बे महाकाव्यों, छः सौ पृष्ठों के उपन्यासों अथवा रात भर में समाप्त होने वाले नाटकों को देख सके। फलतः काव्य के क्षेत्र में छोटे गीतों, कथा क्षेत्र में छोटी कहानियों तथा नाटक के क्षेत्र में एकाँकी नाटका जन्म हुआ। शिक्षा के प्रसार, स्कूलों और कालेजों में अभिनय योग्य लघु एकांकियों की निरन्तर माँग तथा रेडियो के प्रसार के कारण एकांकियों

की लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती गई। द्वितीय विश्व महायुद्ध के अवसर पर गद्य साहित्य के प्रचारात्मक साधनों की आवश्यकता हुई। फलतः एकांकी नाटकों के अनेक रूपों का विकास हुआ। इनमें रेडियो प्ले, फीचर, फैंटेसी मुख्य है।

संस्कृति साहित्य में एकांकी

संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों साहित्यों मे आधुनिक एकाँकी से मिलते जुलते रूपक और उपरूपक के उदाहरण मिलते हैं। संस्कृत साहित्य में रूपकों के दस तथा उपरूपकों के अठारह भेदो मे एक अङ्क वाले नाटकों के कई रूप प्राप्त होते है। रूपकों के अन्तर्गत भाण, व्यायोग, अङ्क और बीथी तथा उपरूपकों के अन्तर्गत गौष्ठी नाट्य, रासक, आदि भेद एकांकी से मिलते जुलते थे। इस तरह के नाटकों के अनेक उदाहरण भी संस्कृत साहित्य से दिये जा सकते हैं। 'शर्मिष्ठा ययाति' (अङ्क का), 'सौगंधिका हरण:' (व्यायोग) के उदाहरण हैं। कुछ के उदाहरण नहीं दिये जा सकते, क्योंकि वे दुष्प्राप्य हैं। परन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, संस्कृत नाटकों में रस निष्पति और भावुकता को विशेष महत्व दिया जाता था, आधुनिक एकाँकी की विशेषता मनोविज्ञान और अन्तर्द्वन्द्व है, अतः आजकल के एकाँकियों की उत्पति प्राचीन संस्कृत के नाटकों से नहीं की जा सकती।

पाश्चात्य देशों में एकांकी की उत्पति और विकास

पाश्चात्य देशों में भी एकाँकी का रूप बहुत प्राचीन नहीं है। संस्कृत नाटकों की भाँति यूरोप में भी रिनेसा काल के मिरेकिल्स, जिनमें बाइबिल के कथानक तथा संतों के जीवन का वर्णन रहता था, मारैलिटीज, जिनमें नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा की प्रधानता रहती थी, और इन्टरल्युड्स, जो विनोद प्रधान रहते थे, अपने छोटे आकार के कारण एकांकी नाटकों से मिलते जुलते थे। इटली के कामेडिया डेल आर्ते भी विषय की संक्षिप्तता के कारण एकांकी नाटकों से मिलते जुलते थे। एलिजाबेथ के समय के दुखान्त नाटकों के गंभीर वातावरण को हलका बनाने के लिये कभी कभी नाटकों के मध्य में गर्भांक (इंटरल्यूड्स) तथा उनके अन्त में आफटर पीसेस की योजना रहती थी, जो आकार में बहुत ही संक्षिप्त होते थे। परन्तु आधुनिक एकांकी की उत्पत्ति वस्तुतः प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ही हुई। यूरोप के प्रेक्षा गृहों मे नाटक के अभिनय प्रारम्भ होते ही पूर्व ही दर्शकों के मनोरंजनार्थ उनके समय को व्यस्त करने के लिये, एक प्रधान नाटकीय माध्यम की आवश्यकता हुई, जिसे पट-उत्थानक (करटेन रेजर) कहा जाने लगा। इस प्रकार के नायकों के अभिनय के पश्चात् रंगमंच का पर्दा मुख्य नाटक के अभिनय के लिये, उठता था, इसलिये

उसे पट-उत्थानक कहते थे। मनोरंजन के अतिरिक्त इस प्रकार के संक्षिप्त नाटकों से व्यवस्थापकों का आर्थिक लाभ भी होता था। इसके अतिरिक्त बाद में आये हुए, दर्शकों को मुख्य नाटक देखने की सुविधा भी प्राप्त हो जाती थी धीरे-धीरे, इस प्रकार के पट-उत्थानकों की कला मे, इतना विकास हुआ कि दर्शक गण इन्ही को देखकर पूर्ण रूप से मानसिक तृप्ति का अनुभव करने लगे, और इनको ही देखने के पश्चात् वे उठकर घर चले जाने लगे, मुख्य नाटक को देखने की लालसा का उनके मन में तिरोभाव होता गया, फलतः, इस प्रकार के नाटकों की स्वतंत्र कलात्मक सत्ता क्रमशः स्थिर होती गई, और इन्हें ही एकांकी नाटक के नाम दिए गए। फलतः पट उत्थानक, जो पहले गौण स्थान का अधिकारी था, अपने स्वतंत्र कला सौष्ठव और मौलिक अभिव्यंजना के कारण आधुनिक एकाँकी के रूप मे परिणत हो गया।

कालान्तर में, यूरोपीय रंगमंच पर इन नाटको के विकास के लिये उपयुक्त वातावरण तथा उचित भावभूमि की क्रमशः उपलब्ध होती गई। तड़क-भड़क वाले दृश्यों, लम्बे कथानक तथा गीत और स्वगत से पूर्ण रोमेटिक नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप सरल, संक्षिप्त दृश्य प्रदर्शन के स्थान पर सरल अभिनय संकेतों को महत्व देने वाले, पद्य के स्थान पर सरल गद्य तथा स्वाभाविक संवाद रखने वाले इब्सन, पिनरो, चेखव तथा हाप्ट्समैने के नाटकों की लोकप्रियता बढ़ी। इतना ही नहीं लम्बे नाटकों के खेलने वाले रंगमंचों के विरुद्ध 'रिपटरी थियेटर' की सृष्टि की गई, जिनमें व्यवसायी अभिनेताओं के बदले शौकीन (Amateur) पात्र भाग लेने लगे, तथा जिनमें रंगमंच का सारा विधान सरल और यथार्थवादी हो गया। इन नाटकों मे समाज की व्यावहारिक और सामाजिक समस्याओं का चित्रण होने लगा। इब्सन, शा गाल्सवर्दी, डी० यच० लारेंस तथा सिटबेल, इस प्रकार के रंगमंचों के उपयुक्त अभिनेय नाटकों को देने लगे। फलतः एकाङ्की नाटकों की बाढ़ सी आ गई। यद्यपि इसकी उत्पत्ति हुए बहुत समय नहीं व्यतीत हुआ, फिर भी इस अल्प काल में ही, इसकी कला यथेष्ट रूप से विकसित हो चुकी है, और एकाङ्की; गद्य साहित्य का अत्याधुनिक लोकप्रिय तथा कलापूर्ण अंग माना जाने लगा है। प्रारम्भिक नाटकों की भाँति, इसका सम्पूर्ण उद्देश्य मनोरंजन ही नहीं, हाँ मनोरंजन भी है। आज तो व्यक्ति तथा समाज की दुरूह से दुरूह समस्याओं का प्रकाशन एकाङ्की के द्वारा हो रहा है।

एकांकी नाट्य कला और शिल्प विधान

सीमित क्षेत्र तथा लघु परिधि में एकाङ्की द्वारा जीवन की पूर्ण व्याख्या की

आशा हम नहीं कर सकते अत: जीवन के किसी एक अंग या दृष्टिकोण की तीव्र अभिव्यंजना करना ही इसका उद्देश्य है। अतः इसमें घटना या चरित्र की जटिलता के स्थान पर संक्षिप्तता तथा संवेदनात्मक अन्विति (युनिटी आफ इम्प्रेशन) की महत्ता रहती है। उसमें एक सुनिश्चित् लक्ष्य तथा केन्द्रीभूत आकर्षण रहता है। अत: परसिवल वाइल्डे के शब्दों में संकलन त्रय उसकी कला का अनिवार्य अंग है।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने जो हिन्दी में एकाङ्की के निर्माता कहे जाते हैं, एकाङ्की के रचना विधान तथा उद्देश्य की व्याख्या करते हुये कहा है कि एकाङ्की कला उस कली की भाँति हैं, जो प्रस्फुटित होकर अपने चरम सौंदर्य को प्राप्त करती है, अथवा उसकी कला घने बादलों के बीच सहसा बिजली की चमक जैसी है, जिसके द्वारा एक क्षण के लिये समस्त दृश्य आँखों के सम्मुख नाच जाय। फलत: जीवन के किसी महत्वपूर्ण पक्ष या चरित्र के दृष्टिकोण पर तीव्र प्रकाश फेंक कर उसकी समस्त अभिव्यंजना पाठकों या दर्शकों के मन तक पहुँचाना ही एकाँकी का उद्देश्य है।

घटना

घनीभूत प्रभाव की सृष्टि तथा चरम सीमा पर घटना को ले आने के लिये एकाङ्की के लिए कुतूहल की प्रधान आवश्यकता होती है। अत: उसका जन्म ही कुतूहल में होता है। परन्तु, इस कौतूहल को प्रकाशित करने में लेखक के लिए अत्यन्त सतर्कता तथा कला कुशलता की आवश्यकता होती है। कौतूहल का एक चतुर्थांश डा० वर्मा के शब्दो में उसे आरंभ में प्रकट करना चाहिए। और तीन चतुर्थांश घटनाओं के बीच मे छिपाए रहना चाहिए। एकांकी का कला-भवन कौतूहल सागर मे तैरते हुए एक महान हिम खंड के समान है, जो दूर से जहाज में बैठे हुए दर्शकों को एक कपास के टुकड़े के समान दिखाई देता है, परन्तु जब जहाज उससे टकरा कर स्वयं चूर चूर हो जाता है, तब हम उसकी विशालता का अनुभव करते हैं। अत: कौतूहल और विस्मय का सफल निर्वाह एकाङ्की लेखक की कला-कुशलता का श्रेष्ठ परिचायक है।

1—'One act play is characterised by superior unity and economy. It is possible in a comparatively short space of time and it is to be assimilated as a whole. It must end finally at a moment, which is neither too early nor too late and with a state of affairs which is correct and satisfying.'

—*'The Craft Manship of one Act Play'*—Percival wilde page 17.

आयर लैंड के प्रमुख कवि तथा नाटककार विलियम बटलर इट्स से एक अन्य नाटककार लार्ड डनसेनी ने एक बार पूछा, 'आप एकाङ्की के कथानक का प्रधान गुण क्या समझते है ?' ईट्स महोदय ने उत्तर दिया,'विस्मय ।' डनसेनी ने फिर पूछा 'और दूसरा गुण' । फिर उत्तर मिला, 'विस्मय ।' 'और तीसरा गुण ?' प्रश्नकर्ता ने फिर दुहराया, 'फिर तीसरी बार भी वही उत्तर मिला 'विस्मय ।' इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि कौतूहल या विस्मय तथा उसका सफल निर्वाह एकाङ्की का प्राण है। कौतूहल के क्रमिक विकास के लिये वर्णनात्मक अंशों की कमी तथा अभिनेयातात्मक तत्वों की प्रधानता होना चाहिए। फलतः कथानक को हम कई अंगों में सुविधा के लिये विभक्त कर सकते हैं । प्रायः इसको हम चार भागों मे बाँटते है । निरूपण, अवरुंधन, उत्कर्ष और अपकर्ष। निरूपण में एकाङ्की की पृष्ठभूमि की योजना की जाती है, प्रमुख चरित्रों से हमारा परिचय होता है। अवरुद्धन में लेखक को कथावस्तु के विकास के लिये अवसर मिलता है, परन्तु यह विकास अत्यन्त तीव्र गति से चरम सीमा की ओर बढ़ता दिखाई देना चाहिए । उत्कर्ष में एकाङ्की कला अपने चरम कौतूहल तथा विस्मय की दशा में पहुँचती है, और अपकर्ष में हम उसके अन्तिम परिणाम का दर्शन पाते हैं । यदि हम उसे रेखाचित्र से समझना चाहें तो वह निम्नांकित ढङ्ग का होगा—
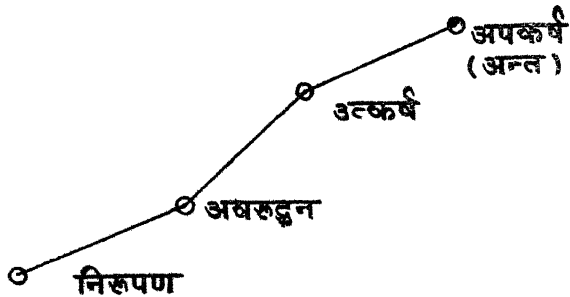
चरित्र

सफल एकाङ्की शिल्प विधान के लिये घटनाओं की संक्षिप्तता के साथ ही साथ चरित्रों की भी सीमित संख्या होनी चाहिए । चार पाँच पात्रों से अधिक का समावेश उसमें नहीं होना चाहिए । चरित्र तीन प्रकार के हो सकते हैं । नायक, प्रतिनायक और गौण पात्र । यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक एकाङ्की में तीनों प्रकार के पात्र उपस्थित हों । कुछ ऐसे नाटक होते हैं, इनमें नायक

और प्रतिनायक दोनों रहते हैं । कुछ में केवल नायक तथा गौण पात्र । प्रति-नायक की आवश्यकता विशेषकर, उन नाटकों में होती है, जहाँ वाह्य संघर्ष की प्रधानता समझी जाती है । गौण पात्र कथा को उत्तेजित करते हैं । पात्रों की रचना में मनोवैज्ञानिकता का आधार अवश्य होना चाहिए । इसके लिये, अन्तर्द्वन्द्व की सफल योजना आवश्यक है । वास्तविकता तो यह है कि एकाङ्की की आत्मा अन्तर्द्वन्द्व में है । इसके दिखाने से नाटक की कथा में रोचकता की वृद्धि होती रहता है । इस प्रकार की रोचकता वाह्य परिस्थितियों के संघर्ष के कारण होती है । चरित्र के अन्तर के रहस्यों पर प्रकाश डालने के लिये अंत: संघर्ष सहायक होता है । अन्तर्द्वन्द्व की समाप्ति उस समय होती है, जब वह चरम सीमा पर पहुँच जाता है, और उसके पश्चात नाटक में एक शब्द भी जोड़ना अनावश्यक सा लगता है । डा० रामकुमार वर्मा के एकाङ्की नाटकों में इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व के बड़े ही सफल चित्र दिखाई पड़ते हैं । उनके पात्र अपने अन्तर्द्वन्द्व के बीच हमारे हृदय पटल पर सहानुभूति की एक अमिट रेखा छोड़ जाते हैं । वे जीवन के वाह्य तथा सामयिक द्वन्द्वों की अपेक्षा मानव हृदय के शाश्वत प्रश्नों की ओर इंगित करना ज्यादा पसंद करते हैं । उनके 'चंपक' में किशोर का अन्तर्द्वन्द्व, 'नहीं का रहस्य' में प्रो० हरिनारायण का मानसिक संघर्ष, 'बादल की मृत्यु में', बादल का मनोयोग', तथा रजनी की रात' में 'रजनी के मानसिक संघर्ष के उत्तम रूप उपलब्ध होते हैं ।

संवाद

संवाद ही एकाङ्की कला का मूल आधार है । इसके लिये स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता का समावेश अत्यन्त आवश्यक होता है । संवाद ही चरित्र चित्रण की भित्ति है । यदि संवाद उलझा हुआ, अस्वाभाविक और गतिहीन हुआ, तो कथावस्तु का विकास किसी भी प्रकार सफल रूप से नहीं हो सकता । इसके साथ ही साथ एकाङ्की का संवाद नाटकीय प्रयोजन से होना चाहिए । प्रयोजन हीन संवाद का एकाङ्की में कोई स्थान नहीं । एकाङ्की के संकुचित क्षेत्र के कारण संवाद की महत्ता और उसका उत्तरदायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है । इसीलिये संवाद का प्रयोजन सुनिश्चित और स्पष्ट होना चाहिए । या तो वह कथावस्तु की प्रगति करे, या चरित्र का विकास करे, या अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ठ करे, और उसे प्राय: तीनों उद्देश्यों की पूर्ति करनी पड़ती है । पहाड़ी सरिता की भाँति उसका वेग तीव्र और अबाधित होना चाहिए । एक एक उसका एक एक शब्द नपा तुला होना चाहिए, क्योंकि हमें तो थोड़े ही शब्दों से

अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न करना है।[1] अत: उसके लिये आवश्यक है कि एक शब्द भी अनावश्यक न कहा जाय।

इसके अतिरिक्त प्रभाव की वृद्धि के लिये संवाद स्वाभाविक, मर्मस्पर्शी तथा वाग्वैदग्ध पूर्ण होना चाहिए। उसमें स्वगत और उपदेश की तनिक भी गुंजाइश नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इन दोनों का प्रयोग नाटक की गति को शिथिल बना देता है। आधुनिक नाटककार स्वगत की अस्वाभाविकता से बचने के लिये टेलीफोन द्वारा वार्तालाप या संकेत शैली द्वारा थोड़े ही शब्दों में अधिक भाव की व्यंजना करने में सहायक होता है।

रंग-निर्देश

नाटक में वर्णित वातावरण, चरित्रों की वेश-भूषा तथा उनकी मन:स्थिति को स्पष्ट करने के लिये, रंग-संकेत आजकल के एकाङ्की-नाठकों का एक अनिवार्य अंग हो गया है। इसका उपयोग कई कारणों से होता है। सबसे प्रथम तो रंग संकेतों से संगमंच की पूरी व्यवस्था स्पष्ट करने में नाटककार का सहायता प्राप्त होती है। पश्चिम के एकाङ्कीकारों ने तो इस दिशा में इतनी उन्नति की है, कि वे रंगमंच की पूर्ण व्यवस्था को स्पष्ट करने के लिए अनेकों मानचित्र भी दे देते हैं। हिन्दी नाटककार भी इस दिशा में अग्रसर दिखाई दे रहे हैं। जगदीश चंद्र माथुर के 'कोणार्क' में रंगमंच संकेत तथा अभिनयकी पूरी व्यवस्था के साथ मानचित्र भी मिलेंगे, जो वातावरण तथा साज सज्जा के निर्माण में पूर्ण सहायक हैं। दूसरे, रंग-संकेतों का दूसरा लक्ष्य अभिनय में सहायता करना है। नाटककार समय समय पर पात्रों के हाव भाव वेश भूषा, रीति नीति तथा भाँवभंगी का उल्लेख कर देते हैं। उनको पढकर चरित्रों के मन:स्थिति की कल्पना आसानी से की जाती है। इसके अतिरिक्त रंगमंच निर्देशों के द्वारा नाटककार कथावस्तु के दुरूह एवं विस्तृत स्थलों को स्पष्ट एवं संक्षिप्त रूप से वर्णन कर सकता है। ऐसे अनेक दृश्यों या घटनाओं का जिनके वर्णन करने में नाटककार को अनेक कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ता है। एकाङ्की लेखक कुछ थोड़े से संकेतों द्वारा व्यक्त कर सकता है। साथ ही जिन भावभंगिमाओं और मुद्राओं का चित्रण कथोपकथन के द्वारा भी नहीं हो सकता है, और न कोई और नाटकीय शैली उसके प्रकाशन में सहायक होती है

1—'You have a small number of words, with which to accom plish a large effect, therefore every word must count.
—'*The Construction of one act play*'—Richard walter **Eaton, page 30.**

उनका प्रकाशन इन निर्देशों के द्वारा सरलता से हो जाता है। उदाहरण के लिए, विमला लूथर के 'आवागमन' में—

"मंच पर बिल्कुल अंधेरा है, केवल कुछ व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़ों में दिखाई देते हैं। इनके ऊपर सफेद रोशनी भी पड़ रही है। पीछे वाला परदा काला हैं, उस पर तारे चमक रहे हैं। आस-पास तथा नीचे जमीन पर घोर अंधकार हैं- जिससे ऐसा प्रतीत होता है, मानो ये लोग कहीं आकाश में टंगे"

यहाँ पर लेखक स्वर्ग लोक का चित्रण करना चाहता है। अतः रंग संकेतों के इस संक्षिप्त वर्णन से उसका वातावरण कितना स्पष्ट हो जाता है।

संकलन त्रय की योजना

'इसके संबंध में अनेक विद्वानों में मतभेद हैं। सेठ गोविन्ददास[1] के अनुसार पूरे नाटक के लिये संकलन त्रय, जो नाठ्य कला के विकास की दृष्टि से बड़ा भारी अवरोध है, का परिपालन कुछ फेर फार के साथ एकाङ्की नाटक के लिये जरूरी चीज है। संकलन त्रय में संकलन द्वय अर्थात नाटक एक ही समय की घटना तक परिमित रहे, तथा एक ही कृत्य के सम्बन्ध में हो यह एकाङ्की नाटक के लिये अनिवार्य है। इस तरह से सेठ जी ने स्थान संकलन की महत्ता को एकाङ्की के लिए आवश्यक माना है। एकाङ्की नाटक में एक से अधिक दृश्य भी हो सकते है, पर यह नही हो सकता कि एक दृश्य आज की घटना का हो, दूसरा पन्द्रह दिनों की बाद, तीसरा कुछ महीनों के पश्चात का और चौथा कुछ वर्षों के अनन्तर। स्थल संकलन जरूरी नहीं, पर काल संकलन होना ही चाहिए।"

सेठ गोविन्ददास एकांकी में संकलन द्वय के पालन के (समय और कार्य) समर्थक हैं। डा० नगेन्द्र एकाङ्की शिल्प-विधान के लिये संकलन त्रय का निर्वाह आवश्यक नहीं समझते। काल तथा स्थान की एकता को तो वे उल्लंघनीय मानते हैं। डा० रामकुमार वर्मा तीनों की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं, अतः इस सम्बन्ध में हम मतभेद पाते हैं। मेरा विचार है, कि संकलन त्रय के नियमों की अवहेलना करने पर भी हिन्दी के कुछ एकाङ्की सफल एकाङ्की कहे जा सकते हैं। उपेन्द्र नाथ इश्क के 'लक्ष्मी का स्वागत' में स्थल भेद लेश मात्र भी नहीं है, फिर भी वह सफल एकाङ्की है। गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सुहाग बिन्दी' में स्थल

१—'सप्त रश्मि'—सेठ गोविन्ददास—भूमिका, पृ० ९-१०।

की एकता को अस्वीकार किया गया है, फिर भी वह सफल एकाङ्की है। इसी तरह डा० रामकुमार वर्मा के एकाङ्की नाटकों में 'पृथ्वीराज की आँखें', 'दस मिनट' तथा अश्क के 'अधिकार का रक्षक' में कालान्विति का तनिक भी ध्यान नहीं किया है, फिर भी रंगमंच की दृष्टि से इन नाटकों का कई बार सफलता पूर्वक अभिनय भी हो चुका है, और इनकी गणना सफल नाटकों में की जाती है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि यदि लेखक की शैली में प्रतिभा और सजीवता है, यदि उसमें पर्याप्त पर्यवेक्षण शक्ति है, तो इन नियमों की उपेक्षा करते हुए भी, वह सुन्दर एकाङ्की की दृष्टि कर सकता है।

रेडियो नाटक या ध्वनि नाटक

रेडियो नाटक और एकांकी नाटक में कोई तत्वगत अन्तर नहीं है। रेडियो नाटक एकांकी नाटक की एक शाखा ही है। इसमें ध्वनि की प्रधानता रहती है, ध्वनि के ही माध्यम से चरित्र चित्रण तथा प्रभाव की अभिव्यक्ति होती है। यह कार्य रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों से कठिन अवश्य है। इसकी विस्तृत व्याख्या, इसी अध्याय में अन्यत्र की जायगी।

एकांकी नाटकों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से हिन्दी आलोचकों ने किया है। प्रत्येक में कुछ न कुछ त्रुटियाँ हैं इसके लिये कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं निर्धारित की जा सकती हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकना है कि एकांकी की अपनी स्वतन्त्र कला होती है। केवल सम्भाषण या संवाद को हम एकांकी नहीं कह सकते, जब तक उसमें अभिनेयात्मकता, गतिशीलता तथा अन्तर्द्वन्द्व न हो। फलत: किसी कहानी में काँट छाँट करके उसे एकांकी का रूप दे देना और बात है, परन्तु उसे रंगमंच के उपयुक्त बनाना और बात है। अतः चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का यह कथन कि एकांकी, कहानी का रंगमंच पर खेला जाने वाला संस्करण मात्र है, ठीक नहीं है। कहानी और एकांकी के 'टेकनीक में पर्याप्त अन्तर है। जब कहानी को उपन्यास का लघु संस्करण नहीं माना जा सकता, तो एकांकी को कहानी का संक्षिप्त रूप या संस्करण कैसे माना जा सकता है। कहानी का मूल उद्देश्य पाठ्य है, एकाँकी की रचना रंगमंच को ध्यान में रखकर की जाती है, अतः दोनों के उद्देश्यों में महान अन्तर है। दोनों में निकट सम्बन्ध होते हुए भी यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि एकांकी कहानी का लघु संस्करण मात्र है।

हिन्दी एकांकी का विकास

हिन्दी एकाङ्की की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग

तो खींचतान कर के इसका प्रारम्भ भारतेन्दुकाल से मानते हैं। प्रो० रामचरण महेन्द्र उनमें से मुख्य है। उन्होंने भारतेन्दु को ही एकाङ्की का जनक कहा है। उनके भारत जननी, धनंजय विजय, पाखंड विडम्बन को अनूदित एकांकी, तथा प्रेम योगिनी, भारत दुर्दशा, नील देवी तथा प्रहसनों में वैदिकी हिंसा, अंधेर नगरी, विषस्य विषमौषधम को मौलिक एकांकी माना है। इतना ही नहीं, उनके मत से भारतेन्दु के अतिरिक्त उस युग के सभी नाटककारों ने, जैसे बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, पं० प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्री निवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी, बदरीनारायण चौधरी, देवकी नन्दन त्रिपाठी तथा अन्य लेखकों ने एकांकियों की रचना भारतेन्दु के आधार पर की। उनके दृष्टिकोण से हिन्दी एकांकियों का यह प्रयोग कालीन युग था।[1]

भारतेन्दु युग के पश्चात द्विवेदी—युग में भी एकांकियों की रचना पर पहले तो पारसी रंगमंच का प्रभाव था, परन्तु बाद में उनकी भाषा साहित्यिक हिन्दी हो गई। इस युग के एकांकीकारों ने सुधारवादी दृष्टिकोण से एकांकियों की रचना की, क्योंकि द्विवेदी युग सुधार और नैतिकता का युग था। फलतः इन नाटकों में प्राचीन रूढ़ियों बाल विवाह, वृद्ध विवाह, मद्यपान, छुआछूत, वेश्या वृत्ति, पाश्चात्य अन्धानुकरण तथा सामाजिक और धार्मिक पाखंडों की आलोचना की गई। इन एकांकीकारों में पं० राधेश्याम कथावाचक, तुलसीदत्त शैदा, आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, बदरीनाथ भट्ट, जी० पी० श्रीवास्तव, रूपनारायण पांडेय, प्रेमचन्द, सुदर्शन तथा पं० रामनरेश त्रिपाठी प्रमुख हैं।

परन्तु जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा जा चुका है, संस्कृत में भी रूपकों तथा उपरूपकों के अन्तर्गत एक अंक वाले नाटक उपस्थित थे। रूपक के दस भेदों में व्यायोग, अङ्क और वीथी एक ही अंक के होते थे, उसी प्रकार उपरूपकों को अठारह भेदों में से गोष्ठी, नाट्य रासक, उल्लाप्य, काव्य रासक, प्रेखड़, श्री गदित, विलासित, हल्लीश, और भाणिका एक ही अंक के होते थे। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में हम इस प्रकार के नाटकों की परिभाषा ही नहीं, वरन् उनके पर्याप्त उदाहरण भी पाते हैं। जैसे सौगन्धिका हरण व्यायोग का शर्मिष्ठा ययाति (अंक का) रैवत मदनिका (गोष्ठी का) विलासवती (नाट्य रासक) देवी महादेव (उल्लाप्य) मेनिका हित (रासक) वालिबध (प्रेषड़), क्रीड़ा रसातल (श्रीगादित) विन्दुमती (विलासिका) कामदत्ता (भाणिका के) सुन्दर उदाहरण हैं।

परन्तु इन नाटकों में रस तथा अनुकृति की प्रधानता थी, फलतः आधुनिक

१—हिन्दी नाटक और नाटककार—प्रो० रामचरण महेन्द्र, पृ० १०७

एकांकी, का आधार जिसमें चरित्र चित्रण तथा मनोविज्ञान की मुख्यता है, इन संस्कृत के नाटकों को नहीं मान सकते। भारतेन्दु के नाटकों पर संस्कृत का प्रभाव मुख्य था, हाँ बंगला तथा अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव से, उन्होंने अपने नाटकों में यथार्थवादिता का आरोप किया। बंगला के माध्यम से अंग्रेजी आपेरा (भारत जननी) की नवीन शैली स्थापित की, तथा 'द मर्चेन्ट आफ वेनिस' का अनुवाद भी दुर्लभ बंधु के नाम से किया, परन्तु उनके नाटकीय शिल्प विधान पर संस्कृत नाटकों का प्रभाव अधिक व्यापक और स्पष्ट था। फलतः उनके अनेक नाटक संस्कृत रूपकों तथा उपरूपकों की परंपरा में ही लिखे गये। उनमें रस और अनुकृति की ही प्रधानता थी, हाँ यह अवश्य था कि मौलिक प्रतिभा तथा अपनी स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कारण, भारतेन्दु जी ने उनका अन्धानुकरण नहीं किया, इससे कहीं-कहीं संस्कृत नाटकों के नियमानुसरण में शैथिल्य दिखाई देता है। उदाहरण के लिये, उनका धनंजय विजय (व्यायोग), पाखंड विडम्बन (प्रबोध चन्द्रोदय के ढङ्ग का प्रतीक नाटक), भारत दुर्दशा (नाट्यरासक) तथा अन्य नाटक प्रहसनों की ही कोटि में रखे जा सकते हैं। हम, उन्हें आधुनिक पाश्चात्य ढङ्ग के एकांकियों का जन्मदाता कदापि नहीं कह सकते। पाश्चात्य एकांकी की आयु तो तीस वर्ष से अधिक नहीं हुई। अतः महेन्द्र जी के मतानुसार भारतेन्दु को हम एकांकियों का जन्मदाता नहीं मानते। महेन्द्र जी ने स्वयं कई स्थलों पर स्वीकार किया है कि भारतेन्दु काल के एकांकी नाटकों पर संस्कृत नाटकों का प्रभाव था।[1] तो, निष्पक्ष होकर, उन्हें यह कहने में क्यों संकोच है, कि भारतेन्दु के ये नाटक संस्कृत के रूपकों तथा उपरूपकों के एक अंक वाले नाटकों के आधार पर निर्मित हुए थे। केवल परम्परा मिलाने के लिये आम को इमली में नहीं रखा जा सकता, केवल इसलिये कि दोनों में खट्टापन है। उन्होने स्वयं स्वीकार किया है, "इस काल के एकांकियों का प्रारम्भ पुरानी संस्कृत परिपाटी के अनुसार मंगलाचरण या नान्दी से होता था। कुछ एकांकियों में नटी या सूत्रधार प्रवेश करते थे, इनका अन्त प्रायः भरत वाक्य से होता था। एकांकी शब्द के स्थान पर रूपक शब्द को प्रयोग किया गया है, जैसे किशोरीलाल गोस्वामी का नाट्य संभव रूपक।"

दूसरे, भारतेन्दु ने जिस समय अपने नाटकों का लिखना प्रारम्भ किया, उस समय तो यूरोप में भी एकांकियों का जन्म नहीं हुआ था, उनका नाम भी कोई नहीं जानता रहा होगा, फलतः उनके आधार पर हिन्दी में एकांकी

१—आलोचना नाटक अंक—'हिन्दी एकांकी का विकास' पृ० १५७

२—सरस्वती संवाद—'भारतेन्दुकालीन नाटकों की विशेषताएं प० ९१

कैसे लिखे जा सकते थे। पश्चिम में एकांकी नाटकों की उत्पत्ति प्रथम महायुद्ध के पश्चात १९१८ ई० से ही हुई। इंगलैण्ड में १९२४ ई० में जे० एस० मैरियट ने इसका सबसे प्रथम सूत्रपात किया था, बाद में रेडियो के प्रसार तथा अमेचेर रंगशालाओं के बढ़ने से इनकी बाढ़ सी आगई। अस्तु इन एकांकी नाटकों का प्रभाव १९२५ ई० के पश्चात् ही हिन्दी में आरम्भ होता है।

तीसरे भारतेन्दु के कई एकांकियों के रूप को परिवर्तित करके केवल परम्परा स्थापित करने के लिये, महेन्द्र जी ने उन्हें एकांकी समझ लिया है। उनके वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति के अंको को दृश्यों में बदल कर उसे एकांकी बना डाला है। इस नाटक मे प्रस्तावना के अतिरिक्त चार अङ्क हैं। उसे चार दृश्यों का नाटक मानकर उसे एकांकी बना दिया गया। उसी प्रकार 'विषस्य विषमौषधम्' भाण है, जिसमें एक ही पात्र की प्रधानता रहती है। और' संस्कृत नाटक की परम्परा में एक ही अङ्क होता है, अतः उसे संस्कृत नाटकीय शैली के आधार पर लिखा हुआ मानना युक्ति सगत है, खीच तान करके उसे एकांकी नाटक नहीं कह सकते। उसी प्रकार 'अंधेर नगरी' और 'भारत दुर्दशा' मे छः अंक हैं। उन्हें एकाङ्की कैसे कह सकते हैं। भला इन मंगलाचरण, नान्दीपाठ, सूत्रधार, नट नटी तथा प्रस्तावना से प्रारम्भ होने वाले और भरत वाक्य से समाप्त होने वाले कई अङ्कों के रूपकों को एकांकी कैसे कहा जा सकता है।

भारतेन्दु के ही आदर्शों को उनके युग के सभी नाटककारों ने ग्रहण किया इसलिये जब भारतेन्दु के नाटकों को एकांकी का स्वरूप नहीं माना जा सकता तो उस काल के अन्य लेखकों की कृतियों को एकाङ्की नाटक कैसे कहा जा सकता है। हां, इन नाटकों में समाज सुधार की प्रवृत्ति रही, उनका दृष्टिकोण क्रमशः यथार्थवादी होता गया, यह तो युग की मांग थी। परिस्थितियों का प्रभाव था। यही कथन द्विवेदी काल के नाटकों के लिये भी कहा जा सकता है।

'प्रसाद' के 'एक घूंट' (१९२८ ई०) को हिन्दी का प्रथम व्यवस्थित एकांकी कुछ लोग मानते हैं। परन्तु उसकी कार्य गति शिथिल है, संवादों पर प्रसाद की भावुकता तथा संस्कृत नाटकों की गभीरता का प्रभाव है यद्यपि इसमें एकांकी के शिल्प-विधान को निभाने की चेष्टा की गई है। भावुकता के अनेक उदाहरण इस नाटक से दिए जा सकते हैं। रसोद्रेक के लिये चार गीत रखे गये हैं। संस्कृत नाटकों के आधार पर चंदुला नामक विदूषक भी रखा गया है। स्वगत कथन भी इसमें अनेक हैं। वास्तव में यह संस्कृत के दस रूपकों में 'अङ्क' का ही एक आधुनिक और परिष्कृत-रूपांतर है। अतः हम इसे आधुनिक एकांकी की कोटि में नहीं रख सकते।

डा० रामकुमार वर्मा

पाश्चात्य ढंग के आधुनिक हिन्दी एकांकी का जन्म डा० रामकुमार वर्मा द्वारा हुआ हुआ, जिन्होंने पाश्चात्य मनोविज्ञान तथा चरित्रगत अन्तर्द्वन्द्व के अतिरिक्त नाटकों में प्रभावान्विति पर भी जोर दिया। उनका प्रमुख एकांकी 'बादल की मृत्यु' १९ई० ई० में लिखा गया, जो निश्चित रूप से मेरी राय में हिन्दी का प्रथम एकांकी है। यह एक 'फैटेसी' है, जिसका प्रकाशन १९३० ई० के 'विश्व मित्र' में हुआ था। सन् १९३०-३३ ई० के बीच हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय कृति अवतरित न हुई। इस बीच में शिक्षा के प्रसार से अभिनेय नाटकों की माँग बढ़ी। फलत: प्रयाग विश्वविद्यालय ड्रामेटिक हाल में अक्तूबर सन् १९३४ में डा० वर्मा का 'दस मिनट' नामक नाटक अभिनीत हुआ, जो कुछ आलोचकों की सम्मति में हिंदी रंगमंच पर अवतरित होने वाला प्रथम एकांकी है। १९३५ ई०के पश्चात् एकांकी नाटकों की संख्या में दिन प्रति दिन वृद्धि होने लगी। अनेक प्रतिभा सम्पन्न लेखक इसमें आकर पश्चिम की एकांकियों के आधार पर अनेक प्रयोग करने लगे। इन कलाकारों में डा० रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, गणेश प्रसाद उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, डा० लक्ष्मीनारायण लाल और देवेन्द्र नाथ शर्मा मुख्य हैं। एकांकी आज रेडियों के प्रसार तथा शिक्षा के प्रचार के कारण नाटक का अत्यन्त लोकप्रिय अङ्ग हो गया है। उसकी लोकप्रियता का सबसे स्पष्ट प्रमाण यह है कि भगवतीचरण वर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती जैसे प्रगतिवादी कवि तथा यशपाल, जैनेन्द्र और वृन्दावनलाल वर्मा जैसे कथाकार भी आज एकांकी लेखन की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं।

आधुनिक हिंदी एकांकीकारों के विभिन्न वर्ग

पाश्चात्य विचारधारा और शैली से प्रभावित आधुनिक एकांकीकारों को तीन वर्गों में बाटा जा सकता है।

सबसे प्रथम वे एकांकी लेखक आते हैं, जिनके ऊपर अंग्रेजी का प्रभाव बिल्कुल नहीं के बराबर है। इनके कथानक या तो ऐतिहासिक हैं, या पौराणिक। इन लेखकों ने बड़े नाटकों को लिखा, उनके साथ ही साथ छोटे नाटक भी लिखने लगे। इन नाटककारों में श्री हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्दवल्लभ पंत जैनेन्द्र कुमार, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, डा० सत्येंन्द्र, प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी तथा रामनरेश त्रिपाठी हैं।

द्वितीय वर्ग में वे एकांकीकार आते हैं, जिनके नाटको का शिल्प विधान, विषय, विचार धारा तथा सिद्धान्त सब कुछ पाश्चात्य नाटकों तथा विचारकों के आदर्श पर निर्मित हुआ है। टेकनीक तथा विचार परम्परा में ये पूरे पाश्चात्य नाटकों के रंग मे रंग उठे हैं। इन नाटककारों में श्री भुवनेश्वर प्रसाद गणेश प्रसाद द्विवेदी तथा धर्म प्रकाश आनन्द है।

तीसरे वर्ग में वे एकांकी लेखक आते हैं, जिन्होंने पाश्चात्य एकांकी नाटको के आदर्शों तथा शैलियो के आधार पर भारतीय जीवन तथा दर्शन को एक नवीन मौलिक ढंग से व्यक्त किया। इस वर्ग के प्रधान लेखको में डा० रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं। उन्होंने अपने एकांकी शिल्प विधान, सिद्धान्त तथा विचारधारा की परिभाषा स्वयं दी है—

"एकाङ्की का निष्ठावान भक्त। पश्चिमी कला से संपूर्ण लाभ उठाकर उसके समस्त गुणों को भारतीय नाटय शास्त्र की मंजी हुई शैली में व्यक्त करने का वह अभ्यासी है। भारतीय संस्कृत, उसके लिये सब कुछ है। नये युग की अनुभूतियों को वह अपनी राष्ट्रीयता में उसी भाँति लाना चाहता है, जैसे वृक्ष की जड़ भूमि से रस लेकर उसे अपने पत्तों की हरीतिमा में परिणत करती है। वह मनोविज्ञान का विद्यार्थी है। अतः सिद्धान्तवाद से उसे चिढ़ है। उसके कथानक अधिकतर ऐतिहासिक और पारिवारिक है। ऐतिहासिक कथानकों मे उसकी विशेष रुचि हैं। संभव है, अध्ययन शीलता के कारण ही ऐसा हुआ हो। कुछ आलोचकों ने उसे हिन्दी में एकाङ्की कला का जनक कहा है, किन्तु अपने इस सम्मान पर वह हिन्दी एकाङ्की पर और अधिक श्रद्धालु हो गया है, पाठकों के प्रति कृतज्ञ।[1]"

परिणामतया पाश्चात्य एकाङ्की नाटकों की शैली और आदर्शों के आधार पर भारतीय विचारों और आदर्शों की व्याख्या करने वाले, नाटककारों में सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, विष्णु प्रभाकर तथा भगवतीचरण वर्मा प्रमुख हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी

प्रेमी जी के चार एकाङ्की संग्रह प्राप्त होते हैं। 'मंदिर' (१९४२ ई०) 'प्रकाश स्तम्भ तथा बादलों के पार (१९५२ ई०)। इन एकाङ्की नाटकों के टेकनीक पर पाश्चात्य एकाङ्की का प्रभाव जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, नहीं के बराबर है, यह प्रेमी जी के शब्दों से ही स्पष्ट है। 'बादलों के पार' की भूमिका में प्रेमी जी लिखते हैं कि—

१—सरस एकाङ्की नाटक—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६-७।

"टेकनीक को प्रमुख स्थान देने वालों के विवाद से दूर रहने के लिये ही मैंने नाटकों को एकाङ्की नाटक नही कहा। वैसे मेरी मान्यता है कि जैसे शेक्सपीयर, जयशंकर प्रसाद और डी० यल० राय के पूर्ण नाटकों में (जिस श्रेणी में मेरे भी अभी तक के नाटक जाते हैं)। एक अंक अनेक दृश्य में विभाजित है उसी प्रकार एकाङ्की भी हो सकता है।"

इस संग्रह में ग्यारह निम्नलिखित एकाङ्की है—

१—बादलों के पार, २—यह भी एक खेल हैं, ३—घर या होटल, ४—प्रेम अंधा है, ५—वाणी मन्दिर, ६—रूप शिखा, ७—नया समाज, ८—मातृभूमि का मान, ९—यह मेरी जन्मभूमि है, १०—निष्ठुर न्याय और ११—पश्चाताप।

इनमें से ऐसा कोई भी एकाङ्की नहीं है, जिसमें दो तीन गीत न हों। लेखक के शब्दों में इन लघु नाटकों में इन लघु नाटकों में तरुण हृदयों के लिये राजनीतिक समाज नीति, और राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले कुछ संघर्षों के चित्र खींचे गये हैं। चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिकता का ध्यान कम रखा गया है। कही-कहीं हिन्दू मुसलिम एकता का, वही पुराना राग अलापा गया हैं। गांधीवादी आदर्शों की भी स्पष्ट छाप है।

'नया समाज' में मालती के शब्दों में लेखक उपर्युक्त विचारों का बड़े ही स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन करता है—

मालती—माँ, बल, धन ! वह महात्मा गाँधी ने हमें दिया है। हमारा बल है चरखा—धन है चरखा—इसी ने हमें अंग्रेजों से स्वतंत्र कराया है। यही हमें कुसंस्कारों से मुक्त करेगा। यह हमें स्वावलंबन और आत्मविश्वास का गीत सुनाता है। हम अपना पेट इसकी सहायता से भरकर अपने जैसे दुखी और सर्वस्व हीनों को इस मंदिर में लायगे। उन्हें भी चरखा रोटी देगा। यहाँ न कोई हिन्दू होगा, न कोई मुसलमान।

गोविंद बल्लभ पन्त

पंत जी का ययाति एक पौराणिक एकाङ्की तथा 'कंजूस की खोपड़ी' एक प्रहसन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उनके नाटकों पर पारसी रंगमंच तथा चलचित्रों का भी प्रभाव है। कौतूहल, रहस्य ग्रन्थि तथा ईश्वरीय न्याय के भी उदाहरण, इनके नाटकों में प्राप्त होते हैं। 'सुहाग बिन्दी' में सामाजिक समस्या का चित्रण किया गया है।

जैनेन्द्रकुमार

जैनेन्द जी ने 'टकराहट' 'हंस' के एकाङ्की विशेषांक के लिये लिखा था।

इस एकाङ्की मे एक आश्रम का चित्र है। कैलाश इस आश्रय का अधिष्ठाता है। उसके मन के अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण में फ्रायड के मनोविश्लेषण पद्धति का आश्रय लिया गया है। जैसा कि नाटक के चार्ल्स नामक पात्र के कथन से प्रकट होता है—

"चार्ल्स—लिली मुझे यहाँ का सब कुछ अमानवी मालूम देता है। यहाँ एक मनुष्य है और वह महान है। लेकिन उसका यह आश्रम तो 'सबकान्सस' का कारखाना है। चलो यहाँ से चलो।"

चतुरसेन शास्त्री

शास्त्री जी के बड़े नाटकों के अतिरिक्त पाँच एकाङ्कियों का एक संग्रह भी निकला है। इन नाटको में समाज के नग्न यथार्थ का बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। टेकनीक की दृष्टि से इन नाटकों पर विदेशी प्रभाव है।

वृन्दावन लाल वर्मा

वर्मा जी के बड़े नाटकों का वर्णन किया जा चुका है। उनके एकाङ्की नाटकों में 'पीले हाथ' (१९४८ ई०), 'लो भाई पंचो लो' (१९४८ ई०), जहाँदार शाह (१९५० ई०) और सगुन (१९५० ई०) है। इन नाटकों में ऐतिहासिक तथा सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इन समस्याओं के वाह्य तथा घटना प्रधान अंगों पर ही वर्मा जी ने प्रकाश डालने की चेष्टा की है। उनके अन्दर घुसने की क्षमता उनके नाटकों में नहीं है।

सद्गुणशरण अवस्थी

अवस्थी जी ने 'नाटक और नायक' (६ भाग) तथा 'मझली महारानी' 'मुद्रिका' तथा 'दो नाटक' नामक एकांकी संग्रहों की रचना की हैं। इन नाटकों में पौराणिक विचारधारा को नवीन तथा आधुनिक दृष्टिकोण से व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। 'मझली महारानी' में कैकेयी के चरित्र को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। 'दो नाटक' में 'बालि बध' तथा 'वे दोनों' नामक एकाङ्की संगृहीत हैं। इन नाटकों में टेकनीक का ध्यान कम है। संवाद भी अत्यन्त संस्कृत निष्ठ तथा अस्वाभाविक शैली में रखे गये हैं। उदाहरण के लिये—

'वृद्ध—परन्तु उत्तराधिकार की करोड़ों की सम्पत्ति, शतधा होकर निकल भगीं। सेठ शिवविलास अब साधारण शिव विलास रह गया है। पंखुड़ियाँ झड़ा हुआ अधोमुखी, वृन्त बिलम्बित, सुगंधरिक पुष्प अब वायु के अन्तिम झोकों की राह देख रहा है।"

('वे दोनों पृ० ८७)

रामनरेश त्रिपाठी

इनका 'पेखन' बच्चों के लिये लिया गया है : इसमें आठ शिक्षाप्रद एकांकी हैं। 'बा और बापू' नामक संग्रह में, 'सीजन डल' है तयासमानाधिकार वर्तमान समस्याओं को लेकर चलते हैं। 'पैसा परमेश्वर' में पैसे से उत्पन्न सामाजिक बुराइयों का चित्रण है। इन नाटकों में उपदेशात्मकता की ओर अधिक तथा शिल्पविधान की ओर कम ध्यान दिया गया है।

हिंदी एकांकीकारों का द्वितीय वर्ग

द्वितीय वर्ग पर पूरा पाश्चात्य प्रभाव है। इस वर्ग में हम सबसे प्रथम भुवनेश्वर प्रसाद को पाते हैं।

भुवनेश्वर प्रसाद

सन् १९३५ ई० में इनका 'कारवाँ' नामक छः एकांकियों का संग्रह निकला जिसने हिंदी एकांकी को नई दिशा तथा नया मोड़ देने का प्रयत्न किया। शिल्पविधि तथा विचारधारा दोनों के दृष्टिकोण से कारवां पर पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होता है। इन छः एकांकियों में प्रथम 'श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना 'दूसरा' एक साम्यहीन साम्यवादी 'तीसरा 'शैतान' चौथा 'प्रतिभा का विवाह', पाँचवा 'रोमांच या रोमास' और छठाँ लाटरी है। इन नाटकों में वर्तमान सासाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र और चुभता हुआ व्यंग है।

'श्यामा एक वैर्वाहिक विडम्बना'—पर 'शा' के कैन्डिडा' की गहरी छाया है। शा के 'कैन्डिडा' की भाँति इसमें भी विवाह को एक विडम्बना और कृत्रिम संस्कार बतलाया गया है। सच्चे प्रेम और विवाह में आकाश पाताल का अन्तर है। 'श्यामा जार्ज टाउन' के अमरनाथ पुरी की विवाहिता स्त्री है, परन्तु उसका वास्तविक प्रेम मनोज शंकर नामक एक सुन्दर युवक से है, जो कभी-कभी उसके घर में आता है। मनोज निष्पक्ष तथा सच्चे हृदय से अमरनाथ के सामने स्वीकार करता है कि 'श्यामा आपकी नहीं मेरी है। 'पुरी को भी भलीभाँति विदित है, कि मनोज उसकी स्त्री श्यामा से प्रेम करता है। मनोज का निम्नांकित कथन वैवाहिक पद्धति पर एक तीव्र और कठोर व्यंग्य है। श्यामा और अमरनाथ का विवाह बलात सामाजिक रूढ़ियों ने किया है।

"मनोज—(अमरनाथ से) श्यामा तुम्हारी नहीं है। क्योंकि, समाज की एक हृदयहीन लौह-विधि ने ही उसे तुम्हारी बनाया है।"

उसी समाज की हृदयहीन लौह-विधि का जिससे विवाह एक आडम्बर तथा कृत्रिम बन्धन मात्र रह जाता है। बर्नार्ड शा ने "कैन्डिडा' में भी चित्रण किया-है। वह अपने पति से कहती है कि केवल धार्मिक संस्कारों से पूर्ण

वैवाहिक, पद्धति से ही उसकी पवित्रता पर विश्वास करना एक महान भूल है ।

Ah James, How little you understand me, to talk of your confidense in my goodness and purity. I would give them both to poor Eugene as willingly as I woud give me shawl to a beggar, dying of cold, If there were nothing else to restrain me. put your trust in my love for you James, for if that went. I should care very little for your sermons.'

—Candida, G. B. Shaw, Act II, page 117.

विषय के अतिरिक्त टेकनीक पर भी शा के पूर्ण प्रभाव हैं । कल्पना तथा भावुकता से दूर वही तर्क पूर्ण शा के ढंग की गद्य शैली, जिसके कारण संवादों में व्यंग्य तथा विरोधाभास से मिश्रित सरलता टपकती है ।,उदाहरण के लिये—

''मिस्टर पुरी—(श्यामा अपनी पत्नी से) तुम क्या कह रही हो, शर्मा । मैं एक शब्द भी नहीं समझा ।

मिसेज पुरी—तुम क्या समझ रहे हो, मैं वैसा तो एक शब्द भी नहीं कहता ।

मनोज—मैं व्याख्यानों में विश्वास नही करता ।

मिस्टर पुरी—मैं तुम्हारे विश्वासी में विश्वास नहीं करता ।''

जिसने एक बार भी 'शा' के नाटकों को पढ़ा होगा, उन्हें यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस शैली में 'शा' की शैली की कितनी झलक है ।

एक साम्यहीन साम्यवादी—में कानपुर के पार्श्व भाग में लज्जा से मुंह छिपाये कुलियों के निवास-स्थान का चित्रण है । उसी ज्वलन्त नगर के प्रेत के समान एक भाग में एक कोठरी में सुन्दर नामक एक मजदूर रहता है । उसकी स्त्री पार्वती है । दूसरे दृश्य में उमानाथ कामरेड का घर दिखाया गया है, जो एक साम्यवादी है । उसके कमरे में हंसियाँ तथा हथोड़े का खूनी चिन्ह दिया हुआ है । कुछ दिनों पश्चात उमानाथ पार्वती को अपने यहाँ नौकरानी के रूप में रखकर उससे प्रेम करने लगता है । उसके कमरे में कार्ल मार्क्स की जगह रसिया कृष्ण के चित्र दिखाई देते हैं । वह एक साम्यहीन युवक के रूप में दिखाया जाता है ।

'शैतान'—मैं राजेन नाम के एक ऐसे दार्शनिक का चित्रण है, जो ऐसे ईश्वर को मानता है, जो साकार नहीं हैं, निराकार भी नहीं है, वरन् जो एक शक्ति के रूप में तर्क और समस्त मानव धर्म का विधायक और पौषक है । लेखक ने स्वयं स्पष्ट किया है, इस नाटक के सिद्धान्तों को, उसने शा के जीवन

शक्ति (लाइफ फोर्स) के आधार पर रखा है। इतना ही नहीं, एक स्थल पर राजेन कहता है, कि 'कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर अश्लील हो जाती है। कला में अश्लीलता का अर्थ है, नग्न पवित्रता।' यह शा के एक नाटक के आधार पर रखा गया है, लेखक ने इसे भी स्वीकार किया है।

'प्रतिभा का विवाह'—नामक नाटक में भी सेक्स तथा विवाह की समस्या का वर्णन है। प्रतिभा के दो प्रेमी हैं, महेन्द्र और मि० वर्मा। नाटक के अन्त में प्रतिभा अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध मिस्ट वर्मा से विवाह करती है।

'रोमाँच'—में भी मिस्टर सिंह और उनकी स्त्री सामाजिक संस्कारों द्वारा वैवाहिक सूत्र में अवश्य बंधे हैं, पर उनमें सच्चा प्रेम नहीं रहता। उनकी स्त्री अमरनाथ नामक एक आगन्तुक से प्रेम करती है। उसके पति मिस्टर सिंह, दोनों के प्रेम-पत्र को गुप्त रीति से पा जाते है, अन्त में, विवशता में वे अमरनाथ को अपनी स्त्री सौंप चलकर चल देते हैं। यहाँ रोमांस की विजय तथा सामाजिक भित्ति पर टिके हुए वैवाहिक बन्धन की खिल्ली उड़ाई गई है।

'लाटरी'—उसी प्रकार लाटरी में भी वर्तमान जीवन की विषमता का चित्रण किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र ने अपने नाटकों में पाश्चात्य नाटकों के आधार पर सेक्स तथा नारी स्वतंत्रता के सिद्धान्तो की व्याख्या की है। टेकनीक भी पश्चिमी ढंग का है। लम्बे रंगमंच संकेत, सरल संवाद व्यंग्यपूर्ण शैली, भावुकता तथा गीतों का बहिष्कार कौतूहल तथा आकस्मिकता की वृद्धि उनके नाटकों की शिल्प विधान संबंधी विशेषताएं हैं। भावुकता को तो उन्होंने कलाकार के लिए विष तुल्य माना है, उनका एक और प्रसिद्ध एकांकी 'स्ट्राइक' है, जिसमें चिर शोषित भारतीय नारी पुरुष के विरुद्ध स्ट्राइक करती है, इस प्रकार लेखक ने इसमें हमारे फैशनेबुल बुर्जुवा समाज के खोखलेपन की मखौल उड़ाई है।

लम्बे रंग संकेतों में आधुनिकता का पूर्ण समावेश है। जैसे नाटक के आरम्भ में—

"सीन : एक मध्य वर्ग बंगले के खाने का कमरा, जो बरामदे में एक तरफ परदा डाल कर बना लिया गया है। एक बड़ा सा साइड-टेबुल जिस पर चीनी के बर्तन, प्लेट, प्याले नुमाइशी ढंग से रखे हैं। पास एक छोटी मेज पर फोर्स क्वाकर ओट्स, पाल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान रखे हैं। खाने की मेज अन्डाकार है, जिसके चारो तरफ कुर्सियाँ पड़ी हैं।"

विवाह और प्रेम की समस्या को लेखक कितने मौलिक ढंग से सुलझाता है—

"पुरुष—भाई जान, शादी एक गहरा मसला है, आप उसके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते।......आप कहते है, मैंऔरत को समझ नहीं पाता, जनाव यह सब कोरी बातें हैं। समझने की क्या जरूरत है। मशीन की एक पुली, दूसरी पुली को नापने जोखने, समझने नहीं जाती। स्त्री पुरुष तो जिन्दगी की मशीन के दो पुरजे हैं।

युवक—पर मान लीजिये, मशीन का एक पुरजा बिगड़ जाय।

पुरुष—तो पुरजा बदल डालिए। खुद बदल जाइए।

नाटक के प्रारम्भ मे ही 'मेजारिटी' पर कितना तीव्र व्यंग्य है—

'स्त्री—यही तो इन कमबख्तों को मिटा देता है। यह समझते हैं 'मेजारिटी' इन्हें गदहे से बछड़ा बना देगी। कमबख्त यह नहीं समझते कि अब मेजारिटी के माने ही बदल गये हैं। मेजारिटी थोड़े से बेजरा अधमरे केछुओं का नाम थोड़ा ही है। वह शक्ति दुनिया को हिला देने वाली शक्ति का नाम है, और हमेशा एक आदमी में होती है।

फिर मानव सभ्यता का रहस्य सरप्लस एनर्जी के उपयोग उपयोग को बताता है—

"पुरुष—देखो आदमी के सामने सबसे बड़ा मसला यह है कि वह अपनी सर प्लस एनरजी किस तरह काम में ले आये। आदिम जंगलीपन से लेकर आज तक की तहजीब तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस सरप्लस एनरजी को काम में लाने के लिये? फिर दुख या सुख तो इतनी ठोस चीजे हैं, कि एक दिन तुम देखोगी, यह शीशियों में बिका करेंगी। शीशियों में।

भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र के इन नाटकों में दो प्रकार के चरित्र प्रायः मिलते हैं। एक तो समाज' के आगे आदर्शवादी बनने वाले, परन्तु भीतर से खोखले और कपटी, दूसरे समाज की रूढ़ियों के विरुद्ध चलने वाले विद्रोही। इन नाटकों में इब्सन के पिलर्स आफ सौसायटी' की छाया मिलेगी। नारी स्वतंत्रता तथा वैवाहिक जीवन की निस्सारता के चित्रण में मिश्र जी के नाटकों पर इब्सन के 'द डाल्स हाउस' शा के कैन्डीडा और' द डेविल्स डिसायपिल का स्पष्ट प्रभाव है। 'कारवां' की भूमिका शा के नाटकों की भूमिका से प्रभावित है। दुख है कि आगे चलकर इस वर्ग के नाटकों का अधिक विकास मिश्र जी द्वारा नही हो पाया, नहीं तो हम उनमें पाश्चात्य नाटकीय शिल्प विधान तथा विचार धारा का परिपक्व रूप पाते।

डा० नगेन्द्र के शब्दों में वे सफल टेकनीशियन हैं। "जीवन में आकस्मिकता को महत्व वते हैं। संसार में बुद्धि का आविर्भाव किसी अचित्य आकस्मिक घटना से हुआ, अतः स्वाभावतः ही अकस्मात उनके टेकनीक का प्रमुख अङ्ग है। इन एकांकियों में ड्रैमैटिक टर्न आपको स्थान स्थान पर मिलेंगे।"[1]

गणेशप्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी सौन्दर्यवादी एकाङ्कीकार हैं। नाटक के रूप में कोई सुन्दर वस्तु निर्माण करना ही उनका ध्येय है। उनके एकाङ्कियों का मुख्य विषय सेक्स तथा वैवाहिक जीवन में प्रेम की विषमता का मानसिक विश्लेषण द्वारा उभरा हुआ रूप हमारे सामने प्रस्तुत करना है। वे पुरुष और पत्नी के प्रेम की असफलता का उत्तरदायित्व समाज और उसकी रूढ़ियों पर न छोड़कर मानव मन के ऊपर छोड़ते हैं। फलतः द्विवेदी जी के नाटकों में नर और नारी के स्वभाव का आधार प्राकृतिक और जन्मजात माना गया है, सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न कृत्रिम नहीं। इनकी सूक्ष्म मनोवृत्तियों का पृथक-पृथक विश्लेषण किया है। उनके एकांकियों में सुहाग बिन्दी 'दूसरा उपाय ही क्या है, सर्वस्व समर्पण में स्त्री स्वभाव की गहराइयों के तथा वह 'फिर आई थी, परदे का अमर पार्श्व, और 'शर्मा जी में' पुरुष के अन्तर्वृत्तियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। 'रपट' एक प्रहसन एकांकी है। अंतिम एकांकी 'कामरेड' में रनजीत, ररेश तथा शीला के द्वारा नर और नारी दोनों के अंतस्तल की गहराइयों को आंकने का प्रयत्न किया गया है। नाटक के बीच में रमेश और रंजीत का संवाद इसका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है—

'रमेश—नौजवान औरतों और मर्दों का आपस में मिलना, दुनियाँ में और कहीं भी बुरे चाल चलन में नहीं शुमार किया जाता।

रनजीत—मगर हमारे हिन्दू समाज में तो ऐसा ही होता है।

रमेश—हिन्दुस्तान को एक 'आइडियल' हिन्दू समाज बना डालने का ठेका तो हम लोगों ने लिया नहीं है। मुक्त के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी; सिख, अमीर, गरीब, छोटे बड़े सबको इन्सानियत की एक कतार में बैठाकर प्रेम और मुहब्बत का रस पिलाने का ही हम सपना देखते हैं। पग पग पर हमारा शास्त्र क्या कहता है। समाज क्या कहता है, दुनिया क्या कहती है, यह देखने का अब वक्त नहीं रहा। जरा जमाने की तब्दीली की ओर देखो, और दिल में नई रोशनी के लिये भी कुछ गुंजाइश करो।"

टेकनीक सम्बन्धी पाश्चात्य आधुनिकतम प्रयोगों का उपयोग द्विवेदी जी ने

१— आधुनिक हिन्दी नाटक'—डा० नगेन्द्र, पृ० १५०–१५१

अपने नाटकों में किया है। 'शर्मा जी' नामक नाटक में रंगमंच पर टेलीफोन का प्रयोग किया गया है। दो पात्र काफी देर तक बातें करते हैं, यद्यपि यह एक प्रकार की त्रुटि सी हो गई है। वाह्य चित्रण की अपेक्षा द्विवेदी जी का आतरिक विश्लेषण सुन्दर हुआ है।

हिंदी एकाङ्की लेखकों का तृतीय वर्ग

यह वर्ग सबसे महत्वपूर्ण वर्ग है, क्योंकि इसी वर्ग अग्रणी डा० रामकुमार वर्मा हैं, जिन्होंने हिन्दी में एकाङ्की-कला का सूत्रपात किया, साथ ही साथ उसे उत्कृष्ट कोटि की कला के रूप में परिणत किया। दूसरे, इस वर्ग के अन्य लेखकों ने एकाङ्की साहित्य का अधिक से अधिक विकास हिन्दी में किया है और उसमें पाश्चात्य अनेक शैलियों के आधार पर भारतीय समस्याओं और विचारों की अभिव्यक्ति की है। इन लेखकों में सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे तथा डा० लक्ष्मीनारायण लाल मुख्य है। इनके आदर्शों पर अनेक कलाकार चल रहे हैं, जिनका उल्लेख आगे किया जायगा। इन कलाकारों के हाथों में पड़कर एकाङ्की नाट्य-कला अब केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं रह गई हैं, वरन् उसके द्वारा सामाजिक, राजनीतिक तथा मानसिक समस्याओं की गूढ़ अभिव्यक्ति होने लगी है। उससे हम उतनी ही प्रेरणा पा रहे हैं, जितना साहित्य के और अङ्गों से।

डा० रामकुमार वर्मा

वर्मा जी हिन्दी एकाङ्की के जनक माने जाते हैं, क्योंकि एकांकी के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा द्वारा उन्होंने कई प्रकार की शैलियों का सन्निवेश तथा नेतृत्व किया है। डा० वर्मा हिंदी में एकाङ्की-कला के जन्मदाता होने के अतिरिक्त उसके सर्वश्रेष्ठ लेखकों में से भी हैं। रंगमंच तथा अभिनेयता का ध्यान इन एकाङ्कियों के निर्माण में, उन्हों सबसे अधिक रखा है, फलतः उनके एकाङ्की रंगमंच पर अनेक बार अवतरित होकर पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं। इसका कारण यह है, कि रंगमंच के प्रति उनकी स्वाभाविक रुचि रही है। उसकी आवश्यकताओं और उपादानों का जितना उन्होंने अनुभव किया है, उतना बहुत कम लेखकों ने अनुभव किया। अपने इस अनुभव तथा रुचि का वर्णन उन्होंने स्वयं किया है—

"वचपन में ही मेरे संस्कारों में नाटकों के लिये प्रेम उत्पन्न हो गया था। मेरे पिताजी उच्च सरकारी पद पर थे। वे नगर में आई हुई मंडलियों द्वारा रामलीला और रास लीला के अच्छे-अच्छे प्रसंग घर पर ही अभिनीत कराते

थे। मैं अभिनेताओं की सज्जा में योग देता था। इन सस्कारों ने मुझमें नाटक के बीज भर दिये। कुछ बड़ा हुआ तो नाटक की किताबें पढ़ने का शौक हुआ।.........।"

"रंगमंच की सारी असुविधाओं से मैंने संघर्ष किया है। अतः जब कभी नाटक की कल्पना मेरे हृदय में आती है, तो रंगमंच मेरे मानस पटल पर पहले ही आ खड़ा होता है और पात्रों की अथवा कथावस्तु की मांग करता है। फल यह होता है कि मशीन के पुरजों की भाँति मेरी कथा वस्तु अथवा पात्र आपसे आप यथा स्थान आ सिमटते हैं, और फ्रेम में जड़े हुए चित्र की तरह मेरे नाटक की कल्पना पृष्ठों पर उतर आती है।[१]"

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, वर्मा जी का प्रथम नाटक 'बादल की मृत्यु' १९३० ई० में लिखा गया। यह बेलजियम के प्रसिद्ध कवि और नाटककार मैटरलिंक के नाटकों के आधार पर लिखा गया एक 'फैंटेसी' है। हिन्दी १९३४ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय के ड्रामेटिक एशोसियसन के रंगमंच पर हिन्दी का प्रथम एकाङ्की, वर्मा जी का 'दस मिनट' खेला गया था।

वर्मा जी ने ऐतिहासिक एकाङ्की अधिक लिखा है, इसका कारण यह है कि भारत की प्राचीन संस्कृति में उनका अगाध विश्वास है, जिसके विकास में ऐतिहासिक पुरुषों ने विशेष योग दान दिया है, दूसरे ऐतिहासिक जीवन, वर्तमान देश की जर्जर तथा शताब्दियों से मृतप्राय आज की संस्कृति के लिये एक प्रकाश पुंज की तरह आलोकित करता है।

ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने और भी अनेक शैलियों में एकाङ्की की रचना की है। कुछ नवीन प्रयोग भी इस दिशा में उन्होंने किया है। १९५३ ई० में चित्रपट के लिये लिखा गया उनका 'चित्र रूपक' 'सत्य का स्वप्न' काफी अधिक लोकप्रिय हुआ है। हास्य रस के नवीन सिद्धान्तों का निरूपण करके उन्होंने रिमझिम नाटक संग्रह में हास्य के भेदों और प्रभेदों का अन्तर भी स्पष्ट किया है। उनके नाटकों में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ मनोविज्ञान का सुन्दर समन्वय है।

अनेक एकाङ्कियों के सृजन के अतिरिक्त उन्होंने एकाङ्की के शिल्प विधान तथा कला की भी विस्तृत व्याख्या की है। उनके शब्दों में एकाङ्की और बड़े नाटक का प्रधान अन्तर यह है, उसमें एक ही घटना, नाटकीय कौशल से

१—'साहित्य संदेश' जुलाई-अगस्त १९५६—हिन्दी के नाटककार और उनके नाटक (अपनी अपनी कलम से) पृ० २०१-२०२।

कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा तक पहुँचती है। उसमें एक एक वाक्य और एक एक क्षण प्रण की तरह आवश्यक होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की रूप-रेखा पत्थर पर लिखी हुई रेखा की भाँति स्पष्ट और गहरी होती है। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं। संकलन त्रय का विधान अनिवार्य रूप से उसमें आवश्यक है। क्योंकि उसमें एक ही स्थान पर, समय के एक ही संक्षिप्त क्रम मे एक घटना धरातल से उठकर आकाश तक पहुँचती है। घटना या पात्रों को अनेक दृश्यों में बाँटने से उसकी गन्तव्य दिशा भी स्थानातरित हो जाती है, और नाटक की संवेदना अनेक धाराओं में विभाजित सरिता की भाँति अपना वेग खो देती है। मैं समझता हूँ कि यह एकाङ्की के शिल्प की विशेषता है, जो सम्पूर्ण नाटकों में नहीं आ सकती।"

उनके एकाङ्कियों की संख्या लगभग सौ है, जो उनके अनेक संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं। रचना क्रम से वे निम्नाङ्कित हैं—

१—पृथ्वीराज की आँखें	१९३५ ई०	छः एकाङ्की
२—रेशमी टाई	१९४१ ई०	पाँच ,,
३—चारुमित्रा	१९४२ ई०	चार ,,
४—विभूति	१९४५ ई०	तीन ,,
५—सप्तकिरण	१९४७ ई०	सात ,,
६—रूप रंग	१९४८ ई०	छः ,,
७—रजत रश्मि	१९५० ई०	पाँच ,,
८—ऋतुराज	१९५१ ई०	पाँच ,,
९—दीपदान	१९५३ ई०	पाँच ,,
१०—रिमझिम	१९५५ ई०	सोलह ,,
११—इन्द्रधनुष	१९५६ ई०	सात ,,

इसके अतिरिक्त उनके अनेक स्वतन्त्र एकाङ्की भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें कौमुदी महोत्सव, ध्रुवतारिका, अशोक, इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

इन एकाङ्कियों के सम्बन्ध में दो बातें कहनी नितान्त आवश्यक हैं। एक तो वर्मा जी कवि और भावुक कलाकार हैं, इसलिये भावुकता और कवित्व के मोह से वे एकाङ्कियों का पीछा नहीं छुड़ा सके हैं। गीतात्मक प्रवृत्ति के कारण उनके एकाङ्कियों का टोन लिरिकल हो गया है। ऐतिहासिक एकाङ्कियों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उनमें भी किसी एक ही मार्मिक घटना को लेकर लेखक ने तूलिका के कुशल स्पर्श से अत्यन्त प्रभावशाली तथा

भावपूर्ण बना दिया है। कौतूहल और विस्मय के संस्पर्श से बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से वे घटनाओं को चरम सीमा पर पहुँचा कर उसमें प्रभावान्विति को उत्पन्न कर देते हैं। पात्र, परिस्थिति, और सारा शिल्प विधान प्रभावान्विति की ओर दौडता दिखाई देता है। 'चारुमित्रा', 'औरंगजेब की आखिरी रात' 'पृथ्वीराज की आँखें', 'कौमुदी महोत्सव', 'एक तोले अफीम की कीमत' में प्रभावान्विति का सफल निर्वाह किया गया है।

उनके सामाजिक नाटकों में आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन के शिष्ट तथा निम्न दोनों वर्गों के रोमाँस, फैशनप्रियता, दम्भ, ईर्ष्या तथा असंतोष तथा स्वार्थ लिप्सा का चित्रण है। जिस पर आधुनिक शिक्षा तथा पाश्चात्य संस्कृति की गहरी पालिस लगी हुई है। हास्य का पुट, इन नाटकों में तो अवश्य मिलता है, पर तीखा और तिलमिलाहट उत्पन्न करने वाला व्यंग्य नहीं मिलता जो उनके आदर्शवाद तथा शिष्टता के कारण उभार नही पा सका है।

ऐतिहासिक नाटकों में अतीत की पृष्टभूमि के अतिरिक्त चारित्रिक द्वन्द्व का सुन्दर समन्वय भी हुआ है। 'रजत' रश्मि 'नामक संग्रह के 'प्रतिशोध', 'तैमूर की हार', 'दुर्गावती' आदि एकाङ्कियों से विशद ऐतिहासिक पृष्टभूमि के साथ मनोवैज्ञानिक संघर्ष का भी सुन्दर समन्वय है। उनके अधिकाँश नाटकों में इतिहास के साथ कल्पना और कवित्व का सुन्दर समन्वय दिखलाई पड़ता है। 'इन्द्र धनुष' नामक संग्रह में 'समुद्रगुप्त पराक्रमांक', 'राज्यश्री', कलाकार का सत्य', 'प्रसाद की कला', 'प्रेम की आँखें', 'पृथ्वी का स्वर्ग', 'राजरानी सीता' ये सात एकाङ्की है, जो एकाङ्की की दृष्टि से अत्यन्त सफल हुए हैं।

'समुद्रगुप्त पराक्रमांक' में गुप्त वंश के महान सम्राट के आदर्श व्यक्तित्व की झाँकी प्रस्तुत की गई है। इसमें कौतूहल के अतिरिक्त मानव मनोविज्ञान का सुस्पष्ट अध्ययन दिखाई देता है। संवादों में भावुक हृदय की भावना मचल स पड़ती है। उदाहरण के लिये—

'समुद्रगुप्त—सुनो, धवलकीर्ति। केदारा के स्वर में वह भावना है, कि करुणा की समस्त मूर्छनाएँ एक बार ही हृदय में जाग्रह हो जाती है। ऐसा ज्ञात होता है, जैसे सारा संसार तरल होकर, किसी की आँखों में आँसू बनकर निकलना चाहता है। तारिकाएँ आकाश की गोद में सिमिट कर पतली किरणों में प्रार्थना करने लगती हैं। कलिकाएँ सुगंधि की वेदना से फूल बन जाती हैं।"

'राज्यश्री' में हिन्दू काल के भारत का स्वर्णिम पृष्ट बिखर सा गया है और उससे एक महान सदेश देने की चेष्टा की गई है। वह है, त्याग और सेवा के लिये जीवन का बलिदान श्रेयस्कर है। 'प्रसाद की कला' अक रेडियो नाटक

है, जिसमें उनकी नाटकीय प्रतिभा का विकास क्रमशः तीन खंडों में विभक्त करके दिखाया गया है। 'पृथ्वी' का स्वर्ग "एक सामाजिक एकाङ्की है, जिसमें दया सहानुभूति तथा निस्वार्फता की प्रशंसा की गई है। इस नाटक के अन्त में अचल नामक पात्र एक भिखारिन की सच्चाई तथा निर्लोभिता पर प्रसन्न होकर कहता है, 'सच्चाई और पाप से घृणा' यहीं तो स्वर्ग है। मैंने पृथ्वी का स्वर्ग देख लिया।" प्रेम की आँखें 'नामक नाटक में आधुनिक नारी के चरित्र का परिवर्तन दिखाया गया है। प्राचीन परम्परा की नारी अपने गहनों को बेचकर भी पति को मजदूरी करते नहीं देखना चाहती, आधुनिक नारी के लिये पति के प्रेम के लिये अपने फैशन को नहीं छोड़ सकती। 'राजरानी सीता' में नारी के चरित्र की महत्ता का आदर्श सामने रखा गया है। 'कलाकार का सत्य' 'पृथ्वी का स्वर्ग' तथा 'प्रेम की आँखें' में संकलन त्रय का निर्वाह किया गया है। 'ध्रुव तारिका' एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें नाटककार का टेकनीक अत्यन्त कोमल तथा शाहजादा अकबर की पुत्री सफीयतउन्निसा का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त मनोरम रूप धारण कर लेता है। नाटक के अन्त में ड्रैमेटिक टर्न उसकी कला को कितना उत्कृष्ट बना देता है। सफीयतउन्निसा मारवाड़ के उत्तराधिकारी राजकुमार अजीतसिंह के साथ परिणय सम्बन्ध में बंधना चाहती ही है, इसी बीच में सेनापति दुर्गादास आकर कर्त्तव्य और जातीयता का आदर्श सामने रखकर राजकुमारी को महान बलिदान के लिये प्रस्तुत करके दाम्पत्य प्रेम की तरल धार को भाई बहिन के प्रेम के रूप में परिवर्तित कर देता है।

वर्मा जी के टेकनीक के विषय में पहले ही कहा जा चुका है कि उन्होंने नाटकों को रंगमंच की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा है। रंग संकेतों के हलके स्पर्श से ही नाटकीय कौशल मुखरित हो उठता है। उदाहरण के लिये ध्रुवतारिका मे—

"दोनों ही एक साथ मालायें उठाते हैं, और एक दूसरे के गले में डालना ही चाहते हैं, कि नेपथ्य से एक तलवार उठाकर, दोनों मालाओं के बीच से होकर उन्हें ऊपर ही सभाल लेती है। सफीयत और अजीतसिंह चौंक कर ऊपर तखते है, राठौर दुर्गादास का प्रवेश'।

इधर रेडियो के व्यापक प्रसार के कारण वर्मा जी के अनेक नाटक रेडियो के लिये ही निकले हैं। दीपदान, रजत रश्मि के सभी नाटक आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं। 'दीप दान' के पाँच नाटकों में 'कृपाण की धार' तथा 'भाग्य नक्षत्र' में चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व बडे ही सफल रूप में दिखाया गया है। 'रजत रश्मि' में औरंगजेब की आखिरी रात' आलमगीर के जीवन की अन्तिम घड़ियों के संघर्ष के चित्रण करने में वर्मा जी ने उत्कृष्ट कला कुशलता का

परिचय दिया है। हकीम और जीनत के सम्वाद में पात्रोनुकूल भाषा का कितना सुन्दर निर्वाह किया गया है। अस्वस्थ औरंगजेब के आकुल मन की आत्म-प्रतारणा में मैंकबेथ और लियर की भाँति कितना करुण और टीस भरा द्वन्द्व छिपा हुआ है। इसका प्रकाशन एक कुशल कलाकार ही का काम है।

"आलम-आजम, हमारे बेटे। हम जा रहे हैं। हम जिन्दगी मे अपने साथ कुछ भी नहीं लाए। लेकिन अपने साथ गुनाहों का कारवाँ लिये जा रहे हैं। तुम उखूवत, और ऐतमाद पर ख्याल रखना। यह माले दुनियाँ हेच है। हमारी आँखों ने खुदा का नूर नहीं देखा। जिस्म से गरमी निकल गई है, अब कोयलों का ढेर बाकी है। खुदा की रहमत पर हमारा पूरा यकीन है। लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ ले जायें। अब हमने समन्दर में अपनी किश्ती डाल दी है। खुदा···हाफिज।"

इन नाटकों के प्रारम्भ में संकेत संक्षेप में पूरे नाटक के कथानक का सार सामने रख देते है। नाटकों की सेटिंग में विदेशी झलक है। संवाद संक्षिप्त तथा चुभते हुए है, उनमें काव्य की तरलता और माधुरी है। 'कौमुदी महोत्सव' लेखक की दृष्टि में उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, रंगमंच पर भी इसे पूर्ण सफलता मिली है। पाठकों ने 'चारुमित्रा' को अधिक पसंद किया है, अतः उसके लगभग पन्द्रह संस्करण हो गये हैं। उसका अनुवाद अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में हो चुका है। उनका 'अंधकार' नामक एकाङ्की रामनाथ सुमन की दृष्टिकोण से विश्व के श्रेष्ठ एकाङ्कियों में से है। 'शिवाजी' नामक नाटक की एक लाख से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं, जो उसकी लोकप्रियता का स्पष्ट परिचायक है।

सेठ गोविन्ददास

सेठ गोविन्ददास के बड़े नाटकों के प्रसंग में, उनके नाटकीय टेकनीक तथा विषय विस्तार की चर्चा हो चुकी है। एकाङ्की नाटकों के भी अनेक संग्रह आपके प्रकाशित हो चुके हैं। उनके एकाङ्कियों की संख्या करीब सौ के हैं। इनमें 'सप्त रश्मि', पंच भूत, 'अष्टदल', 'एकादशी', 'स्पर्द्धा', 'चतुष्पथ' आदि संग्रह मुख्य हैं। 'सप्त रश्मि' की विस्तृत भूमिका में सेठ जी ने प्राचीन एकाङ्की तथा अर्वाचीन एकाङ्कियों के शिल्प विधान तथा उद्देश्य का अन्तर, एकाङ्की की लेखन पद्धति, तथा श्रेष्ठ एकाङ्की के रूप की व्याख्या की है। उनके मत से यदि संकलन त्रय नहीं तो संकलन द्वय (समय तथा कार्य संकलन) एकाङ्की के लिये अनिवार्य है। काल संकलन के बदले में यदि अधिक दृश्य रखना हो तो उपक्रम और उपसंहार को रखने के वे समर्थक हैं, जो पाश्चात्य प्रोलोग और

एपीलोग के आधार पर है। संघर्ष के इकहरे चित्रण को भी इन्होंने एकाङ्की के लिये आवश्यक माना जाता है। एकाङ्की तथा ध्वनि नाटक के उपादानों के अन्तर को भी स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, उनके नाटकों पर इंग्लैंड के शा, गाल्सवर्दी, फ्रांस के ब्रूइक्स जर्मनी के हाप्टस्मैन, इटली के पिरेन्डिलो, स्वीडन के स्टिन्डवर्ग तथा अमेरिका के ओ नील के नाटकों से प्रेरणा मिली है। इतने नाटककारों के नाम गिना देना और बात है, परन्तु सबकी शैलियों का समन्वित रूप ग्रहण करना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य है, अतः केवल नाम गिना देने से ही यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उनके नाटक इन सभी नाटककारों से अनुप्रेरित हुए हैं। हाँ, यह अवश्य स्वीकार किया जा सकता है, अपने बड़े तथा एकाङ्की दोनों प्रकार के नाटकों मे समाज की समस्याओ तथा चरित्र में संघर्षों का चित्रण उन्होंने पाश्चात्य ढंग पर किया है। यद्यपि यह भलीभाँति स्वीकार किया जा सकता है, कि समस्याओं की गहराई मे उतरने की क्षमता उनके नाटकों में नहीं है। उनके समस्या नाटकों में भारतीय समाज के शिक्षित तथा उच्च वर्ग की अनैतिकता तथा खोखलेपन के साथ गांधी युग के राजनीतिक आदर्शों तथा उनकी भर्त्सना करने वाले मक्कार देश भक्तों की पोल खोली गई है। पाश्चात्य टेकनीक का सबसे सुन्दर अनुसरण उन्होंने अपने एकाङ्की नाटकों में मोनो ड्रामा के रूप में किया है। इन नाटकों पर 'ओ नील' की अभिव्यंजनावादी टेकनीक का स्पष्ट प्रभाव है। इनमें केवल एक पात्र कभी आकाश की ओर देखकर, कभी पशु पक्षियों को सम्बोधित करके, कभी किसी मूक व्यक्ति को साथ में रखकर रंगमंच पर अपने विचारों को व्यक्त करता है। यह प्रयोग हिन्दी में भी अभी प्रारम्भिश अवस्था में है, दूसरे गीतात्मकता के अभाव के कारण, जो मोनो ड्रामा का एक आवश्यक अंग है, इसमें परिपक्वता नहीं आ सकी। 'शाप और वर' इस प्रकार के नाटकों में अत्यन्त सुन्दर है। यह दो भागों में विभक्त है। इसमें भारत के दाम्पत्य जीवन के दो विपरीत चित्र मिलते हैं। पहला उच्च वर्ग का दूसरा निम्न वर्ग का। इन दोनों में स्त्री और पुरुष केवल दो पात्र हैं। स्त्री उत्साह में आकर पुरुष को आदिम युग से लेकर अब तक के उसके कृत्यों का इतिहास सुनाती है। इसमें दोनों के जीवन की विषमता का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्राप्त होता है। सेठ जी ने अपने अनेक नाटकों में जीवन की मर्यादा तथा गंभीरता का समर्थन किया है। संवादों में भी एक गंभीर दृष्टिकोण तथा शिष्टता बनी रहती है। शिष्टता तथा मर्यादा के समर्थन में निरन्तर लगे रहने के कारण इनके पात्रों में उपदेशात्मकता की भावना आ गई

है। अनेक दृश्यों में कथावस्तु का विस्तार करना, नाटक के आरम्भ में प्रवेश और अन्त में उपसंहार रखना इनकी नाटकीय शैली की विशेषता है।

'पंचभूत' क पाँचों एकाङ्की ऐतिहासिक है। 'निर्दोष' की रक्षा आर्नल्ड अरविन के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'लेटर मुगल्स' के आधार पर है। इसमें हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का चित्रण किया गया है। कृष्ण कुमार ऐतिहासिक ट्रेजेडी है, जिसमें उपक्रम और उपसंहार का प्रयोग किया गया है।

'अष्टदल' के आठो एकाङ्की सामाजिक समस्याओं को लेकर चले हैं। जिनमें पाश्चात्य टेकनीक को पूर्ण रीति से अपनाया गया है। इनमें से मुख्य है, 'जाति उत्थान', यूनो (यू० एन० ओ०), 'फांसी', 'हंगर स्ट्राइक' तथा 'विटेमिन, जिसमें पाश्चात्य विचारों की झलक है।

सेठ जी ने अपने कुछ एकाङ्कियों में ओ नील तथा स्ट्रिन्डवर्ग की भाँति मोनो ड्रामा का भी प्रयोग किया है। ऐसे नाटकों को हम एक पात्रीय एकाङ्की कह सकते हैं। 'शाप और वर' अलबेला 'सच्चा जीवन' तथा 'प्रलय और सृष्टि' इसी प्रकार के एकाङ्की हैं। 'प्रलय और सृष्टि' में एक पात्र कभी अपनी पुस्तक से, कभी अपने चश्मे से, कभी अपनी कलम से, कभी बादल, धरती या मिल की चिमनी से जो उसकी खिड़की से दिखाई देता है, बातें करता है। उसके मन का संघर्ष इन्हीं प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। 'अलबेला' में घोड़े को सम्बोधित करके एक मनुष्य अपने मनोभावों को व्यक्त करता है।

'सप्त रश्मि' नामक एकाङ्की संग्रह में 'धोखेबाज', कंगाल नही, 'वह मरा क्यों' 'अधिकार लिप्सा', ईद और होली', 'मानव मन' तथा 'मैत्री' नामक सात एकाङ्की हैं। 'धोखेबाज' में दानमल नामक व्यापारी झूठे चेक लिखकर अनेकों का रुपया मार बैठता है। नाटक के अन्त में दानमल के मुख से लेखक अपनी आदर्शवादी नीति की व्याख्या करता है—

'दानमल—कोई धनवान बनना चाहता है, स्वयं सुख भोगने, कोई धन कमाने की इच्छा करता है, नाम बढ़ाने, और कोई धन के संग्रह मे प्रयत्नशील होता है, दूसरों की सेवा करने (फिर कुछ रुक कर) पहला निकृष्ट दूसरा मध्यम, तीसरा उत्तम उद्देश्य है।"

'अधिकार लिप्सा' में डाक्टर, वैद्य तथा हकीम ये तीनों रुग्ण अमीरों को उल्लु बना कर रुपया किस प्रकार एंठते हैं, इसका व्यंग्य पूर्ण चित्रण है। ईद और होली में हिन्दू-मुसलिम एकता का संदेश दिया गया है। 'मानव' मन में पाश्चात्य ढंग की नारी और भारतीय नारी की विषमता का चित्रण है। पद्मा पाचात्य नारी की व्याख्या करते हुए कहती हैं—

"पद्मा—नई रोशनी की औरतों के लिये होगा, जिन्हें न धर्म पर विश्वास

है, और न भगवान पर भरोसा, जिनके लिये विवाह धार्मिक संस्कार नही पर एक इकरारनामा है, जिनके जीवन में एक नहीं अनेक शादियाँ हो सकती है। एक नहीं अनेक पति मिल सकते है।"

"मैत्री' मैं भी जिस प्रकार अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिये ईंधन की जरूरत रहती हैं, उसी तरह मैत्री रूपी अग्नि को जीवित रखने के लिये मित्र के प्रति त्याग रूपी आहुति की आवश्यकता का आदर्श रखा जाता है। इस तरह सेठ जी पात्रो की आड़ में कही कहीं आदेश देते हुए दिखाई देते है, जिससे उनकी कला त्रुटिपूर्ण हो गई है। फलतः उपदेशात्मकता के कारण चरित्रों के स्वाभाविक चित्रण में अस्वाभाविकता का समावेश भी हो गया है। इन एकाङ्कियों में संकलन द्वय (काल, संकलन और कार्य संकलन) का निर्वाह उपक्रम और उपसंहार द्वारा किया गया है, जो पाश्चात्य टेकनीक के आधार पर है।

उदयशंकर भट्ट

भट्ट जी के एकाँकी नाटक उनके बड़े नाटकों की अपेक्षा शिल्प विधान की दृष्टि से अधिक सफल हुए हैं। 'आदिम युग', अभिनव एकांकी, 'स्त्री का हृदय' 'समस्या का अन्त', 'धूमशिखा', 'अंधकार और प्रकाश', 'पर्दे के पीछे' आदि उनके सात एकाङ्की संग्रह है, जिनमें मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का व्यंग्य-पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इनका व्यंग्य अश्क की भाँति तीखा और निर्मम नहीं है। वरन् इसके बदले जीवन की कटु परिस्थितियों और विषमताओ के पीछे इनकी मन में उनके प्रति गहरी टीस और करुणा की वेदना छिपी रहती है, जो उनकी बौद्धिकता तथा भावुकता के समन्वय से एक अत्यन्त कलात्मक रूप को प्राप्त करती दिखाई पड़ती है। इनकी कला एकांकियों में आकर इस प्रकार विकसित हुई है, जैसे उसे सहज आधार मिल गया हो। वह घटनाओं और कार्यों की सयोजना व्यर्थ के ऊहापोह और वाग्जाल से भाराक्रान्त नहीं है, वरन् सुसंगत, सुसम्बद्ध, चरम सीमा की ओर सहज रूप से प्रवहमान है। साथ ही साथ, उसमें संकलन त्रयी का निर्वाह अत्यन्त स्वाभाविकता से हुआ। फलतः रंगमंच पर इनके नाटक सर्वथा सफल उतरे है। रेडियो के लिये इनके अनेक एकांकी लिखे गये है, जो स्थान-स्थान से प्रसारित भी हो चुके हैं। 'अभिनव एकाकी संग्रह' में नेता, 'वर निर्वाचन' उन्नीस सौ पैंतीस, सेठ लाभचन्द' में जीवन की विभिन्न समस्याओं का मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है। इन सभी नाटकों की एक विशेषता है, लेखकों के दृष्टि-कोण की मार्मिकता तथा हमारे जीवन के अन्तस्तल में छिपी हुई, एक सहानु-

भूति तथा करुणा की परिस्थिति जो प्रत्येक प्राणी को असह्य बनाये हुए है। 'नेता' में पुरुषोत्तम के वाग्दम्भ के पीछे दयनीय असमर्थता है। 'उन्नीस सौ पैंतीस' में सुरेन्द्र के शिक्षा दम्भ के पीछे उनकी गरीबी का चित्रण है। 'वर निर्वाचन' में शारदा और उसके बैरिस्टर पिता के बड़प्पन के दम्भ के पीछे शारदा की दुर्बलता है, उधर लाभचन्द की धन लिप्सा एवं व्यवसाय तथा कौशल के पीछे उनकी असफलता की कथा है। ऊपर एक हंसी या व्यंग्य, लेकिन नीचे एक हलकी निराशा, यही इन नाटकों की व्याख्या है।[1]

आधुनिक नारी-मन की गहराइयों का चित्रण इन्होने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। आधुनिक शिक्षित युवती की स्वतन्त्रता, तथा आत्म निर्भरता की भावना जिससे पुरुष के प्रति वह उपेक्षा या उदासीनता का भाव रखने लगी है, उसके लिये अनेक प्रकार की मिथ्या धारणाओं और कुंठाओं का गन्थि मात्र है, जो एक मनोविकार के रूप में परिणत हो गया है। फलत: पुरुष के प्रति निरन्तर बढ़ते हुए ईर्ष्या और द्वेष से आज का पारिवारिक जीवन विषमय हो उठा है। 'पर्दे के पीछे 'नामक संग्रह में 'मायो पिया' 'वार्गेन' आधुनिक नारी के इसी दम्भ पूर्ण तथा अव्यवस्थित जीवन पर प्रकाश डालते हैं। मायोपिया की सुधी जो विवाह को एक शाप समझती है, इसी प्रकार के नारी का प्रतीक है। सुधी विवाह को आवश्यक नहीं मानती, क्योंकि उससे जीवन की स्वतन्त्रता छिन जाती है। उसकी राय में संसार की नारकीयता का मूल स्रोत दम्पति के जीवन से ही प्रारम्भ हुआ है। "वह यह नहीं मानने को तैयार है कि अनन्त सुधा का श्रोत भी वहीं से फूटा है। इसीलिये भट्ट जी ने नारी को कला और सौंदर्य की प्रेरक शक्ति के रूप में माना है—मायोपिया में तारक के शब्दों में वे अपने इस विचार को व्यक्त करते हैं—

तारक—"मैं तो विश्वास करने लगा हूँ कि नारी में प्रत्येक प्रकार की कला का अस्तित्व निहित रहता है। केवल उसे उभार देने की आवश्यकता है। फिर मैं पूछता हूँ। कालिदास ने किसका चित्रण करके अपने काव्य को महान बनाया है। केवल नारी या प्रकृति का ही तो। स्पष्ट है कला का उद्भव नारी में है। क्यों आज भी शेक्सपीयर के पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्र महान है, इसलिये कि शेक्सपीयर ने स्त्रियों के हृदय में अगाध सौंदर्य का भंडार पाया।

मायोपिया में भारतीय नारी की सेवा तथा शिष्टता तथा आधुनिक नारी की दम्भपूर्ण स्वतन्त्रता की आलोचना भट्ट जी ने केशव नामक पात्र के द्वारा कराई है, जो उनके विचारों का स्पष्ट परिचायक है—

१—आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र, पृ० १५२

"केशव—(सुधा से) चन्द्रिका सद्‌गृहिणी सिद्ध होगी इसी भावना को लेकर मैं उससे विवाह करूंगा। जीवन केवल प्रेम, सौन्दर्य के बल पर ही नहीं चलता। जीवन की गाडी को सुन्दर ढङ्ग से चलाने के लिये तत्परता, सहयोग, सदाशयता की आवश्यकता है। वह चन्द्रिका मे है। तुम्हारे भीतर मनुष्य के प्रति तिरस्कार, अपने प्रति अहंकार, ज्ञान के प्रति जागरूकता का भाव कभी भी उभर कर तुम्हे विद्रोही बना सकता है। वह मेरी भूल थी, जो मैंने केवल सौंदर्य और ज्ञान के सहारे तुमसे जीवन की भिक्षा मांगी थी।"

(मायोपिया, पृ० ८८)

'वार्गेन' नामक दूसरे नाटक में आधुनिक नारी की स्वतन्त्रता तथा पुरुष की मक्कारी को हेय ठहराया गया है। कैलाश एक पत्र का सम्पादक है, जो कान्ति नामक लड़की से प्रेम करता है। कान्ति उसके कार्यालय मे उपसम्पादिका है। रूप लुब्ध भ्रमर की भाँति कान्ति का जीवन नष्ट करने के पश्चात् वह सरोज नाम की एक एम० ए० की छात्रा को फाँसता है, उससे बिना विवाह का प्रलोभन देकर हनीमून के लिये बाहर जाना चाहता है। इधर कान्ति के पेट में बच्चा है। कैलाश का वृद्ध पिता सरोज का विवाह एक पुराने ढङ्ग की लज्जाशील शिष्ट लड़की से करना चाहता है।

आधुनिक प्रत्येक नारी इधर उधर के बहानों की आड़ लेकर अपनी वासना तृप्ति की पूर्ति के लिये अनैतिकता को प्रोत्साहन देती है। फलतः वह वार्गेन की सरोज की भाँति सोचती है "कि बढ़ती हुई जन संख्या को जब तक न रोका जायगा, तब तक हमारे देश का सम्पत्तीकरण ठीक नहीं हो सकता और जन संख्या को रोकने का एकमात्र उपाय है कृत्रिम उपायों द्वारा प्रजनन-विरोध 'कन्टैक्ट विथ नो प्रोडक्शन'। लेकिन सरोज के शब्दों में लेखक सोचता है कि जन संख्या को रोकने का बहाना लेकर लोगों को खुल खेलने का मौका मिल गया है।

कैलाश आधुनिक शिक्षित ढोंगी पुरुष का प्रतीक है, जो दो लड़कियों के जीवन के साथ खेल रहा है। उसके पिता द्वारा कहे गये उसकी बाहरी प्रशंसा के एक एक शब्द में व्यंग्य है—

वृद्ध पिता—बिलकुल भोला लड़का है, खद्दर पहनता है, देश भक्ति तो रग-रग में भरी है। गाँधी जी को मानता है। चर्खा कातता है।

इस संग्रह में 'यह स्वतन्त्रता का युग' भी आधुनिक नारी के लज्जाहीन और स्वतन्त्र जीवन पर व्यंग्य है। प्रोफेसर जयन्त की स्त्री मीना छोटी बीमार बच्ची को दाई के ऊपर छोड़कर सौन्दर्य प्रतियोगिता में भाग लेने जाती है। सौन्दर्य प्रतियोगिता का व्यवस्थापक उनके अंग प्रत्यंग की जाँच करके तब मीना

को उसके उपयुक्त समझता है। मीना बीमार बच्चे को छोड़कर मसूरी चली जाती है गुलाब मिल के मैनेजर के साथ टहलने। नाटक में मीना के स्वर मे आधुनिक नारी बोलती है और जयंत के द्वारा लेखक अपने विचारों को व्यक्त करता है।

"मीना—और जीवन किसे कहते हैं। क्या घर में पिसते रहना जिन्दगी है। सुनो जयन्त आज नारी का दृष्टिकोण बदल गया है। वह शादी को एक कन्ट्रैक्ट मानती है, जब तक निभे।"

जयन्त—शायद तुमने अनुभव नहीं किया। कन्ट्रैक्ट में व्यावहारिकता है, हार्दिकता नहीं। शरीर है प्राण नही। व्यवसायिकता, बिजनेस है।"

मीना—जो भी है, वह साफ है। वह तुम्हारे दर्शन, फिलासफी से बंधा हुआ नहीं है। यदि तुम मेरे पति हो तो मैं तुम्हें अपना सब कुछ नही दे सकती। मेरी इच्छाएं हैं, मेरा शौक है। मैं मजबूर नही हूँ कि एक ही दूकान से सौदा खरीदती रहूँ। तुमने मेरे मन को ही ठेस नहीं पहुँचाई। मेरे शरीर को भी अपरूप कर दिया है। मेरी इच्छाओं को भी कुचल डाला है।

'पर्दे के पीछे' और 'बापूजी' सामाजिक व्यंग्य है। 'पर्दे के पीछे' में यह दिखाया गया है कि हमारे आज के जीवन में पर्दे के पीछे क्या व्यापार चलता है। हमारे आदर्शवाद और त्याग तपस्या के पीछे कितनी प्रवंचना है। हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा की नींव कितनी पोली है। सेठ छीतर मल कांग्रेसियों की जेब भर कर ब्लैक-मारकेटिंग के द्वारा भरपेट रुपया कमाकर अपना घर भर रहे हैं। कांग्रेसी नेता भी राष्ट्र सेवा की आड़ में शेयर खरीदते है, मौज उड़ाते हैं और देश को धोखा देते है। सेठ छीतर मल की भाँति आज के सभी व्यवसायी यही सोचते हैं—

"कि रुपया कमाओ तो एक पैसा नौकरों में बांटो, एक पैसा फेंककर अफसर का मुंह बन्द करो, दो पैसे दान करो; पन्द्रह आने पचे पचाए धरे हैं। ये हैं कांग्रेस के लोग, मेरे समान ही स्वार्थी और अर्थ लोलुप। इनके भी वैसे ही ठाट हैं। मकान, कोठी, मोटर, चाकर। फिर मजा यह कि काम कुछ भी नही करते। व्यापार कोई नहीं करते। तो क्या रुपया आकाश से फूट पड़ता है। अभी-अभी नेमिचन्द ने दस हजार के शेयर खरीदे है। मैं ब्लैक मार्केटिंग करता हूँ वे (कांग्रेसी) सहायता देते हैं। वे स्वयं भी उतना ही डूबे हुये हैं जितना मैं।" ('पर्दे की पीछे')

'बाबू जी' पारिवारिक प्रथा पर एक व्यंग्य है। अपने नवीनतम एकांकी क्रांतिकारी' में भट्ट जी ने १९४२ के सामूहिक राष्ट्रीय जागरण की समस्या को लिया है।

उपेन्द्रनाथ अश्क

अश्क जी के एकाङ्की नाटकों में भी उनके बडे नाटकों की भाँति उत्कृष्ट कोटि का शिल्प विधान तथा अत्यन्त तीव्र व्यंगपूर्ण शैली का परिचय मिलता है। आधुनिक समाज की विकृतियों तथा खोखलेपन की उन्होने बहुत सुन्दर आलोचना की है, जो पाश्चात्य नाटककारों मे चेखव, स्ट्रिंड वर्ग तथा पिरेन्डेलो के आधार पर है। समस्याओं की गहराई में वे भले ही न जा सकें, परन्तु एक बार जब उसे पकडते हैं, तो उसे अत्यन्त सजीव बना देते है। उन्होने अपने ही शब्दों मे वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के चक्र में उलझे हुए मानव के अन्तर में बसने वाली पीड़ा, घायल संस्कार और प्यासी खूंखार वृत्तियों का चित्रण किया है। "इसके लिये व्यंग्य उनका प्रधान अस्त्र है, जिससे वे अचूक निशाना लगाने में कभी नहीं चूकते। इस प्रयत्न में वे अमेरिका के ओ नील और काफ मैन क शैली का अनुकरण करते है। अपने बड़े नाटको की भाँति उन्होने एकाङ्की नाटकों में पश्चिम के अभिव्यंजना वादी, प्रतीकवादी तथा स्वप्न तथा संकेत शैली का बड़ी सफाई से प्रयोग किया है। पंजाब के मध्य-वर्गीय जीवन का उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया है, जिसमें प्रेम, विवाह, पारि-वारिक व्यवस्था तथा सामाजिक अनैतिकता की समस्याओं को बड़े इतमी-नान तथा सफाई से अपनी कुशल लेखनी द्वारा व्यक्त किया है।

अश्क के एकाङ्की सग्रहों में 'चरवाहे', देवताओं की छाया में', 'पर्दा उठाओं पर्दा गिराओ', 'तूफान से पहले', पक्का गाना', तथा अंधी गली मुख्य है। 'चरवाहे' सात सांकेतिक एकाङ्कियों का संग्रह है, जिसमें १—चरवाहे, २—मैमूना, ३—चुम्बक, ४—चिलमन, ५—चमत्कार, ६—खिड़की, तथा ७—सूखी डाली नामक नाटक है। इस संग्रह का प्रत्येक नाटक विभिन्न संकेतों और प्रतीकों की सहायता से आगे बढ़ता है। इन्हीं संकेतों के पर्दे में विषय-वस्तु का ताना बाना-उलझता, सुलझता रहता है। चाहे वे प्रतीक जड़ हों या चेतन, रह रह कर नाटक पर भारी प्रभाव डालते है। 'चरवाहे' नामक नाटक में सारा कथानक रत्नी नामक मुख्य पात्र के चारों ओर घूमता है। वह अपगे मामा धनीराम के यहाँ पड़ी हुई है। रत्नी अपने ही शब्दों मे रोजरोज का अपमान, पाने, व्यंग्य और उपहास तथा तन और मन की कैद सहन कर रही है। एक-तरफ चरवाहों का गाना 'म्हारा जंगल का सब साज, सदा रहती है, दूब हरी। 'अन्दर से स्वतन्त्र किन्तु शरीर से बन्दिनी आत्मा को झकझोर कर उड़ान के लिये प्रेरित कर देती है। चरवाहों का संगीत रंगमंच के बाहर सजीवता का प्रतीक और स्टेज के अन्दर निर्जीवता का प्रतीक है। रत्नी उद्दन्ड,

अल्हड़ दृढ़ तथा आतुर यौवन की प्रतीक है, कान्त जीवन की विषमताओं का प्रतीक है।

'चमत्कार' नामक नाटक में तेहरे संकेतों का प्रयोग किया गया है। मरी हुई मछलियाँ भ्रष्ट जीवन का, गढवाली गोलियाँ (जो एक पहुँचे हुए संत ने प्रदान की है) साधारण लोगों के विश्वास का और श्वेत दाढी वाला लेखक का प्रतीक है, जो सब कुछ जानता है। यह नाटक प्रहसन के रूप में हमारे धार्मिक विश्वासों पर व्यंग्य का नश्तर लगाता है। टेकनीक में यह सिंज और वारी के नाटकों की भाँति है। 'चिलमन' में प्रतीकों की दुहरी बाढ़ है। इस नाटक में 'किरण' के अवचेतन मन की प्रक्रियाओ को अत्यन्त कलात्मक ढङ्ग से प्रस्तुत किया गया है। किरण की रीढ़ की हड्डी में नासूर है। चार साल से वह बिछौने पर पडी सड़ रही है। हड्डियों की ठठरी मात्र रह गई है, पैरों में प्लास्तर बंधा है। वह रह रहकर अचेत हो जाती है। उसका पति हरि उसके लिय अत्यन्त चिन्तित है। शशि बड़े दिन की छुट्टियों में बनारस से दिल्ली हरि से मिलने आती है, जो उसका प्रेमी है। हरि शशि को प्यार करता है, परन्तु किरण बीच में बाधक है। किरण रोशनी नहीं सहन कर सकती इसलिए कमरे के सामने चिक (चिलमन) लगाये हुए है। उसके अर्ध चेतन मन का बड़ा ही गहरा अध्ययन लेखक ने किया है। उसके अस्तव्यस्त टूटे मन के विचार लहना सिंह की दर्दभरी टीस की तरह हैं—

"किरण—नहीं तनिक और ऊँची इसे पूरी उठा दो। इस उजली धुली ठंढी चाँदनी को कमरे में बेझिझक आने दो। मन होता है चाँदनी में जी भर कर स्नान करूँ। किरणों से मल मल कर नहाऊँ। आह! यह ईटों का बोझा मेरी रोशनी बन्द न करो।

हरि—कौन तुम्हारी रोशनी बन्द कर रहा है।

किरण—शशि मेरी रोशनी बन्द कर रहा है।

इस प्रकार के वाक्यों में साभिप्राय अर्थों को रखा गया है। अन्त में चिक गिर जाती है, और किरण के प्राण पखेरू घायल पक्षी की तरह तड़प कर निकल जातें हैं। उसके असाधारण मनोविज्ञान का संकेतात्मक चित्रण लेखक ने अत्यन्त पटुता से किया है। शशि के ही कारण खेल का नाम चिलमन है। शशि ही तो वह गहरा नीला टाट है, जो किरण के जीवन और उसकी ज्योति के बीच लटक रहा है। उसी के कारण किरण की ईर्ष्या और जीवित रहने की तड़फड़ाहट सजीव हो उठती है।

'सूखी डाली' सम्मिलित पारिवारिक प्रथा पर प्रतीक शैली पर लिखा गया व्यंग्य है। दादा मूलराज अपने विशाल कुटुम्ब की एकता बनाये रखने में

प्रसन्न हैं। महान वट-वृक्ष की तरह उसे पल्लवित और पुष्पित देखकर वे फूले नहीं समाते। बड़ा लड़का प्रथम महायुद्ध में मारा गया। सरकार की ओर से उसे कुछ जमीन भी मिली। छोटा लड़का परेश तहसीलदार है। उसकी स्त्री बेला ग्रेजुएट है। उसी के आने से पारिवारिक जीवन क्षुब्ध हो उठा है। वह पति के साथ अलग रहना चाहती है। नाटक में घर के लड़के बरगद की कटी हुई डाली से खेल रहे है, उसकी एक टहनी ले आकर घर में लगाना चाहते हैं। 'सूखी डाली' प्रतीक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो दादा की बात से स्पष्ट किया गया है।

"दादा—(हुक्का गुड़गुड़ाते हुए) यही मेरी आकांक्षा है कि सब डालियां साथ साथ बढ़ें। फलें फूलें। जीवन की सुखद शीतल वायु के परस से झूमे, सरसायें। विटप से अलग होने वाली डाली की कल्पना ही मुझे सिहरा देती है। (बच्चो) से) हमारा यह परिवार, वट के इस महान पेड़ की भांति है। क्या तुम नहीं जानते। पेड़ में टूटी डाली जल देने से नहीं पनपती। नाटक के अन्त में यह प्रतीकात्मक व्यंग्य चरम सीमा पर पहुँच जाता है। बेला इन्दु के साथ बातें करती है, और स्वय कपड़े धोने को चल देती है और दादा से कहती है—

"दादा जी आप किसी डाली का पेड़ से टूट कर अलग होना पसंद नहीं करते, पर क्या आप पसन्द करेगे कि पेड़ से लगी वह डाली सूख कर मुरझा जाय।"

(सूखी डाली)

यही पर अश्क ने सम्मिलित परिवार प्रथा पर व्यंग्य का नश्तर पूरे जोर से लगाया है।

देवताओं की छाया में—१—जोंक, २—लक्ष्मी का स्वागत, ३—अधिकार का रक्षक, ४—विवाह के दिन, ५—पहेली, ६—आपस का समझौता, ७—देवताओं की छाया में सात एकाङ्कियों का संग्रह है। 'देवताओं की छाया में' पंजाबी वातावरण का चित्रण है। इसका कथानक 'तीन बीघा जमीन' नामक चित्र से मिलता जुलता है। 'जोंक' एक प्रहसन है, जिसमें बनवारी लाल दूर का सम्बन्धी बन कर प्रो० भोलानाथ के घर कई दिन ठहर कर उसके लिये कष्ट तथा कुढ़न का पात्र बनता है। 'लक्ष्मी का स्वागत में प्राचीन और नवीन का सुन्दर संघर्ष दिखाया गया है। रोशन अपनी पत्नी का दाह संस्कार करके आता है। उसका लड़का डिपथीरिया से मरणासन्न है, उधर पिताजी उसके दूसरे विवाह के लिये शगुन लेने के लिये उतावले हो रहे हैं। इधर बच्चे की मृत्यु, उधर विवाह के लिए शगुन का रखा जाना दोनों जीवन के दो छोरों

की गाथाएँ व्यंग्य रूप में रखी गई हैं। 'अधिकार का रक्षक में' एक सेठ के दोहरे व्यक्तित्व का चित्रण है। सेठ चुनाव में विजयी होने के लिये, महिलाओं, नौकरों, विद्यार्थियों, हरिजनों सबके अधिकारों के रक्षक होने का समर्थन करता है, सबसे वोट माँगता है, पर घर में पत्नी असन्तुष्ट नौकरों का पाँच पाँच महीने का वेतन बाकी है। 'विवाह के दिन' में मध्यम वर्गीय परिवार पर सामाजिक व्यंग्य किया गया है। प्रधान विषय है' प्रेम और विवाह की विषमता। 'आपस का समझौता' में डा० वर्मा और डा० कपूर आपस में समझौता करके जनता की आँखों में धूल झोंकते हैं।

'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' में सात प्रहसन है।[1] पहले नाटक में रंगमंच के यथार्थ का चित्रण है। दूसरे में (कइसा साव कैसा आया) बम्बई की बोली में मध्यवर्गीय परिवार का व्यंग्यपूर्ण स्केच है। 'सयाना मालिक' में एक नौकर घर का सामान लेकर चम्पत हो जाता है। 'इसमें संक्षिप्तता के लिये टेलीफोन का प्रयोग किया है, जो टेकनीक की नवीनता है।

"लीकू—(जल्दी-जल्दी डाइरेक्टरी के पन्ने उलटते हुए) यह रही कोतवालो टू टू फोर (हेलो हेलो) इज दैट टूटू फोर । कैप्टन लीकू नमस्कार। अरे साहब गजब हो गया। दो तीन दिन से नया नौकर रखा था, आज हम सिनेमा देखने गये वापस आये तो मालूम हुआ, नौकर ही गायब नहीं सब बर्तन भी गायब हैं। नहीं बाकी तो खैरियत है। रसोई घर खाली था उसमें सब झाकरी थी।"

('पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' पृ० १३१)

'मस्के बाजों का स्वर्ग' में फिल्मी जगत का यथार्थवाद प्रस्तुत किया गया है।

'पक्का गाना' नामक संग्रह में भी १—तूफान से पहिले, २—बहिने, ३—पापी, ४—नया पुराना, ५—वेश्या, ६—कामदा, ७—पक्का गाना साता एकांकी हैं। तूफान से पहले में भारत विभाजन के पूर्व पाकिस्तान क्षेत्र में गुंडों के अत्याचार और रक्तपात का वर्णन है। 'पेंतरे' फिल्मी जीवन की यथार्थत का चित्र हमारे सामने रखता हैं। 'अंधी गली' एक सांकेतिक प्रतीक परम्परा का समस्या नाटक है। इसमें आधुनिक सभ्य जीवन के परदे में व्याप्त मक्कारी और आडम्बर का चित्र प्रस्तुत किया है। 'अंधी गली' ऐसे समाज का प्रतीक

१—पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, २—कइसा साहब कैसी आया, ३—बतसिया ४—सयाना मालिक, ५—तौलिए, ६—कस्बे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन, ७—मस्केबाजों का स्वर्ग।

है, जो रूढियों और संकीर्णताओं की दीवार मे बन्द है। उनके बड़े नाटकों में छठा बेटा, कैद और उड़ान' अलग-अलग रास्ते, स्वर्ग की झलक और 'अंजो दीदी' में इसी प्रतीक परम्परा द्वारा समस्याओं का चित्रण किया गया है। रंग संकेतों में कहीं-कहीं प्रभाववादी (इम्प्रेस्निस्टिक) नाटकीय शैली की छाया है। जैसे 'वही चौखट के साथ खड़े देव के चेहरे पर वही शरद का सूरज सुस्कराता है। शौकिया (अमेचोर) रंगमंचों पर अश्क के नाटक पूर्णतः सफल रहे हैं। स्वप्न का प्रयोग भी उन्होंने अपने टेकनीक में बडी ही कुशलता से किया है। निस्सन्देह अश्क आधुनिक एकांकीकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

जगदीशचन्द्र माथुर

रंगमंचीय शिल्प विधान तथा अभिनेयता की दृष्टि से उदीयमान एकाँकीकारों में जगदीशचन्द्र माथुर की प्रतिभा पर्याप्त रूप से विकसित हुई है, फलतः आधुनिक नाटककारों में उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। ऐतिहासिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार के कथानकों के निर्वाह में वे समान रूप से पटु है। जीवन में संयम और मर्यादा पालन के ये विशेष समर्थक हैं, इस प्रकार इनके नाटकों में जीवन के वस्तुवाद की तीव्र आलोचना मिलती है। इनके नाटकों में प्रायः गम्भीर वातावरण रहता है। वे पात्रों को अत्यन्त संयत ढङ्ग से घटनाओं में प्रवेश कराते है। संवाद साहित्यिक तथा मर्यादित शैली में अपनी व्यक्तिगत गंभीरता लिये रहते है। आधुनिक नाटकों के प्रसंग में इनके 'कोणार्क' के शिल्प विधान तथा कला सौष्ठव की बड़ी प्रशंसा हुई है।

माथुर जी के एकांकी नाटकों की संख्या अधिक नहीं है, परन्तु उनमें टेकनीक की पर्याप्त परिपक्वता दिखाई पड़ती है। 'भोर का तारा' आधुनिक एकाङ्की नाटकों के विकास में एक महत्वपूर्ण मजिल है। इसमें लेखक ने कला और देश प्रेम का सुन्दर संघर्ष दिखाया है, अन्त में राष्ट्रसेवा के लिये 'कला' का बलिदान होता है। नाटक का समय सन् ४५५ के आसपास का गुप्त काल है। शेखर उज्जयिनी का एक प्रतिभा सम्पन्न राजकवि है। माधव उसका बाल सखा है, जो उज्जयिनी के राज्य में एक कर्मचारी है। छाया शेखर की प्रेयसी और बाद में पत्नी हो जाती है। शेखर अपनी प्रेयसी की प्रेरणा से 'भोर का तारा' नामक एक अपूर्व कृति का निर्माण करता है। वह युग का महान काव्य है। शेखर उसकी समाप्ति पर आत्मविभोर हो गया है। इतने में उसका मित्र तक्षशिला से आकर गुप्त साम्राज्य पर हूणों के सरदार तोरमाण के भयानक आक्रमण की सूचना देता है। कवि शेखर का स्वप्न भंग हो जाता है। राष्ट्र की रक्षा के लिए कवि को तन्द्रिल तथा स्वप्निल भावुकता की आवश्यकता नहीं, वरन् ओजस्वी और क्रान्तिकारी वाणी की आवश्यकता है, जो नवयुवकों के

रक्त में नई आग का संचार करे। शेखर, इस प्रकार देश की रक्षा के प्रति सतर्क हो उठता है, और अपने वर्षों के परिश्रम तथा अनन्य साधना की कृति को आग की लपटों में समर्पित करके राष्ट्र रक्षा के लिए कविबद्ध सेनानी युवकों की नशों में बिजली का संचार करने के लिये चल देता है। इस प्रकार से शेखर जो एक 'भोर मे तारा' के रूप में था, प्रभात के सूर्य की महिमा प्राप्त करता है। नाटक मे प्रेय और श्रेय का संघर्ष तथा अन्त में श्रेय की विजय अत्यन्त कलात्मक रूप में दिखाई गई है। संवाद, चरित्र तथा कथानक की मितव्ययिता के कारण लेखक की कला में पूर्ण निखार आ गया है।

'ओ मेरे सपने' माथुर के पाँच अभिनेय एकाँकियों का संग्रह है, जिसमें हास्य और व्यंग्य मिश्रित शैली का प्रयोग किया गया है। इसमे आधुनिक समाज की विकृतियो, मिथ्या प्रदर्शनों तथा कमजोरियो की पोल खोली गई है। इन पाँचों नाटकों के नाम हैं—१—घोंसले, २—खिडकी की राह, ३—कबूतर खाना, ४—भाषण, और ५—ओ मेरे सपने।

'घोंसले' में परिवार नियोजन तथा प्रजनन निरोध की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। जो पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव है। आज हमारे देश में भी बढ़ी हुई जनसंख्या के रोकने के लिये अविवाहित जीवन तथा सन्तान निग्रह का आदर्श रखा जाने लगा है, फलत: व्यभिचार तथा अनियंत्रित रोमांस मे वृद्धि हो रही है। नाटक का घटना स्थल 'मेटरनिटी वार्ड' का बरामदा है, जहाँ विजय और जगमोहन दो मित्र परस्पर बात कर रहे है। केवल इन दो पात्रों के संक्षिप्त वार्तालाप से नाटक का ताना बाना तैयार हो जाता है। विजय कालेज का मस्त घुमक्कड़ युवक था, परन्तु अब गृहस्थी के झंझट में फंस गया है, जिससे वह मुक्त होना चाहता है—

'विजय—दौलत बच्चे दौलत हैं! सुनो नर्स' पहला बच्चा खुशी का आलम; दूसरा खतरे की घटी। तीन बच्चे बस। चार बच्चे खुदा की पनाह। पाँच बच्चे मातम। (जगमोहन से) तुम्हारा तो वह सिद्धान्त था न' 'यदि सभ्यता को बचाना है, तो कानून के जोर से शादियों को बन्द कर देना चाहिए शादी वह दीवार है, जो मनुष्य अपनी आत्मा रूपी अनारकली के चारों ओर चिनता है, ताकि वह घुट कर मर जाय। तुम तो हमेशा कोयल पक्षी की तरह रहे थे। घोंसले और अंडों से कोई वास्ता नहीं।

जगमोहन—अरे नई भई, अब तो घर का पंछी हूँ। परकेंच परिंदा।

(घोंसले)

'खिड़की की राह' विवाह और प्रेम की समस्या को लेकर चलता है। प्रवीण के यहाँ भोज में दिलीप नामक एक संगीतज्ञ आकर प्रवीण की प्रेयसी

के ऊपर अपना अधिकार और आकर्षण जमाकर उसे खिड़की की राह लेकर चम्पत हो जाता है। नाटक में बर्नाड शा के 'केन्डिडा' की छाया, विवाह और प्रेम की विषमता पर, स्पष्ट है, जो प्रवीण और उर्मिला के वार्तालाप से प्रकट होता है।

प्रवीण—बीसियों किताबें मैं पढ़ चुका हूँ कि पति की स्वार्थपरता और ना समझी के कारण वैवाहिक जीवन असह्य हो जाता है। छोटी मोटी बातों की विषमता सारे दाम्पत्य जीवन को विषमय बना देती है।

उर्मिला—प्रवीण! 'तुम समझते हो कि इस तरह मेरे मत्थे दोष मढ़कर और खुद नादान बने रहकर, तुम दुनियाँ को धोखा दे सकोगे। और विवाह के बाद मुझे हमेशा के लिये दबा कर रख सकोगे। अपनी पवित्रता और ढंकोसले के नीचे। मैंने अभी तय किया है कि इस म्यूजिक मास्टर से शादी करूँगी, चाहे इसके पास एक कौड़ी भी न हो।'

'कबूतर खाना' में मध्यवर्गीय वर्ग के एक क्लर्क रतन की घुटन तथा व्यथा भरी पारिवारिक जीवन की करुण कथा है। वह अपने सन्दूक में अनेक खानों को बनाकर उसमें तरह तरह की बिलों को रखता है और उसे एक कबूतर खाना का रूप दे देता है।

'भाषण' में सार्वजनिक संस्थाओं के प्रबन्धकों की स्वार्थपरता पर व्यंग्य किया गया है। 'ओ मेरे सपने' में विश्वविद्यालय के रेस्तरां में गप शप लड़ाते नव युवकों की अस्तव्यस्त काल्पनिक उड़ान तथा फिल्मी जीवन की चर्चा है। इन सभी नाटकों में संवाद तथा पात्रों की संक्षिप्तता और संकलन त्रय का प्राय निर्वाह किया गया है। राष्ट्रीय रंगमंच के निर्माण तथा विकास के लिये भी माथुर के कुछ अपने सुझाव हैं, जो 'कोणार्क' के अन्त में दिये गये हैं।

विष्णु प्रभाकर और प्रभाकर माचवे का स्थान नये एकांकी लेखकों में प्रसिद्ध है। श्री विष्णु जी ने रेडियो के लिये अधिक एकाङ्कियों को लिखा है। आधुनिक नारी के अन्तर्मन का विभिन्न विचारधाराओं को उन्होंने अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण शैली में प्रकट किया है। उनके पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तथा सूक्ष्म है। विष्णु प्रभाकर के एकाङ्की संग्रहों में 'प्रकाश और और परछाई', 'हमारा स्वाधीनता संग्राम' (स्वतन्त्रता का कहानी रूपक) मैं दोषी हूँ, इन्सान, 'रीढ़ की हड्डी' आदि संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'प्रकाश और परछाई' में १—सीमा रेखा, २—लिपस्टिक की मुस्कान, ३—युग सन्धि ४—समरेखा, विषमरेखा, ५—दो किनारे, ६—प्रकाश और परछाई 'छः एकांकी' है। सीमा रेखा में आधुनिक जनतांत्रिक मशीन की शिथिलता तथा

अव्यवस्था की आलोचना की गई है। 'लिपस्टिक की मुस्कान' में रीता के रूप में आधुनिक नारी की फैशन प्रियता तथा पारिवारिक उत्तर-दायित्व हीनता की व्यंग्यपूर्ण आलोचना की गई है। रीता आधुनिक फैशन प्रिय युवती है। बात बात में 'शट अप' कहना उसका प्रिय शब्द है। बच्चे को राज्य चिकित्सालय में पालन पोषण के लिये दे आती है, क्योंकि फैशन परस्ती से उसे फुरसत नहीं मिलती। कुमार क्लब की सदस्या है। सौन्दर्य प्रतियोगिता मे भाग लेने के लिये तैयार होती है, बेबी साड़ी पर पेशाब कर देता है, उसे सैकड़ो बार इडियट गधा और नान्सेन्स शब्दों से दुतकारती है, पति को भी डाँटते हुएकहती है "पश्चिम मे परफेक्ट फेमिली लाइफ है। बच्चों को स्टेट संभालती है। इस मुल्क से तंग आ गई। ड्रेस पहिनेगे तो सारे शरीर को ढक लेंगे। (पति को फटकारते हुए) मैं स्वतन्त्र हूँ। तुम्हारे आर्डर नहीं मानूगी।" (लिपस्टिक की मुसकान)

युग सन्धि 'में प्राचीन और नवीन का संघर्ष दिखाया गया है। हरीश राधा नामक लड़की से विवाह करना चाहता है, परन्तु उसकी माता सुनन्दा प्राचीन विचारों के कारण उसका विवाह किसी कुलीन परिवार में करना चाहती है। अन्त में हरीश अपनी माता को छोड़कर और यह कह कर घर से चलदेता है—

"मैं जाता हूँ जहाँ न तुम्हारा कुल होगा, न कुल की मर्यादा होगी। जहाँ मैं हूँगा, राधा होगी, तुम्हारा नया भविष्य और नया समाज होगा।"

'समरेखा विषमरेखा मे' भी विवाह और प्रेम की समस्या है। 'दो किनारे' नामक एकांकी में भी अलका नाम आधुनिक शिक्षित युवती पिता और माता द्वारा निर्वाचित सम्बन्धों को ठुकरा कर अपने मन से एक तीसरे सज्जन से विवाह करती है। 'प्रकाश और परछाई' में सुधा एक अपराधी से, जो स्पष्ट रूप से अपने पूर्व दोषों को स्वीकार कर लेता है, विवाह करना उत्ताम समझती है, अपेक्षा कृत एक कुली ढोंगी पुरुष से जो विष रस के भरे कनक घट के समान है।

फलतः इस संग्रह के सभी नाटकों पर जिनमें प्रेम, और विवाह की समस्या ली गई है, पश्चिमी सन्डर मैन, हाप्टमैन, चेखोव और स्टिूडवर्ग के नाटकों का प्रभाव है। टेकनीक में भी पाश्चात्य नाटककारों का अनुसरण किया गया है। 'प्रकाश और परछाई' नामक एकांकी संग्रह की भूमिका में लेखक ने चार आवश्यक बातों पर जोर दिया है—

"एक तो एकांकी लेखक रेडियो और रंगमंच के लिये अलग अलग लिखें। दूसरी यह कि स्वस्थ हास्य की रक्षा करते हुए जनता में गंभीर नाटकों को लोकप्रिय बनाये। तीसरे नाटक में कल्पना और विद्वता की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी यथार्थ रोचकता और सहज कुतूहल की। चौथे बोलचाल की भाषा

और साहित्यक भाषा का अन्तर मिट जाना चाहिए । इस सम्बन्ध में लेखक का सुदृढ़ विश्वास है कि जिस दिन हिन्दी के दो रूपों का (बोल चाल की हिन्दी तथा साहित्यिक हिन्दी) का अन्तर मिटेगा उसी दिन हमारा नाटक साहित्य पनपेगा ।"

श्री प्रभाकर माचवे ने रेडियो के लिये ही अधिक नाटकों को लिखा है । उनकी प्रतिभा का विकास इस दिशा मे काफी अधिक हुआ है । उन्होंने अनेक खण्ड काव्यों का भी रेडियो रूपान्तर किया है । इनके नाटकों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पाश्चात्य लेखकों की शैली पर हुआ है ।

डॉ० धर्मवीर भारती के पाँच एकांकी १—सृष्टि का आखिरी आदमी, २—संगमरमर पर एक रात, ३— आवाज का नीलाम, ४—नीली भील, ५—नदी प्यासी थी आदि में मानव की उद्वेलित प्रवृत्तियों की भाँकी दिखाना तथा उन पर नवीन दृष्टिकोण से प्रकाश डालना भारती जी के नाटकों की मुख्य विशेषता है । 'आत्महत्या' के लिये तैयार राजेश, पद्मा के स्नेह और सहानुभूति का संबल पाकर नवीन चेतना का अनुभव करता है, यही 'नदी प्यासी थी' का कथानक है । 'संगमरमर पर एक रात' में मेहरुन्निसा के जीवन को बदलने वाली धारा का नाटकीय चित्र प्रस्तुत किया है । 'सृष्टि का आदमी' में बिनाशोन्मुख संस्कृति का ध्वंस और नवीन समाज तथा संस्कृत की स्थापना का चित्र खींचा गया है । 'आवाज का नीलाम' में पत्रकारों जगत पर पूंजीवाद का आक्रमण और प्रभुत्व दिखाया गया है । 'नीली भील' में आधुनिक युग की विषमता का चित्रण है । इन नाटकों द्वारा भारती जी ने यह संदेश दिया है कि आज का मानव जीवन के संघर्षो में तप कर अपना खोया हुआ मूल्य पुन: प्राप्त करेगा । निराशा, पराजय, कुंठा तथा पलायन की वृति को उन्होंने पूर्ण उपेक्षा की है ।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक उदीयमान एकांकी लेखकों में प्रमुख स्थान के अधिकारी हैं । उनके समस्या नाटकों में ठेकनीक और मनोविश्लेषण का सुन्दर समन्वय है । 'पर्वत के पीछे' और 'ताजमहल के आँसू' आधुनिक एकांकी शिल्प के सफल प्रयोग है । पहले में पाँच दूसरे मे 'पर्वत के पीछे' सुबह होगी, 'नई इमारत', 'मड़वे का भोर', 'धुएँ के नीचे', और 'कैद से पहले' छः सामाजिक समस्या नाटक है । 'बाहर का आदमी' में कौतूहल तथा जिज्ञासा द्वारा कथानक का सुन्दर विकास किया गया है । इसमें डाकुओं की नैतिकता तथा उनके कठोर हृदय में बसने वाले ममत्व का सुन्दर संघर्ष प्रस्तुत किया है । रंगमंच पर इनके नाटकों को पर्याप्त सफलता मिली है ।

प्रहसन तथा व्यंग्य को लेकर भी इधर अनेक एकांकी प्रस्तुत किये गये हैं ।

जी० पी० श्री वास्तव का दुमदार आदमी बहुत पहिले लिखा गया था। इसमें, १—दुमदार आदमी, २—गड़बड़ झाला, ३—कुरसी मैन, ४—पत्र-पत्रिका सम्मेलन, ५—न घर का न घाट का पाँच एकांकी प्रहसन हैं। श्री जगदीशचन्द्र माथुर का 'ओ मेरे सपने' जिसमें पाँच व्यंग्य चित्रित एकांकी प्रहसन हैं, उनकी चर्चा हो चुकी है। केशव चन्द्र वर्मा का 'रस का सिरका', आठ प्रहसन एकांकियों का संग्रह है। १—अरसिकेषु कवित्व निवेदम्, २—नौवौले पुरस्कार, ३—अधम चाकरी भीख निदान, ४—और वह वहाँ पहुंचे, ५—गम का फसाना किसको सुनायें, ६—ये मुए अखवार वाले ७—मकान की मुसीबत, ८—रस का सिरका।

चौथे नाटक 'वह वहाँ पहुँचे' में स्वर्ग मे साहित्य कान्फ्रेंस होती है। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के महान कवि एकत्रित होते हैं। पृथ्वी पर व्याप्त अनेक आधुनिक बातों की चर्चा होती है। शेक्सपीयर और प्रेमचन्द में परिचय होता है, इस लोक की चर्चा चलती है। शेक्सपीयर इस लोक का समाचार प्रेमचंद से पूछते हैं। उत्तर में प्रेमचंद कहते हैं—

"प्रेमचन्द—सिनेमा दुनियाँ का नया रोग है। इसकी रोक थाम के लिये वैद्यों और डाक्टरों के पास कोई इलाज अभी तक नहीं निकली। इस रोग का लक्षण है कि आदमी सौ जूते खा कर भी भीड़ में घुसने की आदत नहीं छोड़ पाता। जी हाँ बुरा रोग है। मुझे तो अपना पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया था। कम्यूनिज्म और पूंजीवाद की चोंचें चलती हैं और चोट नाहक विचारे जुलाहे खाते हैं। बस मुसीवत है, हजरत आज की दुनियाँ को। दूध के बजाय चाय का शौक बहुत बढ़ गया है। हां, पढ़ाई लिखाई के मामले मे थोड़ी बहुत तरक्की जरूर हुई है। यहाँ जितने भी विद्वान बैठे मुझे दिखाई दे रहे हैं, उन सबकी किताबें कोर्स बुक में कहीं न कहीं चल रही है। और उनके नाती पोतों की आत्मा की तुष्टि हो रही है।"

(रस का सिरका 'वे वहाँ पहुंचे')

'मकान की मुसीवत' में आजकल के नौकरी पेशा वाले लोगों के लिये शहरों में मकान की कमी की समस्या का चित्रण है। अन्तिम नाटक 'रस का सिरका' में कवि सम्मेलन पर व्यंग्य किया गया है। एक नवीन कवि 'मकरजी' 'कवि सम्मेलन' में अपना परिचय देते हैं—

'मकरजी—(जनाने स्वर में) भाइयों और बहिनों। मैं कवि नही, मेरी तुकबन्दियों में मेरे जीवन की अनन्त कामनाएं, अपना पूर्ण विकास खोज रही हैं। ओह गरमी बहुत है। संयोजक जी, जरा बरफ का पानी मंगवा लीजिएगा। मैं अपने जीवन में नारी को विशेष महत्व देता हूँ। मैंने अभी तक

विवाह नही किया। मैं विवाह को एक सामाजिक ढोंग मानता हूँ। (कई आवाजें लेक्चर नही, कविता सुनाइये) कविता क्या सुनाऊ कविता तो मेरे जीवन की प्रेरणा रही है। गीत है—

"जीवन मेरा बुद बुद चेतना तरंगों की डाली पर कूंद रहा हूँ मैं फुदफुंद
उर्मिल प्राणों पर फुदक रही हो, तुम जैसे स्वर्णिम हुदहुद।
जब तुम मुझको सहलाती हो, आखियाँ जाती है मुदमुद।

इन प्रहसनो मे पाश्चात्य जीवन से प्रभावित विचारो की, झलक है। रामसरन शर्मा के 'नौ प्रहसनों' का संग्रह, सफर की साथिन मे शिष्ट हास्य का प्रदर्शन किया गया है। श्री सरयू पंडा गौड़ के 'कहकहा' 'ससुराल की होली' 'हंसी हंसाओ' आदि प्रहसनों में व्यंग्य की सुन्दर सामग्री है। शिबपूजन सहाय का दो घड़ी हास्य रस का सुन्दर उदाहरण है।

विनोद रस्तोगी ने अपने एकांकियों मे युद्ध के पश्चात तथा भारत विभाजन के अवसर पर व्याप्त अनैतिकता शरणार्थी समस्या, तथा भ्रष्टाचार का वर्णन अत्यन्त सजीव शैली मे किया है। उनके एक नाटक 'अँधेरा फिसतन और पाँव' पर पुरस्कार भी मिला है। 'पुरुष का पाप' नौ एकांकियों का संग्रह है, जिसमें पुरुष का पाप नारी के लिये अभिशाप बताया गया है। इनमें, 'सुहाग रात' सौन्दर्य का प्रायश्चित' 'सुन्दर तथा व्यंग्यपूर्ण शैली के एकांकी हैं।' पैसा, लकड़ी और जन सेवा आपके समस्यामूलक नाटक है। इन नाटकों मे संकलन त्रय की योजना का सफल निर्वाह तथा रंगमंच के उपादानो का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

प्रो० गोविन्दलाल माथुर ने राजस्थानी में सामाजिक समस्या नाटकों को पाश्चात्य शैली मे प्रस्तुत किया है। आपके सात एकांकी नाटकों मे, १—बाल विधवा २—शफाखाना, ३—हरिजन, ४—शिक्षा का सवाल, ५—सूदखोर, ६—ठाकुरशाही, ७—लालची माँ बाप, में प्राचीन रूढ़ियो तथा अशिक्षा के दोषों की चर्चा की गई है। बाल विधवा मे आधुनिक पंचायतों के धांधली पूर्ण न्याय, 'शफाखाना' मे ठाकुर और जनता का विरोध दिखाया गया है।

कहानी लेखिका श्री हीरा देवी चतुर्वेदी के नौ एकांकियो का संग्रह 'रंगीन पर्दा' सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का नवीन रूप प्रस्तुत करता है। 'रंगीन पर्दा' में पारस्परिक द्वेष, 'रंगा सियार' में 'आधुनिक शिक्षा' की आलोचना की गई है। श्री अरुण मित्र के नये अभिनेय नाटकों का सँग्रह रेलगाड़ी के डिब्बे अभी हाल मे निकला है। इसमे निम्नलिखित ग्यारह एकांकी हैं, १—रेलगाड़ी के डिब्बे, २—एक प्राण दो काया, ३—तीन घंटे की पहचान, ४—मजनू और फरहाद, ५—अभय दान, ६—पार्टी नहीं जमी, ७—परिवर्तन,

९—यह भी वह भी, ६—सेर की सवा सेर, १०—सिकन्दर और स्नातक, १२—सभ्यता का आरंभ। 'पार्टी नहीं जमी' गरुड़वाद (वेंट्रीलोकिसम) के ऊपर आधारित है। 'गरुड़वाद' पाश्चात्य नाटकीय टेकनीक की एक देन है। इसमें केवल एक व्यक्ति बोलता है, पर वह अपने मुख से दो व्यक्तियों की ध्वनि निकालता है, और ऐसा मालूम होता है कि दो प्राणी बातें कर रहे है। इसमें बोलने वाले को अपने पास एक गुडा या अन्य कोई न बोलने वाली चीज रखनी पड़ती है। इस नाटक में राजेश ने पूसी को सामने बैठाकर उसके बोले शब्द स्वयं स्वर बदल कर कहा है।

राहुल सांकृत्यायन के तीन एकांकी नाटकों का संग्रह जिसमें 'मेहरारुन के दुरदशा' 'नई क्री दुनियाँ' और 'जोंक' भोजपुरी बोली मे लिखा गया है। हैरोल्ड चैपलिन का 'द डम्बं ऐंड द ब्लाइंड' भी इसी प्रकार का एक नाटक हैं। एकांकी नाटकों के वर्गीकरण में इसकी चर्चा की जा चुकी हैं। राहुल जी के इन नाटकों में पात्रों के नाम, संवाद तथा वातावरण सब अत्यन्त ठेठ भोजपुरी में है, जिसे पढ़ कर महापंडित के भाषा ज्ञान की सराहना करनी पड़ती है। कहीं भी कृत्रिमता का नाम नहीं। उदाहरण के लिये प्रथम नाटक (मेहरारुन के दुरदशा से)

लछिमी—इहे बात हमनी के सभा में भइल हा। हमनी कहलीं कि मुसरमान में बेटी के जैजात में हक होला, बेटा के बराबर, किरिस्तानों मे बेटी के महतारी बाप के जैजात में हक होगा, फेनु हिन्दू की बेटी मेहरारू के काहे हक ना मिलीं।

'नइकी दुनियाँ' में विहार के एक गाँव का नाम लेनिनपुर रखकर साम्यवादी विचारधाराओं का प्रचार किया जाता है। 'जोंक' में पूजीपतियों के शोषण की कहानी है। इन नाटकों में संवाद संक्षिप्त तथा चरित्र चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है। फिर भी इनमें प्रचारात्मक दृष्टिकोण अधिक तथा टेकनीक का ध्यान कम है।

विमला लूथर के पन्द्रह एकांकियों के संग्रह 'पचपन का फेर' [1] में टेकनीक तथा विषय विस्तार दोनों में नवीनता का ध्यान रखा गया है। इसमें समस्याओं

पचपन का फेर में— १—पचपन का फेर, २—लाइन क्लीयर, ३—नीम हकीम, ४—हीरोइन, ५—महिला मंडल, ३—कलाकार और नारी, ७—प्रीत के गीत, ८—रेत और सीमेन्ट, ६—प्रोफेसर साहब, १०—घर आई लक्ष्मी, ११—प्रीति भोज; १२—आवागमन, १३—बलिदान, १४—गृह लक्ष्मी, और १५—जनता बेचारी।

का पुराना रूढ़िवादी बासी तथा पिटा पिटाया स्वरूप न ग्रहण करके आधुनिक समाज तथा राजनीति के ताजे और नवीनतम विषयों को ग्रहण करके लेखिका ने अपनी स्वतंत्र तथा मौलिक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। 'पचपन का फेर' मे एक क्लर्क के नीरस तथा व्यस्त जीवन की कहानी है। 'लाइन क्लीयर' में आजकल के रेलवे विभाग के भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्र है। रिजर्व कराने पर भी यात्री को बैठने का स्थान नहीं मिलता, उसका सामान कुली दूसरी गाड़ी में चढ़ा देता है। रेल के अधिकारियो की लूट और धाँधली का निम्नांकित वर्णन रोचक है—

"दीनदयाल—सील बन्द कनस्तरों में से घी कैसे निकाला जाता है।

रेलवे शिक्षक—१६३६ तक तो यह तरीका था कि सील तोड़कर घी निकाल लिया, और फिर सील लगा दी, लेकिन महायुद्ध के दिनों में काम इतना बढ़ गया कि कोई जल्दी का तरीका खोजना प.़ा। आजकल जो तरीका चालू है, वह तो यह है कि एक दूसरे चाकू को कनस्तर के जोड़ पर मारकर जितना, घी चाहो निकाल लो, क्योंकि तब यह मालूम नहीं होता कि कनस्तर गिर पड़ने से टूटा है।"

(पृ० ३४)

"नीम हकीम" मे एक चिकित्सक, दूध को पाश्चात्य स्वास्थ्य विज्ञान के आधार पर रोगी के लिये हानिकर बताते है। 'मृत्यु के संबन्ध में ब्राजील के प्रो॰ डामसन का उद्धरण भी दिया गया है, जिन्होंने अपने शोध और आकड़ों से सिद्ध किया है कि संसार मे आजकल चालीस प्रतिशत लोग ऐलोपैथी चिकित्सा के कारण, बीस प्रतिशत आयुर्वेदिक चिकित्सा से, दस प्रतिशत होमियोपैथी तथा केवल दस प्रतिशत अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मरते हैं। 'हीरोइन' में नवीन रजत तारिकाओं (फिल्म स्टार) को कितने लोगों के हाथ अपनी लज्जा बेचकर गौरव मिलता है, इसी का यथार्थ चित्रण है। 'कलाकार और नारी' मीनाक्षी के रूप मे आधुनिक स्वतन्त्र नारी के अनैतिक जीवन की चर्चा है। 'रेत और सीमेन्ट' मे आधुनिक ठेकेदारों की बेईमानी तथा कांग्रेस मंत्रियों की स्वार्थपरता और उत्तरदायित्व हीनता का चित्रण है। प्रोफेसर साहब में प्रोफेसरो की कर्तव्यहीनता तथा रोमाँस का चित्रण है। 'घर आई लक्ष्मी' में मिस्टर मेहता के रूप में आधुनिक न्यायाधीशों की घूसखोरी का वर्णन है। प्रीतिभोज में राशन की व्यवस्था तथा एक के स्थान पर बाल बच्चों को लेकर तीन या चार की संख्या में भोज में जाने वाली निर्लज्जता की प्रथा का व्यग्य पूर्ण चित्रण है। 'आवा गमन' में आधुनिक काँग्रेसी नेताओं की मक्कारी का वर्णन है। जब नेता जी देवलोक में मर कर पहुंचते हैं, तो वहाँ

उन्हें तमाम मृत आत्माए कोसती हैं। एक ग्रामीण स्त्री द्वारा नेताजी की शिकायत तथा उनके ढीले ढाले उत्तर को सुनिये—

"स्त्री—चुनाव के समय आपने मेरी सहायता माँगी थी और वह सब्जबाग दिखाये कि क्या कहूँ। तुम्हारे बेटे को नौकरी दिला दूंगा, उस गांव में अस्पताल बनवाऊंगा, रेल की लाइन यहाँ तक आयेगी, लड़की के लिये हाई स्कूल होगा। आपकी बातों से तो ऐसा जान पड़ता था कि गरीबी का अन्त हो जायेगा। फसल दुगुनी होगी। किसान मालामाल हो जायगे। ऐसे झाँसे दिये कि हम लोग जी तोड़ कर मेहनत किये, और आप चुनाव जीत गये। पर हमें क्या मिला आप राजधानी में रहने लगे, हमारे गाँव में सैकड़ों मील दूर हम पर कई मुसीबतें आईं, बाढ़ आई, अकाल पड़ा, किन्तु आपने अपनी सूरत तक न दिखाई।

नेता—"झूठ बिल्कुल झूठ, मुझे अच्छी तरह याद है, जब बाढ़ आई थी तो मैंने हवाई जहाज पर बैठकर, बाढ़ पीड़ित गाँवों का ऊपर से निरीक्षण किया था, जब अकाल पड़ा था, तो ऐसा दर्दनाक भाषण दिया कि विधान सभा के सदस्यों के हृदय रो उठे।"

स्त्री—"आप उड़कर तमाशा देखते रहे, भाषण देते रहे, हमारे गाँव के चालीस प्रतिशत लोग मर गये। हमारे पशु बह गये, घर नष्ट हो गये।"

'बलिदान' नामक नाटक में "बलदेव यूनीवर्सिटी के छात्रसंघ (स्टूडेन्ट्स यूनियन) का मंत्री रजिस्ट्रार को धमकी देकर परीक्षा-तिथि स्थगित कराना चाहता है। और अंत में अनशन करता है। सारांश यह है कि इस संग्रह के नाटकों में विविध विषयक, नवीन तथा विस्तृत समस्याओं का चित्रण मिलता है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने भी अनेक एकांकियों का सृजन किया है। उनके 'कौस्मोपौलिटन क्लब' में कम्यूनिस्ट, रेडिकल डेमोक्रेट, फिल्म ऐक्ट्रेस, प्रोफेसर तथा कांग्रेस के लीडर सभी एक क्लब के सदस्य हैं। श्री मती शीला का कहना है कि 'कम्यूनिजम तो अब इस देश में एक फैशन बनता जा रहा है। गाँधी को कौन पूछता है। 'पृथ्वीनाथ शर्मा' के समस्या नारी नामक एकाकी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण फ्रायड के आधार पर किया गया है। 'चिरंजीत' के 'महाश्वेता' में सुधा कर शर्मा की मृत्यु महाश्वेता की मूर्ति पूजा द्वारा हो जाती है। 'पराधीनता की ओर' श्री यश का एक सुन्दर एकांकी है, जिसमें विज्ञान उन्नति का नहीं पराधीनता का सूचक बताया गया है। किरपा नामक पात्र आधुनिक आविष्कारों की उपयोगिता को प्रस्तुत करता है। रेल, तार, हवाई, जहाज, टैक्टर, स्ट्रेप्टोमाइसीन टेलीविजन, टेलीफोन आदि आविष्कारों के द्वारा मनुष्य चिंताओं के बन्धन मे मुक्त हो रहा है। प्रकृति मनुष्य का दास

हो गया है । उधर दो चीलों के लड़ने से शहर के कारखाने का जो एशिया का सबसे बडा कारखाना है, सबसे बड़ा फ्यूज उड़ जाता है । सारे तार जल जाते है । इसके पश्चात भोजन पानी से लेकर शहर के सारे व्यवसाय बन्द हो जाते है । लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचता है, कि विज्ञान हमें स्वाधीनता की ओर नहीं पराधीनता की ओर ले जा रहा है ।

श्री देवीदयाल सामर के एकॉकी नाटकों मे बालकों की रुचि, उनके मानसिक तथा भावात्मक विकास की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया है । 'हरिनारायण मैणवाल' ने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी नाटकों को लिखा है । विश्वम्भर मानव का 'लहर और चट्टान' सेक्स तथा प्रेम की समस्याओ तथा समाज द्वारा उत्पन्न जटिलताओ के व्यक्त करने वाला नाटकों का संग्रह है । इसके अतिरिक्त हरिश्चन्द्र खन्ना का मनोवैज्ञानिक नाटक अमरबेल, अपमान, प्रहलादनारायण मीतल का शिलॉन्यास, श्री मधुकर खेर का 'दिया तले अँधेरा' मघालाल वर्मा का 'स्वर्ग मे भीड़' रावीकृत बेकर की 'अभियोग समीक्षा', शिवसागर मिश्र का 'खूबसूरत कोढ़', रामचरण महेन्द्र का 'घरेलू इलाज' और सुहाग अमर हो गया', नरेन्द्रनारायण का 'वेश्या की बेटी' करतार सिंह दुग्गल कृत 'अमानत', विपुला देवी कृत 'लोकेश्वर शनि', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'नया समाज और गांव का देवता', लक्ष्मीनारायण मिश्र का अशोक वन, 'कावेरी मे कमल (तीन नाटक), प्रलय के पंख पर, मनु तथा अन्य एकांकी संग्रह, केशवचन्द्र वर्मा का 'श्रम देवता' रांगेय राघव का 'इन्द्रधनुष संग्रह', भारतभूषण अग्रवाल का 'और खाई बढ़ती गई', विनोद रस्तोगी का 'कसम कुरान की', रामनरेश त्रिपाठी का पेखन 'बच्चों के लिए', सत्येन्द्र शरत का 'तार के खम्भे', विट्ठलदास कोठारी 'दहेज', लक्ष्मीनारायणलाल का पर्वत के पीछे', मारकण्डेय का 'पत्थर और परछाइयाँ', देवदत्त अटल का 'स्वर्ग में गाँधी', क्षेमचन्द्र सुमन का 'नीर क्षीर' केदारनाथ मिश्र का 'स्वर्णोदय' रामचन्द्र श्री वास्तव का सप्त तरंग, ब्रजकिशोर नारायण का 'सपना टूट गया' तथा चन्द्रभान ओझा का 'खट्टे मीठे बेर' अन्य एकांकी, राजाराम शास्त्री का उलझन 'नवीनतम एकांकी' नाटक है, जिनमें वर्तमान समाज की जटिलताओ पर पाश्चात्य विचारों के आदर्श और प्रभाव की चर्चा की गई है ।

हिन्दी एकांकी के साहित्य में निरन्तर वृद्धि हो रही है । सैकड़ों एकांकी संग्रह भी निकल चुके है, जिनमें कारवाँ (६ एकाँकी), 'हंस' का विशेषांक (११ एकांको) जीवन और संघर्ष (६ एकांकी), 'चार एकांकी', नये रंग एकांकी पर्द

के पीछे (८), अभिनय एकांकी (७) वाह रे मैं वाह (मुंशी जी के फैंटेसी) छः एकांकी (प्रकाश चंद्र गुप्त), मेरे नाटक (टैगोर के) पुरुष का पाप (विनोद रस्तोगी ६ एकांकी) कं रंगीन पर्दा (हीरादेवी चतुर्वेदी), पंचकन्या (प्रभाकर माचवे), नदी प्यासी थी (धर्मवीर-भारती ५ एकांकी), मृत्यु के उपरान्त तथा आत्मा की खोज (देवीलाल सामर ११ एकाँकी), एकांकी समुच्चय (जयनाथ नलिन), एकांकी सप्तक (रामचन्द्र श्रीवास्तव), कलापूर्ण एकांकी (दशरथ ओझा), चार अभिनव एकांकी (कृष्णदत्त भारद्वाज), सात एकांकी (यस० पी० खत्री) पाँच एकांकी (चतुरसेन शास्त्री) उल्लेखनीय संग्रह है।

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा गया है, हिन्दी एकांकी नाटक पश्चिम से ही आया है, इसको हिन्दी के अधिकाँश आलोचक स्वीकार करते हैं। पश्चिम के जिन एकांकीकारो नें हिन्दी एकांकी निर्माण में सहायता दी है, उनमें आर्थर विंग, पिनरो, आस्करवाइल्ड, शा, आर्थर जोंस, हाप्टमैन, चेखव, सन्डर मैन, प्रिन्डलो, ओ नील, पॉल ग्रीन, नौयेल कोवर्ड, क्लफर्ड ओडेटस तथा हैराल्ड विग्र हाउस है। इनमें भी कुछ प्रारम्भिक लेखकों की विशेषताओं की चर्चा प्रथम तथा आधुनिक नाटकों के अध्याय मे की जा चुकी है। ओ नोल के एकांकी नाटकों मे सतर्क नाटकीय पृष्टभूमि, चरित्रगत संघर्ष, तथा टैकनीक का सौन्दर्य दिखाई देता है। उनके इस प्रकार के एकांकी नाटकों में 'द मून आफ केवीलबीस, द लाग वायेज होम, 'बाउंड इस्ट कार कार्डिफट' प्रसिद्ध हैं। पालग्रीन के एकांकी उनके स्थानीय चित्रण तथा स्वाभाविक संवादो के लिये प्रसिद्ध हैं। जे० एम० वेरी के नाटको मे रंगमंच के साधनो का अधिक से अधिक उपयोग किया गया है। उनके मूक अभिनय प्रसिद्ध है। नौवेल कावर्ड के व्यंग्यात्मक प्रहसनों का अनुसरण लक्ष्मीनारायण लाल तथा विष्णुप्रभाकर और अश्क पर पड़ा है। हैराल्ड ब्रिग हाउस ग्रामीण भाषाओं के पारखी हैं। 'राहुल' जी ने उनके आधार पर अपने तीन एकांकियों को लिखा है। क्लपर्ड ओडेट्स के एकांकियों में संक्षिप्त कथानक तथा कार्य व्यापार की तीव्रता दिखाई देती है। 'टिल द डे आई डाइ ओर वेटिंग फार द सेफ्टी उनके इस प्रकार के प्रसिद्ध एकांकी हैं।

इसके अतिरिक्त हिन्दी लेखकों ने पाश्चात्य एकांकियो का अनुवाद भी किया है। श्री कामेश्वर नाथ भार्गव ने विशप्स कैन्डिल स्टिक्स का 'पुजारी' (१६३८ ई०) के नाम से अनुवाद किया है। हैरोल्ड ब्रिग हाउस के 'दी प्रिंस हू वाज पाइपर' तथा जे० ए० फर्ग्यूसन के एकांकी 'कैम्पवैल आफ किल म्होर' के अनुवाद भी प्रेमनारायण टंडन द्वारा प्रकाशित हुए हैं। जिनमें भारतीय वाता-वरण रखने की चेष्टा की गई है। ए० ए० मिले के दी मैन इन दी बाइलर हैट

का अनुवाद प्रो० अमरनाथ गुप्त ने किया है। श्री अमृतराय ने रूसी लेखक कोस्नातिव सियोनोफ के एकांकियों का अनुवाद 'रूसी लोग' (हंस १ ४३ ई.) 'चार चित्र' तथा ' निशाने बाज' नाम से किये हैं। श्री वृंदावन लाल वर्मा ने आर्थर वेली के एकांकियों का अनुवाद 'प्रहसन प्रवेशिका' के नाम से किया है। जान ड्रिंकवाटर के और ए नाइट आफ द ट्रोजन वार का अनुवाद दुर्गादास भास्कर ने कलिंग युद्ध की रात के नाम से किया है।

रेडियो नाटय-शिल्प तथा हिन्दी में रेडियो नाटक

नाटकों के क्षेत्र में रेडियो के आविष्कार से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। नाटक जिसको आचार्यों ने दृश्य ही माना था, अब विज्ञान के आविष्कार ने उसे श्रव्य बना दिया हैं। जो केवल रंगमंच पर अभिनीति होकर ही दर्शकों के सामने पहुँचता था, वह आज हजारों मील दूर स्टूडियो में अभिनीति होकर श्रोताओं के कानों में पहुँच जाता है। पहले दर्शक नाटक देखने के लिये प्रेक्षा-गृह मे जाते थे, आज उनका बैठक का कमरा ही प्रेक्षागृह हो गया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो रेडियो नाटकों का शिल्प विधान अपेक्षाकृत कही कठिन और कहीं सरल दिखाई देगा। रंगमंच के नाटक समुदाय के लिये लिखे जाते और अभिनीत होते है, परन्तु रेडियो नाटक व्यक्ति के लिये। समूह में संवेदन शक्ति, व्यक्त की अपेक्षा अधिक होती है। अभिनेता दर्शको की प्रशंसा या अरुचि को अभिनय करते समय देख भी सकते हैं, तदनुरूप अपने अभिनय में परिवर्तन कर सकते हैं। पर रेडियो के स्टूडियो में कोई दर्शक नहीं होता, सब अभिनेता ही होते है। अतः व्यवस्थापक को यह प्रबन्ध करना पड़ता है कि उसके दृश्य अधिक से अधिक बोधिगम्य और सुनने में प्रभावशाली हों। रंगमंच के नाटकों मे कई और असुविधाएं हैं जो रेडियो नाटकों में नहीं मिलती। रंगमंच नाटकों में दृश्यों का परिवर्तन पात्रों की वेशभूषा या वातावरण की सजावट के कारण बहुत जल्दी-जल्दी नहीं किया जा सकता। दृश्य परिवर्तन की कठिनाई के कारण बहुत सी बातों का परिचय दर्शकों को संवाद के द्वारा दे दिया जाता है, परन्तु रेडियो नाटकों में कोई इस प्रकार का बधन नहीं है, वहाँ कोई दृश्य दस पंक्तियों का भी हो सकता है, और कोई दो सौ पंक्तियों का भी। युद्ध मारकाट, हवाई जहाज, रेल यात्रा के जो दृश्य रंगमच पर नही दिखाये जा सकते, रेडियो नाटकों के द्वारा बोधिगम्य किये जा सकते है। रेडियो नाटकों के लिये संकलन त्रय का कोई विशेष बन्धन नहीं है। उसकी घटनाएं सरलता से विश्व से एक कोने से दूसरे कोने तक अथवा प्रागऐतिहासिक युग

से आज तक भ्रमण कर सकती है, केवल प्रभाव की एकता बनाये रखने का ध्यान व्यवस्थापक को रखना पड़ता है।

आजकल रेडियो नाटकों के लिये ध्वनि रूपक, ध्वनि नाटक या ध्वनि एकांकी आदि अनेक शब्दों का प्रयोग विद्वानों द्वारा हो रहा है, परन्तु ये सभी समानार्थक है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। यह निश्चिय है कि इन नाटकों मे ध्वनि की ही प्रधानता होती है, परन्तु रेडियो नाटक के सभी उपादान ध्वनि (साउंड इफेक्ट) के अन्दर ही नही आते, संगीत की व्यंजना ध्वनि से ही नही होती। अनेक उपकरणों में से ध्वनि रेडियो का केवल एक उपकरण हैं। इसलिये रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटकों को ध्वनि नाटक कहना उचित नही जान पड़ता। संक्षिप्तता के कारण कभी कभी रेडियो नाटक को ध्वनि एकांकी भी कहा जाने लगा है, परन्तु रेडियो नाटकों के लिये अंक और दृश्य का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वह एक दृश्य का भी हो सकता है, और अनेक दृश्यों का भी। इसका समर्थन करते हुए डा० दशरथ ओझा ने कहा है, कुछ लोग समझते है कि रेडियो नाटक एकांकी ही है, पर कई समालोचक इसे भ्रमपूर्ण मानते हैं। तथ्य तो यह है कि अभी तक हमारे देश में रेडियो नाटक शैशवावस्था में है। इसके विषय में अभी क्या कहा जाय। जब तक रेडियो की नाट्य कला विकसित नहीं होती, कोई निर्दिष्ट मत कैसे बन सकता है? ·····। "रेडियो और नाटक हिन्दी में पश्चिम की देन है। पश्चिम में रेडियो नाटक कुछ पहिले से लिखे जा रहे हैं, और प्रगतिशील देशों में इनकी नाट्यकला निर्धारित होती जा रही है।[१]" परन्तु जहाँ तक इन नाटकों का विकास हुआ है, उसके आधार पर यह पूर्ण निश्चय से कहा जा सकता है कि रेडियो नाटकों को ध्वनि एकांकी या रेडियो एकांकी कहना ठीक नहीं है। रेडियो नाटक का श्रोता, रंगमंच के दर्शक की अपेक्षा अधिक सहृदय और सतर्क रहता है। असावधानी से लिखा गया दृश्य रंगमंच पर निभ सकता है, पर रेडियो पर नही। अगर अभिनेता के बोलने तथा उच्चारण करने का ढंग ठीक नहीं है, यदि वह नहीं जानता कि किस स्थान पर भाषण में बल देना चाहिए, कहाँ कितना विराम देना होगा तो प्रसारित विचार न केवल अस्पष्ट हो जायगा, वरन् उससे चरित्र चित्रण में असामंजस्य उत्पन्न हो जायगा। वाणी और स्वर का हलके से हलका झटका भी ध्वनि-प्रसारित यन्त्र (माइक्रोफोन) पर अतिरंजित हो जायगा, जिससे प्रभाव में महान परिवर्तन हो जायगा और कमरे में रेडियो के पास बैठा हुआ श्रोता झल्ला उठेगा। अतः रेडियो

१— हिन्दी नाटक उद्भव और विकास'—डा० दशरथ ओझा, पृ०।

नाटकों में भाषा और ध्वनि के उचित प्रयोग का बड़ा महत्व है। इसीलिए रेडियो नाटकों के दृश्य गतिशील तथा रंग नाटकों की अपेक्षा अधिक छोटे और वेगवान होते है।

भाषा, ध्वनि—प्रभाव तथा संगीत रेडियो नाटक के तोन प्रधान उपकरण हैं। भाषा का प्रयोग मुख्यतया दो रूपों में होता है। १—संलाप के रूप में, २—और कथन (नैरेशन) के रूप में। संलाप सरल तथा शीघ्र बोधगम्य होना चाहिए। वाक्य सुगठित तथा लय पूर्ण होने चाहिए। अन्य नाटकों में घटनाओं की गति आगे बढ़ती है पर रेडियो नाटकों में पात्र पीछे मुडकर अपने अतीत को भी देख सकते हैं—इसे 'फ्लेस बैक' या पृष्ठ प्रत्यावर्तन कहते हैं। रंगमंच के नाटकों की भाँति रेडियो नाटक के संवाद संक्षिप्त तथा गतिशील होने चाहिए। परन्तु रंगमंच के नाटकों में जहाँ हाव, भाव, वेशभूषा तथा वातावरण दृश्य उपकरणों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, वहाँ रेडियो नाटकों में दृश्य तत्वों, घटना स्थल तथा वातावरण का निर्माण केवल संवाद कथोपकथन के द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है।

परन्तु बहुत सी बातें कथनोपकथन द्वारा नहीं कही जा सकती, जैसे नाटक की घटनाओं की पृष्ठभूमि और वातावरण प्रस्तुत करना, घटनाओं की शृंखला जोड़ना अथवा उनकी आलोचना करना। इस कार्य को प्रवक्ता या वाचक (नैरेटर) करता है, जो पुरुष स्वर या स्त्री स्वर के रूप मे हो सकता है। बहुत से लोगों का मत है कि नैरेटर घटनाओं के विकास मे बाधक होता है, इसलिए उसका न रखना ही उचित है, परन्तु अधिकांश रेडियो नाटककार नैरेटर की आवश्यकता उचित मानते हैं। नैरेटर भी दो प्रकार के होते है। एक तो वे नाटक के भाग लेने वाले चरित्रो में से होते हैं, जिनके जीवन की घटनाएँ नाटक मे प्रत्यक्ष जुड़ी रहती है, दूसरे वे जो केवल घटनाओं के तटस्थ दर्शक या प्रवक्ता होते है, उनका नाटक की घटनाओं से कोई व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं रहता। प्रवक्ता की भाषा सरल,उद्देश्य गर्भित होनी चाहिए उसे भड़कीले और शब्दों और भावो के चक्कर में नही पड़ना चाहिए। जहाँ एक पंक्ति से काम चल जाय, वहाँ अनेक पंक्तियो का लिखना अनावश्यक होगा। सफल संलाप और प्रवचन के लेखक को लियोनेल गैमलिन[1] के शब्दों मे इस बात की पूर्ण ज्ञान-

1—'The Art of writing a good radio-script, indeed often lies in knowing what not to say. There is no room for any phrase, even in the lightest conversational passage, which does not play an active part in the forwardmarch of programme. There, is no room for the merely decorative.''

'*You are on the Air*'—Lionad Gamlin, page 37.

कारी होनी चाहिए कि क्या न कहा जाय। साधारण से साधारण बातचीत के सिलसिले मे एक भी शब्द ऐसा नहीं प्रयुक्त होना चाहिए, जो कार्य क्रम को आगे बढ़ाने में सहायक न हो। केवल अलंकृत शब्दावली के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं हैं।"

वातावरण निर्माण के लिए ध्वनि-योजना और उसके प्रभाव का उचित निर्वाह किया जाता है। क्योंकि रेडियो नाटकों में श्रोताओं की आँखों के सामने कोई दृश्य घटना या संलाप तो आता नहीं, केवल शब्दों और ध्वनियों द्वारा उसके मानस पटल पर चित्र अंकित होते है, अतएव ध्वनि प्रभाव प्रभावोत्पादक परन्तु कम से कम प्रयुक्त होने चाहिए। वातावरण निर्माण तथा दृश्य परिवर्तन के लिए फेड आउट तथा फेड इनका प्रयोग ध्वनि योजना के प्रधान तत्वों में से हैं। फेड आउट में ध्वनि धीरे धीरे लुप्त होती सुनाई देती है, इसके लिए अभिनेता बोलता हुआ धीरे धीरे माइक्रोफोन से दूर हटता है। फेड इन इसका विरोधी है। इसके द्वारा ध्वनि धीरे-धीरे स्पष्ट की जाती है। अतः ध्वनि के द्वारा हँसी, रुदन, वर्षा, बादल तथा रथ की गड़गड़ाहट, हवाई जहाज, रेल, मोटर का चलना, खटाके या धमाके की आवाज तथा अन्य अनेक ध्वनियों को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसकी आवश्यकता वातावरण निर्माण में होती है। संगीत भी रेडियो नाटक का प्रमुख अंग है, उसका व्यवहार दो रूप में होता है, स्वतंत्र रूप में तथा संलाप की पृष्ठभूमि के रूप में। प्रायः दृश्य परिवर्तन के लिए भी संगीत का प्रयोग होता है, परन्तु इस प्रकार के संगीत को संक्षिप्त होना चाहिए। करुणा तथा शोक और मृत्यु के वातावरण को गम्भीर संगीत और भी स्पष्ट बना देता है। पात्रों के मनोगत संघर्ष को भी संघर्ष द्वारा व्यक्त किया जाता है। परन्तु संगीत की प्रधानता इतनी अधिक भी न हो कि नाटक की नाटकीयता समाप्त हो जाय, और पूरा नाटक एक संगीत सम्मेलन का रूप धारण कर ले। इसलिए व्यवस्थापक को जानना चाहिए, कि संगीत का प्रयोग कौन-कौन से स्थलों पर किस मात्रा मे आवश्यक है, और कहाँ कम रूप में।

रेडियो नाटक के विभिन्न रूप

रेडियो शिल्प की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटकों के छः भेद होते हैं। १—फैंटेसी, २–रेडियो रूपक, ३ रेडियो नाटक, ४—गीति रूपक, ५—मोनो लाग और ६—रेडियो रूपान्तर।

रेडियो फैंटेसी

इसका अधिकतर रूप काल्पनिक होता है। इसमें स्वप्निल और कल्पनामय

वातावरण की सृष्टि संगीत तथा ध्वनि प्रभाव के द्वारा की जाती है। साधारण की अपेक्षा मानवेतर तथा अलौकिक पात्रों और दृश्यों की योजना इसके लिये विशेष रूप से स्वाभाविक होती है। उदाहरण के लिए रेवतीरमण शर्मा का 'कल' एटम युद्ध के दुष्परिणामों का वर्णन करता है। सिद्धनाथ कुमार का 'वे अभी भी क्वारी हैं', मैं कालिदास के 'शकुन्तला' नाटक की प्रियम्बदा तथा अनुसूया की मनोस्थिति का, 'लौह देवता' में मशीन-युग की निराशा तथा करुणा का 'सृष्टि की साँझ' मे संस्कृति के पतनोन्मुख मूल्यों पर अति कल्पना का आवरण चढ़ाया गया है। फैंटैसी के अन्य उदाहरणों में रामचन्द्र तिवारी के 'वन्दिनी' में धन के महत्व का वर्णन है। उसी प्रकार बालकराम नागर का 'खिलौनों की नगरी', 'पत्थर की शिकायत' 'शीशे का जूता', अज्ञेय का चार रेडियो नाटक संग्रह जिसमें (वसन्त नान्यः पंथा, नम्बरदस, जयदोल) नाटक रेडिओ फैंटेसी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

रेडियो रूपक

इसका प्रयोग आजकल रेडियो फीचर के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग द्वितीय महायुद्ध के समय हुआ था। अग्रेजो ने नाजी—प्रचार के विरोध में अपनी फौज को ब्राडकास्ट करने के लिये इस प्रकार के फीचर का ही उपयोग किया था, जिसमें, किसी प्रमुख घटना को नाटकीय रूप दिया जाता था। फलस्वरूप डाकुमेन्ट्री फिल्मों का प्रचार हुआ और रेडियो के फीचर प्रोग्रामों से सम्बद्ध कुछ व्यक्ति उनका अनुकरण करने लगे। वे लोग यथातथ्य घटनाओं के रिकार्ड तैयार कर लेते थे, और उन्हीं के आधार पर नाटकीय रचनाएं प्रसारित करते थे। इस प्रकार के रूपक की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि बी० बी० सी० में नाटक विभाग से इसके लिये स्वतन्त्र विभाग बन गया है। लुई मैकनीज ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है।

'The Radio Feature is a dramatised presentation of actuality, but its author should be much more than a reporter for a camera man, he must selet his actual material with great discrimination, and then keep control of its so that it subserve a single dramatic effect.''[१]

अर्थात् रेडियो रूपक वास्तविक घटना का नाटकीय रूप है, परन्तु इसके लेखक को शुष्क प्रवक्ता या चित्रकार की तरह नहीं होना चाहिए। उसे अपनी वास्तविक घटना का संकलन बहुत सोच समझकर करना चाहिए, जिससे उसके द्वारा एक नाटकीय प्रभाव उपस्थित किया जा सके।

1—'The Dark Tower and Other Broadcast Plays'—
—*Rouis Maneica*, page 67.

कभी विशेष अवसरों पर इस प्रकार के रूपकों का आयोजन करना पड़ता है, जैसे स्वतन्त्रता दिवस, गांधी जयन्ती और प्रजातन्त्र दिवस।

रेडियो नाटक

यह सुन्दर, गतिशील कौतूहल तथा जिज्ञासा के कथानक का आधार लेता है। उसका क्षेत्र अत्यन्त संक्षिप्त होता है, इसलिये पहले से ही उसे पूरे नाटक का ढांचा तैयार कर लेना होता है। चूंकि इसके पात्र अदृश्य होते हैं, इसलिये उनकी संख्या कम से कम होनी चाहिए। कहानी की भाँति इसका शीर्षक अत्यन्त उपयुक्त और आकर्षक होना चाहिए, जिससे श्रोता के मन में उत्सुकता और जिज्ञासा की बाढ़ सी आ जाय।

रेडियो के प्रसार ने विचार प्रधान और समस्या प्रधान नाटकों की वृद्धि में अधिक सहयोग दिया है। इसका कारण यह है कि अरूप और सूक्ष्म जितनी सफलता से रेडियो द्वारा प्रसारित हो सकता है, उतना रंगमंच वाले नाटक द्वारा नहीं।

भारत में ब्राडकास्टिंग का पूर्ण प्रचार तेईस जुलाई उन्नीस सौ सत्ताइस से हुआ। उस समय सबसे प्रथम रेलवे स्टेशन का उद्घाटन लार्ड अर्विन द्वारा बम्बई में हुआ था। एक वर्ष बाद मद्रास और कलकत्ते में भी रेडियो स्टेशन खुल गये। १९५० तक रेडियो रखने वालों की संख्या चौहत्तर हजार के करीब हो गई। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद राष्ट्रीय योजना के अन्य अंगों की भाँति रेडियो का भी पूर्ण विकास हो गया है। अनेक प्रसारण केन्द्र चारों ओर खुल रहे हैं। अब रेडियो केवल मनोरंजक का ही नहीं शिक्षा और चरित्र निर्माण का साधन हो गया है। प्रत्येक 'रेडियो स्टेशन से प्रति सप्ताह कम से कम चार नाटक अवश्य ही प्रसारित किए जाते हैं।'

आजकल अनेक नाटककार रेडियो के लिये लिख रहे हैं। इनमें श्री उदय शंकर भट्ट, डा० रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचन्द्र माथुर, चिरंजीत, प्रभाकर माचवे, भगवतीचरण वर्मा, भारत भूषण अग्रवाल, रामसरन शर्मा, राजाराम शास्त्री, सिद्धनाथ कुमार, जगदीशचन्द्र खन्ना, देवराज दिनेश, अनिल कुमार, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, गिरिजाकुमार माथुर, रेवतीशरण शर्मा, भृंग तुपकरी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

पं० उदयशंकर भट्ट, गीति नाट्यों में 'मत्स्य गंधा, राधा और विश्वामित्र रेडियो से प्रसारित हो चुके हैं। इनमें हृदय के द्वन्द्वों तथा मानव मन की आदिम प्रवृत्तियों का सुन्दर चित्रण हुआ है। उन्होंने अपने पुराने नाटकों को भी ध्वनि प्रधान कर रेडियो से प्रसारिस करने योग्य बनाया है। मनु और

हमारे सम्मुख मध्य युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों को हमारे सम्मुख रखते हैं।

डा० रामकुमार वर्मा के अधिकांश एकांकी रेडियो द्वारा सफलता से प्रसारित हो चुके हैं। इनमें 'ऋतुराज', 'दीपदान' रजत रश्मि तथा काम कदला के नाटक हैं। 'कृपाण की धार' और 'कलंक रेखा' पर पुरस्कार मिला है। उनके सामाजिक नाटकों में 'उत्सर्ग', 'सही रास्ता', आशीर्वाद, परीक्षा, अठारह जुलाई की शाम प्रेम जीवन का यथार्थ अत्यन्त नाटकीय ढंग से मुखरित हो उठा है।

विष्णु प्रभाकर ने अपने अधिकांश नाटकों को रचना रेडियों के ही लिए की है, इसे उन्होंने स्वयं निःसंकोच स्वीकार किया है। रेडियों नाटकों की विभिन्न शैलियों के प्रयोग में जितनी अधिक पटुता विष्णुप्रभाकर ने दिखाई है, उतनी अन्य प्रकार की कृतियों में नहीं। इन अनेक शैलियों में रेडियों रूपान्तर-रिपोर्टाज-फेन्टेसी तथा रूपक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्होने प्राय: सभी शैलियों नाटकों की रचना की है। पौराणिक विषयो में गंगा, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, कंसमर्दन की कथा मुख्य हैं। सामयिक समस्याओं को मनोवैज्ञानिक रूप देने में उनकी लेखनी कुशल है। इस प्रकार के नाटकों मे मैं दोषी नहीं हूँ, उपचेतना का छल, शरीर का मोल, श्वेत अन्धकार, दो राह, वह न जा सकी, रात दस बजे, जज का फैसला, दो किनारे, दरिन्दा, सबेरा आदि नाटक हैं। कुछ आधुनिक कहानियों और उपन्यासों का रेडियो रूपान्तर भी उन्होने सफलता से किया है। जैसे गबन, होरी, शतरंज के खिलाड़ी, काबुली वाला, मृगनयनी, संन्यासी मुक्ति मार्ग, सूरदास, 'आश्रिता' (प्राइड ऐंड प्रिजुडिस जेन आस्टिन कृत) का टैकनीक-की दृष्टि से इनके नाटक अत्यन्त सफल हुए हैं।

प्रभाकर माचवे ने सामयिक समस्याओं को हास्य और व्यंग का बाना लेकर अनेक रेडियो नाटकों को प्रस्तुत किया है। वे एक उत्कृष्ट कोटि के विचारक तथा सफल आलोचक है, अतः इनके नाटको में चिन्तन शक्ति की प्रधानता है। इनके रेडियो नाटकों में आत्मा के मंच पर, कवाअदवादी, (संकट पर संकट), श्रमपूजा, अपनी अपनी ढ़पली, कारकुन, गली के मोड़ पर, पागलखाने में, पंचकन्या, यदि हम वे होते, पर्व श्री, वधू चाहिए, गांधी जी की राह पर, पुराने चावल, अधकचरे, रामभरोसे, ललित कला क्लब, क्या यह नारी है, टाइगर, कला किस लिये, एप्रिल फूल, गलत नम्बर आदि। कुछ नाटकों में आधुनिक समाज की मक्कारी तथा बनावट की पोल

उत्तमता से खोली गई है। इस प्रकार के नाटकों में शा और गाल्सवर्दी का तीखा व्यंग्य और तार्किकता और चार्ल्स लैम्ब की सहृदयता का परिचय मिलता है। मराठी नाटक साहित्य की विशेषताओं को भी उन्होंने लाने की चेष्टा की है। इसीलिये उनकी रचनाओं का आदर है।

उपेन्द्रनाथ अश्क ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रतीकों के सहारे, मनोवैज्ञानिक प्रेम सम्बन्धी तथा सामाजिक हास्य और व्यंग्य प्रधान नाटकों को लिखा है। उनके नाटकों में चरित्रों की विविधता, समाज का सूक्ष्म अध्ययन तथा हास्य और व्यंग्य का सफल समन्वय मिलता है। चरित्र चित्रण तथा वातावरण निर्माण में वे अत्यन्त कुशल है। कैद और उड़ान, 'स्वर्ग की झलक' छटाँ बेटा, भंवर अलग अलग रास्ते, अंजो दीदी, लक्ष्मी का स्वागत, पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, बतासिया, मस्केबाजों का स्वर्ग आदि सभी नाटक रेडियो टेकनीक की दृष्टि से सफल उतरे हैं। भँवर एक उत्कृष्ट कोटि का मनोवैज्ञानिक नाटक है। जिसमें सामाजिक परिस्थितियों से ऊवी एक नारी का चित्र है।

राजाराम शास्त्री के रेडियो नाटक विभिन्न विषयक हैं। उनके कलाप्रधान पौराणिक नाटकों में 'देवहूति और सुकन्या है। सामाजिक व्यंग्य प्रधान नाटकों में, सात लड़ी का हार, अदल-बदला, जीजी, बीस मिनट लेट, पत्थर की आँख, ग्राम सुधार, शिकार, आखिरी घूँट, फुलबूट, हमारे शत्रु इत्यादि हैं। इनमें से अधिकांश नाटकों में समाज के नग्न यथार्थ का बहुत ही सुन्दर तथा व्यंग्यपूर्ण चित्रण हुआ है। दैनिक जीवन की विषमताओं तथा दुर्बलताओं को अकित करने में इनकी लेखनी अत्यन्त पटु है।

रेवतीशरण शर्मा ने गत दस वर्षों में पचासों समस्या नाटकों को रेडियो के लिए लिखा है। आँसू, नग्मे की मौत, एक लम्हा पहले, क्रिसमस की एक शाम, भावना प्रधान दुखान्त नाटक हैं। 'बादल छट गये' में नारी स्वतन्त्रता का स्वर है। 'अंधेरा-उजाला' में सौतेली माँ के दुर्व्यवहार, पुनर्विवाह के दोष, तथा बच्चों पर होने वाले सौतेली माँ के अत्याचारों का वर्णन है। 'पलक झपकने' दो में साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव है। दुश्मन' अमावस का अन्धकार तथा उतार-चढ़ाव' में प्रेम सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं तथा दाम्पत्य जीवन की विषमताओं का चित्रण है। 'पत्थर और आँसू' में अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है।

इधर रेडियो स्टेशनों द्वारा अनेक सफल नाटक प्रसारित किये गये हैं। अनिलकुमार तथा सिद्धनाथ कुमार पटना रेडियो स्टेशन के प्रसिद्ध नाटककार हैं। अनिलकुमार अपने नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के नाटकों में मजबूर तथा महामाया विशेष रूप से

उल्लेखनीय है। अनेक नाटकों का रेडियो रूपान्तर भी इन्होंने सफलता से किया है। जिनमें पिरेन्डेलो तथा ओनील के नाटकों का व्यंग्य मिलता है। ग्रहों का निर्णय तथा फागुन के दिन ऐसे ही व्यंग्य प्रधान रेडियो रूपक हैं।

सिद्धनाथ कुमार ने रेडियो नाट्य शिल्प पर एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी है, जिससे उनकी इस दिशा में गहरी जानकारी का अनुभव होता है। उनके काव्य नाटकों में कवि, लौह देवता, सृष्टि की साझ, विकलांगों का देश, बादलों का शाप तथा संघर्ष हैं।

डा० रामकुमार वर्मा, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, धर्मवीर भारती तथा भारत भूषण के कई नाटक लखनऊ इलाहाबाद केन्द्रों से प्रसारित हुए पन्त तथा विश्वम्भर मानव के नाटक उक्त केन्द्रों से अधिक प्रसारित हुए है।

गिरिजाकुमार माथुर एक प्रगतिवादी कवि हैं, इसलिए इनके नाटकों में प्रगतिवादी समस्याओं का माधुर्य दिखाई देता है। फैन्टेसी लिखने में वे बड़े पटु हैं। उनका रेडियो द्वारा खूब प्रसार हुआ है। शान्ति विश्वदेव' में आधुनिक युग की बेकारी तथा मन की घुटन का चित्र बड़ी खूबी से दिखाया गया है। 'मेघ की छाया', गीत गोविन्द और कुमार सम्भव काव्यपूर्ण रेडियो रूपक है।

विनोद रस्तोगी के रेडियो नाटक सामाजिक समस्याओं को लेकर चले हैं, पर उनमें मनोविश्लेषण की प्रधानता है। उसके नवीन नाटकों में 'डाक्टर इसे बचा लो में एक युवक के अवचेतन मन के भीतर की प्रेम की विकृतियों का मनोविश्लेषण किया गया है। 'पैसा, जन्नू मेवा और लड़की' में अनाथालयों, विधवाश्रमों तथा धर्मशालाओं में धर्म की आढ़ में प्रश्रय पाने वाले व्यवभिचार की कथा है। 'पैसा, पत्नी और बच्चा' में एक युवती सेक्स भावना की अतृप्ति के अनैतिक निर्वाण की कथा है। 'मंगल मानव और मशीन' में विज्ञान के द्वारा शान्ति प्रचार का संदेश दिया गया है। इनके और नाटकों में रत्ना की आग- पाप का पुण्य, सोना और मिट्टी, लूप होल, रथ के पहिये, काला दाग, कसम कुरान की, और मुल्ला मर गया, और खोपड़ी और बम हैं। आपके 'अंधेरा फिलसन और पाँव पर पुरस्कृत भी हुआ है।

जगदीशचन्द्र माथुर के रेडियों नाटकों में शिष्ट साहित्यिक कल्पना तथा मनोहर भावुकता के दर्शन होते हैं। इनके रेडियो नाटकों मे 'खंडहर' की पर्याप्त ख्याति है। इसका विषय है, मनोविश्लेषण द्वारा मानसिक विकृतियों तथा रोगों की चिकित्सा, भोर का तारा, विजय की बेला तथा कोणार्क' भी प्रसारित हो चुके है।

अमृतलाल नागर के रेडियो नाटकों में पाश्चात्य मनोविज्ञान का सुन्दर अध्ययन होता है। इनके चार बड़े रेडियो नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय

हैं। १—चक्कर दार सीढ़ियाँ और अंधेरा अवचेतन की गुत्थियों को सुलझाया गया है। इनके नाटकों का कलेवर बहुत ही संक्षिप्त तथा कार्य व्यापार गतिशील होता है। 'अबीर गुलाल' तथा त्योहार में वर्ग संघर्ष का चित्रण है 'पर्दे के पीछे' में फिल्म जग्रत से उत्पन्न सामाजिक बुराइयों का चित्रण है। चन्दन वन में महाकवियों और महापुरुषों की मूर्तियों की ऊपरी पूजा करने वाले समाज के ढोंगी व्यक्तियों की व्यंगपूर्ण आलोचना की गई है। 'बाँकेमल' तथा 'बाँकेमल फिर आ गये' इसके दो प्रधान प्रहसन है। बाँकेमल अनेक बार प्रसारित हुआ है। २—गूँगी, समाज के करोड़ों असहाय तथा परवश नारियों की प्रतीक है, जो युगों से पुरुषों के अत्याचार को बिना जवान खोले सहन करती आ रही है। ३—उतार चढ़ाव में संघर्ष को ही जीवन के उतार चढ़ाव का कारण बताया गया है। ४—'उजाले से पहले में हरप्पा तथा माहनजदारो के काल की प्रागऐतिहासिक संस्कृति का चित्रण किया गया है।

चिरंजीत ने रेडियो शिल्प की सभी शैलियों का प्रयोग अपने नाटकों में किया है। निम्नांकित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१—काव्य प्रधान रेडियो रूपक जिनमें तरल भावुकता की रंगीनी मिलती है, इनमें पंख और पत्थर, केशर की गली और नीरजा प्रसिद्ध है।

२—हास्य प्रधान रूपकों में—'टेलीफोन पर', 'घर का मालिक', 'मानो न मानो' तथा 'दफ्तर जाते समय' अच्छे बन पड़े हैं।

३—रोमांटिक रूपक जिनमें पात्रों की मानसिक गुत्थियों की झलक पाश्चात्य आधार पर की गई है। 'वे आँखें' तथा पतझर ऐसी ही कृतियाँ हैं।

४—रहस्यपूर्ण रेडियो रूपक जिनमें ऐतिहासिक कथानक को रहस्य तथा कल्पना से ओत प्रोत किया गया है। 'महाश्वेता और कादम्बरी' इसी कोटि के रूपक है।

विध्याचल प्रसाद गुप्त कृत भाई बहिन, हार जीत, शकुन्तला सफल रेडियो रूपक है श्री कृष्णकिशोर श्रीवास्तव जी के समस्या नाटकों में स्पष्टवादिता तथा यथार्थ का आँखों देखा अनुभव मिलता है। व्यंग्य नाटकों का प्राण है। आपके नाटकों में पश्चिमी विचारधारा तथा शैली का प्रभाव विशेष है। श्री भृंग तुपकरी ने भी अपने नाटकों में आधुनिक समाज के विकृतियों तथा पाखण्डों की पोल खोली है।

प्रो० जयनाथ नलिन नाटकों के सिद्धान्त पक्ष का सम्यक परिचय रखने के अतिरिक्त, उनके लेखन कला से भी पूर्ण परिचित हैं। उन्होंने अनेक व्यंग्यपूर्ण रेडियो नाटकों को भी लिखा है। जैसे फिलास्फर, मेहमान, कन्वेसिंग, सागर तट पर, फिल्मी कहानी, डिमोक्रेसी, चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी, महा-

लक्ष्मी, चोली, बाबू उधार चन्द, लाटरी, शान्ति सम्मेलन का निर्वाचन, नेता, आदि इनके सफल समस्या नाटक है। इनके नाटकों में चरित्र की प्रधानता है। इनका 'नवाबी सनक' वर्ष का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया। हास्य और व्यंग्य के क्षेत्र में और भी कई लेखकों ने सुन्दर कृतियाँ रेडियो के लिए लिखी हैं। 'मलिक परवेज' का निजामी सिक्का, राजेन्द्रसिंह वेदी का 'क्वार की शादी' 'पाँव की मोच' रामचन्द्र तिवारी का नव प्रभात, जिसमें हार्मोन चिकित्सा और उससे उत्पन्न होने वाली मनोस्थिति को स्पष्ट किया गया है। इसके लिखने मे यच० जी० वेल्स की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है।

पाश्चात्य मनोविश्लेषण को लेकर चलने वाले अनेक महत्वपूर्ण कृतियां रेडियो पर आई हैं। चरित्र की विक्षिप्तावस्था तथा अवचेतन मन की प्रवृत्तियों तथा मानसिक ग्रन्थियाँ का जितना स्पष्ट चित्र इन रेडियो नाटकों में मिलता है, उतना अन्यत्र कम मिलेगा। इस दिशा में नरेश कुमार मेहता का 'नील दिशाए' साँझ का स्वर, सनोवर के फूल, भारत भूषण अग्रवोल का नीद की घाटियाँ, मुहम्मद हसन का महलसरा, फूल और परछाईं, कृष्णकिशोर श्रीवास्तव का 'धुंधले चित्र' जगदीशचन्द्र का 'खंडहर', हरिश्चन्द्र खन्ना का राख और कलिया, माँस और मानस, कायर, मुर्दे जागते है, अपमान अमृतलाल नागर का चक्कर-दार सीढ़ियाँ और अँधेरा है। मोनो लाग (स्वगत नाट्य) का भी सफल रूप रेडियो द्वारा प्रसारित हुआ है। सेठ गोविन्ददास से मोनोलाग की चर्चा हो चुकी है। इसमें एक ही पात्र बोलता है। परन्तु पात्र ऐसा होना चाहिए जिसका जीवन विरोधी भावनाओ के ताने बाने से बुना हुआ होता है। उदाहरण के लिए 'विष्णु प्रभाकर की 'सड़क' में एक ऐसी नायिका का चित्र है, जिसका विवाह उसके पूर्व-प्रेमी से न होकर दूसरे होता है, परन्तु विवाह के पश्चात भी जिसकी स्मृति उसके मन को हलचल तथा उलझन मे डाले रहती है। नायिका के शब्दों में—

"जिसे अपना बनाना चाहती थी, उसे न बना सकी, और जिसने मुझे अपना बनाया, उसके प्रति भी विश्वासघात करती हूँ। विश्वासघात, हाँ, विश्वासघात। नहीं, नहीं, नही कैसे ? उसकी याद करना, खिड़की पर आकर रोज सड़क को देखना, उसके पति के साथ विश्वासघात नहीं तो और क्या है।"

('सड़क')

रंगमंच के नाटकों, प्रसिद्ध उपन्यासों तथा कहानियों के रेडियो रूपान्तर भी हुए है। आजकल के व्यस्त युग मे इस प्रकार के रूपान्तर बड़े ही सुविधा-जनक तथा लाभप्रद हुए है। क्योकि बड़े उपन्यासों तथा नाटको के अपेक्षा वह

हमारे समय और शक्ति की बचत करते हैं। प्रायः सभी प्रसिद्ध उपन्यासकारों की कृतियों का रूपान्तर हुआ है। प्रेमचन्द के गबन; गोदान का रूपान्तर विष्णु प्रभाकर ने किया है।

परिणामतया रेडियो की अनेक शैलियों में आज हिन्दी नाटक की, संख्या बड़े वेग से बढ़ रही है। नवोदित रेडियो लेखकों में, चंद्रकान्त, राजेन्द्र राजन, सुनील शर्मा, मधु, रजनी पाणिकर, के वैद्या, कृष्ण कुकरेजा, सोम, काश्मीरीलाल, हंसकुमार तिवारी, (काली बदरिया), अर्जुन चौबे, काश्यप (सपनो का आसरा) तथा प्रभात जी प्रमुख है। हिन्दी रेडियो नाटकों का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। पाश्चात्य विचारधारा तथा शैली के आधार पर, बालक राम नागर के रेडियो रूपक बच्चों के लिये लिखे गये है। 'खिलौनों की नगरी, शीशे का जूता' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रादेशिक भाषाओं में भी अनेक रेडियों एकांकीकार अपनी कृतियों से साहित्य का भंडार भर रहे हैं। बंगला साहित्य में बुद्धदेव बोस, शरदेन्दु बनर्जी, रमेन्द्र मित्रा तथा वाणी कुमार के रेडियो रूपक सफलता से प्रसारित हुए हैं।

पंजाबी में इस दृष्टि से बलवन्त मार्गी तथा करतारसिंह दुग्गल का नाम अधिक प्रसिद्ध है। गार्गी प्रेम सम्बन्धी दुखान्त घटनाओं को व्यंग्य और मार्मिकता में कुशलता से लपेटा है। 'पतन की बेड़ी' इसी प्रकार रूपक है। दुग्गल पंजाबी के सर्वश्रेष्ठ एकांकी रूपक है जिनकी कृतियाँ बड़े चाव से सुनी जाती है। उनकी रचनाओं में विविधता, रंगीनी तथा मौलिकता के दर्शन होते हैं। 'अमानत' 'लाँघ गये दरिया' सफल रेडियो रूपक है।

मराठी में अन्ना किरलोस्कर हास्य व्यंग्य प्रधान रेडियो रूपकों के लिखने में विशेष कुशल हैं।

गुजराती के के० मुंशी के फैंटेसी रूपकों की चर्चा पिछले पृष्ठों में की जा चुकी है। उनके अतिरिक्त, भानुशंकर व्यास तथा रमण लाल देसाई ने ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों को लेकर तथा चन्द्रवदन मेहता और सुरेश मल ने सामाजिक विषयों द्वारा सफल रेडियो रूपकों की रचना की है।

तामिल में यस० राघवन, सुन्दरम तथा राजगोपालम्, मलयालम् में कृष्ण पिल्लई, डाक्टर नैयर, तेलगू में गोपाल शास्त्री और मलयायम् में नायर बन्धु रेडियो रूपकों की श्री बृद्धि कर रहे हैं।

—:०:—

आठवाँ अध्याय

हिन्दी में गीति-नाट्य

प्रत्येक साहित्य के इतिहास में गद्य से पहिले पद्य लिखा गया। प्राचीन देशों के नाटक-साहित्य में विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम पर ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा कि उनमें पद्य की प्रधानता थी। यदि इसके कारणों पर विचार किया जाय तो उनमें एक प्रमुख कारण यह दिखाई देगा कि प्राचीन नाटक चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के, आदर्शवादी थे। उनका दृष्टिकोण धार्मिक था, अतः उनमें गंभीर वातावरण तथा पात्रों की चर्चा की प्रधानता थी। उदाहरण के लिए देवी, देवता, ईश्वर, राजा महाराजा ही उनके प्रधान चरित्रों में से थे। ज्यों ज्यों उनमें सांसारिकता तथा जीवन की यथार्थता का चित्र आता गया उसका वातावरण तथा विचारों के अभिव्यक्ति का माध्यम भी यथार्थवादी नित्य के व्यवहार का अर्थात् गद्य हो गया [१]। यही कारण था

1—"The older serious drama was religious in origin both in Pagan and Christian terms. In the main, therefore it was dignified in spirit and concerned in dealing either wnh the gods or with heroic men. As it grew more secular, it continued still to exhibit princes and nobles, those removed fiom the common lot and therefore from

कि ग्रीक नाटकों में डायोनिसस की पूजा के लिए ट्रैजेडी का आरंभ सहगायन (कोरस) से प्रारम्भ हुआ। एरिस्टोफेन्स के सुखान्त नाटकों में संवाद, पूर्ण गीतात्मक है।

संस्कृत के नाटक काव्य के अन्तर्गत थे और रस उनका एक प्रधान तत्व था, इसलिए इस रस-परिपाक के लिए गद्य की अपेक्षा पद्य को महत्व दिया गया। वैसे इसका कारण यह भी था कि प्राचीन साहित्य मौखिक था क्योंकि वह स्मृतिगम्य था। इसका कारण यह भी था कि मुद्रण यन्त्रों की सुविधा न थी। फलतः साहित्य की परम्परा पद्य द्वारा ही अधिक दिनों तक अविच्छिन्न रूप से चल सकती थी। यद्यपि पद्य की प्रधानता होते हुए भी संस्कृत नाटकों में एक भी ऐसा नही मिलेगा तो आद्यन्त पद्यमय है। कर्पूरमंजरी या विक्रमोवंशीय ऐसे नाटकों के उदाहरण भी दिये जा सकते है जिनमें गीतों की प्रधानता है, परन्तु वे पूर्ण गीतात्मक भी नहीं हैं।

वास्तव में काव्यों तथा नाटकों में पद्य का बहिष्कार यूरोप में कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों के फलस्वरूप हुआ, जिनमें फ्रास की राज्यक्रान्ति का प्रमुख हाथ रहा है। इस राज्यक्रान्ति ने यूरोप की राजनीति में ही नहीं, साहित्य के क्षेत्र में महान परिवर्तन उपस्थित किया। उच्च वर्ग के विलास, वैभव तथा रसात्मकता का समूल उन्मूलन तथा साधारण वर्ग की भावनाओं, विचारों के फलस्वरूप उन की भाषा का अभ्युदय हुआ। जनतन्त्र के विकास तथा औद्योगिक क्रान्ति ने जनता और उसके विचारों को अग्रसर होने में सहायता दी, प्राचीन विलासिता के रंगीन रेशमी बन्धन कट गये और लोगों के सामने विज्ञान के आविष्कारों ने यथार्थवादी प्रकाश की तीव्र धारा फैलाई, फलतः कल्पना और उसके अभिव्यक्त के माध्यम पद्य का ह्रास तथा गद्य का विकास हुआ।

पाश्चात्य देशों में गीति-नाट्य

अँग्रेजी साहित्य में एलिजाबेथ के काल से ही पद्य-नाटकों का बाहुल्य मिलता है। मारलो, लिली, पील, ग्रीन तथा शेक्सपीयर के नाटकों में पद्य और अधिकतर (ब्लैक वर्स) मुक्त छन्द की प्रधानता थी, परन्तु हम उन्हे हम आजकल के अर्थ में गीति-नाट्य नही कहते। इसके पश्चात् उन्नीसवी शताब्दी में प्रायः

---

common speech, so ancient drama too had been lyrical in its origin and the song element persisted in it of right."

—*Aspects of Modern Drama*—F. W. Chandler, Chapt. Poetic Drama, pp. 372-73.

सभी अँग्रेजी कवियों द्वारा पद्य नाटक लिखे गये । इन कवियो में बायरन, शैली, ब्राउनिंग, टेनिसन के नाम उल्लेखनीय हैं । शैली का "प्रोमिथियस अनबाउन्ड" भी एक गीति-नाट्य है ।

इन कवियों की कृतियों को गीत-नाट्य न कह कर नाट्य-कविता (ड्रेमेटिक पोयम) का नाम दिया जाता है । गीति-नाट्य से मिलती जुलती अँग्रेजी साहित्य में दो अन्य प्रकार की कृतियां मिलती है । अतः हमारे समक्ष इस प्रकार के तीन रूप प्राप्त हुए ।

(१) ड्रेमेटिक पोयम्स (नाट्य-कविता)
(२) क्लोजेट ड्रामा (पाठ्य-नाटक)
(३) पोयटिक ड्रामा (गीति-नाट्य)

इन तीनों नाटकीय स्वरूपों के नामों में भले ही थोड़ा साम्य हो, परन्तु उनके रचनादर्श तथा स्वरूप विधान मे तात्विक दृष्टि से महान अन्तर दिखाई देगा । नाट्य-कविता (दी ड्रेमेटिक पोयम) में काव्य तत्व प्रधान होता है । उसका ढांचा नाटकीय हो सकता है, अर्थात् उसमे संवाद पद्य मे होते हैं, परन्तु उसका आनन्द पढ कर या सुनकर ही उठाया जा सकता है, अभिनय की गुंजाइश उसमें नहीं है । उसमें संवादों के द्वारा घटना और परिस्थिति का विकास होता है और चरित्र काल्पनिक होते हैं । सारांश यह कि उसका बाहरी ढाँचा नाटकीय होता है, परन्तु प्रधानता उसमें रहती है, काव्य तत्व की । अँग्रेजी से इस प्रकार की कृतियों के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं । शैली का 'प्रोमिथियस अनबाउण्ड', ब्राउनिंग का 'दी रिंग एण्ड दी बुक', टेनीसन का 'लाक्सले हाल' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं । शैली, ब्राउनिंग और टेनिसन प्रधानतया कवि हैं, अतः संवाद मात्र दे देने से तथा एक कहानी को नाटकीय रूप दे देने से ही उनकी कृतियाँ नाटक की कोटि में नहीं आतीं । क्योंकि उनका अभिनय नहीं किया जा सकता । अतः ऐसी कृतियों का आनन्द अन्य काव्यों की भाँति पढ़कर या सुनकर ही उठाया जा सकता है ।

पाठ्य-नाटक (क्लोजेट ड्रामा)

ऐसे नाटकों को कहते हैं, जो किसी छोटी गोष्ठी में पढ़ने के लिए ही बनाये गये हैं, अभिनय के तत्व उनमें नही मिलते । इस प्रकार के नाटक लिखने वालों का यह कहना है कि नाटककार स्वांतः सुखाय लिखता है । उसके लिये रंगमंच का प्रश्न इतना ही गौण है जितना पैसे का । इनकी शैली ही अभिनय की कमी को पूरा कर देती है । इसे कक्ष-नाटक भी कहते हैं । इसकी शैली अलंकृत, भाव पक्ष की प्रबलता तथा कार्य व्यापार में शिथिलता लिए होती है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में इस प्रकार के नाटकों की वृद्धि हुई। परन्तु हम उन्हें पाठ्य नाटक नहीं कहेंगे ।

गीति-नाट्य (पोयटिक ड्रामा)

जिसका विशेष अध्ययन इस अध्याय का मन्तव्य है इन दोनों प्रकार के नाटकीय रूपों से यह भिन्न है । इसमें काव्य तथा अभिनय तत्व का पूर्ण समन्वय मिलता है । ऐसे नाटकों का लिखना कला की दृष्टि से अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इनमें नाटकीय तथा काव्य तत्वों का ठीक-ठीक समन्वय होना कठिन होता है । प्रोफेसर चैंडलर के शब्दों में इनमें दोनों तत्वों का सामंजस्य अत्यन्त कलात्मक ढङ्ग से होना चाहिए । अपने इस रूप में वह नाट्य काव्य (ड्रैमेटिक पोयम) और पाठ्य नाटक (क्लोज़ेट ड्रामा) दोनों से भिन्न है [1] । विलियम आर्चर नामक आलोचक ने अँग्रेजी नाटकों के इतिहास का उद्धरण देते हुए बताया है कि सत्तरहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक करीब दो सौ वर्षों से एक भी ऐसा पद्य नाटक नहीं लिखा जा सका, जिसकी ख्याति रंगमंच पर भी पूर्ण रूप से हुई हो । यद्यपि इस ढङ्ग से और भी कई अँग्रेजी नाटककारों ने अपने नाटकों को लिखा है उनमें शैली, ब्राउनिंग, स्विनवर्ग, आस्टिन; राबर्ट ब्रिजेज, हेनरी जोन्स, आर्थर जोन्स आदि प्रसिद्ध हैं । येल यूनिवर्सिटी में दिए गए एक भाषण में जोन्स ने कहा था —'नाटक का सबसे अच्छा उदाहरण गीति-नाट्य है, तथा उनकी सबसे उत्कृष्ट कोटि इसी प्रकार के नाटकों में प्राप्त होती है [2] । परन्तु इतनी प्रशंसा करने के पश्चात् भी उसने अत्यन्त असन्तोष पूर्ण शब्दों में स्वीकार किया कि इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका में इस प्रकार के नाटकों की महान कमी है ।

हाँ, कुछ दिनों पश्चात् अँग्रेजी गीति नाट्यकारों का नाम स्टीफेन्स फिलिप्स तथा विलियम बैटलर इट्स ने ऊँचा किया क्योंकि गीति-नाट्य के क्षेत्र

1—"The poetic drama, then, strictly defined is neither the closet drama nor the dramatic poem. It is a play-poetic and dramatic as to from and content, an acting play in verse. Thus the true poetic drama must be at once theatrical, dramatic and poetical. Needless to say, such plays are the most difficult of all to write for the modern theatre, and the least often actually written."
—*Aspects of Modern Drama*—F. W. Chandler, p 379.

2 "The greatest example of Drama are poetic drama, and the highest schools of drama are and must ever be schools of poetic drama."
—*Aspects of Modern Drama*—F. W. Chandler, p. 280.

में उसका स्थान महत्वपूर्ण है। उसका सबसे प्रसिद्ध गीति-नाट्य 'पेयलो' और फ्रान्सीसका है जिसमें दांते के कथानक का आधार लिया गया है। उसके दूसरे नाटक 'हीरोड' में काव्य पक्ष प्रधान तथा अभिनय पक्ष गौड़ हो गया है। इट्स के नाटकों में भी प्रतीकात्मकता का अधिक प्रयोग है।

इंगलैण्ड की अपेक्षा यूरोप के अन्य देशों में गीति-नाट्य के पनपने के लिए अधिक सफल वातावरण प्राप्त हुआ और वहाँ यह धारा अधिक विकसित हुई। इटली, फ्रांस, जर्मनी तथा स्कैंनडनेविया में गीति-नाट्य अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के लिखे गये। इब्सन, जारसन, स्ट्रिन्डवर्ग, हाप्ट्समैन, सन्डर मैन तथा रोस्टैन्ड ने इस दिशा में विशेष ख्याति प्राप्ति की। इब्सन तथा जारसन ने प्रेम तथा नारी स्वतन्त्रता और उसके अधिकारों की चर्चा की, हाप्ट्समैन तथा सन्डर मैन के गीति-नाट्यों में स्वप्न तथा कल्पनों के प्रतीकों का बाहुल्य है, रोस्टैन्ड ने प्रेम को अपने गीति-नाट्यों का कथानक बनाया।

इधर हाल के अंग्रेजी गीति-नाट्कारों में टी० यस० इलियट तथा किस्टोफर फ्राई का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पिछले कुछ वर्षों से इन दोनों लेखकों की अत्यधिक चर्चा हुई है। इन दोनों में टी० यस० इलियट का स्थान महत्वपूर्ण है। इलियट का कहना है कि शरीर के लिए जैसे आत्मा की स्थिति परमावश्यक है, उसी प्रकार नाटकों के लिये कविता आवश्यक तत्व है। क्योंकि नाटक जीवन के वाह्य रूप का ही नहीं, परन्तु उसके अन्तर्गत का भी चित्रण हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। अतः वहिर्जगत की घटनाओं के प्रकाशन का माध्यम गद्य हो सकता है, परन्तु आन्तरिक जीवन का प्रकाशन पद्य द्वारा ही हो सकता है। शरीर वहिर्जीवन है, आत्मा रागात्मक तत्व है। इसलिये शरीर के लिए जिस प्रकार आत्मा की आवश्यकता है, उसी प्रकार नाटकों के लिए कविता की आवश्यकता है। इतना ही नहीं यदि हम सस्ती यथार्थ घटनाओं का वर्णन करना चाहें तो गद्य नाटकों का आश्रय ढूंढना पड़ेगा, परन्तु स्थायी और विश्वजनीन और शाश्वत वृत्तियों की व्याख्या पद्य द्वारा ही हो सकती है।[1] संसार के जितने बड़े-बड़े नाटककार हुए हैं वे महान् कवि भी रहे हैं।

परन्तु इसके अतिरिक्त इलियट के पद्य नाटकों की भाषा अलंकारिक नहीं है, इसलिये वह अभिनय के अधिक उपयुक्त हैं। इलियट के गीति-नाट्यों की

1—"The tendency at any rate of prose drama is to emphasize and superficial. If we want to get at the permanent and universal we tend to express ourselves in verse."
—*Poetry and Drama*, T. S. Eliot—The Theodor Spencer Momorial Lectures, p. 15.

सफलता का यही कारण भी है। उदाहरण के लिए उसके 'दी वेस्ट लैंड' और 'फोर क्वार्टस' को लिया जा सकता है। उनके अन्य नाटकों में जैसे 'मर-डर इन दी कैथेड्रल' तथा 'फेमिली यूनियन' में प्रकृति का सौन्दर्य, जीवन की क्षुद्रता तथा दार्शनिक चिन्तन प्राप्त होता है। क्रिस्टोफर फ्राई के फर्स्ट वार्न और 'ए फोनिक्स टू-फ्रिक्वेन्ट' तथा 'लेडीज नाट फार वर्किंग' सफल गीति-नाट्यों के उदाहरण हैं। उसी प्रकार रोनार्ड डंकन का 'दिस वे टू टूम्ब' में कविता और रंग मंच दोनों तत्वों का सफल सामंजस्य है।

अब यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या गद्य नाटकों में छन्दोवद्धता का केवल आरोप कर देने ही से वह गीति-नाट्य हो जाता है। उत्तर मिलता है नहीं, क्योंकि काव्य, नाटक और गद्य नाटक मे केवल इतना ही अन्तर नहीं है कि एक के पात्र छन्दोवद्ध भाषा मे बात करते है और दूसरे के गद्य में। इन दोनों स्वरूप विधानों में केवल वाह्य स्वरूप का ही नहीं आन्तरिक सत्य का भी अन्तर है। काव्य नाटक और गद्य नाटक का अन्तर उसकी आत्मा का अन्तर है। काव्य नाटक की आत्मा, उसकी कथावस्तु, उसके पात्र सब के सब काव्यमय होते हैं, जिसका समर्थन एवर क्राम्बी ने भी किया है।[१]

सारांश यह है कि काव्य नाटक का स्वरूप विधान उस पर बाहर से जबर्दस्ती लादा गया तत्व नहीं, वरन् उसकी अनिवार्यता है। फलस्वरूप न किसी गीति-नाट्य को गद्य का परिधान दे देने मात्र से न तो वह पद्य नाटक हो सकता है और न गद्य नाटक को छन्दोवद्ध करके गीति-नाट्य बनाया जा सकता है। काव्य नाटक को गद्य नाटक परिवर्तित कर देने पर उसकी क्या दशा होगी, इसका बहुत सुन्दर उदाहरण मान्टगोमरी ने दिया है। उसका कहना है कि घास और पत्तियों में ओस कण मोती की तरह चमकते हैं, पर उन बूँदों को यदि हाथ में इकट्ठा कर लिया जाय तो वे पानी बन जाते हैं। दोनों का तत्व एक ही है कोई अन्तर नहीं है परन्तु हाथ में इकट्ठी की गई जल-विंदु का इकट्ठा किया गया सौंदर्य नष्ट हो जाता है।

१—'अजन्ता', डा० रणजीत सहानी की रेडियो वार्ता 'आधुनिक अंग्रेजी पद्य नाटक के आधार पर', जुलाई १९५३, पृ० ७५।

2—"The kind of play, I mean is one, in which you reel that the characters themselves are Poetry, and were poetry before they began to speak. It would be a wench for them not so to utter themselves."

—'*English Crictical Essays*' —The Function of Poetry in Drama, Lascelles Abercrambe, p. 258.

'ग्रैनविल वार्कर' का भी कथन है कि उसी नाटक की कला उत्कृष्ट मानी जाती है, जिसमें शारीरिक संघर्ष तथा घटनाओं की व्यंजना कम होती है। गद्य नाटकों में वाह्य संघर्ष की प्रधानता रहती है, अतः कला की दृष्टि से काव्य नाटकों का स्थान अत्यन्त उच्च है। यही कारण है कि उत्कृष्ट कोटि के नाटककार गीति-नाट्यों की ओर अधिक आकृष्ट हुए हैं। कतिपय आलोचकों ने गीति-नाट्यो का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल बताया है। प्रसिद्ध अमेरिकन कथाकार समरसेट माम ने लिखा है कि गद्य नाटक जिनके निर्माण में हमारे जीवन का अधिक समय लगा है बहुत शीघ्र विनष्ट हो जायेंगे।[1]

यही कारण है कि यूरोप मे गीति नाट्यों का प्रचलन उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होता है जब शा और इब्सन के हाथों से गद्य नाटक चरम-सीमा को पहुँच चुके थे। इन गद्य नाटकों की प्रतिक्रिया स्वरूप ही गीति-नाट्यों का प्रादुर्भाव हुआ।

भाव नाट्य

इधर यूरोप में गद्य मे भी गीति-नाट्य लिखे जा रहे है। परन्तु उस गद्य की यह विशेषता है कि उसमें रहस्यात्मकता तथा लाक्षणिकता की प्रधानता रहती है। मैतरलिंक तथा सिंज के नाटक इसी प्रकार के हैं। इस प्रकार के भाव-नाट्य संस्कृत में भी अधिक मिलते हैं। कर्पूर मंजरीं, विक्रमोर्वशीय तथा मालविकाग्नि मित्र इसी प्रकार के नाटकों के उदाहरण हैं, इनमें भावों की तरलता मिलती है। हिन्दी में भी उदयशंकर भट्ट तथा पंत के कुछ नाटकों को इसा कोटि में रखा जा सकता है। इसका विवेचन आगे चल कर किया जायगा। डा० नगेंद्र के शब्दों में गीति-नाट्य तथा भाव-नाट्य दोनों की आत्मा एक ही है। दोनों की घटना की मांसलता नहीं होती, वरन् भावना की सरलता होती है। परन्तु दौनों के माध्यम भिन्न हैं। गीति-नाट्य सर्वथा कविता बद्ध होता है, भाव नाट्यों का माध्यम गद्य होता है[2]।

हिन्दी के गीति-नाट्य

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि आधुनिक हिन्दी के गीति-नाट्य यूरोपीय गीति-नाट्यों की प्रेरणा पर ही लिखे गये है। उनकी शैली,

---

1 - "But I cannot be state my belief that the prorse-drama to which I have given so much of my life, will soon be dead."
Maughn the Summing up Benguin series, p. 101.

२ 'आधुनिक हिन्दी नाटक', डा० नगेंद्र, पृ० १२७।

स्वरूप-विधान तथा रचना कौशल पर पाश्चात्य नाटकों की स्पष्ट छाया है।

हिन्दी का प्रथम गीति-नाट्य प्रसाद का 'करुणालय' है। इसमें राजा हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा को गीति-नाट्य के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। प्रसाद जी की प्रयोगकालीन रचना होने के कारण इसमें कला की दृष्टि से परिपुष्टता नही आ सकी है।गीति-नाट्य में चरित्र चित्रण की सफलता उनके मानसिक संघर्ष के प्रदर्शन में है। 'करुणालय' मे राजा हरिश्चन्द्र के कर्त्तव्य भावना तथा पुत्र-प्रेम का संघर्ष बहुत तीव्र नहीं हो सका है। अन्तर संघर्ष भी सुन्दर नहीं निभ पाया है। कथानक का निर्वाह भी सफल रूप से नहीं हो पाया है। रोहित के चरित्र में मानसिक संघर्ष दिखाने की चेष्टा अवश्य की गई है, पर वह अन्त तक निभ नहीं पाई है। उसके सामने दो समस्यायें हैं, पिता की आज्ञा का पालन दूसरी तरफ अपने प्राण की रक्षा। परन्तु कुछ समय पश्चात भगवान इन्द्र की प्रेरणा से उसने जीवन रक्षा को अधिक महत्व दिया। नाटक के अन्त में शुनःशेप की कथा का भी सफल रीति से निर्वाह नहीं हो पाया है।

'करुणालय' के छन्द विधान की प्रेरणा बंगला के माध्यम से अँग्रेजी नाटकों द्वारा प्राप्त हुई। नाटक के प्रारम्भ में दी गई सूचना द्वारा प्रसाद ने स्पष्ट कर दिया है कि इस नाटक के छन्द विधान पर अँग्रेजी के ब्लैकवर्स तथा बंगला के अमित्राक्षर छन्द का प्रभाव है। कही कहीं दृश्य योजना अत्यन्त सुन्दर हुई है। जैसे एक स्थल पर प्राकृतिक दृश्य—

> नव प्रभात का दृश्य सुखद है, सामने
> उसे बदलता नील तमिस्रा रात्रि से
> जिसमें तारा का भी कुछ न प्रकाश है
> प्रकृति मनोगत भाव सदृश्य जो गुप्त, वह
> कैसा दुखदायक है ?

अनघ

कविवर मैथलीशरण गुप्त द्वारा लिखित गीति-नाट्य है। इसका वाह्य शिल्प विधान गीति-नाट्यों जैसा अवश्य है, परन्तु हम इसे एक संवादात्मक काव्य ही कह सकते है। इसमें युग धर्म की छाप तथा गांधी वादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। 'मुझे है इष्ट जन सेवा' के रूप में गांधीवादी जीवन दर्शन इसका व्यापक आदर्श है, पर गीति-नाट्य के स्वरूप

विधान की कसौटी पर यह खरा नहीं उतर सका है। आंतरिक संघर्ष का चित्रण सफल रूप से नहीं हो पाया है।

उन्मुक्त तथा स्वर्ण विहान

सियाराम शरण का 'उन्मुक्त' तथा हरिकृष्ण प्रेमी का 'स्वर्ण विहान' भी गाधीवादी दर्शन से प्रभावित गीति-नाट्य है, जिनमें उपदेशात्मकता अधिक तथा कला का निर्वाह कम हो पाया है। प्रेमी जी ने 'स्वर्ण विहान' के दस दृश्यों में अपरोक्ष रूप से भारत की राष्ट्रीय जागृति का चित्र उपस्थित किया गया है। परतन्त्रता की मोह-निद्रा में बेसुध भारतीयो के मन मे किस प्रकार गांधी जो ने स्वातन्त्रय भावना को धीरे-धीरे जगा कर, पशु बलि को पराजित करके सत्य की विजय घोष की, यही इस नाटक का कथानक है। नाटक के प्राय: सभी पात्र गाधीवाद के प्रतीक है। मोहन, विजय तथा देशभक्त सन्यासी अत्याचारी राजा की पशु सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति का स्वर ऊँचा करते है। राजकुमारी लालसा की प्रेम भावना का प्रतीक है, परन्तु वह स्वयं क्रान्तिकारियों के साथ मिल कर अत्याचारी राजा के विरोध में खडी होकर पशु बल को चुनौती देती दिखाई देती है। कहीं-कहीं स्फुट दृश्य अच्छे बन पड़े है। एक कृषक युवती की मनोव्यथा जो रुग्ण है, अत्यन्त मार्मिक है।

हम हैं कृषक, जगत को करते है जो जीवन दान।
आज उन्हीं के बालक भूखे, सोये है अनजान।
अगर नहीं दे सकते सबको, अन्न वस्त्र का दान
तो क्यों रचते हैं भारी भव, वे भोले भगवान।

गीतात्मकता का निर्वाह होते हुए भी 'स्वर्ण विहान' में नाट्य तत्व की अवहेलना हुई हैं। फलस्वरूप उसमें अभिनेयतात्मकता नहीं आ पाई है।

शिल्प विधान की दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा के तीन गीति-नाट्य (१) तारा, (२) द्रोपदी और (३) महाकाल अधिक सफल हुए हैं। तारा मे वासना तथा धर्म का अन्त: संघर्ष प्रस्तुत किया गया है। तारा उद्दाम योवन से परिपूर्ण एक युवती है। वह अपनी योवन की स्वाभाविक परन्तु उच्छृंखल भावना को रोक नहीं पाती। परन्तु पतन के मार्ग में भी गिरने से ही वह भयभीत है। तारा के चरित्र मे वासना और विवेक का संघर्ष अत्यंत सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है। तारा बृहस्पति की पत्नी है। एक ओर उसके मन में पूज्य पति के प्रति आराधना का भाव है, दूसरी ओर विलास तथा वासना पूर्ति की अदम्य लालसा में एक अशान्ति तथा हलचल का तूफान उठाए हुए हैं। बृहस्पति के प्रति उसके मन में पति संमान की भावना है, परन्तु उत्कट

वासना तथा प्रेम की भावना की तृप्ति उनसे नहीं हो पाती। उसकी मानसिक अशान्ति तथा हलचल का बड़ा ही सुन्दर चित्र कवि ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है।

'मुझे चाह है रस की, पावन प्रेम की
उस विस्मृति की उस अनन्त संगीत की।
जिसमें निज ममत्व को सहसा भूल कर
हो जाऊँ मैं मग्न, और कर दे मुझे
प्रबल प्रेरणा प्रथम प्रेम की प्रवाहित
मादकता के विस्तृत तीव्र प्रवाह में।

बृहस्पति नैतिकता तथा संयम, नियम का आश्रय लेकर तारा की मानसिक अशान्ति को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु तारा के मनोभावों तथा तर्कों के प्रभाव में वे भी आते दिखाये गये है। पौराणिक नाटक की इस तर्क पूर्ण शैली में एक ओर पुण्य था पाप की समस्या उठाई गई है दूसरी ओर तारा तथा बृहस्पति के मनोवैज्ञानिक भावनाओं का चित्रण फ्रायड की काम प्रवृति के आधार पर किया गया है। तारा की मानसिक वासना आधुनिक संकेत भावना पर आश्रित काम-वासना का प्रतीत है, जो नैतिकता तथा संयम को प्रबल झंझावात की भांति झकझोर देती है। वासना तथा नैतिकता का यह संघर्ष तारा के अतिरिक्त चन्द्रमा के मन में चलता है। नाटक के अन्त में नैतिकता की पराजय तथा वासना को विजय होती है। तारा, चन्द्रमा की ओर आकर्षित होकर अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचती है —

यदि है धर्म मार्ग पर ही करुण व्यथा
तो फिर आओ चले, पतन को ही चलें।
अगर पाप में ही सुख है, तो पाप ही
हम दोनों बन जायं, एक हो कर रहें।

फ्रायड की सेक्स भावना के अतिरिक्त पाप और पुण्य के विवेचन में शेक्सपीयर के हैमलेट की उस विचार धारा का प्रभाव है, जहाँ वह कहता है कि पाप और पुण्य वास्तव में कुछ नही है वरन् चिन्तन शक्ति का परिणाम है[1]। चन्द्रमा के प्रश्न का उत्तर देते हुए बृहस्पति कहते है—

पाप ? पाप क्या है ? मनुष्य की भूल है।
है समाज के नियमों की अवहेलना।

1—There is nothing good or bad but thinking makes it so.
—*Hamlet, Shakspeare*. Act II Sc, II lines 459-60)

एक परिधि है, आकांक्षा की, चाह की।
उसके भीतर रह कर चलना पुण्य है
उसके बाहर गये और बस पाप है।

वर्मा जी के दूसरे गीति-नाट्य 'द्रौपदी' (१९४५) के दस दृश्यों में महाभारत की सम्पूर्ण कथा का चित्र खींचा गया है। नाटक का कलेवर ऐतिहासिक कथानक को लेकर चलता है, परन्तु उसकी आत्मा में पाश्चात्य विचार धारा का स्पष्ट प्रभाव है जो नाटक के नवम् दृश्य के गीत में व्यजित किया गया है। आज का मानव पारस्परिक विरोध, ईर्ष्या तथा अहम की भावना में चूर है, जो विश्व की अशान्ति का मूल कारण है। इसमें आधुनिक मानव की घुटन तथा भाग दौड़ वाली विवशता का अच्छा चित्र रक्खा गया है।

धरा विसुध तड़प रही, गगन अनल उगल रहा
कि आज आन मिट रही, कि आज दर्प जल रहा।
विनाश की लहर उठी
विरोध का पवन बहा
अहम लिये, घृणा लिये, मनुज अबाध चल रहा।

दूसरे नाटक 'महाकाल' (१९५२) के पांच दृश्यों में काल की स्थिरता का गंभीर वर्णन है।

बस ! केवल में ही स्थिर हूँ
मेरी निष्क्रियता का स्पन्दन है, भ्रान्ति ज्ञान
चेतने पराजित हो, और अति थकित हो तुम,
मुझ में लय हो जाओ, बस यह मेरा विधान।

नाटक में उपदेशात्मकता की प्रबलता तथा अभिनेय तत्वों का अभाव है। कार्य व्यापार की गतिशीलता तथा संघर्ष नहीं के बराबर है।

धूप छांह (१९३०) तथा मदनिका (१९४१)

कविवर आरसी प्रसाद सिंह के दो गीति-नाट्य दार्शनिक चिन्तन से ओत-प्रोत हैं। दुःख तथा संकटों से पूर्ण गहन जीवन की यामिनी मे मदनिका शुभ्र विद्युत लेखा की भांति आकर अन्तर्धान हो जाती है। परन्तु सुख के उन क्षणों में जीवन, आनन्द के पारावार में निमज्जित हो जाता है, चतुर्दिक हर्ष की किरणें बिखर जाती है और जीवन का प्रत्येक कण एक अनिवर्चनीय सुषमा की तरंग माला से आन्दोलित हो उठता है। 'धूपछांह' में सुख दुःख से समन्वित जीवन का संपूर्ण चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। दुःख की

बदली के पश्चात् सुख की शुभ्र ज्योत्स्ना गगन मंडल को आलोकित करती है, कुंदन तथा आह के पीछे गीत की मूर्च्छना भरी रहती है। अश्रु तथा हास से घुला मिला जीवन अपनी सतरंगी आभा से जीवन सागर को आलोकित किये रखता हैं, यही इस नाटक का संदेश है। इन दोनो कृतिओं में काव्यत्व अधिक तथा नाटकत्व की मात्रा बहुत कम है।

'मगध महिमा' (१९५१) और 'हिमालय का संदेश'

कविवर दिनकर की ये दोनों कृतियां भावुकता से परिपूर्ण हैं 'मगध महिमा' में मगध के प्राचीन स्वर्णिम वैभव का चित्र अत्यन्त कोमल तथा रस-स्निग्ध भाषा में कवि ने रखा है। यद्यपि इसमे नाटकीयता कम है, परन्तु गीति-तत्व के आधिक्य से वह अभाव खटकता नही है। 'हिमालय संदेश' में भी हिमालय शान्ति तथा महानता का दिव्य प्रतीक माना गया है। उसका मौन एक महान् तपस्वी से भी अधिक मुख है। वह विश्व के संमुख सुमति तथा शांति का आदर्श रखता है।

> शांति चाहते हो तो पहले सुमति शून्य से मांगो।
> नव युग के प्राणियो ! अर्ध्वमुख जागो, जागो, जागो।

'पंचब्टी' प्रसंग

कविवर निराला का पंचबटी प्रसंग चिन्तन प्रधान गीति नाट्य है। राम, सीता, तथा लक्ष्मण को पात्रों के रूप में रखकर प्रकृति सौन्दर्य, त्याग, भक्ति तथा वैराग्य की चर्चा करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। भावुकता तथा कल्पना का प्रयोग कम और मुख्यरूप से दार्शनिक विचारों की प्रधानता है, फलस्वरूप संवाद नीरस तथा शिथिल हो गये हैं।

गीति-नाट्यों के प्रसंग में कविवर पंत के नाटकों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। पंत के सम्बन्ध में यह कहना अनावश्यक है कि उनमे काव्य प्रतिभा अधिक है। नाटकीयता कम। अतः इनके गीति-नाट्यों में आपका कवि रूप ही अधिक प्रस्फुटित हुआ है। 'ज्योत्स्ना' 'रजत शिखर' और 'शिल्पी' इनके तीन काव्य नाटक प्रकाशित हुए हैं। पन्त जी प्रधानतया कवि है, इसलिए उनके गीत नाट्य सौन्दर्य चेतना की ओर विशेष रूप से उन्मुख हैं। प्रकृति के प्रति प्रारम्भ से ही आकर्षित होने के कारण उन्होंने इन कृतियों में उसको प्रमुख स्थान दिया है। पन्त जी के व्यक्तित्व की दो विशेषताए मुख्य रूप से विचारणीय हैं जो उनके काव्यों के अतिरिक्त उनके गीति-नाट्यों में भी मिलती है। एक ओर तो वे कल्पना के माध्यम से काव्य वैभव का संयोजन करते है। दूसरी ओर चिन्तन के माध्यम से मानवता को स्थायी संदेश

देते हैं। विज्ञान तथा भौतिकवादी सृष्टि की नीरसता से व्याकुल मानव को शान्ति तथा सुख की खोज में प्राचीन संस्कृति की ओर उन्मुख देखना ही उनका इष्ट विषय रहा है। वर्तमान युग की आर्थिक तथा राजनीतिक विषमताओं की चक्की के दो पाटों के बीच पिसने वाली सभ्यता को अन्तर्साधना में लीन होने का पावन तथा मनोरम संदेश उन्होंने इन नाटकों में दिया है। उन्होंने इसे स्वयं स्वीकार किया है, उनकी विचार धारा पर मार्क्स, हेगेल, शा और टालस्टाय की विचार धारा का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।

'ज्योत्स्ना' यद्यपि प्रतीक परम्परा का गीति नाट्य है परन्तु इसमें काव्यत्व की प्रधानता है। इसका विचार पक्ष इसकी नाटकीयता को हलका कर देता है। आधुनिक जीवन तथा जगत् की विषमता से दु:खी होकर, नवीन समाज और संस्कृति के निर्माण का लक्ष्य लेकर ज्योत्स्ना स्वर्ग लोक से मृत्युलोक को आती है। स्वप्न, कल्पना, पवन और सुरभि उसके उद्देश्य की सिद्धि मे सहायता प्रदान करते है। मध्य रात्रि की नीरवता में सृष्टि के सुप्त मानव-मानस में ज्योत्स्ना का यह उद्देश्य सफलीभूत होता है। रात्रि के तृतीय पहर में प्रलय का रूप दिखाया गया है जो प्राचीन जीर्णशीर्ण संस्कृति तथा रूढ़ियों पर कुठाराघात करती है। प्रातःकाल की प्रभातवेला में नवीन समाज और सँस्कृति ऊषा की किरणो के साथ फूटती दिखाई गई है। 'ज्योत्स्ना' का संक्षेप में यही विचार पक्ष है, जिसका अनावश्यक विस्तार किया गया है, इसमें फलस्वरूप संवाद बोझिल तथा शिथिल हो गये हैं। कहीं कहीं फूलों के नाम तथा रूप का जो विस्तृत वर्णन दिया गया है; उससे भी नाटक की गतिशीलता तथा अभिनेयता में कमी आ गई है। प्रतीक परम्परा का चिन्तन प्रधान नाटक होने के साथ ही साथ इसमें काव्यात्मक परिस्थिति की प्रधानता है। रंग निर्देश तथा गीतों की रसार्द्र भावुकता ने इस वातावरण को मनोरम रूप प्रदान किया है, यद्यपि रंगमंच की दृष्टि से उसकी सफलता संदेहास्पद है।

'शिल्पी' (१९४८) में कलाकाल के जीवन की यथार्थवादी व्याख्या उपस्थित की गई है। शिल्पी सौन्दर्य जगत् का सृष्टा है। अनेक प्रयत्न करने पर भी आज का कवि अथवा कलाकार भौतिक जीवन की जड़ता तथा एक रसता से उद्विग्न अपने अन्तर के संघर्षों का समाधान नही पाता है। अत: उसकी समस्यायें दिन प्रतिदिन विषम होती जाती है। युग की बदलती हुई परिस्थितियों के कारण यह संघर्ष और भी तीव्र हो गया है फलत: वह उचित मार्ग का शोध नही कर सकता। इन विचारों की प्रधानता से नाटक में जिस बुद्धिवादी तथा चिन्तनशील वातावरण का प्रसरण होने लगता है, उसे समय पर विश्राम देने के लिये पन्त जी ने, सुन्दर इस नाटक में कोमल कल्पना तत्व

का सम्मिश्रण किया है। इसके लिये मधुर गीतों की योजना स्थल स्थल पर नाटक की दार्शनिक महत्ता को कल्पना की तरलता प्रदान करती है। उदाहरण के लिये इसी तरह का एक गीत लीजिये—

आ जाता बसन्त पतझर मे
प्राणों का स्पन्दन प्रस्तर में
जाती दिव्य ज्योति अन्तर में
तम के मूल हिला।
होता जीवन संघर्षण लय
मिटता जरा मरण दुख का भय
हंस उठता नव युग अरुणोदय
भव संग्राम मिला।

गीतात्मकता के साथ नाटकीय तत्वों का भी सुन्दर सामंजस्य शिल्पी में हुआ है। रंग संकेत वातावरण निर्माण में अत्यंत सफल सिद्ध हुआ है। प्रथम दृश्य का निम्नांकित रंग-निर्देश शिल्पी के कक्ष का एक स्वाभाविक और स्पष्ट चित्र सामने रखता है।

"शिल्पी का कला कक्ष, जिसमें विविध आकार की मूर्तियाँ रखी हैं, शिल्पी की शिष्या मूर्तियों को झाड़ पोछकर आलमारियो में संजो रही है, बुद्ध शिल्पी पर्दे की आड़ में एक नवीन प्रतिभा के निर्माण में संलग्न है। वह दत्तचित्त होकर छेनी पर हथौड़ी चला रहा है और बीच में गुनगुनाता जाता है। उसके मन में तीव्र संघर्ष तथा असंतोष की भावना है, क्योंकि—

'नहीं जानता कैसे इस संक्रान्ति काल की।
नित्य बदलती हुई वास्तविकता के पट में,
मूर्तित करूं चिरंतन सत्य मनुज आत्मा का।
परिवर्तित होती जग की वास्तविकता प्रतिदिन
किन्तु नहीं आदर्श बदलता है उस गति से।

शिल्पी के अतिरिक्त इस संग्रह में दो और गीति-नाट्य हैं (१) ध्वंस शेष तथा (२) अप्सरा। 'ध्वंस शेष' में पाश्चात्य साम्यवादी तथा भौतिक वादी विचार धारा के परिणामस्वरूप आधुनिक युग के मानव की विषमता तथा कष्टों की करुण कथा दी गई है जिसके फलस्वरूप आज की संस्कृति एक अभिशाप बन गई है।

'मानव ही है, सर्वाधिक मानव का भक्षक
भौतिक मद से बुद्धि भ्रांत युग जीवी मानव

दानव बन कर आत्मघात कर रहा अन्ध हो
शोषक शोषित में विभक्त अब युग मानवता
जाति पाँति मे वर्ग श्रेणी मे शतशः खंडित
धनिकों का श्रमिकों का धन बल का, जन् बल का
यह अन्तिम दुर्धर्ष समर है, विश्व विनाशक
सामूहिक सहार तिक्त विषफल है, जिसका।'

'अप्सरा' में सृष्टि के आदि से अब तक नारी के मोहक तथा आकर्षक रूप का चित्रण है। इसकी सदाशयता तथा सार्वभौमिकता के चित्रण में फ्रायड के काम मनोविज्ञान की हल्की छाया है।

यह कैसी संगीत दृष्टि हो रही गगन से
यह मेरा ही ध्यान मौन मन गा उठता है

पन्त जी के इन काव्य नाटकों में कल्पना के प्राचूर्य के साथ व्यष्टि तथा समष्टि का सुन्दर संघर्ष भी चित्रित किया गया है। व्यष्टि का संघर्ष आन्तरिक समस्याओं का सृजन करता है, उसी प्रकार समष्टि का संघर्ष बाह्य समस्याओं को जन्म देता है। इनकी विशेषता यह है कि प्रथम का स्वरूप एकान्तिक है, तथा द्वितीय का सामूहिक। इन दोनों से उत्पन्न समस्याओं का चित्रण कवि ने किया है। इस रूप मे पश्चिम की संघर्षमयी तथा विज्ञानवादी संस्कृति से दूर हटने तथा पूर्व की आनन्दवादी तथा शान्तिपूर्ण विचारधारा को अपनाने का मधुर संदेश इस नाटक में दिया है।

गीतात्मक संवाद संघर्षों की अभिव्यक्ति के सबसे उपयुक्त साधन हैं। आधुनिक आलोचको की संमति मे गीति-नाट्य इसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि भावनाओं की तीव्रता के अनुपात में भाषा की लयपूर्णता बढ़ती जाती है। इस विषय में इलियट का कथन पूर्णतः सत्य है कि भावावेग के क्षणो में मानव आत्मा पद्य में ही अपनी अभिव्यक्ति का प्रयास करती है। मनुष्य की भावनाए जितनी ही गहरी और तीव्र होती है उतनी ही लयात्मक भाषा में अपने प्रकाशन के लिये मार्ग ढूंढ़ती है। यह कहना व्यर्थ है कि कविता का युग चला गया और आधुनिक यथार्थ भावना का चित्रण गद्य के माध्यम से ही उपयुक्त रीति से हो सकता है। परन्तु गीति-नाट्यों के अत्यधिक प्रचलन ने इस कथन को भ्रामक सिद्ध कर दिया है। वास्तविकता तो यह है कि "महान् नाट्य कृतियों मे नाटक और कविता की विभाजन रेखाएं, घुली मिली रहती हैं और सर्वोत्कृष्ट नाटककार, महाकवि नहीं तो श्रेष्ठ कवि रहे ही हैं। जीवन के महत् और भावुक क्षणों को उत्कर्षमयी वाणी द्वारा ही बद्ध किया जा सकता है। आधुनिक नाटक ने

अपने को गद्य तक सीमित कर अपनी सवेदना को भी सीमित कर लिया है[1]।

'रजत शिखर' सग्रह मे छः गीति नाट्य है। (१) 'रजत शिखर' (२) 'फूलों का देश', (३) 'उत्तर शती', (४) 'शुभ्र पुरुष', (५) 'विद्युत वासना' और (६) 'शरत् चेतना'। ये सभी नाटक रेडियों से प्रसारित किए जा चुके हैं। 'रजत शिखर' आधुनिक दार्शनिकता मिलती है। इसके पाँच पात्र पांच विचार-धाराओं के प्रतीक है। सुखव्रत का सम्बन्ध मनोविश्लेषण है जो अवचेतन (सब-कान्सस) का मर्म समझाते हुए पाश्चात्य मनोविश्लेषण शास्त्र के सारे सिद्धान्तों को दुहराने लगता है। उसके सिद्धान्तों में फ्रायड, एडलर तथा युंग सबके विचारधाराओं की खिचड़ी है परन्तु उनके प्रकाशन में स्पष्टता नहीं है। अन्त के अरबिन्द दर्शन की चर्चा की गई है। 'फूलों का देश' में विज्ञान को अध्यात्म की दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। चेतना रक्खी गई है। इसमें अध्यात्मवाद, भौतिकवाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद का सामंजस्य स्थापित किया गया है। 'उत्तर शती' में द्वितीय महायुद्ध के संघर्षों का चित्रण है परन्तु नाटक के अन्त में बलवती आशा का संदेश मानवता के संमुख प्रस्तुत किया गया है। 'शुभ्र पुरुष' गांधी जी के गोरव तथा उनके महान् संदेश से संबंधित है। 'विद्युत वासना' में भारतीय स्वाधीनता का विकास प्रस्तुत किया गया है। 'शरत् चेतना' में अनेक ऋतुओं के सौन्दर्य की सुषमा उड़ेल दी गई है, विशेष कर शरत् ऋतु की जो पंत जी के अत्यधिक प्रेम का परिचायक है। इन सभी रूपकों में वर्तमान राजनीलि तथा विज्ञान की विभीषिका का विनाशकारी चित्र उपस्थित किया गया है, अंत में अध्यात्मवाद तथा शान्ति का सुन्दर संदेश दिया गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है पन्त जी प्रधानतया कवि हैं, अतः इन नाटकों में कल्पना तथा संगीत की प्रचुरता है। विचारों की गहनता से इनमें से प्रायः प्रत्येक में नाटकीयता को आघात पहुँचा है।

उदयशंकर भट्ट के भाव नाट्य

इस अध्याय के आरम्भ में गीति-नाट्य तथा भाव-नाट्य की चर्चा की जा चुकी है। परन्तु दोनों के टेकनीक में बहुत बडा अन्तर है। भाव नाट्यो में न कथा की प्रधानता होती है, न घटनाओं की प्रधानता। इनमें अन्तर्जगत

१—आलोचना, पश्चिमी नाटक इब्सन और शा के पश्चात् नाटक अंक, १९५६, पृ० १९९।

के भावों का एकीकरण, उथल पुथल या संघर्ष की प्रधानता रहती है। उसमें शारीरिक प्रदर्शन की अपेक्षा मानसिक चिन्तन की ही प्रधानता होती है। गीति-नाट्य में स्वर और गेय तत्वों की प्रधानता होने के कारण मानसिक अंतर्द्वन्द्व सुचारु रूप से व्यक्त नहीं किये जा सकते, परन्तु इसके विपरीत भाव नाट्यों में मनोधारा एक तरंग की भाँति वाणी से अभिव्यक्त होती है और आंगिक चेष्टाएँ उसी के अनुरूप रंगमंच पर आती जाती है। इसलिए भाव नाट्यों मे प्रतीकों का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। प्रतीकों के प्रयोग से भावों की जितनी ही तीव्र अभिव्यक्ति होगी, उतना ही वह भाव नाट्य सफल तथा कलात्मक होगा।

उदयशंकर भट्ट के भाव नाट्यों में जो गीति प्रधान हैं सात विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१— मत्स्य गंधा (१९३७)
२—विश्वामित्र (१९३८)
३—राधा (१९४१)
४—कालिदास (१९५०)
५—मेघदूत (१९५०)
६—विक्रमोर्वशी (१९५०)
७—अशोक वन बन्दिनी

'मत्स्य गंधा' मे 'पुरुष के ऊपर प्रकृति की विजय दिखाई गई है। नारी सौन्दर्य के आकर्षण से पुरुष सदैव पराजित हुआ है। मत्स्य-गंधा केवल एक चरित्र ही नहीं, प्रत्युक नारी जगत में व्याप्त यौवन का मद मस्त तरंगों का प्रतीक है जिससे वह निरन्तर संघर्ष करती है। अनंग इस भाव नाट्य का दूसरा प्रतीक है जो विश्व के सौन्दर्य का केन्द्रीभूत संचालक बन कर युग युग से प्राणी मात्र को अनुप्राणित तथा उद्वेलित करता रहा है। उसी प्रकार मेनका और राधा नारी जीवन के मधुर प्रेम तथा सुकुमार मनोवृत्तियों की व्यंजना की गई है। इन तीनों में नारी जीवन के मनोवैज्ञानिक संघर्षों तथा अन्तरिक द्वन्द्वों का चित्रण किया गया है। प्रेम के अनन्य भाव को इन तीनों चरित्रों में तीन रूपों मे देखने को प्रयास किया गया है। मत्स्य गंधा में उद्दाम यौवन वासना के रूप में, मेनका में सुकुमार तथा कोमल प्रेम की स्निग्ध भावना के रूप में तथा राधा में सात्विक तथा आदर्श नारी प्रेम के रूप में परिणत हो गई है।

'मत्स्य गंधा' के यौवन कानन में बसंत का कोकिल अकस्मात् आकर धीरे से कूक उठता है। उसकी काकली से उसका प्राण उद्वेलित हो उठता है और कुछ क्षण के लिए वह संयम, नियम तथा धर्म की प्रबलता को भूल सी जाती है। अनंग अबाध कामनाओं का प्रतीक बन कर मूर्तिमान हो उठा है। नाव में बैठे हुए पराशर ऋषि का मन काम वासना से उद्दीप्त हो उठता है और वे मत्स्य गंधा से अपने मन की बात स्पष्टतया कह देते हैं। परन्तु वह ज्ञान तथा संयम का बंधन नहीं तोड पाती। मत्स्य गंधा अनेक सुन्दर तर्कों को देती है। परन्तु पाराशर ऋषि के ऊपर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। यौवन तथा वासना की आँधी कितनी प्रबल होती है, और उसकी उद्दाम धारा में ज्ञान, विज्ञान, तर्क तथा विवेक कितने बेग से बाहर बह जाते हैं, इस समस्या को लेखक ने इस नाटक में अच्छे ढंग से रखा है। पूरे नाटक में सृष्टि के आदि से चलता नारी के प्रति नर का आकर्षण, समाज की नैतिकता तथा बन्धन अन्त में पुरुष की पराजय का चित्र प्रस्तुत किया गया है। मत्स्य गंधा यौवन की अबाध कामना से व्यथित सोचती है।

> मैं तो चाहती हूँ, शुभ्र सुमन की, मंजु माल,
> बन जाऊँ, बन जाऊँ शरद् सुधांशु सी
> और नव हास का विलास लिये फैल जाऊँ।

नाटक का प्रत्येक दृश्य गतिशील हैं। संवाद सोद्देश्य और कार्य व्यापार में भावोन्वेष तथा संघर्ष की सृष्टि करते हैं। गीति नाट्य के काव्यात्मक स्थलों में ऐसे शब्दों का प्रयोग करना कवि के लिए आवश्यक होता है जो आँखों के सामने एक चित्र सा खड़ा कर दें। 'काव्य' का निम्नाङ्कित वर्णन इसी प्रकार के चित्र को प्रस्तुत करता है।

> 'गर्विता सुमालती में मदिर मदिर गन्ध
> यौवन में तृप्तिहीन तृष्णा, पुरोह व्योम
>
> × × ×
>
> किन्तु प्रिय मानव में सैकड़ों बसन्त हास।
> शत शत उद्गार, शत शत हाहाकार।
> प्रणयों में पीड़ित हृदय का अवहार्य छन्द।

इसमें केवल प्रत्यक्ष चित्र योजना (विजुअल इमेजरी) ही नहीं है, वरन् रस स्पर्श, गन्ध समन्वित चित्र का विधान भी हुआ है। शतशत उद्गार, शत शत हाहाकार में ध्वन्यात्मक चित्रोपमा का (आडिटरी इमेज) का समावेश

भी हुआ है।[1] इस प्रकार नाटक को रंगमंच के अनुकूल बनाने में भट्ट जी को विशेष सफलता मिली है।

'विश्वामित्र' मे तप और भोग का घोर संघर्ष दिखाया गया है। इसका मुख्य संदेश नारी सौन्दर्य की विजय तथा पुरुष के गर्व की पराजय है। विश्वामित्र पुरुष के अहं तथा शुष्क ज्ञान का प्रतीक है और मेनका नारी के आकर्षण, सौन्दर्य तथा शक्ति की ज्वाजल्यमान मूर्ति है। उसे अपने सौन्दर्य तथा शक्ति में पूर्ण आत्म विश्वास है, तभी तो वह पुरुष को चुनौती देती हुई कहती है।

सौन्दर्य और रूप हमारे शस्त्र है,
जिनके वश त्रैलोक्य नाचता है, सखी,
यदि चाहूँ तो अभी तपस्वी को उठा,
नाच नचाऊँ जड़ पुतली के काम की।

भट्ट जी का ध्यान मेनकी की शक्ति तथा सौन्दर्य के चित्रण में अधिक लगा है। मेनका के रंग को और गहरा करने के लिए उर्वशी का भी चरित्र लाया गया है। दोनों चरित्रों के सृजन का उद्देश्य नारी के दो रूपों को रखकर विविधता लाना है। उर्वशी पुरुष को पाषाण से भी कठोर समझती है, इस लिए वह सोचती है कि विश्वामित्र की समाधि भंग करना असम्भव है। मेनका ने पुरुष प्रकृति का ठीक-ठीक अध्ययन किया है जो पुरुष अहं के मद में चूर है, तथा स्वार्थ और वासना की कच्ची नींव पर चढ़ने का प्रयत्न करता है, उसका नाश ध्रुव है। "मेनका उर्वशी की भांति नर द्रोहिणी नहीं है, वरन् वह नर को नारीहृदय की प्यास बुझाने का साधन समझती है। नारी के बिना जिस प्रकार पुरुष अपूर्ण है, उसी भांति पुरुष के बिना नारी भी अपूर्ण है। नर और नारी दोनों का एकीकरण सच्ची मनुष्यता है। मेनका सौन्दर्य की प्रतीक है, उसके सौरभोच्छ्वास से तपोवन में बसंत छा जाता है। मादकता भर जाती है। विश्वामित्र की आँखों में सौन्दर्य दर्शन की उन्मत्त लालसा बढ़ जाती है, हृदय किसी अभाव से व्याकुल होने लगता है। अन्त में पुरुष के अहं की पराजय तथा नारी के रूप की विजय होती है। विश्वामित्र स्वयं पराजय का घोष करते हैं।"

सब प्रपंच आध्यात्मक, एक तुम सत्य हो।
यह सौन्दर्य समग्र सृष्टि का मूल है॥

शकुन्तला के जन्म के समय विश्वामित्र को अपनी पराजय का सच्चा बोध होता है। उसके मुँह से सहसा निकल पड़ता है—'देव हा गरल अमृत के

१. 'हिन्दी के गीति-नाट्य', आलोचना—नाटक अंक, डा० बच्चन सिंह पृ० ९५।

धोखे में मैं पी गया'।' जिस स्वर्ग की माया मरीचिका में वे प्रवंचित से पड़े हुए थे, उसको छोड़ कर चल देते हैं। उनका यह पलायन पुरुष का पलायन है, जिसमे नाटक की समाप्ति होती है।

राधा

राधा नाम के भाव-नाट्य मे नारी मनोविज्ञान का अध्ययन पूर्णता को पाया जाता है। राधा कृष्ण की अनन्य प्रेमिका है। कृष्ण के अपार सौन्दर्य और आकर्षण से राधा, बिना मूल्य बिक जाती है। अपनी अतरंग सखी विशाखा से, जो उसके शोक विह्वल होने का कारण पूछती है, यह रहस्य एक दिन प्रकट करती है—

'मैं मग्न थी अपनी लहर में।
पर न जाने दृष्टि पथ मे आ गए वे क्या कहूँ री।'

विशाखा राधा को मर्यादा के पथ के विरुद्ध जाने से रोकती है, पर राधा बेबस और निरुपाय है।

'क्या करूँ, कैसे करूँ, सब कुछ हुआ विपरीत जीवन,
कूप पर जाती कलश ले नीर लेने हेतु जब मैं।
पैर ले जाते मुझे अनजान में यमुना नदी तट।'

अन्त में दोनों सखियाँ कृष्ण की जगत्व्यापी छवि और अलौकिक आकर्षण के सम्मुख नतमस्तक हो जाती हैं। दोनों मर्यादा का पथ छोड़ कृष्ण की मुरली माधुरी से आकर्षित होकर उनसे मिलने दौड़ती हैं, कृष्ण दोनों को ब्रह्म के स्वरूप की महत्ता तथा लौकिक प्रेम की निस्सारता का उपदेश देते है।

'मैं जगत् का पाप, मिथ्याचार, छल, विद्वेष हरने।
और वास्तव धर्म की स्थापना का सुनिश्चित ले
तथा नैतिक प्रेम का ही रूप जग को दिखाने को।
यहाँ आया हूँ महाव्रत, यही मेरा सत्य राधे।
है न मुझमें पाप कोई, शुद्ध सत्य अनन्त अतिबल।

तृतीय दृश्य में राधा कृष्ण मिलन दृश्य दिखाया गया है। इस अवसर पर विवाह, धर्म इत्यादि परम्परा पर भी कृष्ण कुछ आधुनिकता से प्रभावित विचारों को प्रकट करते हैं। कृष्ण के विरह को राधा सहन नहीं कर पाती, उसका रोम रोम व्यथा की पीड़ा से सिक्त हो उठा है। इस अवसर पर राधा की वेदना को भट्ट जी ने अपने कोमल भाव लहरियों द्वारा साकार कर दिया है। उद्धव के स्थान पर नारद राधा को उपदेश देने आते हैं, जिसका उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सम्पूर्ण नाटक राधा के अनन्य प्रेम के उद्गारों से

भरा पड़ा है। गीति तथा नाट्य तत्व दोनों का सफल समन्वय है। प्रभावान्विति का निर्वाह भी यथोचित मात्रा में हुआ है। राधा के हृदय के संघर्ष कवि के गीतों में मुखरित हो उठे है। विशाखा के मुख द्वारा 'नारी मनोविज्ञान के तीव्र अध्ययन का बड़ा ही सुन्दर परिचय भट्ट जी ने दिया है जो आधुनिक गीतों की भावमाला मे पिरोए सुन्दर रत्न हैं।

'हाय, कितना सरल लोक तरल है, नारी हृदय यह।
दूध सा मीठा, धवल निश्चल बनाया कौन विधि ने॥
जो पिघलता स्वयं गल गल प्रेम औ सौन्दर्य पाकर।
देखता कुछ भी न कोई, नियम बन्धन धर्म जग का॥

रेडियो काव्य नाटक

रेडियो काव्य नाटक ने आधुनिक कविता को एक नया आकर्षण प्रदान किया है। वैसे तो आज के सभ्यता के विकास के युग मे कविता का ह्रास हो रहा है, परन्तु यह सब लिखित कविता के लिए ही कहा जा सकता है। रेडियो ने काव्य को नई रोचकता प्रदान कर दी है। इधर रेडियो काव्य नाटको का प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसमें ध्वनियों तथा वाद्य-संगीत के सहारे वातावरण का निर्माण करना पड़ता है। घटनाओं का विवरण देना होता है। श्रोता केवल नाटकों को सुनकर ही आनन्द प्राप्त करते हैं। ध्वनि की योजना ही सबसे मुख्य है।

भट्ट जी के इस प्रकार के नाटकों मे—इधर तीन और भाव नाट्य प्रकाशित हुए हैं, जो रेडियो द्वारा प्रसारित भी हो चुके हैं। (१) कालिदास, (२) मेघदूत और (३) विक्रमोर्वशी। तीनों भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग से सम्बन्धित है, परन्तु टेकनीक की दृष्टि से तीनों अत्यन्त नवीन हैं। 'कालिदास' में महाकवि के हृदय के द्वन्द्व तथा उनकी कृतियों के विकास की झाँकी है। 'मेघदूत' और विक्रमोर्वशी उनकी कृतियों के रूपान्तर है। इनमें मनोहर कल्पना तथा उदार भावनाओं का चित्रण किया गया है। इधर राष्ट्रीय नव निर्माण तथा सुसंस्कृत चेतना को बल देने के लिए भट्ट जी ने (१) गांधी का राम राज्य, (२) एकला चलो रे, (३) अमर अर्चना, (४) हिमालय के शिखर आदि अनेक काव्य रूपकों की रचना की है। रेडियो टेकनीक के उपयोग में भट्ट जी अत्यन्त कुशल और सतर्क कलाकार हैं।

'सृष्टि की साँझ और अन्य काव्य नाटक' (१९५४)

सिद्धनाथ कुमार रेडियो लेखकों में काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहे

हैं। इनका पहला गीति-नाट्य 'कवि' था जिसकी पर्याप्त प्रशंसा हुई। रेडियो नाट्य कला भी आपकी एक आलोचनात्मक पुस्तक निकल चुकी है। प्रस्तुत संग्रह में पांच काव्य नाटक हैं। (१) सृष्टि की सांझ, (२) लौह देवता, (३) संघर्ष, (४) विकलांगो का देश और (५) बालकों की शाम।

इन सभी नाटकों में वातावरण के निर्माण के लिए कोरस का उपयोग किया गया है, जिसका सफल प्रयोग टी० यस० इलियट, क्रिस्टोफर फाई, ईशर वुड तथा लुई मैकनीज ने अपने गीति नाट्यो में किया है। लेखक ने स्वय इन पाश्चात्य लेखको को आधुनिक ढंग के काव्य नाटकों का जन्मदाता माना है।[1] नाटकीय कौतूहल तथा प्रभाव तथा वातावरण के निर्माण सिद्धनाथ जी परम दक्ष है। ध्वनि प्रसारक यन्त्र के इतने निकट रहे है कि उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियों का इन्हें पूरा ज्ञान है। काव्य नाटकों की टेकनीक से इनका पूर्ण परिचय है जो सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों हैं।

'सृष्टि की सांझ' में युद्ध की विभीषिका और उसके कारणों पर विचार किया गया है। प्रश्न उठता है, युद्ध क्यों होते है, उत्तर मिलता है, शान्ति के लिए। प्रथम महायुद्ध बीता, द्वितीय बीता। ससार के आकाश में तृतीय महायुद्ध के बादल मंडरा रहे हैं। लेकिन क्या तृतीय विश्व युद्ध के बाद संसार में शान्ति स्थापित हो जायगी। आखिर युद्ध क्यों होते हैं, उनके निवारण का क्या उपाय है, यही इस नाटक का कथानक है। इस नाटक में केवल चार चरित्र हैं। सेना नायक, अजय, रेखा और महामात्य। वातावरण परमाणु बम युद्ध का है। सारी धरती श्मशान बन गई है। अजय व्यंग से कहता है।

'तुम आँखें खोल जरा देखो।
कालिख पुत गई दिशाओं मे
उठ रहा धुंआँ, पेरिस, लंडन,
याकोहामा, टोकियो नगर की बुझती चिताओं से
वे सभी नगर जो ध्वस्त, जल रहे अभी धू धू कर
उड़ती कैसी दुर्गन्ध आह।
कैसी संड़ाध।
दो चार नहीं, दस बीस नहीं
जल रहे धरा के सभी जीव
ये कई खर्व कंकाल ढेर के ढेर धरा पर बिखरे है।
लगता जैसे सृष्टि की सांझ हो गई।

१— अपना दृष्टिकोण' सृष्टि की सांझ की भूमिका, सिद्धनाथ कुमार।

नाटक में प्राचीन सृष्टि की रूढ़ियों को भस्म करके उसी राख से नई सृष्टि के विकास और उसके आगमन की सूचना दी जाती है।

'लौह देवता' में वर्तमान यांत्रिक युद्ध की विपन्नता का चित्रण है। यन्त्रों का आविष्कार सुख की प्राप्ति के लिये हुआ। परन्तु चतुर्दिक फैली भूख, प्यास, महामारी और बेकारी ने मानव की यह आशा व्यर्थ सिद्ध कर दी है। आज की गरीबी यंत्र-युग की देन है। यंत्र-युग के ही कारण सामाजिक विषमता पनप रही है। इस नाटक में इसी समस्या को सुलझाया गया है। मानव समवेत होकर लौह देवता से प्रार्थना करते हैं कि धरती माता अब अन्न नहीं देती, गरीबी और विपन्नता का राज्य चारों ओर व्याप्त है। लौह देवता उत्तर में मनुपुत्र को आशा बँधाता है और उन्हें एक नवीन शक्ति देता है। उस शक्ति से ट्रैक्टर बनते है, खेती हरी भरी होती है। पानी की शीतल धारा निकलती है। पुजारी इस नाटक के पूंजीवाद का प्रतीक है।

अन्त मे अनेक यंत्रों के आविष्कार से भी मानवता में सुख और शांति की स्थापना नहीं होती और मानव निराश होकर यंत्रों को तोड़ ताड़ कर नष्ट भ्रष्ट कर देना चाहते है, उस समय लौह देवता उन्हें आश्वासन देता है। यंत्र बेकार नहीं, यंत्रों का प्रयोग बेकार हो रहा है। अणु-बम को रचनात्मक प्रयोग करने के उपाय दिए गए हैं।

'संघर्ष' में कलाकार पंकज के संघर्ष की कथा है। पेट की ज्वाला में सच्ची कला का विकास आज कल हो सकना व्यर्थ है।

"विकलांगों का देश' मे सामाजिक विरूपताओं के कारण पर विचार किया गया है—

यहीं पृथ्वी पर विकलाङ्गों का देश भी है।
जहां मनुष्य की शक्तियाँ पूर्णतः विकसित नही हो पातीं।
अन्धे, लूले, बहरे, लंगड़े, कोढ़ी,

चारों ओर उनकें कराहने की आवाज सुनाई दे रही है। मनुष्य मशीन की भाँति जड़वत हो गया है। अन्त में मुक्त धारा पर मुक्त प्राणियों के आने की कामना नाटक में की गई है।

'बादलों का शाप' प्रतीक शैली का गीति-नाट्य है। इस ढंग के नाटको की चर्चा अगले अध्याय में विस्तृत रूप में की जायगी। आज जन समाज पीड़ित है। अभावों के निष्ठुर बन्दीगृह में लोग तड़प रहे है। क्या यह भाग्य का लेख है, या प्रकृति का शाप, यही इस नाटक का कथानक है। नाटक में भाग्यवाद का विश्लेषण है। पृथ्वी पर दुःख का साम्राज्य बादलों के शाप के

कारण है । पृथ्वी अभिशप्त है । टेकनीक की दृष्टि से ये सभी नाटक सफल हैं । कथानक सबका आधुनिक है, शैली भी नवीन है ।

'अन्धा-युग (१९५४) धर्मवीर भारती की एक अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि की कृति है जो गीति-नाट्य के विकास में एक महत्वपूर्ण मंजिल है तथा शैली और विचार दोनों दृष्टि से एक नवीन मार्ग का परिचायक है । पाश्चात्य कोरस की शैली को वातावरण निर्माण के लिये बड़े ही कलात्मक ढङ्ग से प्रयुक्त किया गया है । नाटक की प्रारम्भिक भाव भूमि का परिचय निम्नलिखित छन्द से दिया गया है—

'युद्धोपरान्त
यह अन्धा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माए सब विकृत है ।
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है, दोनों पक्षों में
(सिर्फ कृष्ण मे है साहस सुलझाने का)
शेष अधिकतर हैं, अन्धे ।
पथ भ्रष्ट आत्म हारा विगलित
अपने अंतर की अंध गुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की है ।

इस काव्य नाटक में लेखक ने महाभारत युद्ध के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय लेकर आधुनिक युद्धोत्तर कालीन मानव सभ्यता तथा सकटों के खोखलेपन और आदर्शहीन मूल्यों को प्रतिध्वनित किया है । भूमिका में लेखक ने अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि कुण्ठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता और अन्धापन इनसे हिचकिचाना क्या । इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए हैं । अतः इनमें निडर होकर धँसना चाहिए । फलतः महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं की आड़ में वर्तमान संस्कृति पर लेखक ने अचूक व्यंग्य किया है ।

इस नाटक की शैली में प्राचीन गीति-नाट्यों की अपेक्षा कई नवीन बातें मिलती हैं । एक तो यह पाँच अंकों के विस्तृत कथानक को लेकर चलता है । दूसरे इसके पूर्वक गीति-नाट्य अधिकतर एक अङ्क के होते थे । कृत की दृष्टि से भी इसमें नवीनता मिलती है । अभी तक हिन्दी में गीति-नाट्यों में अतुकान्त छन्दों का प्रयोग होता था, पर इस नाटक में मुक्त वृत्तों का प्रयोग इलियट और आडेन के नाटकों जैसा किया गया है । इससे इनकी नाटकीयता तथा भावाभिव्यक्ति में अधिक सामर्थ्य आ गई है ।

इस नाटक का कथानक अत्यन्त आधुनिक है। युद्ध के पश्चात नैतिकता का ह्रास हो जाता है। मानव आदर्श शून्य होकर अन्धकार में इधर उधर भटकता है। महाभारत युद्ध के भयंकर संहार के पश्चात् यही दशा हुई है। अणु-युद्ध के पश्चात् आज के मानव की भी यही दशा है। नाटक मे महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ मे कृष्ण के मृत्यु तक की कथा का पूरे नाटक में चित्रण किया गया है। अधिक पात्र प्रख्यात हैं। परन्तु कुछ पात्र कल्पित भी है। दो प्रहरी जो घटनाओं और स्थितियों पर अपनी व्याख्याएँ देते चलते हैं बहुत कुछ ग्रीक कोरस के निम्न वर्ग के पात्रों की भाँति हैं। इन पात्रों का प्रतीकात्मक महत्व भी है। रंगमंच विधान अत्यंत सरल है। एक पर्दा पीछे स्थायी रहेगा। मंच की सजावट कम से कम होगी। अंक परिवर्तन या दृश्य परिवर्तन के समय कथा गायन की योजना दी गई है। यह पद्धति लोक नाट्य परम्परा से ली गई है। कथा गायक दो हैं एक पुरुष, दूसरी स्त्री। प्रधान पात्रों में धृतराष्ट्र तथा गान्धारी दोनों अन्धे राज सिंहासन पर आरूढ़ कृतवर्मा, अश्वत्थामा, संजय, विदुर, युधिष्ठिर, व्यास और कृष्ण है।

"इस नाटक में बीसवीं सदी के पतनोन्मुखी संस्कृति के प्रतीक ऐतिहासिक पात्रों के रूप में उपस्थित युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र—नेतृ वर्ग की अन्धी शक्ति उपासना—तथा विश्व पर एकाधिकार कर संकुचित और स्वार्थी भावना के प्रतीक है। एक विजयी वर्ग और दूसरा विजित, परन्तु दोनों ही असंतुष्ट हैं। अश्वत्थामा प्रतिहिंसक पशुत्व और न्यूराटिक युद्धलिप्सा के पोषक है। वध उनकी नीति नहीं। यह मनोग्रन्थि है क्योंकि संहार से उन्हे मानसिक तृप्ति हो जाती हैं। उनके ब्रह्मास्त्र प्रयोग में अणु विस्फोट की ओर संकेत किया है। इस नाटक पर इलियट के वेस्टलैंड का प्रभाव है। वेस्ट लैंड में अन्ध आस्थाहीन मानव संस्कृति की आलोचना की गई है।

कौरव नगरी के सिंहासन के चित्र से प्रथम अंक खुलता है—

'अन्धों से शोभित था, युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में, विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन
जो कुछ कोमल था, वह हार गया, द्वापर युग बीत गया।

दो प्रहरी—

आज कौरव वधुयें विधवा है।
लाखों गिद्ध कुरुक्षेत्र को जाते है—अपशकुन
अन्तःपुर में गान्धारी—धृतराष्ट्र शोकित है।

गान्धारी अपने पति से इन सत्रह दिनों के भयानक युद्ध के दुष्परिणाम का चित्र खींचती है।

'सत्रह दिन के अन्दर
मेरे सब पुत्र एक एक कर के मारे गये।
अपने इन हाथों से मैंने उन फूलों सी वधुओं की कलाई से।
चूड़ियाँ उतारी हैं।
अपने इस आँचल से सिन्दूर की रेखायें पोछीं हैं।

गान्धारी शोकमग्न पुत्रो की ज्वाला से दग्ध श्रीकृष्ण को शाप देती है।

'प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो, सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायगा।
तुम खुद उनका विनाश करके, कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे।
प्रभु हो।
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।

दुर्योधन अश्वत्थामा का तिलक अभिषेक करके उसी को राज्य भार सौंपता है उससे प्रतिशोध का समाचार सुनने को व्याकुल है। अश्वत्थामा अर्द्ध रात्रि में जाकर सोई हुई पांडव स्त्रियों के पेट के बच्चों को मार डालता है।

'पागल कुंजर से, कमल कली की भाँति
छोड़ूगा नहीं उत्तरा को भी
जिसमें गर्भित है अभिमन्यु पुत्र
पांडव कुल का भविष्य।

अन्त में कृष्ण अश्वत्थामा को शाप देते हैं—

विदुर—माता उसे जाने दो
वह अश्वत्थामा है।
दण्ड उसे दिया, भ्रूण हत्या का कृष्ण ने
शाप दिया उनको कि जीवित रहेगा वह-लेकिन
हमेशा जख्म ताजा रहेगा, प्रभु चक्र
उसके तन पर, रक्त सना घूमेगा
अंगों पर फोड़े लिये
गले हुए जख्मों पर चिपटी हुई हड्डियाँ
पीप, थूक, कफ से सना जीवित रहेगा वह।

इसी प्रकार का वीभत्स और कुत्सित चित्र पूरे नाटक में मिलता है। यादवों का नाश, उसके पश्चात् कृष्ण की मृत्यु, पांडवों का हिमालय प्रस्थान, धृतराष्ट्र और गान्धारी का वन प्रस्थान, युयुत्सु की आत्महत्या, सर्वत्र अमंगल, शोक और घृणा का साम्राज्य फैल जाता है।

इस प्रकार के विद्रूप तथा विकृत का चित्रण सात्रे तथा अन्य अति यथार्थ-वादी लेखकों के आधार पर हुआ है, जिनकी कृतियों में असुन्दर तथा कुण्ठा मनोदौर्बल्य और आत्महन्तामयी निराशा और खीझ का चित्रण आज के लिये एक समस्या बन गई है। रोंदा और एफलाइन के शिल्प, पिकासो और पाल्कली के चित्र ज्वायस और सात्रे के उपन्यास और नाटक इसी प्रकार की निराशा, कुण्ठा तथा अवसाद को लेकर चल रहे हैं। सात्रे के 'लमोचे' नामक नाटक की चर्चा पिछले अध्याय मे की जा चुकी है जिसमें एक उबा डालने वाली मर्मान्तिक पीड़ा का चित्रण अत्यन्त नाटकीय ढंग से किया गया है। यहाँ यह कहना आवश्यक न होगा कि 'भारती' का अन्धा युग योरप के इन्हीं अति यथार्थवादी कलाकारों का स्वर भरता है। इसमें भी उसी निराशा और खीझ का वातावरण है जो अणु युग के पश्चात् आज की संस्कृति की व्यापक विशेषता है। ओ नील के नाटकों की भाँति निराशा और आत्महत्या से 'अन्धा युग' भरा पड़ा है। नाटक के अन्त में युयुत्सु, गाँधारी, धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिर की आत्महत्या इसका सबल प्रमाण है। सात्रे के 'ल मोचे' में एक ग्रीक कथानक का आधार लेकर आधुनिक निराशा तथा कुण्ठा के चित्रण के लिये लेखक ने भाव भूमि तैयार की है, उसी प्रकार अन्धा युग में महाभारत युद्ध के पश्चात् की घटनाओं को आधार मान कर आधुनिक संस्कृत की विद्रूपता अनैतिकता और अमर्यादा का चित्रण करने के लिये लेखक ने अच्छा साधन निकाल लिया है। अश्वत्थामा का यह कथन--

> 'वध मेरे लिये नहीं रही नीति
> वह है अब मेरे लिये मनोग्रन्थि'

आधुनिक मनोविज्ञान की शब्दावली और भावना का प्रभाव स्पष्ट करता युधिष्ठिर के प्रहरियों का उनके शासन के संबंध में वार्तालाप आज के युग पर भी लागू है।

'शासक बदले
स्थितियाँ बिलकुल वैसी ही हैं।
इससे तो पहले ही के शासक अच्छे थे।

अच्छे थे ।

लेकिन वे शासन तो करते थे ।'

उक्त कथन द्वारा आधुनिक शासन अव्यवस्था, तथा अराजकता पर कठोर व्यंग्य किया गया है ।

फलतः नाटकीयता, रंगमंचीय प्रभाव तथा टेकनीक और विषय सभी दृष्टियों से भारतीय जी का 'अन्धा युग एक नवीन मोड़ गीति-नाट्यो के क्षेत्र में स्थापित करता है जिस पर पाश्चात्य विचार धारा और शैली की विशेष छाप है । उनका दूसरा नाटक 'नदी प्यासी थी' में भी यही नवीनता है ।

इधर गीति-नाट्यों के क्षेत्र में नवीन शैलियों और विचारधाराओं का अभ्युदय हो रहा है । श्रीमती उषा देवी मित्रा का 'प्रथम छाया' सुन्दर भाव नाटिका है । श्री केदारनाथ मिश्र का 'काल दहन' पौरुष तथा आशा का स्वस्थ संदेश हमारे संमुख प्रस्तुत करता है । गिरिजाकुमार माथुर का 'मेघ की छाया' मेघदूत के आधार पर लिखा गया सुन्दर गीति-नाट्य है । इसी तरह अनेक उनके काव्य रूपक जो रेडियो के लिये लिखे गए हैं उनमें मदनोत्सव बसंत ऋतु का रूपक, बकुल-मुकुल 'वर्षा ऋतु का रूपक' खून की रेखायें 'सांप्रदायिक दंगों पर आधार गीति-रूपक हैं । उसी तरह अस्थाना जी का गीति रूपक 'हुई रात जूहा मुसकाई' रेडियो से सफलता से प्रसारित हो चुका है । सेठ गोविन्द दास का 'स्नेह और स्वर्ग' चिरंजीत का 'देव और मानव' एस० एन० चौबे का उद्धव संदेश और विद्यापति' नरेश कुमार मेहता का 'अग्नि देवता' 'सलाम मछली' शहरी का 'अनार कली' रेडियों से प्रसारित गीति नाटकों के सुन्दर उदाहरण हैं । चरित्रान्कन की दृष्टि से भी इन काव्य-नाटकों में गद्य नाटकों की अपेक्षा अधिक सफलता देखी जाती है । क्योंकि काव्य नाटक की भाषा चित्रात्मक तथा अलंकारमय होती है । गद्य किसी चरित्र का बाहरी रूप ही प्रस्तुत कर सकता है, जो कृत्रिम होता है । चरित्र को अन्तर की झाँकी पद्य द्वारा ही संभव है । यही कारण है कि शेक्सपीयर के हैमलेट और मैकबेथ में स्वगत भाषणों में चरित्रों का जो मनोहर अन्तर्द्वन्द दिखाई देता है, वह इब्सन आदि के नाटकों में नहीं प्राप्त होता । गद्य बहिर्जगत की घटनाओं का माध्यम भले ही हो, अन्तर्जगत तथा जीवन की स्थायी वृत्तियों का चित्रण गीति नाट्यों द्वारा ही संभव है ।

सारांश

परिणामतया हिन्दी का गीति नाट्य उदयशंकर भट्ट के बाद से अब तक आधुनिक पश्चिमी गीति-नाट्यकारों की छाया में पनप रहा है । विषय की दृष्टि से उनमें नवीनता तथा मौलिकता हो सकती है, परन्तु शैली पर पश्चिमी

प्रभाव स्पष्ट है। हाँ, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि सच्चे अर्थों में गीति नाट्य की संज्ञा उनमें बहुत कम कृतियों को दी जा सकती है। क्योंकि गीतात्मकता के साथ उनमें नाटकीय तत्वों का मेल इने गिने रूपकों में ही प्राप्त हो सकता है। भट्ट जी के नाटकों के अतिरिक्त, सिद्धनाथ कुमार का 'सृष्टि की सांझ' तथा अन्य नाटक, धर्मवीर भारती का 'अन्धा युग' इस दृष्टि से अवश्य सफल रचनाएँ है, क्योंकि ध्वनि योजना का भी ध्यान इनमें रखा गया है और अत्यन्त सफलता से प्रसारित की जा चुकी है। इस तरह रेडियो द्वारा प्रसारित गीत-नाट्यों का भविष्य हिन्दी के लिये अब भी बहुत उज्ज्वल है। कविता का ह्रास युग होते हुए भी रेडियो गीत रूपकों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, अत: कविता की ओर हमे विशेष निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

—: o :—

नवाँ अध्याय

हिन्दी में नाट्य–रूपक तथा प्रतीक परम्परा के नाटक

वैसे तो संस्कृत ग्रन्थों में रूपक शब्द का प्रयोग नाटक के अनेक भेद प्रभेदों के लिये हुआ है, परन्तु यहाँ रूपक शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के एलेगरिकल ड्रामा के अर्थ में किया गया है। जहाँ कथा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दुहरे अर्थों को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक चले, वहाँ नाट्य रूपक की योजना होती है। इन दुहरे अर्थों को वहन करने के लिये नाटककार और कवि को प्रतीकों का प्रयोग करना पड़ता है। कभी-कभी यह प्रतीक योजना आद्यन्त बनी रहती है। कभी-कभी इस प्रकार के नाटकों को प्रतीक परम्परा के नाटक या प्रतीकवादी नाटक (सिम्बालिक प्लेज) भी आलोचक कह बैठते हैं। परन्तु इस प्रकार के नाटकों का लिखना अत्यन्त कठिन है, जिसमें प्रारम्भ से अन्त तक दुहरे अर्थों की प्रतीक योजना दिखाई दे सके, उसके अभाव में ऐसा हो जाता है कि कभी-कभी बाहरी अर्थ ही प्रधान, कभी भीतरी अर्थ गौण हो जाता है।[१]

---

1. It is indced difficult. in the case of the completely symbolic play or in the case of incidentally symbolic play to preserve a proper balance between the surface and over hanging meening. So in Materlinek symbolic. drama. The Blind', the underlying meening is only

सभी देशों के साहित्य में धर्म की विवेचना के लिये रूपकों का सहारा लिया गया है। ऋग्वेद, महाभारत तथा पुराणों में आध्यात्मिक तत्वों की विवेचना रूपकों के ही आधार पर हुई है। बौद्ध साहित्य में अश्वघोष का 'सारिपुत्र प्रकरण' नाट्य रूपक का अत्यन्त सफल उदाहरण है। डा० कीथ ने भी अपने संस्कृत नाटक के इतिहास मे इसका उल्लेख किया है।[1] इस नाटक में पहली बार भावो और वृत्तियों के साकार रूप रंगमंच पर आकर साधारण पात्रों के साथ बातचीत करते है। इनमे बुद्धि, धैर्य, कीर्ति तथा क्षमा आदि वृत्तियाँ प्रधान हैं, जिनका मूर्तिमान स्वरूप नाटक में दिखाया गया है। कुछ काल पश्चात् भगवान बुद्ध आकर नाटक की आध्यात्मिक तथा दार्शनिक जिज्ञासा का समाधान करते हैं, इस प्रकार नाटक का कथानक समाप्त हो जाता है।

ग्यारहवीं शताब्दी मे संस्कृत साहित्य में कृष्णदत्त मिश्र ने प्रसिद्ध नाट्य रूपक 'प्रबोध चन्द्रोदय' लिखा जिसका व्यापक प्रभाव बहुत दिनों तक संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में बना रहा। संस्कृत नाटकों में भावों और वृतियों के मानवी कृत रूप प्रस्तुत करने का श्री गणेश इसी ग्रन्थ द्वारा हुआ। इसकी दार्शनिकता तथा नैतिकता के कारण इसकी व्यापक लोकप्रियता बढ़ी, क्योंकि आगे चल कर इसका पर्याप्त अनुकरण हुआ। इस नाटक का मुख्य ध्येय धार्मिक और दार्शनिक है। अद्वैत वेदान्त तथा वैष्णव भक्ति का समन्वय तथा जैन, बौद्ध, सोम और चार्वाक इत्यादि मतों का निराकरण इसका प्रतिपाद्य विषय है। सांसारिक माया तथा वासना के बंधन में ग्रस्त हो जाने के कारण पुरुष सच्चे ज्ञान की उपलब्धि नहीं कर पाता। शुद्ध विवेक ही सच्चे ज्ञानोदय के विकास में सहायक होता है, क्योंकि विवेक से ही माया और मोह का नाश होता है। इसलिये, इस नाटक में एक ओर मोह, विवेक, प्रबोध; विद्या, मति और श्रद्धा जैसे भावों के मूर्तिमान रूप हैं, दूसरी ओर बौद्ध तथा जैन धर्म के अनुयायी भी यथार्थ पात्रों के रूप में दिखाये गये है। जो हो, इस नाटक की दार्शनिकता ने बहुत दिन तक लोगों का ध्यान अपनी ओर अकर्षित रक्खा।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कृष्ण मिश्र के प्रबोध चन्द्रोदय का संस्कृत साहित्य में आगे चलकर पर्याप्त रूप से अनुकरण हुआ। तेरहवीं शताब्दी में यशपाल ने 'मोहराज पराजय' इसी के आधार पर लिखा। चौदहवीं शताब्दी मे वैंकट नाथ ने 'संकल्प सूर्योदय' सोलहवी शताब्दी में कवि कर्णपूर ने 'चैतन्य चन्द्रोदय' तथा सत्तरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में विद्या परिणय तथा

hinted not made directly manifest.
'*The Art of Drama*'—Sentilley and Millet, page 164.

१—द संस्कृत ड्रामा—ए० बी० कीथ, पृ० ८३।

जीवनानन्द नामक नाट्य रूपक प्रबोध चन्द्रोदय से ही मिलते जुलते लिखे गये, जिनका प्रधान उद्देश्य वैराग्योत्पादन तथा सांसारिकता से निवृत्ति कराना है। इन रूपकों में नाटकीयता कम परन्तु दार्शनिकता तथा धार्मिकता का पुट अधिक मात्रा में उपस्थित था।

पाश्चात्य देशों में रूपक के आदिम उदाहरण क्रिश्चियन पैरेबुल्स है, जिनमें बाइबिल के उपदेशों की व्याख्या साधारण कथा कहानियों के रूप में की जाती है। नाट्य रूपकों का सबसे उत्कृष्ट रूप मारेलिटी (मारेलिटी प्लेज) में मिलता है, जिसमें चरित्र मानव वृत्तियों के मूर्तिमान रूप बनकर आते हैं। सत्य, असत्य, सदगुण और दुर्गण, मोह तथा ज्ञान इन पात्रों में प्रधान होते थे। यूरोप में इस प्रकार के नाटकों का चक्र (साइकिल्स) बहुत दिनों तक चलता रहा। पहले के नाटक गिर्जाघरों में खेले जाते थे, बाद में व्यापारी संस्थायें, इन्हें घूम-घूम कर खेलने लगीं। इन नाटकों के अनेक रूप मिस्टरी मिरेकिल नाटकों के रूप में हुए, जिनमें ईसाई सन्तों तथा महात्माओं के जीवन चरित्र का चित्र दिया जाने लगा। सोलहवीं शताब्दी के वास्तविक नाटकों का जन्म इन्हीं धार्मिक नाटकों से हुआ। परन्तु यहाँ पर नाट्य रूपकों के सम्बन्ध में ही विचार करना समीचीन है। इन नाट्य रूपकों का शुद्ध रूप मारेलिटी नाटकों में ही प्राप्त होता है।

यूरोप में तेरहवीं शताब्दी में फ्रांस में रोमादला रोज की गणना नाट्य रूपकों के उल्लेख के प्रसंग में की जा सकती है। इसके पश्चात् अंग्रेजी साहित्य के दो प्रसिद्ध रूपक फेयरी क्वीन स्पेन्सर द्वारा लिखित तथा जान बनयन का द पिलग्रिम्स प्राग्रेस लिखा गया है। स्पेन्सर अपने इस महाकाव्य में फ्यूडल काल के सामंतीय वैभव का चित्रण करता है। पिलग्रिम्स प्राग्रेस एक धार्मिक रूपक है। सत्तरहवीं शताब्दी में जब यूरोपीय देशों की जनसंख्या अधिक बढ़ गई और अधिक लोगों के जीवन यापन की सुविधा के लिये स्थान और अवसर का अभाव इन देशों मे मालूम किया जाने लगा। फलतः सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य में, अनेक जातियों का एक "दल में फ्लावर" नामक एक जहाज पर बैठकर अमेरिका के लिये रवाना हुआ। परन्तु इस कथा का आध्यात्मिक अर्थ इस रूप में बैठाया गया है कि अनेक जीवात्मायें अपने स्वर्गीय पिता से मिलने के लिये इस लोक को छोड़ कर स्वर्ग लोक में जा रही हैं। पिलग्रिम्स प्राग्रेस नामक रूपक का यही आध्यात्मिक अर्थ है। रूपकों के दो स्वरूप मोटे तौर से हमारे सामने दिखाई देते हैं। एक तो मनुष्य की भावना और अन्तर्वृत्तियाँ मानवीकरण रूप मे पात्रों का आकार धारण करके हमारे सामने आती है, रूपक या यही स्वरूप प्रबोध चन्द्रोदय या मारेलिटी नाटकों में मिलता

है, जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। रूपक का दूसरा रूप वह है, जिसमें चरित्र साधारण स्त्री और पुरुष होते है, परन्तु उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता, वे भावनाओं के प्रतीक मात्र हैं। आधुनिक युग मे, इस प्रकार के रूपकों का अधिक विकास हुआ है। आजकल समस्या नाटकों का अधिक प्रचलन है। ये समस्या नाटक भी एक प्रकार से रूपक ही है, क्योंकि इनमें बहुत से पात्र लेखक के सिद्धान्तों के प्रतीक बन कर आते हैं। यूरोप में, इस प्रकार के नाटकों का अधिक विकास हुआ है। इस प्रकार के नाट्य-रूपकों के लिखने वालों में इब्सन, ईट्स, मैटरलिंक, हाप्टमैन, स्ट्रिन्ड वर्ग, रोस्टैण्ड तथा सन्डरमैन हैं।

इब्सन के नाटको की चर्चा करते समय यह बताया जा चुका है, कि वह केवल यथार्थवादी ही नहीं, वरन् प्रतीकवादी नाटककार है। वह जगत के ऊपरी चित्रण से ही सन्तुष्ट नहीं होता, वरन् जीवन की घटनाओं में गहरे अर्थ को देखता और दिखाता है। उसके अन्तिम नाटकों में प्रायः सभी में पात्र किसी न किसी गहरे अर्थ और सिद्धान्त को व्यक्त करते हैं, अतः उनमें प्रतीकात्मक प्रयोग अधिक हुए हैं। उदाहरण के लिये 'रोजमर शोम' में सफेद घोड़े परिवार के अंधविश्वास तथा मृत्यु की सूचना देने वाले हैं। 'गुडिया का घर' में दरवाजे का खुलना नारी स्वतन्त्रता के प्रतीक के अर्थ में रखा गया है। समाज के स्तंभ (द पिलर्स आफ सोसायटी) में जहाज का प्रयोग बर्नीक के अव्यवस्थित जीवन का सूचक है। हेडा गैवलर में थिया और हेडा का हस्तलेख के लिये लड़ना लववर्ग के मन के सत और असत के अन्तर्द्वन्द्व का सूचक है। जंगली मुर्गा (द वाइल्ड डक) में लेखक का निर्णय यह है कि मनुष्य स्वतंत्र वातावरण में उत्पन्न होता है, परन्तु उसे अपने ही चरित्र की कमजोरियों के कारण पराधीनता तथा दुख के बंधनों में रहना पड़ता है। उसके दूसरे नाटक 'द लेडी, फ्राम द सी' में समुद्र का आकर्षण मनुष्य की आत्मा में रूढ़िप्रियता तथा परम्परा पालन के प्रतिक्रिया स्वरूप है। इब्सन के अन्तिम नाटक 'जब हम मुर्दे जाग पड़ते है' (व्हेन वी डीड अवेकेन') में प्रतीक का निर्वाह अत्यन्त सफल रूप से हुआ है। इसमें कला के लिए कला तथा कला के लिए जीवन इन दो आदर्शों का सुन्दर संघर्ष रूबेक नामक चित्रकार के उदाहरण से दिखाया गया है। जब तक रूबेक सौंदर्य और आदर्श का पुजारी रहा उसकी कला और शिल्प का विकास हुआ, ज्योंही वह यथार्थ के फेर में पड़ा, उसके कला का ह्रास होता गया। इस नाटक द्वारा लेखक ने स्वयं अपने जीवन की गाथा को स्पष्ट किया है।

प्रतीको के प्रयोग के लिए मैटरलिंक प्रसिद्ध हैं। उनके नाटकों मे आत्मा

का संघर्ष प्रतिमान् हो उठता है। उनके आरम्भिक नाटकों में द इन्ट्रूडर, द सैवन प्रिन्सेसेस तथा मेलीसेन्डा है। प्रतीक परम्परा का सबसे सुन्दर निर्वाह मेटरलिंक के 'ब्लू अर्ड' नामक नाटक में हुआ है। इसका प्रभाव, पन्त के 'ज्योत्स्ना' नामक नाटक पर भी पड़ा है, जैसा कि पन्त जी ने इसे स्वयं स्वीकार किया है। इस नाटक का कथानक अत्यन्त सरल है। मिटिल और टिटिल नामक एक लकड़हारे के दो बच्चे, बड़े दिन की संध्या को, नीले पक्षी, (प्रसन्नता) की खोज करते हैं। उनको परी का एक वरदान मिला था, जिसके द्वारा भूत, भविष्य की सारी बातें वे जान सकते थे। वे इधर उधर नीले पक्षी की खोज में भटकते है। स्मृति की दुनियाँ में टटोलते है। परन्तु उनकी खोज व्यर्थ सिद्ध होती है। छोटे बच्चों ने, पिंजड़े में एक बत्तख पाल रखा है। कुछ दिनों बाद, उन्हें यह देखकर महान आश्चर्य होता है कि वह बत्तख नीले रंग का हो जाता है। मारे प्रसन्नता के जब वे उसे अपने एक मित्र को दिखाने के लिए पिंजड़े का छोटा फाटक खोलते है, उसी समय नीला बत्तख उसमें से निकल कर उड़ जाता है, और फिर कभी उनके हाथ नहीं लगता। वे हाथ मल कर पछताते ही रह जाते हैं। पक्षी का पंख पसार कर उड़ जाना इस बात का प्रतीक है कि प्रसन्नता को एक आधक्षणों के लिए ही पकड़ कर रखा जा सकता है। वास्तविक आनन्द प्रसन्नता की खोज में है, उसकी प्राप्ति में नहीं। हेनरी रोज नामक एक आलोचक का तो कथन है कि इस नाटक में आदि से अन्त तक प्रतीकों का पूर्ण व्यवहार किया गया है। नील पक्षी, स्वर्णिम सत्य का प्रतीक है, बच्चे भोली भाली मानवता के प्रतीक तथा बेरीत्यून स्वर्गीय आत्मा के प्रतीक के रूप में है।[1] इस नाटक की सफलता, प्रतीकों के कारण ही नहीं रंगमंच सम्बन्धी आकर्षण और उपादानों के कारण भी है। बहुत दिनों तक यूरोपीय नाट्य गृहों में इसकी लोकप्रियता तथा ख्याति बनी रही है।

प्रतीक परम्परा में एक और प्रकार ने नाटक हाप्टस् मैन तथा कन्डर मैन

---

1. "The final flight on the Blue Bird implies that happineess can be captured and held cnly for a moment. In the quest, not in the possession lies joy············One critic Henry Rose affirms that here is a consistent allegory, the bird standing for celestial truth, the children for innocent humanity, and Berylune for the divine spirit."

   'Aspect of Modern Drama'—Chandler, page 82.

और स्ट्रिन्डवर्ग द्वारा लिखे गये हैं, जिन्हें स्वप्न-रूपक भी कहते हैं। अश्क के नाटको पर इस शैली का कितना प्रभाव पड़ा है, इसे पिछले अध्यायों में दिखाया जा चुका है। हाप्टस मैन ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'हेनीली' मे प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग किया है। हेनीली एक छोटी बालिका है, जो अपने चाचा के क्रूर व्यवहारों से तंग आकर एक तूफानी रात को एक अनाथालय में शरण ग्रहण करती है। अंत में तंग आकर, उसने आत्महत्या का विचार कर लिया। इसी समय, वह स्वप्न लोक में विचरण करने लगती है। वह देवदूतों का संगीत सुनती है, अपनी मृत माता के दर्शन करती है, जो उसे ढाढ़स बंधाने आती है। उसकी आखों के सामने स्वप्न के अनेक दृश्य नाच उठते हैं। एक मृत व्यक्ति की शव-यात्रा, मृत्यु के देवता का आगमन तथा स्कूल मास्टर द्वारा उसका स्वागत इत्यादि। थोड़ी देर बाद, इन्हीं दृश्यों के अनन्तर हेनीली की रंगमंच पर मृत्यु हो जाती है। स्ट्रिन्डवर्ग का स्वप्न नाटक (ड्रीम प्ले) भी इसी प्रकार का स्वप्न नाट्य रूपक है, जैसा कि उसके नाम से ही मालूम होता है। इसमें एक देवी पृथ्वी पर मनुष्यों के वास्तविक दुख दर्द को समझने के लिये आती है। सांसारिक दुखों का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिये वह मानवी शरीर धारण करती है, अन्त में उसे जगत की वास्तविक स्थिति का पता लगता है। पूरा का पूरा नाटक स्वप्न के दृश्य के रूप में है। अन्य नाट्य रूपकों में हाप्टस मैन के 'ऐंड पिपा डान्सेस' और 'द संकेन बेल' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस धारा में, आयरलैंड के विलियम बटलर इट्स का काउन्टेस केथलीन और 'द आवर ग्लास' प्रसिद्ध प्रतीक नाटक हैं।

इस प्रकार के नाट्य रूपकों का प्रचार और आकर्षण दिन प्रतिदिन कम होता गया, क्योंकि उसमें बौद्धिक तत्व की प्रधानता अधिक तथा नाटकीय कमी रहती है। इसके चरित्र भी काल्पनिक तथा वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में होते हैं, अतएव दर्शकों की आत्मीयता उनके प्रति इतनी नहीं होती, जितनी जीवन के वास्तविक चरित्रों के प्रति।[१]

---

1. 'The symbolic play is limited in artistic appeal, because it speaks to the intellect rather than the heart, because it substitues for a picture of life disembodied ideas, and for living men and women abstract types. It is less suited for the acted drama. The great plays of the world have been representative rather than symbolic.'

   '*Aspect of Modern Drama*'—page 100.

हिन्दी में नाट्य रूपक

भारतेन्दु काल के पूर्व प्रबोध चन्द्रोदय' तथा उसके अनेक अनुवादों के आधार पर नाट्य रूपकों की संख्या अधिक मिलती है। देव कवि का 'देवमाया प्रपंच' केशव की विज्ञान गीता इसी प्रकार के मिलते-जुलते क्षीणप्राय प्रयत्न थे। परन्तु १६८० में महाराज यशवन्त सिंह का 'प्रबोध चन्द्रोदय' का अनुवाद निश्चय नाट्य रूपक की परम्परा को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ। भारतेन्दु जी ने स्वयं 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तीसरे अंक का रूपान्तर 'पाखंड विडम्बन' के नाम से किया, परन्तु इसमे मौलिकता का अभाव दिखाई देता है। मौलिक नाट्य रूपकों में निम्नाङ्कित के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

१—प्रसाद की कामना और
२—एक घूंट
३—भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'छलना'
४—सेठ गोविन्ददास का 'नवरस'
५—पंत की 'ज्योत्स्ना'
६—सियारामशरण गुप्त का 'उन्मुक्त'
७—शंभूनाथ सिंह का 'धरती और आकाश'

'कामना'

प्रसाद जी का मौलिक नाट्य रूपक है, जिसमें नाटककार प्रसाद की मौलिक प्रतिभा तथा आदर्शनिष्ठ भावना का स्पष्ट चित्र दिखाई देता है। मौलिकता का परिचय इतने ही से दिया जा सकता है, कि उन्होंने अनेक लेखकों की देखा देखी प्रबोध चन्द्रोदय के अनुवाद से नाट्य रूपक का प्रारंम्भ नहीं किया, वरन् उससे एक भिन्न दिशा में अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए मार्ग ढूढ़ा। प्रबोध चन्द्रोदय की कथावस्तु का आधार दार्शनिक तथा धार्मिक था, परन्तु 'कामना' का मुख्य उद्देश्य सामाजिक और मनोवैज्ञानिक है। इसके पुरुष पात्रों में विवेक, सन्तोष, विनोद, विलास दुर्वृत्त, दम्भ, क्रूर इत्यादि हैं। स्त्री पात्रों में कामना, लालसा, लीला, वनलक्ष्मी इत्यादि हैं। ये सब तारा की संतानें हैं।

फूलों के द्वीप (भारतवर्ष या विशेषकर पूर्व) में भोली भाली तारा की संतानों में स्वर्ण और मदिरा (धन तथा विलास वैभव) का प्रचार करके वहाँ पर छल, यांत्रिकता, प्रपंच, विलास तथा उच्छ्ंखलता का प्रचार किया जाता है, परिणामतया पूर्व के देश में अशान्ति असंतोष तथा पीड़ा और कष्ट का

साम्राज्य छा जाता है। रूपक की भाषा में भारत तथा अन्य पूर्वी देशों में जहाँ निशच्छलता पवित्रका तथा संतोष का साम्राज्य है, पश्चिम की आधुनिक सभ्यता ने अपना माया जाल फैला कर वहाँ अशान्ति तथा असंतोष का वातावरण फैला दिया है, यही इसका स्पष्ट अर्थ है। पश्चिम की भौतिक प्रधान सभ्यता का प्रतीक स्वर्ण तथा उसकी उच्छृंखलता का प्रतीक मदिरा को माना गया है। भारत में स्वर्ण तथा मदिरा का प्रलोभन देकर इने गिने यूरोप के रहने वालों ने इस पर पूर्ण प्रभुत्व जमा लिया। इस प्रकार से प्रसाद ने कामना में एक राष्ट्रीय चेतना का आदर्श सामने रखा है, जैसा कि उनकी अन्य कृतियों में भी प्राप्त होता है। पश्चिम की दिखावटी तथा असंतोष प्रधान सभ्यता का आक्रमण दिखलाकर पूर्व वालों को उससे बचने का आदेश प्रसाद ने अपने इस आदर्श प्रधान नाट्य रूपक द्वारा दिया है।

अध्यवसित रूपक का भी सांगोपांग निर्वाह किया गया है। कामना का सम्पर्क, प्रकृति के शुभ्र तथा पवित्र वातावरण को छोड़कर जब से स्वर्ण और मदिरा से हुआ, तभी से अशांति का साम्राज्य इस भूमंडल पर छा गया। सुख, शांति तथा आनन्द की स्थापना तभी होगी, जब कामना पुनः संतोष के साथ संपर्क स्थापित करे। सारांश यह है, कि कवि ने विशाल के त्याग तथा संतोष के ग्रहण का संदेश अपने इस नाटक द्वारा दिया है। मूल रूप से इसका यही संदेश है, यद्यपि यदि उसका विस्तार किया जाय तो उसमें और भी अनेक बातें सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे के वर्णन में दिखाई देगी। विलास के शासन में अव्यवस्था, जैसे, जाति पांति, ऊँच नीच का भेद भाव, चोरी तथा व्यभिचार का वातावरण फैलता है, जैसा कि तीसरे अंक में कामना के कथन से स्पष्ट है—

"कामना—(लीला से) मेरा स्वर्ण पट्ट देखकर तुम्हीं को इसकी चाह हुई। आकांक्षा हुई। अब क्या, देश में धनवान और निर्धन, शासकों का तीव्र तेज, दीनों की विनम्र दयनीय दासता, सैनिक-बल का प्रचंड प्रताप, किसानों की भारवाही पशु की सी पराधीनता, ऊँच-नीच, अभिजात और बर्बर, सैनिक और किसान, शिल्पी और व्यापारी, और इन सभी के ऊपर सभ्य व्यवस्थापक सब कुछ तो है। नये-नये संदेश, नये-नये उद्देश्य, नई-नई संस्थाओं का प्रचार सब कुछ सोना और मदिरा के बल हो रहा है। हम जागने में स्वप्न देख रहे हैं।"

आचार्य दम्भ, क्रूर, दुर्वृत्त तथा प्रमदा की सहायता से धर्म संस्कृति तथा शान्ति की व्यवस्था स्थापित करते हैं। शान्ति का नाश होता है, क्योंकि मनुष्य सोने का (धन का) लोभी हो जाता है। शान्ति की बहन करुणा

निराश्रित होकर इधर-उधर घूमती है। इसका भाव यह है कि आधुनिक संस्कृति स्वार्थ तथा मक्कारी के बल पर खड़ी है, जिसमें न सच्ची शांति की व्यवस्था है, न करुणा का। दोनों इधर उधर भटकते फिरते हैं। अपने देश में अशांति को देखकर प्रकाश दूसरे देश पर आक्रमण करता है, अनाचार तथा हाहाकार चारों ओर बढ़ा जाता है, और मानवता उसके चंगुल में पड़ी आर्तनाद करने लगती है। अब कामना को अपनी भूल का ज्ञान होता है, और वह फिर सन्तोष की शरण जाती है। विलास और लालसा की समस्त स्वर्ण राशि समुद्र में डुबो दी जाती है, और फिर फूलों के देश में सच्ची शान्ति का उदय होता है। इस प्रकार संतोष की विजय तथा विलास और लालसा की पराजय दिखाई गई है। इस छोटे से नाटक के सक्षिप्त कथानक में मानवता को पथ प्रदर्शन करने के लिये प्रभूत आलोक की सृष्टि की गई है। डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा के शब्दों में, "यह रूपक सार्वजनीन भी माना जा सकता है और वैयक्तिक भी, इसी प्रकार से सार्वदेशिक समाज का भी चित्र कह सकते है, और केवल भारतवर्ष का भी।"[1] जहाँ तक इसके दर्शन और देश काल का सम्बन्ध है, प्रसाद जी ने गांधीवाद से प्रेरित होकर सामान्य मानवतावाद की स्थापना का विचार मूल रूप से इसमें प्रकट किया है। प्रतीक योजना की दृष्टि से, इसमें आदि से अंत तक सफलता का निर्वाह हुआ है। नाटक के विभिन्न चरित्र मानव वृत्तियों के मानवीकृत रूप तो है ही, प्रकृति के विभिन्न छाया दृश्य स्वर्ण पट तथा भूकम्प इत्यादि भी अपनी प्रतीकात्मक सत्ता रखते हैं। अतः नाट्य रूपक की दृष्टि से यह पूर्ण सफल कहा जा सकता है।

'एक घूंट'

प्रसाद जी का 'एक घूंट' भी एकांकी नाट्य रूपक ही है, यद्यपि प्रतीक योजना के निर्वाह में 'कामना' की भाँति उसे सफलता नहीं मिली है। इसमे विवाह की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। अनियंत्रित प्रेम, संघर्ष का कारण होता है। विवाह बन्धन को तोड़कर मानवता के नाम पर प्रेम का स्वच्छन्द व्यापार एक दम्भ है, जो समाज में अशान्ति और अनाचार की वृद्धि करता है। आनन्द उद्भ्रान्त प्रेम का प्रतीक है। वह संसार को दुखमय नही मानता। उसकी दृष्टि में दुख का एक मात्र कारण है, किसी विशेष के प्रति सीमित आसक्ति। अरुणाचल आश्रम में मुकुल के यहाँ, वह अतिथि है। मुकुल तर्कशीलता का प्रतीक है। प्रसाद जी ने बनलता के माध्यम से अपने विचारो

१—प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा पृ० २३३।

को उपस्थित किया है। 'एक घूँट' में समाज के विभिन्न स्तरों के तीन समूह हैं, जो गार्हस्थ्य जीवन की विषमताओं के कारण दुखी हैं। ये हैं कवि रसाल और उनकी पत्नी बनलता, झाड़ूवाला और उसकी पत्नी, चंदुला तथा उसकी पत्नी। तीनों के जीवन में सुख शान्ति की धारा वह सकती है, अगर प्रेम का वे एक घूँट पी सके। आनन्द का स्वच्छन्द प्रेम दुराचार का सभ्य रूपान्तर है। आज के जगत मे पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव ने इस प्रकार के प्रेम को पनपाने में अधिक अनुकूल वातावरण उपस्थित किया है। बनलता में प्रेम है, ओज और उत्साह है, और आनन्द सरीखे पथभ्रष्ट युवकों को ठीक मार्ग पर ले जाने की क्षमता भी है। झाड़ूवाला भी अपनी गृहस्थी को छोड़कर सुखी नहीं रह सकता, बस सभी लोगों को प्रेम की एक घूँट चाहिए, फिर जीवन का सन्तुलन ठीक बैठेगा, यही प्रसाद का संदेश 'ऐक घूँट' द्वारा दियो गया है। टेकनीक की दृष्टि से 'एक घूँट' एक शिथिल रचना है, इसमें न चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिकता है, न घटनाओं के विस्तार में कुतूहल का उपयोग। हाँ, कथोपकथन का आधिक्य अवश्य है, जिनका मूल उद्देश्य सिद्धान्त प्रतिपादन है। प्रतीक पद्धति का भी कामना की भाँति सांगोपांग निर्वाह इसमें नहीं मिलता। हाँ, जिस निर्णय पर लेखक इसमें पहुँचता है, वह अवश्य श्रेयस्कर है। 'एक घूँट' मुक्तभोग के लिये है, जो स्वच्छन्द तथा अनियंत्रित प्रेम का प्रतीक है, जिसमें मृगतृष्णा और दुख है, सच्चा आनन्द वैवाहिक आनन्द है, यही इस नाट्य रूपक का मूल विषय है।

'ज्योत्स्ना'

आधुनिक हिन्दी के नाट्य रूपकों में 'ज्योत्स्ना' का स्थान प्रमुख है, जिसमें प्रकृति के शुभ्र वातावरण के बीच पंत ने अपने जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति की है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पंत जी की 'ज्योत्स्ना' के इस उन्मुक्त प्राकृतिक वातावरण के निर्माण तथा उसके जीवन दर्शन पर मैटरलिंक के 'द ब्लू बर्ड' का स्पष्ट प्रभाव है, इसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। मैटरलिंक के उपर्युक्त नाटक में 'द ब्लू बर्ड' सच्चे शान्ति तथा आनन्द का प्रतीक है, जिसकी खोज जीवन में अकथनीय आनन्द को प्रदान करने वाली है। 'ज्योत्स्ना' में भी नवीन समाज तथा जीवन के निर्माण का चित्रण है। आधुनिक भौतिकवादी तथा अर्थ प्रधान सामाजिक ढाँचे से असंतुष्ट होकर ज्योत्स्ना स्वर्ग लोक से पृथ्वी पर नवीन समाज के निर्माण का लक्ष्य लेकर आती है। स्वप्न, कल्पना, पवन और सुरभि उसके कार्य सम्पादन में विशेष सहायक होते हैं। रात्रि के द्वितीय प्रहर में ज्योत्स्ना के उद्देश्य की पूर्ति के अनुकूल वातावरण तैयार होता है। स्वप्न, कल्पना और सुरभि पवन की सहायता से मानव मन में

नवीन समाज का एक हृदय खींच आते हैं। मेटरलिंक के 'द ब्लू बर्ड' में भी स्वप्निल वातावरण की पृष्ठभूमि में दोनों बच्चे नीले पक्षी की खोज में तत्पर हैं। तृतीय प्रहर में प्रलय का रूप दिखाया गया है, इसके बाद अरुणोदय में नवीन जीवन तथा समाज का रूप दिखाया गया है।

'सुन्दर विश्वासों से बनता है, सुन्दर जीवन' नामक गीत से नवीन जीवन की भव्य भावभूमि निर्मित की गई है। कामना में आदर्शवाद की स्थापना वें मानसिक भावों का मानवीकृत रूप रखा गया है, ज्योत्स्ना में प्रकृति के अनेक अंगों द्वारा कवि अपने आदर्श की सिद्धि करता है। परन्तु इसमें पंत की कोमल कल्पना का रंग अधिक गहराई के साथ व्यक्त हुआ है, नाटककार के रूप में कार्य व्यापार में कौतूहल तथा आकस्मिकता का समावेश नहीं हो पाया है। वरन् इसके विपरीत घटनाओं के बाहुल्य के कारण नाटक की गति में शैथिल्य का समावेश भी हो गया है। गीतों का आधिक्य काव्यत्व के वातावरण निर्माण में भले ही सहायक हो, परन्तु उसकी भी एक सीमा होनी चाहिए। अंतिम अंक में अनेक गीतों का रखना, साथ ही विभिन्न फूलों के नाम और उनके क्रिया कलापों का वर्णन अनावश्यक सा लगता है, जिसके नाटकीय प्रभावान्विति के निर्माण में बाधा पड़ती है। गीत भी अनेक प्रकार के हैं। कहीं पवन देव का सनसन संगीत है, कहीं छाया का अवसादपूर्ण गीत है। ताराओं का टिमटिमाता संगीत मन को कोमल स्वप्न के पंखों पर घुमाता है, उधर ओस का चटुल तरल तराना है। इन सभी गीतों में प्रतीकात्मकता का परिचय प्राप्त होता है। इनके द्वारा कवि ने अपने अन्तर की कोमल कल्पना, सुकुमार भावों तथा कमनीय शब्द चित्र निर्माण की प्रतिभा का परिचय दिया है। जुगनुओं के गीत द्वारा उनके कार्य कलाप का कितना मनोहर दृश्य अङ्कित किया गया है—

जग मग, जग मग, हम जग का मग
ज्योतित प्रति मग करते जग मग।
चंचल चंचल, बुझ बुझ जल जल।
शिशु डर पल पल हरते, छल छल।

इस तरह दृश्यों के विधान में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। सन्ध्या, ज्योत्स्ना, छाया और सुरभि का दृश्य विधान अत्यन्त आकर्षक हुआ है। सुरभि का मूर्तिमान रूप अत्यन्त कमनीय है। उदाहरण के लिये 'बाई ओर पुष्पों के हृदय से उच्छ्वसित दुर्निवार कामना सी सुरभि, पुष्पों की चटकीली पंखड़ियों से लदी, लालसा से लाल पल्लवों की चोली पहने, मदिर गन्ध निर्गत करती केसरी अलकों में रजनी गन्धा की माला बाँध रही है।

कीट्स की भाँति वाह्य रूप विधान तथा इन्द्रीय कल्पना (सेनसुग्रस इमेजिरी) के निर्माण में पंत अत्यन्त कुशल है। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में यदि पृथक पृथक दृश्यों को लिया जाय, तो कवि की कल्पना का मनोहर स्वरूप दिखाई देगा, परन्तु सबको एक साथ रखने पर आदर्शों का एक भुल-भुलैया में कल्पना का अतिरेक एक भ्रान्ति उपस्थित करता है, यह निर्विवाद है।[1]

पंतजी ने विश्वबंधुत्व के आदर्श से प्रेरित होकर ज्योत्स्ना में जीवन और जगत के नव निर्माण का जो स्वरूप उपस्थित किया है, उसमें अन्तर्राष्ट्रीयता तथा मानवतावाद का भी विशेष हाथ है। कवि ने 'गुंजन' में भी इस प्रकार के प्रगतिशील विचारों की झाँकी उपस्थित की है, उसी की पूर्णता हम 'ज्योत्स्ना' में पाते हैं। जगत की विषमता, रूढ़िप्रियता तथा जड़ता को वे समूल विनष्ट करना चाहते थे, इसीलिये 'नाटक' के तृतीय अङ्क में ज्योत्स्ना का परिचय जगत के इसी वातावरण से सोद्देश्य कराया जाता है।

अन्त में, समता तथा विश्वबंधुत्व की स्थापना करने के लिए अनेक कोमल और स्वस्थ भावनाएँ प्रकट होती हैं, जिनमें भक्ति, शक्ति, दया, सत्य साधना, निष्काम कर्म स्नेह और करुणा मुख्य है। इन्हीं की सहायता से ज्योत्स्ना पृथ्वी पर आनन्द का साम्राज्य स्थापित करके स्वर्ग को लौट जाती है। उसका लौटना मेटरलिंक के 'द ब्लू बर्ड' के उस पक्षी की भाँति है जो अन्तिम दृश्य में पिंजड़े का फाटक खोलकर अपने कोमल पंखों को फैलाकर उड़ जाता है। यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि मैटरलिंक के नाटक में कल्पना की प्रधानता होते हुए भी अनेक भ्रान्त दृश्यों तथा कार्य व्यापारों की उतनी सघनता और अस्तव्यस्तता नहीं है, जितनी ज्योत्स्ना में। फलतः उसकी कला एक उत्कृष्ट कोटि के रूप में निखर उठी है, पन्त की ज्योत्स्ना में समाज के नव निर्माण की जो कल्पना है, वह यूटोपियन अधिक और व्यावहारिक कम है। यदि ध्यानपूर्वक उस पर विचार किया जाय, तो उसमें पश्चिमी विचार-धारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ेगा। पश्चिम के समाजवाद तथा मानववाद की पृष्ठभूमि में ही ज्योत्स्ना का जीवन दर्शन समाहित है। समाजवाद से ही वर्तमान सामाजिक विषमता और व्यवस्था को हटाकर ऐसी संस्कृति के निर्माण की कल्पना की गई है, जिसमें 'मानव प्रेम के नवीन प्रकाश में राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, जाति और वर्ण के भूत प्रेत सदैव के लिए तिरोहित हो गये हैं। देश जाति के बंधनों से मुक्त मनुष्य केवल मनुष्य ही है। निरन्तर साहचर्य,

---

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ०।

परस्पर सद्भाव एवं सह शिक्षा के कारण आधुनिक युवक युवती का प्रेम देह की दुर्बलता पर न रहकर, हृदय का बल एवं मन का संयम बन गया।

ज्योत्स्ना अपने आदर्श की प्राप्ति के लिए मानव जाति को जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर अग्रसर करने की चेष्टा में संलग्न है। इसके लिए, वह मनुष्य को एकांगी बुद्धिवाद से ऊपर उठाना चाहती है। इसके लिए वह भेदभाव से रहित एक आदर्श समाज की स्थापना करने का प्रयत्न करती है। यहाँ पर, यह कहना आवश्यक होगा कि, इस आदर्श चित्र के निर्माण मे कवि की आशावादिता और भावुकता का प्रश्रय अधिक है। नाटकीयता की दृष्टि से कार्यशैथिल्य अधिक तथा चरित्र निर्माण में सजीवता की कमी है। फलतः रंगमंच की दृष्टि से यह एक सफल रचना नहीं कही जा सकती। अधिक से अधिक हम इसे कवि कल्पना का एक दृश्य रूप ही कह सकते है।

'छलना'

भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'छलना' की पृष्ठभूमि न तो प्रसाद की कामना की भांति फूलों के लोक में रखी गई है, न पन्त की ज्योत्स्ना की भाँति पवन तथा सुरभि द्वारा संचालित होती है, वरन् जीते जागते समाज के धरातल पर रखी गई है, जिसमें हमारा आज का सामाजिक संघर्ष मूर्तिमान हो उठा है। संस्कृत के नाट्य रूपकों में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता का ज्ञान विस्तार था। भारतेन्दु के पाखंड विडम्बन में सामाजिकता का पुट अवश्य दिया गया है, परन्तु उसमें मौलिकता नहीं है। 'कामना' प्रसाद की दार्शनिकता से बोझिल है, पन्त की ज्योत्स्ना भावुकता और कल्पना के अगाध अंतराल में डूबती तिरती दिखाई देती है, परन्तु 'छलना' का वातावरण आधुनिक जीते जागते समाज का प्रतिरूप है, जो अपने यथार्थ संघर्षों और कटुताओं के साथ हमारी आँखों के समक्ष लहरें मारते दिखाई देता है, और जो हमारे अत्यन्त समीप है। रूपकों में सबसे स्पष्ट दोष यह होता है, कि उनकी विचार परम्परा गरिष्ट गहन तथा मन को उबा देने वाली होती है। वाजपेयी जी ने 'छलना' को इस दोष से बचाने का प्रयत्न किया है। इसमें किसी साम्प्रदायिकता तथा गहन दार्शरिकता का प्रतिपादन करने की चेष्टा लेखक द्वारा नहीं हुई है, वरन् वर्तमान नर नारी के सम्बन्ध को, जो समाज की मूल भित्ति हैं, अनेक रूपों में दिखला कर लेखक वे उसका अन्तिम निर्णय पाठकों के ऊपर छोड़ दिया है। इस प्रकार दर्शक की जिज्ञासा तथा कौतूहल वृत्ति को पूर्ण रूप से उद्बुद्ध करके नाटक को रंगमंच के उपयुक्त बनाने का भी प्रयत्न किया गया है।

'छलना' में पुरुष और नारी के प्रेम की समस्या का चित्रण किया गया है। स्त्री पात्रों में कल्पना, कामना और निद्रा तीनों नवीन दृष्टिकोण को लेकर चलती हैं। चम्पी, परित्यक्त, गरीब तथा संतोष वृत्ति को धारण करने वाली पुराने आदर्श को लेकर चलने वाली है। पुरुष पात्रों में बलराज, विलासचन्द और नवीन आधुनिक दृष्टिकोण को लेकर चलने है। कल्पना उन्मुक्त प्रेम और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की पक्षपाती है, पहले वह बलराज की ओर आकर्षित होती है, परन्तु बलराज के गम्भीर तथा आदर्शवादी जीवन से ऊब कर उधर से निराश लौट आती है, बलराज के प्रति प्रेम नहीं, तो उसके प्रति उसका ममत्व है। विलास, पुरुष के वाह्य लुभावने तथा आकर्षक स्वरूप का प्रतीक है। अन्त में कल्पना विलास की ओर आकृष्ट होती है। परन्तु विलास में पुरुषत्व की कमी है, फलतः कामना केवल प्रेम के वाह्य आडम्बर से सन्तुष्ट नहीं होती है। विलास और बलराज नदी के दो कूल है, जीवन के दो छोर हैं, जिनके बीच में कामना भटकती फिरती है। यही उसके जीवन की छलना मय ट्रेजेडी है। आज की नारी कल्पना की भाँति भोग और उन्मुक्त प्रेम में विश्वास करती हैं, परन्तु उसे यह प्राप्त कैसे हो, यह उसे नही मालूम। फलतः वह मार्गभ्रष्ट सी अपने कर्त्तव्य से च्युत इधर उधर ठोकरें खा रही हैं। चम्पी का चरित्र कल्पना के चरित्र को अधिक उभार देने के लिये है, वास्तव में चम्पी के रूप में लेखक ने नारी समस्या का समाधान या उत्तर नहीं दिया गया, वह तो केवल विषमता का भाव उत्पन्न करने के लिए है।

ऊपर के नर और नारी पात्र अपनी स्वतंत्र सत्ता न लेकर विभिन्न वर्गों के प्रतीक या टाइप हैं। बलराज (आदर्श) को फिर से पाकर भी, कल्पना संतुष्ट नहीं होती। इसी समय उसे विलास के मृत्यु की सूचना मिलती है। उसके अन्तर को ठेस लगती है, वह मूर्च्छित हो जाती है, इसी बीच पर्दा गिरता है। बलराज इस ट्रेजेडी की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहता है—

"प्रतीत होता है, मनुष्य की आत्मा के साथ विलास का ऐसा ही सम्बन्ध होता है। आदर्श का सम्पर्क होते हुए भी वह अन्तर्धान हो जाता है, किन्तु कल्पना उसे मृत्यु के बाद भी अपने से पृथक् नहीं कर पाती।"

आदर्श हीनता ही आजकल के जीवन की समस्या है, जो असंतोष का मूल है। डा० हजारी प्रसाद का कथन है कि कृषिजीवी सभ्यता से मानव जब व्यावसायिक सभ्यता में आया, तभी उसके पुराने आदर्श गिरने लगे। उसमें वैयक्तिकता आ गई। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ओर व्यक्तिगत जीवन में बन्धन हीनता दिखाई देने लगी, प्रेम और विवाह के नाम पर स्वतंत्रता का

व्यवहार होने लगा। उन्मुक्त प्रेम तथा तलाक का बाजार गर्म हो उठा। दूसरी ओर पारिवारिक जीवन में समाजीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी। होटल खुलने लगे और कल कारखानों की संख्या में वृद्धि हो चली[१]। रूस आदि यूरोप के देशों में देश की सम्पत्ति का समाजीकरण होने लगा, और परिवार की केन्द्रीयता टूट सी गई। होटल ही परिवार हो गये और परिवार होटल के रूप में परिवर्तित हो गये। कल्पना औसत आधुनिक स्त्री की प्रतीक है।

यद्यपि लेखक इसमें शाश्वत प्रश्नों को लेकर चलता है, उसके पात्र प्रतीक और प्रतिनिधि के रूप में है, फिर भी उनकी व्यक्तिगत सत्ता और चरित्र-चित्रण की ओर भी लेखक ने पूर्ण ध्यान दिया है। समस्याओं को अत्यन्त कौशल के साथ रखा गया है। 'कामना और 'ज्योत्स्ना' की भाँति चरित्र निर्जीव और कोरे सिद्धान्तवादी न होकर अपनी निजी स्वाभाविकता और मांसलता को लिये हुए हैं। वे हमसे अलग न रहकर हमारे मन को आकर्षित करने में सहायक होते हैं। अभिनय की दृष्टि से भी छलना में घटनाओं के संक्षिप्त व्यापार, कौतूहल तथा सजीवता की ओर ध्यान रखा गया है। 'ज्योत्स्ना' की भाँति अनेक गीतों का जमघट नहीं है। केवल चार गीत हैं, जो उपयुक्त अवसर पर रखे गये है। रंग संकेतों में अभिनेयता का पूरा ध्यान रखा गया है। कम से कम रंगमंच पर, 'कामना' और ज्योत्स्ना की भाँति मन को उबा देने वाली दार्शनिकता और भावुकता इसमें नहीं मिलती। दोनों का उचित समन्वय है, जो बाजपेयी जी की कुशल लेखनी से निखर सा उठा है। फलतः छलना को हम एक सफल नाट्य रूपक की कोटि में रख सकते हैं।

'नवरस'

सेठ गोविन्ददास का 'नव रस' शास्त्रीय नाट्य रूपक है, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक पुट भी मिला हुआ है। इसमें नवों रसों को पात्रों के रूप में रंगमंच पर उपस्थित किया गया है। प्रत्येक रस के उपयुक्त पात्रों के विभिन्न नाम है। जैसे वीर रस का प्रतीक वीरसिंह नाटक का नायक और प्रेमलता शृंगार की प्रतीक, नाटक की नायिका है। रौद्र रस का पात्र रुद्रदेव, भयानक का भीम, करुण का करुणा और शांत की शान्ता तथा वीभत्स का ग्लानिदत्त और हास्य की पात्री लीला है। वात्सल्य के लिए मधु नाम दिया गया है, जो प्रेम का प्रतीक बन गया है। इसके स्थान पर यदि कोई और नाम दिया गया होता तो उचित होता। अद्भुत रस का चरित्र अद्भुत चन्द्र है, जो अजीब नाम लगता है। पात्रों के भावानुसार उनके वस्त्राभूषणों का रंग भी काला, अलग-अलग रखा गया है। भीम का रंग काला वीर सिंह की पोशाक सुनहले

१—'छलना'—भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

रंग की, और अद्भुतचन्द्र का वस्त्र पीले रंग का है। उसी तरह लीला का परिधान सुन्दर स्वच्छ वर्ण का, रुद्रसेन का लाल रंग का है। प्रेमलता नीली साड़ी पहिने है, मधु भी रंगबिरंगी परिधान धारण किये हुए है, क्योंकि बालकों को रंगीन परिधान विशेष प्रिय है। रसों के पारस्परिक सम्बन्ध निर्वाह में भी रस सम्बन्धी नियमों का पालन किया गया है। वीर और श्रृंगार का सम्बन्ध सृष्टि के आदि से है। लीला (हास्य) को प्रेमलता (श्रृंगार) की बहिन माना गया है। शांता (शांत) की रुद्रसेन (रौद्र) से स्वाभाविक शत्रुता है। शांता द्वारा वीरसिंह और प्रेमलता का विवाह सम्बन्ध कराया जाता है, जिसका अर्थ यह है कि उत्साह (वीर) और रति (श्रृङ्गार) पर संयम का शासन आवश्यक है, तभी पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी। रसों के रूप तथा परिधान विभाजन के साथ उनकी वाणी और कर्म का भी यदि तद्नुकूल विभाजन हुआ होता, प्रत्येक रस अपने भावानुकूल कर्म करते रंगमंच पर उतरता और इस प्रकार के संवाद करता, जैसे कवि दरबारों में हुआ करता है, तो रूपक का चरित्र चित्रण और भी स्वाभाविक हो जाता; परन्तु इसके विपरीत जो लेखक ने इसमें गांधीवाद और अहिंसा के द्वारा युद्ध की विभीषिका दूर करने का, और युद्ध को सर्वथा हेय ठहराने का एक संदेश दिया है, उससे शास्त्रीय रूपक में अनावश्यक उपदेशात्मकता का बेमेल जोड़ा तैयार हो गया है। फलतः आधुनिक युद्ध की भयंकरता का चित्रण इस शास्त्रीय रूपक की विशुद्धता को गिरा कर उसमें एक ऊपर से लगे पैबंद या जोड (पैच वर्क) की भाँति दिखाई देता है। यह कहना आवश्यक होगा कि सेठ जी ने अपने प्रायः सभी नाटकों में गांधीवादी विचारधारा को प्रश्रय दिया है। उनके इस प्रकार के नाटकों में 'महत्व किसे', दुख क्यों; 'संतोष कहाँ', 'बड़ा पापी कौन' में त्याग, सेवा, तथा अहिंसा का महत्व दिखलाया गया है। परन्तु इस शास्त्रीय रूपक में गांधी वादी विचारधारा को ठूसना युक्ति संगत नहीं लगता। रस के वर्णन के प्रसंग में रसात्मकता का परिपाक बिना सुन्दर गीतों के नहीं हो सकता, उसमे केवल रूखे उपदेशों से काम नही चल सकता। परिणाम यह हुआ है कि गीतो की कमी के कारण रसात्मक प्रसंग नीरस सा हो गया है। प्रत्येक पात्र से उसके भाव के अनुकूल दो एक सुन्दर गीत रखना आवश्यक था, जिनके द्वारा वह अपना परिचय देता, इसी से स्वाभाविकता की सृष्टि होती परन्तु ऐसा न होने के कारण, इस रूपक की सफलता को काफी बाधा पहुँची है।

'उन्मुक्त'

सियारामशरण गुप्त का 'उन्मुक्त' भी गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित

है। इसमें अहिंसा की विजय तथा हिंसा को हेय और त्याज्य बतलाया गया है। युद्ध की भयंकरता के कारण धन और जन का अपार संहार होता है, मानवता और उसकी संस्कृति संकट में पड़ जाती है, उससे बचने का एक मात्र उपाय अहिंसा की नीति का अनुसरण है। इसी विचारधारा को नाट्यरूपक के ताने बाने में सुलझाने का प्रयत्न कवि ने 'उन्मुक्त' में किया है। शांता अहिंसा की प्रतीक है, जो युद्ध की विभीषिका का नग्न चित्र सामने रखकर शांति का संदेश देती है। टेकनीक तथा विषय दोनों की दृष्टि से नाटक में कोई शक्ति नहीं है। कहीं कहीं युद्ध के चित्रों से हमारी विवशता की एक झांकी सामने अवश्य खिंच जाती है।

"फिर लड़ाई के सदृश्य, संहारकारी संवादों पर तो, सबसे अधिक हंसना चाहिए। यह इसलिये कि कहीं उस संहार में अपना भी संहार हो जाय, तो संहार के पहले खूब हंस तो लिया जाय, जो दुनियां में सबसे अधिक जरूरी है,"

'धरती और आकाश'

डा० शम्भूनाथ सिंह का नाट्य रूपक की परम्परा में एक अत्यन्त नवीन प्रयोग है, जिसमें प्रतीक परम्परा के निर्वाह के साथ आधुनिक यथार्थवादी जीवन और जगत के संघर्षों को भी अपने पूर्ण उभार के साथ रखने की चेष्टा लेखक ने की है। फलतः 'धरती और आकाश' में 'छलना' की भांति सामाजिकता और यथार्थता का समावेश हो गया है, रूपक के प्रतीक विधान के साथ ही साथ नाटक की अभिनेयता का भी ध्यान रखा गया है। 'कामायनी की भांति इसमें कविता, विज्ञान तथा ज्ञान के एकीकरण का सुझाव दिया गया है। ऊपर आकाश की ऊंचाई है, नीचे धरती है, बीच में पूंजीपतियों की अट्टालिकाएं विभाजन रेखा प्रस्तुत करती हैं। एक ओर साहित्य और कल्पना की उच्च उड़ान, नीचे भौतिकवादी विज्ञान का यथार्थ जगत, बीच में विषमता और आर्थिक अभावों के दो पाटों के बीच में पिसती हुई मानवता। सच्चे शान्ति की स्थापना के लिए धरती और आकाश तथा उसके बीच की समस्याओं के भव्य सामंजस्य स्थापित करने को आवश्यकता होगी। पूंजीवादी युग की विषमताओं के चित्रण में पाश्चात्य विचारों की स्पष्ट झलक मिलती है। नाटक मे चरित्र दो प्रकार के हैं, कुछ सामाजिक और मानसिक "शक्तियों के मूर्त प्रतीक के रूप में हैं, जैसे विज्ञान प्रकाश; ज्ञानचन्द्र, कविता और कला। कुछ पात्र सामाजिक चरित्र हैं, जो वर्ग के प्रतिनिधि रूप में रखे गये हैं।

लक्ष्मीपति, भूपतिसिंह इसी प्रकार के पात्रों के नाम हैं। रूपक परम्परा के निर्वाह में इस प्रकार के बेमेल पात्रों के समन्वय से यद्यपि काफी अव्यवस्था हुई है। नाटक के अन्त में जनशक्तियों के नेता प्रजापति की हार होती है, और लक्ष्मीपति (पूंजीवाद) की विजय होती है, जो आज के युग के लिए स्वाभाविक ही है। कविता, कला, ज्ञान और विज्ञान का एकीकरण एक नवीन,आदर्श को स्थापित करके भविष्य की मानवता के सम्मुख एक महान् संदेश प्रस्तुत करता है। धरती और आकाश की दूरी समाप्त करके दोनों घुले मिले से दिखाये गये है, यह नाटककार की मौलिकता का स्पष्ट परिचायक है । दोहरे प्रतीक विधान के निर्वाह की चेष्टा नाटक में की गई है, जिससे उसकी कला की सफाई बनी हुई है । तीसरे अंक मे एक गीति-नाट्य का समावेश, जो युग-देवता के उपेक्षापूर्ण नृत्य के साथ रखा गया है, नाटक में एक विशेष सौन्दर्य का समावेश कर देता है । 'छलना' की भाँति पात्रों की सजीवता स्थिर रखने की पूर्ण चेष्टा की गई है । 'कामना' और 'ज्योत्सना' की भाँति, धरती और आकाश के चरित्र एकदम निर्जीव नहीं हैं, वरन् उनकी यथार्थता और मांसलता को बनाये रखने की ओर लेखक सतत सचेष्ट है। यद्यपि कविता, कला, ज्ञान और विज्ञान का एक बिन्दु मिलन केवल कल्पना ही है, परन्तु लेखक ने इसके द्वारा भविष्य—की संस्कृति निर्माण के लिए एक संकेत दिया है। वर्डसवर्थ के स्काई लार्क की भाँति नाटककार चाहता है कि ऐसे लोग देश की संस्कृति निर्माण में अग्रणी हो जो आकाश की ऊंचाइयों की कल्पना मे इतने न व्यस्त हो जायं कि उन्हें धरती की समस्याओं का ध्यान ही न रहे।

हिन्दी के प्रतीक नाटक

प्रतीकों का प्रयोग हिन्दी के अनेक नाटकों में हुआ है, जैसे अश्क का 'अलग अलग रास्ते', कैद और उड़ान, डा० लक्ष्मीनारायण लाल का 'अधा कुआँ' और 'तीन आँखो वाली मछली' परन्तु उन्हें नाट्य रूपक की कोटि मे नही रख सकते। जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में ही कहा जा चुका है कि नाट्य रूपक से तात्पर्य 'एलीगोरिकल ड्रामा' है। रूपक और प्रतीक दोनों में कार्य, रूप तथा गुण की समानता मिलती है। दोनों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत का दोहरा ताना बाना चढ़ता है, परन्तु प्रतीक में यह परम्परा परंपरित और प्रसिद्ध होती है, किन्तु रूपक में उसकी प्रसिद्धि का कोई बन्धन नहीं रहता। शुद्ध तात्विक दृष्टि से अंग्रेजी साहित्य में भी केवल दो ही रूपकीय काव्य मिलते हैं। एक स्पेन्सर का फेयरी क्वीन तथा दूसरा जान बनयन का द पिलग्रिम्स प्राग्रेस । यद्यपि इसमें भी रूपक परम्परा का पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ है। अंग्रेजी साहित्य में भी प्रतीकात्मक नाटकों को रूपक परम्परा के अन्दर सम्मिलित किया जाता है, फलतः

ऐसे नाटककारों की चर्चा इस अध्याय के आरम्भ में की गई है । इब्सन, सिज, हाप्टमैन, स्ट्रिन्डवर्ग तथा मैटरलिंक के नाटक नाट्य रूपक के ही अन्दर गिने गये है; क्योकि इनमें प्रतीक विधान प्रचुरता से व्यवहृत हुआ है । कहने का भाव यह है कि प्रतीक नाटकों तथा नाट्य रूपकों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा न होने के कारण दोनों को एक ही कोटि मे रखने का भ्रम पाश्चात्य देशों से ही चल पड़ा है । इसका एक दूसरा कारण यह भी है कि शुद्ध रूपकों का तात्विक दृष्टि से निर्वाह अत्यन्त कठिन होता है, और रंगमंच पर उनकी सफलता में और भी अधिक कठिनाई होती है, इसलिए समस्या नाटकों में प्रतीक विधान की परम्परा का अधिकांश प्रचलन हो गया है । पाश्चात्य नाटकों की देखा देखी हिन्दी के सामाजिक और समस्या नाटकों मे भी प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । हिन्दी के नाट्य रूपकों में शुद्ध तात्विक दृष्टिकोण से सफलता प्रसाद की 'कामना', पन्त की 'ज्योत्स्ना' तथा वाजपेयी जी 'छलना' में ही मिलती है । 'इनमे' का वातावरण यथार्थवादी है । शम्भूनाथ सिंह का 'धरती और आकाश' सामाजिक यथार्थवाद की क्रोड़ मे तथा सेठ गोविन्ददास का नवरस 'शास्त्रीय परम्परा के कलेवर में रूपक-निर्वाह की योजना करता है । इन सबके ढाँचे भिन्न भिन्न है, शिल्प विधान भी विभिन्न है, परन्तु तिस पर भी हम उनकी गणना नाट्य रूपकों की कोटि में करते हैं । उसी प्रकार पश्चिम के प्रतीकात्मक नाटकों की देखा देखी हिन्दी में भी समस्या नाटकों मे प्रतीक विधान की परम्परा चल पड़ी है । इस प्रकार के नाटकों का विस्तृत वर्णन समस्या नाटकों के अध्याय में किया जा चुका है, अतः उसके पिष्टपेषण की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है । यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि संस्कृत के नाट्य रूपकों की परम्परा का पूर्ण अनुकरण हिन्दी नाट्य रूपको मे नही पाया जाता । संस्कृत के 'प्रबोध चन्द्रोदय' का वातावरण धार्मिक और दार्शनिक था, हिन्दी के नाट्य रूपकों में काव्यत्व, भावुकता तथा यथार्थवादिता का वातावरण मिलता है । काव्यत्व और भावुकता तो कवियों की कल्पनामयी प्रवृत्ति के कारण है, परन्तु यथार्थवादिता का समावेश इन नाट्य रूपकों मे पश्चिम की देन है । यथार्थवादिता में पश्चिमी समाजवाद मानवतावाद तथा मनोवैज्ञानिक विचारधारा भी सम्मिलित है, जिसका स्पष्ट प्रभाव इन रूपको में दिखाई पड़ता है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बौद्धिकता तथा दुरूह रूपक परम्परा के निर्वाह के कारण इन नाटकों का प्रचार अधिक नहीं हुआ, क्योंकि दर्शकों के लिये रंगमंच पर वे एक पहेली का रूप धारण कर लेते हैं ।

दसवां अध्याय

हिन्दी रंगमंच पर पाश्चात्य प्रभाव

नाटक की उन्नति रंगमंच के साथ संयुक्त है, क्योंकि दोनों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। ऐसे नाटकों का भी उल्लेख किया गया है, जो केवल पाठ्य हैं, और जो रंगमंच पर खेले जाने योग्य नहीं हैं, परन्तु वास्तविक रूप से हम उन्हें नाटक नहीं कह सकते। नाटक की आत्मा उनकी अभिनयशीलता है[1]। अतः रंगमंच से ही उसके जीवन का वास्तविक सम्बन्ध है। जिन जिन देशों में समृद्ध रंगमंच रहा है वहाँ पर नाटकों की विशेष उन्नति हुई है। रंगमंच की आवश्यकताओं के अनुसार ही सफल नाटकों का निर्माण हुआ है। संस्कृत में नाटक साहित्य चरमोन्नति को प्राप्त कर चुका था, क्योंकि अतीत भारत में रंगमंच की एक प्रशस्त परम्परा थी। संस्कृत नाटकार रंगमच की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही नाटकों को लिखते थे।

प्राचीन रंगमंच

भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में रंगमंच के उपादान तथा प्रेक्षागृहनिर्माण का विस्तृत वर्णन किया है। नाट्य शास्त्र में चतुरस्र, विकृष्ट तथा त्र्यस्य तीन

---

1. "A play without an audience is in conceivable. Theory of Drama. —Nicoll, Its Edition, p. 30.

प्रकार की नाट्य शालाओं का वर्णन किया गया है । विकृष्ट की लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी होती है । लौकिक नाटकों के लिए विकृष्ट प्रेक्षागृह को ही श्रेष्ठ माना जाता था । चतुरस देवताओं के लिए होता था और त्र्यस्र घरेलू सीमित दर्शकों के लिए उत्तम गिना गया है । विकृष्ट रंगमंच दो समभागों में विभाजित किया जाता था । पीछे का भाग अभिनय के लिए तथा आगे का भाग दर्शकों के लिए होता था । पिछले भाग के दो और भाग रहते थे, सबसे पिछले भाग को नेपथ्य गृह कहते थे, इसमें अभिनेता अपनी वेश-भूषा सजाते थे, यदि कोई भविष्य वाणी या आकाशवाणी का संदेश देना होता था, तो इसी भाग से दिया जाता । नेपथ्य गृह के आगे की प्रेक्षाभूमि भी दो भागों में विभाजित रहती थी । नेपथ्य गृह से मिले हुए भाग को रंगशीर्ष और उसके आगे के भाग को रंगपीठ कहते थे । दोनों के बीच मे यवनिका होती थी । रंगशीर्ष में ही वास्तविक अभिनय होता था । यहीं प्रारम्भिक पूजा होती थी । नान्दी पाठ और मंगलाचरण के लिए यही उपयुक्त स्थान था । सूत्रधार यहीं से नाटक की भूमिका दिया करता था । रंगपीठ से चार हाथ की दूरी पर दर्शक बैठते थे । दर्शकों की बैठक सोपान के आकार की होती थी । वह भिन्न-भिन्न वर्गों के लिये अलग-अलग निर्धारित थी । बीच-बीच में खम्भे या रस्सियाँ भिन्न-भिन्न वर्गों के स्थान को सूचित करती थी । नेपथ्य गृह और रंगशीर्ष के बीच में दो दरवाजे होते थे, इन्हीं के द्वारा अभिनेता आते जाते थे । सरगजा. मोहन-जोदड़ो और हरप्पा की खुदाइयों मे इस प्रकार की रंगशालाओं के भग्नावशेष आज भी प्राप्त होते हैं, जो यह सूचित करते है कि प्राचीन भारत मे अभिनय कला अत्यन्त समृद्ध दशा मे थी । नाटक रचना तथा इसका रगशालाओं मे प्रदर्शन भारत मे सहस्रों वर्ष पूर्व से आरम्भ होकर मुसलमानी आक्रमण काल तक बराबर चलता रहा । भारतीय राजनीतिक जीवन छिन्न भिन्न और अराजकतापूर्ण हो गया । देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया और हिन्दू राज्य पारस्परिक कलह तथा ईर्ष्या मे अपनी शक्ति का ह्रास करने लगे । देश की इस अशान्ति और अराजकता से पूर्ण वातावरण का विदेशियों ने पूरा लाभ उठाया, धीरे-धीरे वे यहाँ के शासक बन बैठे । उस समय तक अभिनय कला के दो प्रमुख केन्द्र थे । एक तो राजाओं के दरबार दूसरे देव मन्दिर । मुसलमानों के कारण दोनों स्थानों का विध्वंस शुरू हुआ । फलतः अभिनय कला पर विशेष आघात पहुँचा । दूसरे इस्लाम धर्म में ईश्वरीय कृत्यों के अभिनय संगीत तथा नृत्य का विरोध था, फलतः अभिनय कला को प्रोत्साहन नहीं मिला । नाट्य के स्थान पर प्रहसन और भड़ैती को प्रोत्साहन अवश्य मिला । वाजिद-अली शाह के समय में उनके दरबारी कवि अमानत द्वारा 'इन्दर सभा' नामक

नाटक लिखा गया जो उर्दू का प्रथम नाटक कहा जाता है। बाद में पारसी कम्पनियों का प्रभाव बढ़ा परन्तु इन कम्पनियों के अभिनय कला पर पाश्चात्य अंगरेजी थियेटरों का पहले ही प्रभाव पड़ चुका था। क्योंकि इस समय तक भारत में अंग्रेजो का प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। अंग्रेजों द्वारा भारत के विभिन्न नगरों में यूरोपियन थियेटरों की नींव पड़ चुकी थी, जिनका विस्तृत वर्णन आगे चल कर किया जायगा।

लोक-रंगमंच

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारतीय इतिहास के मध्य युग से नाट्य कला उठ सी गई। हाँ, जनता में लोक-नाट्य या जन-रंगमंच की परम्परा रामलीला, रास लीला, सांग, यात्रा, नौटंकी कठपुतली और विदेशिया नाटकों के रूप में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही थी। मुख्यतः धार्मिक और लौकिक इनके दो उद्देश्य थे। इन लोक नाट्यों की भाषा विभिन्न जनपदों की बोलियाँ थीं। इनमें संगीत की प्रधानता रहती थी, और कथावस्तु का विकास संवादों द्वारा होता था। रामलीला, रास लीला तथा यात्रा नाटकों में धार्मिक लीलाओं का अभिनय तथा गायन के साथ प्रदर्शन होता था। सांग, नौटंकी, कठपुतली, भड़ैती तथा विदेशिया नाटकों में लोक गीतों का प्रचुर प्रयोग होता था, इन लोक गीतों मे बिरहा, कजरी, आल्हा, चौताल, पूर्वी, फाग चैती और सावनी प्रमुख थे, बाजे भी भारतीय थे, जिनमें हुड़का, ढोल, कड़ा, रोशन चौकी, ताशा, तुरही और खजड़ी का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता था। वास्तव में लोकनाट्य की सच्ची आत्मा इनमें उपस्थित थी। इनका आकर्षण इतना व्यापक था कि हजारों की संख्या में जनता दूर दूर से इन्हें देखने के लिए खिंच आती थी।

इन लोक नाट्यों का अपना एक साधारण रंगमंच भी था, जो चारों ओर से प्रायः खुला रहता था। इसका निर्माण अनेक तख्तों को पास पास रख कर किया जाता था, जिस पर अभिनेता अपना अभिनय करते थे। गायक और वादक भी वहीं एक किनारे बैठते थे। दर्शक रंगमंच के चारों ओर या तो नंगी जमीन पर बैठते या उस पर टाट या दरियों को बिछा कर बैठते थे। अभिनेता पर्दे के पीछे या पास के किसी कमरे में जो ग्रीन-रूम का काम देता था अभिनय के लिए अपने को तैयार करते थे। वे भद्दे तरीके से लाल रंग या पीली मिट्टी और खड़िया को मुँह पर पोते, मुखौटे और चमकते मुकुट को लगाये, नकली दाढ़ी, मूँछ बालों को सवारते हुए, रंग-बिरंगी तड़क-भड़क के कपड़े पहिने लकड़ी की चमकती तलवार या गदा लेकर रंगमंच पर पदार्पण करते थे। अभिनय के रूप में उछल-कूद, भद्दे कभी-कभी अश्लील मजाकों,

हाथ पैर पटकने, उच्च स्वर के हास्य तथा विलाप का ही विशेष रूप से प्रदर्शन होता था। चरित्र-चित्रण गम्भीरता की बारीकियों की ओर इनमें ध्यान कम दिया जाता था। पूजा, बलिदान, धार्मिक पर्वों, उत्सवों, व्याह तथा सामाजिक आनन्द के अवसरों पर इन लाक नाट्यों का अभिनय होता था। शादी, व्याह, पुत्र-जन्म आदि अवसरो पर ग्रामीण स्त्रियाँ आज भी तरह-तरह के स्वाँग करतीं है। कठपुतली नृत्य का प्रचार राजस्थान और मध्य भारत में विशेष रूप से था 'विदेशिया नाटकों का अधिक प्रचार उत्तरी भारत तथा बिहार में अधिक है, इनमे शृङ्गार प्रधान सम्वादों तथा नृत्यों के बीच कथानक का विकास होता है। नौटंकियों का अभिनय नृत्य तथा गीत के साथ नगाड़े के बाजे के सहयोग से होता है। मध्यकालीन वीरों की पराक्रम गाथा तथा शृंगार पूर्ण कृत्य इनके कथानक का प्रमुख अंग रहता था। अंगरेजी के बैलेड, आपेरा से यह अधिक मिलता जुलता था।

लोक नाट्यों की यह परम्परा अपने विभिन्न स्वरूपों मे सदियों से भारतीय जन जीवन के अंग-प्रत्यंग को प्रभावित करती हुई अत्यन्त व्यापक रूप से प्रचलित थी, परन्तु इसमें शास्त्रीय अभिनय या रंगमंच का रूप निहित नहीं था। इन नाटकों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक भावना की तृप्ति या लौकिक मनोरंजन को पूर्ण करना था। इनमें शास्त्रीय अभिनेय तत्वों का पूर्ण अभाव था। यवनिका, प्रवेशक, विष्कम्भक तथा नांदी पाठ का इसमें कोई ध्यान नहीं दिया जाता। दूसरे आगे चल कर इन लोक नाट्यो का स्वरूप भद्दा और शिथिल हो गया। हिन्दी रंगमंच का उद्भव इन जन रंगमंत्रों से सीधे नहीं हुआ, वरन् उस पर पारसी और अंग्रेजी रंगमंच का प्रभाव पड़ा। पारसी रंगमंच पर भी किस प्रकार पाश्चात्य रंगमंच का प्रभाव पड़ा था और बंगाल में अंग्रेजी रंगमंच की स्थापना सबसे प्रथम किस प्रकार हुई इसका वर्णन आगे चल कर किया जायगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि संस्कृत रंगमंच की परम्परा मुसलमानों के आने के समय लुप्त हो गई थी और उस समय शास्त्रीय रंगमंच का कोई आधार हिन्दी नाटकों के समक्ष नहीं था।

पाश्चात्य देशों का रंगमंच

ग्रीक रंगमंच—

पाश्चात्य देशों में नाटक का आरम्भ यूनान के दुखान्त नाटकों से होता है। ये नाटक डायोनिसस देवता की आराधना स्वरूप उसकी श्रद्धांजलि के रूप में अभिनीत होते थे। ग्रीक रंगमंच का वेश-विन्यास आजकल के रंगमंच से एकदम भिन्न था। इन नाटकों का अभिनय किसी प्रेक्षागृह मे न होकर प्रकृति

के उन्मुक्त प्रांगण में किसी पहाड़ी के ढाल पर या समुद्र के तट पर हुआ करता था। जहाँ करीब पन्द्रह हजार से बीस हजार तक दर्शक नाटक का अभिनय देख सकते थे। ये नाटक न तो व्यक्तिगत रूप खेले जा सकते थे और न इनका उद्देश्य टिकट बेच कर अर्थलाभ करना ही था। वरन् सरकार की ओर से वर्ष मे दो बार त्यौहारों के अवसरों पर इनका अभिनय किया जाता है। कभी कभी इनका व्यय धनी सेठ-साहूकार वहन करते थे। रंगमंच के भीतर आने का शुल्क बहुत साधारण होता था, गरीब दर्शक उससे भी मुक्त थे। नाटक की अच्छाई-बुराई के निर्णय के लिये न्यायकर्त्ता भी बैठते थे, जो अच्छे नाटकों पर पुरस्कार भी देते थे। एचीलस को अपने अगेमनेन नामक नाटक पर सरकार की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

रंगमंच की आकृति अर्द्धवृत्ताकार होती थी। डायोनिसस की पूजा का स्थान दर्शकों के बैठने के स्थान से जरा ऊँचा होता था। उसे बलि वेदी भी कहते थे, जिसको श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। रंगमंच का सबसे महत्वपूर्ण भाग आरकेस्ट्रा या नृत्य स्थान होता था उसे करीब आठ फीट अर्द्धव्यास में रहता था। यहीं से सहगायन नृत्य और अभिनय होता था। वास्तविक रंचमंच आरकेस्टा के पीछे होता था। रंगमंच के पीछे साजसज्जा गृह होता था। रंगमंच पर आने के कई दरवाजे होते थे। परन्तु अभिनेता कभी-कभी दर्शकों की भीड़ मे से आगे, दायें या बायें से भी निकल आता था अभिनेताओं को पूर्ण अभ्यास की शिक्षा दी जाती थी। नाचने मे केवल पैर हिलाने का ही काम नही होता था, वरन् उसमें भाव-भंगिमा तथा आंगिक चेष्टाओं का भी कलात्मक प्रदर्शन होता था। अभिनेता तड़क-भड़क के ढीले कपड़े पहनते थे, कभी-कभी अपनी ऊँचाई बढ़ाने के लिए लकड़ी के जूते भी पहन लेते थे। ग्रीक दुखान्त नाटक धार्मिक और संगीत पूर्ण होते थे। सहगायन उनका प्रधान तत्व था, अतएव अभिनेताओं को अपने स्वर को मधुर बनाना पड़ता था। पुरुष ही स्त्रियों का भी अभिनय करते थे। गीत वाद्य यंत्रों के साथ-साथ गाये जाते थे। कभी-कभी बकरी की खाल पहन कर या मुखौटों को लगाकर भी दुखान्त नाटकों का अभिनय होता था। सुखान्त नाटकों का अभिनय वेकस या सुरा देव की स्तुति में होता था। सुखान्त नाटकों में व्यंग्य तथा आलोचना की प्रधानता रहती थी। इन नाटकों द्वारा तत्कालीन समाज और राष्ट्र के शासन और सामाजिक नियमों की खुले रूप से व्यंग्य पूर्ण आलोचना की जाती थी, अतः ये नाटक एक प्रकार से समाचार पत्र का काम देते थे।

ग्रीक रंगमंच की विशेषताओं का यहाँ संक्षिप्त वर्णन इसलिए किया गया

कि भारतीय नाटकों और यूनानी नाटकों में अभिनय के कई एक तत्वों की समानता मिलती है। उदाहरण के लिए दोनों देशों में नाटकों का अभिनय एक धार्मिक कृत्य माना जाता था। जिस प्रकार यूनान के नाटकों में डायोनिसस की पूजा स्वरूप नाटकों का अभिनय होता जा, उसी प्रकार भारतीय नाटकों में भी ईश्वर वन्दना, मंगलाचरण तथा स्तुतिगान से नाटक का अभिनय आरम्भ होता था। नांदी पाठ और मंगलाचरण नाटक के प्रारम्भ में एक आवश्यक तत्व था। दूसरे सहगायन और नृत्य की प्रधानता भारतीय नाटकों में भी ग्रीक नाटकों की भाँति थी। सारांश यह है कि दोनों का उद्देश्य गम्भीर और धार्मिक होता था।

एलिजाबेथ के समय रंगमंच

हिन्दी रंगमंच पर अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों रूपों मे अँग्रेजी रंगमंच का प्रभाव पड़ा है। अप्रत्यक्ष रूप से बंगला और पारसी रंगमंच के माध्यम से पड़ा है और प्रत्यक्ष रूप से यूरोपियन थियेटर कम्पनियों के द्वारा पड़ा, जिनकी स्थापना अँग्रेजों के भारत में आने के पश्चात् हो गई थी और जो भारत के बड़े-बड़े नगरों मे उच्चकोटि के अधिकारियों के मनोरंजन का प्रधान केन्द्र बन चुकी थी। फलतः अँग्रेजी रंगमंच की विशेषताओं और उसके विभिन्न उपादानों का मूल रूप से अध्ययन आवश्यक है। अँग्रेजी रंगमंच का सबसे समृद्ध पूर्ण काल एलिजाबेथ के समय में शेक्सपीयर के काल में था। शेक्सपीयर के नाटकों का प्रत्यक्ष और व्यापक प्रभाव हिन्दी नाटकों पर पड़ा है, अतएव शेक्सपीयर के काल के रंगमंच तथा अभिनय की विशेषताओं का वर्णन यहाँ पर अत्यन्त समीचीन है।

एलिजाबेथ के समय के नाटककार तत्कालीन रंगमंच को ध्यान मे रखकर नाटकों को लिखा करते थे। अतः उसी समय के रंगमंच के लिये वे उपयुक्त हैं। परिणामतया आधुनिक रंगमंच पर वे नाटक नहीं खेले जा सकते। समाज के सभी वर्गों के लोग नाटकों को देखने के शौकीन थे। ये दर्शक काल्पनिक विचारों के होते थे। सबसे प्रधान अन्तर उस समय के रंगमंच और आधुनिक रंगमंच मे यह था कि वे चरित्रों और उनके सम्वादों पर ज्यादा ध्यान देते थे, अतः लालटेन लेकर टहलने वाला पात्र रात्रि का बोध कराता था। नाटक दिन में खेले जाते थे। कुर्सी और मेज से अंतःपुर का बोध होता था। ऊँची एड़ी के जूते पहनने वाला दूत या संवाददाता माना जाता है। कवच पहने हुए राजा को लोग युद्ध में लड़ते हुए समझ लेते। स्थान का उन्हें कोई ध्यान नहीं रहता था। अगर झगड़े या युद्ध का दृश्य रंगमंच पर दिखाया जाता

था तो हो, हल्लो, मारकाट और रक्तपात में ज्यादा आनन्द दर्शक लेते थे, किस स्थान पर लड़ाई हो रही है, इसकी चिन्ता उन्हें कम रहती थी। कभी-कभी सम्वादों के द्वारा स्थान का बोध करा दिया जाता था। तडक भड़क के दृश्यों को लोग अधिक चाव से देखते थे, अतः इन दृश्यों की अनुकूल तैयारी के लिए कीमती और भडकीले कपडों को पहनना अभिनेताओं के लिये आवश्यक होता था। कभी-कभी इन कपड़ों के लिए रंगमंच के व्यवस्थापकों का व्यय बहुत अधिक होता था। क्योंकि कपडे कभी-कभी बहुमूल्य होते थे। स्त्रियों का अभिनय छोटे छोटे लड़के किया करते थे। इन लडकों को थियेटरों के व्यवस्थापक बचपन ही से अपने पास रख लेते थे और नारी-अभिनय की पूर्ण शिक्षा उन्हें देते थे। एक बार सीख जाने पर बहुत दिनों तक ये लड़के स्त्रियों का अभिनय करते थे। उनको अपनी आवाज भी मधुर और कोमल बनानी होती थी।

रंगमंच निर्माण

एलिजाबेथ कालीन रंगमंच खुले स्थान में बनाये जाते थे। वे या तो वर्गाकार या कोणाकार आकृति के होते थे। बीच के भाग की छत ऊपर खुली रहती थी। मध्य का भाग पिट या यार्ड कहा जाता था, जहाँ साधारण और दीन दर्शन इकट्ठे रहते थे। वहाँ पर बैठने के लिए तीन गैलरियाँ होतीं थी, जिनकी छत पर छाजन रहती थी। वर्षा और ठंडक से रक्षा के लिये वहाँ समुचित प्रबन्ध था। इन गैलरियों में बैठने का स्थान रईसों और धनिकों के लिए होता था। रंगमंच के तीन भाग थे। (१) बाहरी रंगमंच, (२) भीतरी रंगमंच तथा (३) ऊपरी रंगमंच। बाहरी रंगमच सबसे निचला रंगमंच होता था, जो जमींन से दो तीन फीट की ऊँचाई पर बना होता था। कभी-कभी वह रेलिंग से भी घिरा भी होता था। इस बाहरी रङ्गमंच को दर्शक पूरी तौर से देख सकते थे क्योकि वह पर्दे से घिरा नहीं रहता था। इसीलिए स्वगत भाषणों के लिए यह स्थान अत्यन्त सुविधाजनक था। इसके पीछे दो और रङ्गमंच रहते थे। एक छोटा कमरानुमा परदे से घिरा हुआ शयन-गृह था, तीसरा भाग इस कमरे के ऊपर रहता था। अट्टालिका या पहाड़ी का दृश्य यदि दिखलाना होता तो इसी भाग से दिखलाया जाता था। कभी कभी अभिनेता बाहरी रंगमंच पर एकदम दर्शकों के सन्निकट तक खड़ा रहता था, ऐसा आजकल नहीं

1—Viola—What country, friends is this ?
Captain—This is Illyria lady.
-(Act I sc. II)—Twelth Night. Shakerpeare.

हो सकता। दर्शकों के नजदीक होने के कारण अभिनेताओं को जोर से बोलना भी नहीं पड़ता था।

एलिजाबिथन रङ्गशालाओं में स्वान थियेटर, ग्लोब थियेटर, न्यू इन, मिडल टेम्पुल आदि प्रमुख थे। स्वान थियेटर का एक रेखाचित्र जो डच यात्री डि० विट का (१५६६ ई०) का बनाया हुआ है, अब भी मौजद है। शेक्सपीयर स्वयं जिस कम्पनी में काम करता था, उसका नाम लार्ड चेम्बरलेन कम्पनी थी। बाद में इन लोगों ने कुछ अन्य सहायकों की सहायता से ग्लोब थियेटर खोला, जिसमें शेक्सपीयर की ख्याति चरमोन्नति को पहुँच गई। इन कम्पनियों के अभिनेता साझीदारी के रूप में कम्पनी को चलाते थे। पन्द्रह से बीस साझीदार प्रत्येक कम्पनी में होते थे, इसलिए उनका काम स्थायी रूप से चलता रहता था। छोटे-छोटे लड़कों को जो स्त्रियों के अभिनय के लिये सात या आठ वर्ष की अवस्था में ही भर्ती कर लिये जाते थे, कुछ वर्षों के बाद कम्पनी के स्थायी साझीदार हो जाते थे। एलिजाबेथ के समय के नाटकों को हम तब तक समझ नहीं सकते, जब तक तत्कालीन रङ्गमंच की ये सब विशेषताएं हम स्पष्ट रूप से न समझ जायँ।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के यूरोपीय रङ्गमंच—

सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नाटक और रङ्गमंच के क्षेत्र मे फ्रांस का स्थान यूरोपीय देशों में सर्वोपरि था। क्योंकि यूरोप की राजनीति में फ्रांस का तगडा हाथ था। चौदहवें लुई के समय में फ्रांस में राष्ट्रीय साहित्य की स्थापना की व्यवस्था हो रही थी। इंग्लैंड, जर्मनी, रूस तथा स्पेन के नाटककार फ्रांस से ही आदर्श ग्रहण करते थे। स्वच्छन्दतावादी नाटकों का युग समाप्त हो गया था। उदात्तवादी नियमों (क्लासिकल रूल्स) का बोलबाला था। अरस्तू के सिद्धान्तों का पालन वेद वाक्य की भाँति होता था। सॉस्कृतिक तथा साहित्यिक आयोजनों का केन्द्र उस समय पेरिस था जो सारे यूरोप में प्रसिद्ध था। थियेटर कहीं हो, नाटक के अभिनेता कहीं हों, उनको अपने व्यवसाय की प्रेरणा पेरिस से ही प्राप्त होती थी। चौदहवें लुई के संरक्षण में मौलियर और रेसीन जैसे विश्वविख्यात नाटककार उत्पन्न हुए। रिचल् के प्रभाव से पैलेस कार्डिनल और पैलेस रायल नामक थियेटर गृह स्थापित हुए। रङ्गमंच का परिधान और उसकी वेश-भूषा अत्यन्त सरल हो गई। कुछ दिनों पश्चात् और अनेक थियेटर गृह स्थापित हुए। पियरे कानेली के लिसिड नामक नाटक ने एक युग क्रान्ति उपस्थित कर दी। रङ्गमंच दरबारों के लोगों के मनोरंजन के लिए सीमित हो गया। रङ्गशालाओं के बढ़ने से दर्शकों की संख्या में भी

वृद्धि हो गई। कुछ दिनों पश्चात् उच्च वर्ग के लोगों के स्थान पर धनिकों, सेठ, साहूकारों तथा मध्यम वर्ग के दर्शकों की प्रधानता रंगशाला में अधिक हो गई।

सत्तरहवीं शताब्दी के अन्त में इटली में आपेरा का सूत्रपात हुआ जिसमें संगीत तथा नृत्य की प्रधानता रहती थी। यूरोप के रंगमंच के निर्माण का सारा परिश्रम इन आपेरा—रंगमंचो के बनने में लग गया, जिसमें दृश्यों में केवल संगीत की प्रधानता रहती थी।[1]

इसी समय इटली से कामेडिया डैल आर्ते नामक नाटकों का सूत्रपात हुआ जिनका प्रभाव सारे यूरोप में नाटकों पर पड़ा। इन नाटकों का रंगमंच अत्यंत साधारण रहता था। सन्दूक के आकार के दो तख्त अगल बगल रंगमंच पर बिछे रहते थे। पीछे एक काला पर्दा टंगा रहता था, जिस पर झाड़ियों और वृक्षों के चित्र बने रहते थे, जिनसे जंगल का बोध होता था। एक अभिनेता जादूगर की भाँति लम्बा गाउन पहने आता था और दर्शकों से कहता था कि उसने अपने जादू के प्रभाव से आर्केडिया के तमाम गड़ेरियों को मंत्र मुग्ध कर लिया है। उसी समय तूफान का दृश्य रंगमंच पर दिखाया जाता जिसमें समुद्र में जहाज चूर-चूर होते दिखाये जाते थे। इसके बाद जंगल में बन देवता और देवियों की प्रेम चर्चा, आनन्द और उल्लास का दृश्य सामने दिखाया जाता। उन्मुक्त प्रकृति के प्रांगण में चरवाहों के प्रेम का अभिनय इन नाटकों के वातावरण की प्रधान विशेषता थी।

उन्नीसवीं सदी का यथार्थवादी रंगमंच

नाटक के विषय तथा अभिनय शैली में उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में एक क्रान्ति हुई। पुराने नियम और मानदण्ड एकदम बदल गये। रंगमंच का स्वरूप न तो स्वच्छन्दतावादी नाटकों का रहा न उदात्तवादी। यथार्थवाद की मांग जोर से बढ़ चली। फ्रांस से आगर और ड्यूमा, जोला तथा स्क्राइव ने यथार्थवादी टेकनीक को विकसित किया। यथार्थवाद एक देशव्यापी आँधी के

1—"All that lavish theatre building of the 17th cent., all that labour expended in creating magestic setting, all that inventive power applied to the devising of stage. was conspicous Machinery was asrociated not with the drama, but with opera. Words were lost in the splendour of the scene and in the harmonies of the music. During the 17th cent. Italy has nothing to give us work in the realm of the Lit play. The opera had triumphed. The World Drama, A Nicol, p. 190.

रूप में सारे यूरोप में फैल गया। इसके पश्चात् इब्सन, शा और गाल्सवर्दी के द्वारा यथार्थवाद अपनी चरम उन्नति को पहुँचा। रावर्ट्सन, पिनरो, जोन्स, सिज तथा वेरी ने रंगमंच की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया। इधर वैज्ञानिक आविष्कारों ने वातावरण में एक क्रान्ति उपस्थित कर दिया था। अब तक थियेटर गृहों में गैस का प्रकाश प्रयुक्त होता था, उसके स्थान पर बिजली की रोशनी की चकाचौंध आई। चलचित्रों के प्रचार से नाट्य गृहों की लोकप्रियता को काफी ठेस पहुँची। नाटक देखने वालों की संख्या कम हो गई। दर्शकों मे स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक होने लगी। अमेरिका में औरतों की संख्या दर्शकों के रूप में सबसे अधिक है। इसका कारण यह था कि जनतंत्र वाद की उठती हुई लहर ने नारी स्वतन्त्रता का उच्च घोष सारे यूरोप में निनादित किया है।

थियेटर गृहों में विद्युत प्रकाश के प्रयोग से वातावरण निर्माण में अनेक सुविधाएँ प्राप्त हुई। प्रातः, संध्या, सूर्य के प्रकाश तथा अर्द्ध रात्रि की ज्योत्स्ना का चित्रण सरलता से विद्युत प्रकाश से किया जाने लगा। विद्युत प्रकाश से हमारी भावनाओं पर भी महान् प्रभाव पड़ा। प्रकाश के कारण निर्भयता आ गई। शेक्सपीयर के मैकबेथ, हेमलेट जैसे नाटकों का भयपूर्ण वातावरण उत्पन्न करना कठिन हो गया। मशीनों के प्रयोग से घूमने वाले रंगमंच (रिवा-ल्विंग स्टेज) की व्यवस्था हो गई जिसमें एक साथ नाटक के कई दृश्य दिखाये जा सकें। इससे अगले रंगमंच के किसी दृश्य का अभिनय हो रहा हो तो पीछे के रंगमंच पर तैयारी करने की भी सुविधा मिली। न्यूयार्क में स्टील मैकायी ने १८८१ में मैडीसन स्कायर थियेटर स्थापित किया जिसमें मशीन के प्रयोग का इतना कुशल कौशल था कि सारा का सारा रगमंच अभिनेताओं और उनकी साजसज्जा के साथ बिजली के बटन दबाने से ही ऊँचा या नीचा किया जा सकता था। इसे एलीवेटर रंगमंच कहते थे। इसी समय के लगभग आस्ट्रिया की राजधानी बुडापेस्ट में आपेरा थियेटर गृह के लिये एक हाईड्रालिक रंगमंच बनाया गया जिसके द्वारा कई दृश्य एक साथ रंगमंच पर अनेक सुविधाओ के साथ प्रस्तुत किये जा सकते थे।[1] आटो ब्राहम के देखरेख में बरलिन में नये रंगमंच स्थापित हुए जिनमे यथार्थवादी टेकनीक को प्रधानता मिली। रिपर्टरी ढंग के रंगमंचों की ओर अनेक नाटककार आकर्षित हुए परन्तु बाद में उनके स्थान पर अव्यावसायिक और स्वतन्त्र रंगमंचों का सारे यूरोप में

1. "The World Drama" A. Nicoll,
pp. 522-23.

जाल सा फैल गया। एन्ड्रे अन्टौनी नामक फ्रांसीसी कलाकार की अध्यक्षता में जो नेचुरलिज्म का समर्थक था, पेरिस में थियेटर लिबरे की स्थापना हुई। इन रंगमंचों का आकार पहले के रंगमंचों की अपेक्षा छोटा बनता गया, परन्तु उनमें वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण अनेक सुविधाएँ बढ़ गई। अभिनय में संवादों की प्रधानता अधिक हो गई। युद्ध के दृश्य और मारकाट के कथानक कम हो गये। पद्य का स्थान गद्य ने ले लिया। स्वगत भाषणों तथा काव्यात्मक सम्वादों का अभाव हो गया। कमरे के बाहर के दृश्यों की लोकप्रियता बढ़ गई। कभी-कभी ड्राइंग रूम की अपेक्षा, बगीचे या क्लब में दृश्य स्थान रखे जाने लगे। पर्दे का प्रयोग बढ़ता गया। भड़कीले, रंगीन तथा दिखावटी पहनावे के स्थान पर नित्य के प्रयोग के कपड़े यथार्थवादी वातावरण की स्वाभाविकता की वृद्धि के लिए अभिनेताओं द्वारा पहने जाने लगे। रंगमंच संकेतों से दर्शकों के लिये अधिक सुविधा हो गई, इसलिए तड़क भड़क के बनावटी दृश्यों की योजना कम होती गई। पुरुषों और स्त्रियों का अभिनय अलग अलग होने लगा, स्त्रियों का वेश बदल कर पहले पुरुष अभिनय करते थे, यह स्वाभाविकता के प्रतिकूल माना गया। धार्मिक तथा रोमैन्टिक कथानकों के स्थान पर सामाजिक तथा घरेलू समस्याओं से सम्बन्धित वातावरण को रंगमंच पर अधिक प्रश्रय मिला। शादी, प्रेम, तलाक, वर्ग संघर्ष, समाजवाद तथा मनोविज्ञान के कथानक नाटकों में अधिक ग्रहण किए गए। इंगलैंड में पिनरो तथा जोन्स के नाटकों ने घरेलू रंगमंच के उपादानों में वृद्धि की। रिपर्टरी थियेटर गृहों ने अनेक उपन्यासकारो को नाटक की ओर आकर्षित किया। रूस में आस्ट्रोवास्की ने व्यवसायी रंगमंच की स्थापना की। उसने रूस के तत्कालीन जीवन के चित्र अपने नाटकों में खींचा। टर्गनेव, टालस्टाय तथा चेखोव ने यथार्थवादी टेक्नीक को और भी परिपक्व किया। ब्रूइक्स ने फ्रांस में रंगमंच और उसके वातावरण में बौद्धिकता लाने का प्रयास किया।

बीसवीं शताब्दी तथा उसके पश्चात् आधुनिक यूरोप का रंगमंच

इब्सन और शा के पश्चात् नाटको के विषय-विस्तार तथा रंगमंचीय वातावरण मे विभिन्न प्रयोग हुए। १८९५ में अंडोल्फी एपिया नामक स्विटजरलैंड के कलाकार ने अपनी एक पुस्तक में 'ला मिज़े इन सीन ड्यू ड्रामा वैगनेरियन में रंगमंच के लिए प्रकाश के द्वारा विभिन्न प्रकार के वातावरण निर्माण की योजना प्रस्तुत की। उसने इस नाटक में कुछ ऐसे चित्र बनाये, जिनके द्वारा उसने रङ्गमंच के व्यवस्थापकों को नवीन सुझाव दिए जिनके आधार पर नीचे प्लेटफार्म वाले रङ्गमंच पर प्रकार के द्वारा आश्चर्यजनक सेटिंग दिखाई जा

सकती थी। इंलैंड के गार्डन क्रेग नामक कलाकार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी आर्ट आफ दी थियेटर' में काव्यात्मक उपादानों के उपयोग की योजना रङ्गमंच के लिए प्रस्तुत की। इसी समय मास्को आर्ट थियेटर की स्थापना रूस में हुई, जिसके द्वारा रङ्गमंच पर नेचुरलिस्टिक टेकनीक का विकास हुआ। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग जिन देशों में होता था, वहाँ छोटे-छोटे रिपर्टरी थियेटरों की प्रचुरता से स्थापना हुई। अब तक यूरोप के बड़े-बड़े नगरों में ही रंगशालायें थीं, अब देहातों और कस्बों तक में उनका विस्तार हुआ। इंग्लैंड में वरमिंघम रिपर्टरी थियेटर की स्थापना १९१३ ई० में हुई। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ओ नील के नाटकों के उपयुक्त रङ्गमंचों की स्थापना अमेरिका में हुई। इस प्रकार इन अव्यवसायी रङ्गमंचों ने प्रतिभाशाली नाटककारों की कला को विकसित किया। मास्को आर्ट थियेटर ने चेखोव को आगे बढ़ाया, सिंज को डबलिन एवं तथा शा को इनडिपेन्ट्स स्टेज सोसाइटी से विशेष प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी की सबसे प्रधान विशेषता थी अव्यावसायिक रङ्गमंचों की स्थापना जिसके अनेक कलाकारों को जन्म दिया।

इसी समय जर्मनी से रोमैन्टिक तथा यथार्थवादी रंगमंच के प्रतिक्रिया स्वरूप स्वभाववादी रंगमंच की स्थापना हुई, जिसका विकास स्ट्रिन्डवर्ग, हाप्ट्समैन, तथा मैतरलिंग के नाटकों द्वारा हुआ। बड़े-बड़े दृश्यों का स्थान छोटे दृश्यों ने ले लिया। संवाद अस्तव्यस्त तथा टूटे फूटे हो गये जो अव्यवस्थित मस्तिष्क की विचारधाराओं को ठीक ढंग से व्यक्त कर सकते थे। आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों का पूर्ण उपयोग अभिनेता रंगमंच पर दिखाने लगे। अर्द्ध चेतन मन की प्रक्रियाओं और परिस्थितियों का प्रदर्शन किया जाने लगा। वास्तविक चरित्रों के स्थान पर प्रतीकवादी चरित्र रंगमंच पर आने लगे। व्यक्ति, समूह का प्रतिनिधि बन गया। प्रकाश का पूर्ण उपयोग रंगमंच पर किया। मोनोलोग की प्रधानता हो गई। कथानक तथा सेटिंग में एकदम सादगी और मितव्ययिता का उपयोग किया गया। इसके द्वारा कुरसी से एक कमरे का बोध कर लिया जाता है। एसाइड के द्वारा चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट चित्र खींचा जाने लगा जिससे दर्शकों के मन पर यह स्पष्ट प्रभाव पड़े कि अभिनेता ऊपर से कह कुछ और रहा है और उसके मन के विचार कुछ और हैं। निराशा, कुंठा तथा मानसिक अवसाद की व्यंजना रंगमंच के लिये एक फैशन सा हो गया। बाहरी कार्य व्यापारों की अपेक्षा मानसिक क्रियाकलापों तथा अवचेतन मन की चेष्टाओं का प्रदर्शन साधारण रूप से होने लगा। उदाहरण के लिये एमर राइस के ऐडिंग मशीन तथा ओ नील के दी हेयरी एप में प्रतीकवादी चरित्रों की अवतारणा तथा मानसिक कुंठा का प्रदर्शन किया गया। कहने का

भाव यह है कि थियेटर व्यक्तिवादी (सबजेक्टिव) हो गया। मनोविश्लेषण, (साइकोएनलसिस) के आधार पर रङ्गमञ्च पर सामूहिक भावना का प्रदर्शन विशेष रूप से किया जाने लगा।

पश्चिम का रङ्गमञ्च आज अत्यन्त समृद्ध और विकसित हो गया है। असम्भव से असम्भव दृश्यों को विज्ञान के चमत्कार द्वारा रङ्गमञ्च पर आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। स्ट्रिन्डवर्ग तथा मेतरलिंक के स्वप्न के दृश्य भी नाटकों के रङ्गमञ्च पर आसानी से दिखाए जा सकते हैं। अतः विज्ञान के आविष्कारों तथा विद्युत प्रकाश की सुविधाओं ने रङ्गमञ्च की व्यवस्था में पूर्ण सहयोग दिया है।

हिन्दी रंगमंच पर पाश्चात्य तथा पारसी रंगमंच का प्रभाव

इस अध्याय के प्रारम्भ में यह बताया जा चुका है कि संस्कृत काल के प्रेक्षागृह और रङ्गशालायें बहुत पहले नष्ट हो गई थीं और मुसलिम काल में इस कला को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। अट्ठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ में जब यूरोपीय जातियों का भारत में आगमन हुआ और अंग्रेजों का धीरे-धीरे यहाँ प्रभुत्व स्थापित होने लगा तो मनोरजन के अन्य उपादानों की वृद्धि के साथ थियेटर-भवनों की भी स्थापना हुई। इसका सूत्रपात सबसे पहले कलकत्ता तथा बम्बई के नगरों में हुआ जहाँ यूरोपियन लोगों की संख्या अधिक थी तथा जो व्यापार के केन्द्र होने के कारण अधिक जन संख्या से पूर्ण थे। कलकत्ता का सबसे प्रथम थियेटर 'दी ओल्ड प्ले हाउस' था जो सन् १७५३ ई० के पहिले से वहाँ वर्तमान था। इसके पश्चात् 'दी कैलकटा आर इङ्गलिश थियेटर' का पता मिलता है जो १७७६ ई० मे एक लाख रुपये के व्यय से, जो चंदे द्वारा प्राप्त हुआ था, स्थापित हुआ। इसकी सजावट के निमित्त इङ्गलैंड से स्टेज, सीनरी तथा झाड़ फानूस के सभी सामान लाए गए थे। इस थियेटर में मिस एमिला रङ्गहम प्रथम नारी अभिनेत्री थी। उसने 'पूअर सौल्जर' नामक नाटक अपने निजी थियेटर में जिसका नाम मिसेज ब्रिस्टोज प्राइवेट थियेटर १७८६ में अभिनीत किया। १७९५ ई० मे गवर्नर जनरल सर जान शोर की आज्ञा से लेवेडेफस, इंडियन थियेटर खुला जिस पर २१ मार्च १७९६ को 'द डिसगाइज' और 'द लव इन दी वेस्ट डाक्टर' नामक नाटक खेले गए। हेरीजम् लेवेडफ एक रूसी यात्री था जो पेरिस, लन्दन इत्यादि नगरों मे घूमता हुआ १७८२ में मद्रास में बैन्ड मास्टर हुआ। संगीत का उसे अच्छा ज्ञान था। कलकत्ता में रहने वाले यूरोपीय निवासियो के मनोरजन की ओर उसका ध्यान विशेष रूप के आकर्षित हुआ फलतः तत्कालीन गवर्नर जनरल की आज्ञा से उसने लेवेडेफस इन्डियन थियेटर की स्थापना की जिसमें अंग्रेजी और बंगला

दोनों प्रकार के नाटक खेले जाते थे। इस प्रकार एक रूस निवासी कलाकार की प्रेरणा से कलकत्ते में प्रथम रङ्गमञ्च की स्थापना हुई। इसका समर्थन दास गुप्ता ने अपनी पुस्तक में अत्यन्त दृढ़तापूर्वक स्वीकार किया है।[1] १८०८ ई० में चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों द्वारा एक और थियेटर गृह खोला गया जिसमें 'ल अफोकट' नामक प्रहसन का अभिनय अप्रैल मास में किया गया। इसमें एक ऐसे गड़ेरिये के अभियोग की कथा थी, जिसने कुछ भेड़ों को चुराया था। १८१२ ई० में पुर्तगाली चर्च द्वारा 'दी एथीनियम' नामक थियेटर की स्थापना हुई। इस रंगशाला में 'अर्ल आफ सेक्स' नामक नाटक खेला गया। १८१३ ई० में 'चौरंगी थियेटर' तथा १८१७ ई० में डमडम थियेटर खुले। चौरंगी थियेटर की ख्याति दूर दूर तक फैली। इस थियेटर को एक इटैलियन कम्पनी ने १०० रुपए प्रति रात्रि के किराये पर खरीद लिया। २ फरवरी १८२७ ई० के इंडियन गजट में चौरङ्गी थियेटर के अभिनय के सम्बन्ध में एक समाचार छपा था जिसका आशय था इस थियेटर में 'वाटर मैन' नामक फ्रेंच नाटक बड़ी धूम-धाम से खेला गया जिसमें दर्शकों की अपार भीड़ थी। इसमें एक बूढ़े फांसीसी किसान का अभिनय मारक्ल नामक अभिनेता द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से किया गया था। मौजार्ट के आरकेस्ट्रा का प्रदर्शन भी अत्यन्त मनोहर ढंग से हुआ था।[2] चौरङ्गी थियेटर के अभिनयों में जिसमें यूरोपीय नाटक खेले जाते थे बङ्गाली दर्शकों का अपार जनसमूह इकट्ठा होता था। १८२२ ई० मार्च के एशियाटिक जर्नल से निम्नाङ्कित वक्तव्य से इसका समर्थन किया जा सकता है—

"Such was the earnestness for the English plays amongst our countrymen that each night a number of Bengali spectators, were among the audience. It affords us pleasure to observe such a number of respectable natives among the audience every play night. It indicates a growing taste for the English drama which is an auspicious sign of the progress of general literature among our native friends."[3]

अर्थात् बङ्गालियों में अंग्रेजी नाटकों के देखने की रुचि इतनी प्रबल हुई कि दर्शकों में उनकी संख्या ही अधिक मिलती थी। इन दर्शकों में काफी संभ्रान्त कुल के व्यक्ति भी होते थे। उनकी उपस्थिति इस बात की सूचक थी

1. The Indian stage by Hemendra Nath Das Gupta.
   Indian Gazette, Feb. 2, 1127, 237.
2. Indian Gazette, Feb. 2, 1827, p. 237.
3. The Asiatic Journal, March, 1822.

कि अंग्रेजी नाटको के द्वारा साधारण साहित्य का प्रचार देशी मित्रों में बड़े जोर से हो रहा था।

इसके पश्चात् बङ्गाल मे थियेटर भवनों की संख्या में, निरन्तर वृद्धि होती गई। प्रथम बङ्गला थियेटर नवीनचन्द्र बोस द्वारा १८३३ ई० में स्थापित हुआ। इन रंगशालाओं में अंग्रेजी नाटकों का विशेषतया शेक्सपीयर के नाटकों का अभिनय होता था। तीस मार्च १८३७ ई० मे कलकत्ते में हिन्दू कालेज तथा संस्कृत कालेज के विद्यार्थियों ने पुरस्कार वितरण के अवसर पर शेक्सपीयर के कुछ नाटकों के विभिन्न दृश्यों का अभिनय किया। उसी साल मैट्रोपोलिटन एकेडेमी में जूलियस सीजर का अभिनय किया गया।

१८५३ ई० में प्रियानाथदत्त तथा दीनानाथ घोष के सम्मिलित प्रयत्न से ओरियंटल थियेटर की स्थापना कलकत्ते में हुई जिसमे पहली बार मर्चेन्ट आफ वेनिस तथा ओथेलो का अभिनय किया गया। इसके पश्चात् अनेक बङ्गाली रङ्गशालाओं की स्थापना हुई जिसमें मिनर्वा थियेटर तथा स्टार थियेटर मुख्य है जिनके निर्माण में श्री गिरीशचन्द्र घोष का प्रमुख हाथ था। ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह भलीभाँति स्पष्ट है कि बङ्गला रङ्गमञ्च को यूरोपीय थियेटर तथा अंग्रेजी नाटकों से सबसे पहले प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। भारतीय रङ्गमञ्च पर पाश्चात्य प्रभाव कितना है इसी से पूर्णतया स्पष्ट है।

पारसी-रंगमंच

बम्बई मे भी अंग्रेजी रंगमंच का आगमन हो चुका था। सन् १७७० ई० में एलफिन्सटन सर्किल के पुराने मैदान में बम्बई का सबसे पहला थियेटर गृह बना। इसके निर्माण के लिये भूमि सरकार द्वारा मिली थी। लोगो ने इसके लिये चंदा इकट्ठा किया था। यूरोपियन लोग प्रहसनों, मूक अभिनयों तथा शेक्सपीयर की रचनाओं में शोकिया भाग लेते थे। बम्बई स्थित पारसी तथा हिन्दुओ का ध्यान इन रंगशालाओ की ओर आकर्षित हुआ। पारसी लोग धनी तथा व्यवसायी जाति के थे। इन लोगों ने रंगमंच को धनोपार्जन का साधन बनाया और सारे भारत के बड़े-बड़े नगरों में ड्रामेटिक कम्पनियों को स्थापित करके एक ओर जनता के मनोरंजन का साधन भी जुटाया, दूसरी ओर पैसा कमाने का भी प्रयत्न किया। कभी-कभी उनकी रंगशालायें एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम घूम कर अभिनय किया करती थीं। नाटकों की भाषा उर्दू रखी गई। पारसी कम्पनियों ने अपने रङ्गमंच के टेकनीक को अंग्रेजी रङ्गमंच के आधार पर निर्मित किया जो शेक्सपीयर-कालीन रङ्गमंच

के आधार पर था।[1] इसी अंग्रेजी रङ्गमंच का आवश्यकतानुसार अनुसरण इन कम्पनियो ने किया। कहने का तात्पर्य यह है कि परिस्थितियों की माँग के अनुकूल विदेशी रङ्गमंच में भारतीयता लाने का भी प्रयत्न किया गया। सन् १७६० ई० के लगभग सेठ पेस्टन जी फ्राम जी ने अपने कई साथियो के साझेदारी में बम्बई में 'ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी' खोली। इन कम्पनियों के साझीदारों में कावस जी खटाऊ, खुरशेद जी, सोहराब जी तथा जहाँगीर जी थे। ये लोग इस कम्पनी के नाटको मे अभिनय भी किया करते थे। कम्पनी के लिए दो प्रसिद्ध नाटक लेखक मोहम्मद मियां 'रौनक' बनारसी और हुसैन मियां जरीफ प्रसिद्ध थे। इन लेखको ने मौलिक नाटकों के अतिरिक्त अंग्रेजी के विशेषकर शेक्सपीयर के कई नाटकों का अनुवाद कम्पनी के लिये किया।

दिल्ली मे भी १८७७ में खुरशेद जी ने विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी खोली। खुरशेद जी कम्पनी के प्रसिद्ध कामिक अभिनेता थे। उस कम्पनी में मिस खुरशेद तथा मिस महताब नाम की दो प्रसिद्ध नर्त्तकियाँ भी थीं, जिनके साथ एक अंग्रेजी महिला भी काम करती थी, जिसका नाम मेरी फेन्टन था। इसी वर्ष के आसपास कावस जी, खटाऊ जो प्रसिद्ध ट्रैजिक अभिनेता ने अलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना की। शेक्सपीयर के रोमियो और जूलियट के उर्दू रूपान्तर का उन्होंने बहुत ही सफल अभिनय किया था, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी। नारायणप्रसाद बेताब तथा लखनऊ निवासी सैयद मेहदी हसन इस कम्पनी के प्रधान नाटककार थे। इन नाटककारों ने शेक्सपीयर के कई नाटको का अनुवाद किया, जिनमें दिल फरोश, हैमलेट, भूल भुलैया मुख्य थे। 'बेताब' ने रामायण और महाभारत से कथानक लेकर नाटकों को लिखा, जिससे उनकी बड़ी ख्याति फैली। ओरीजिनल थियेट्रिकल कम्पनी के चौथे अभिनेता सोहराबजी ने आगे चलकर न्यू अलफ्रेड कम्पनी को खोला। सोहराबजी इस कम्पनी के प्रसिद्ध हास्य अभिनेता थे। आगाहश्र काशमीरी तथा पं० राधेश्याम कथावाचक इस कम्पनी के प्रमुख नाटककार थे, जिन्होंने पौराणिक तथा धार्मिक नाटकों को लिखकर उत्तरी भारत में बहुत नाम पैदा किया। न्यू अलफ्रेड कम्पनी के शिथिल होने पर आगाहश्र ने उसे छोड़कर शेक्सपीयर थियेट्रिकल कम्पनी चलाई, परन्तु कुछ दिनों के बाद बन्द वह भी हो गई। इसके बाद थियेट्रिकल कम्पनियों की बाढ़ सी आ गई। इन कम्पनियो में इण्डियन इम्पीरियल थियेट्रिकल कम्पनी, इण्डिया आपेरा थियेट्रिकल कम्पनी, पारसी जुबिली थियेटर कम्पनी आफ बाम्बे, मून आफ इण्डिया कम्पनी, पीटर्स कम्पनी तथा हर मैजेस्टी विक्टोरिया ड्रामेटिक थियेट्रिकल कम्पनी मुख्य थीं। इन कम्पनियों का

१—आधुनिक हिन्दी साहित्य, डा० वार्ष्णेय, पृ० २७०।

रंगमंच अँग्रेजी तथा पारसी रंगमंच दोनों की विशेषताओं को लिये हुए था उनके नामकरण से ही स्पष्ट है कि इन्होने तत्कालीन अँग्रेज अधिकारियों को प्रसन्न करने तथा प्रोत्साहन पाने के लिए अँग्रेजी रंगमंच के टेकनीक को अवश्य अपनाया होगा। इन नाटकों से संगीत की टेक, उर्दू और अँग्रेजी ढंग की होती थी। स्टेज के मुताबिक पर्दे लगाये जाते थे। नये सीन सीनरी से युक्त नाटकों को दिखाकर दर्शको को विस्मय से भर देने का ही मंतव्य इन कम्पनियों के डाइरेक्टरो का होता था। नाटकों के कथानक चमत्कार से भरे पड़े थे, सम्वादो में उर्दू की शेरबाजी का विशेष प्रभाव था। रंगमंच के शास्त्रीय नियमों की ओर ध्यान न देकर किसी प्रकार जनता को बाहरी चटक मटक से मुग्ध करके पैसा कमाना इनका प्रधान उद्देश्य था। नाटकीय सुरुचि और कुरुचि का इन्हे तनिक भी ध्यान न था। प्रायः इन नाटकों का आरम्भ कोरस से होता था, जो ग्रीक नाटकों के आधार पर था। इन कम्पनियों के नाटकों के साथ एक प्रहसन या कामिक भी रहता था, जिसमे अश्लील प्रेम, चुम्बन, भद्दे मजाकों की भरमार रहती थी जिन्हें देखकर दर्शकगण बाहबाही में तालियों की गड़गड़ाहट कर बैठते थे, जिससे सारी रङ्गशाला गूँज उठती थी। कभी कभी कृष्ण और राम को विर्राजस या पैट पहना खड़ा कर दिया जाता था, जो सारे नाटक के वातावरण को चौपट कर देता था। व्यवसायी कम्पनियों में पारसी कम्पनियों के अतिरिक्त और भी कई कम्पनियाँ थी, जिनका मुख्य उद्देश्य अर्थोपार्जन था, यद्यपि इन्होंने नाटकीय सुरुचि तथा हिन्दी भाषा के प्रचार का भी ध्यान दिया। इन कम्पनियों में काठियावाड़ की सूर-विजय तथा मेरठ की व्याकुल भारत कम्पनी प्रसिद्ध थीं। पारसी कम्पनियों की कुरुचि तथा सस्ते मनोरंजन को दूर करने में इनका विशेष हाथ था।

पारसी कम्पनियों की इसी कुरुचिपूर्ण अभिनय का उल्लेख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था। वहाँ शकुन्तला नाटक का अभिनय 'पतरी कमर बल खाय' गाते और कमर और सर पर हाथ रख रख कर गंवार स्त्रियों की तरह मटक मटक कर नाचते देखकर वे खिन्न होकर रङ्गशाला से उठकर चले गये थे। इसमें कोई सन्देह नही कि इन पारसी रङ्गमञ्चों से नाट्यकला, अभिनय तथा संस्कृति को काफी आघात पहुँचा था, उनका कथोपकथन बनावटी, नाटक का कथानक ऐतिहासिक कालक्रम की त्रुटियों से भरा हुआ तथा हास्य सस्ता और भद्दा होता था। परन्तु एक समय था जब हिन्दी नाटकों को इन्हीं पारसी रङ्गमञ्च का मुँह अभिनय के लिए देखना पड़ा और उनकी ही कला का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। भारतेन्दु तथा द्विवेदी काल के अनेक नाटकों पर पारसी रङ्गमञ्च का प्रभाव पड़ा इसकी विस्तृत व्याख्या पिछले अध्यायों में की जा

चुकी है। प्रसाद के 'आरम्भिक नाटकों पर भी इनकी स्पष्ट छाप है। उसी प्रकार प्रसाद युग में गोविन्दवल्लभ पन्त तथा मिलिंद के नाटकों पर भी पारसी रंगमञ्च का कुछ प्रभाव था, इसकी चर्चा की चुकी है।

इन पारसी रंगमंचों ने ही हिन्दी में अनेक कुशल कलाकारों को उत्पन्न किया जिसमें नारायण प्रसाद बेताब, आगाहश्र, राधेश्याम कथावाचक, कृष्णचन्द्र जेवा हरिकृष्ण जौहर, और तुलसीदास शैदा मुख्य है जिनके धार्मिक तथा पौराणिक नाटको ने एक समय काफी धूम मचा दी थी। दूसरे इन लोगों के द्वारा अभिनय के आकर्षण की ओर जनता आकर्षित हुई। यद्यपि कला की दृष्टि से इनमें भद्दापन तथा कुरुचि का प्रदर्शन किया गया, परन्तु अभिनय कला का व्यापक प्रसार इनके ही द्वारा हुआ। सिनेमा के प्रचार से इन कम्पनियों को समाप्ति स्वयं हो गई।

अव्यवसायी रङ्गमञ्च

अव्यवसायी रंगमंचों की स्थापना विशेषतया स्कूल, कालेजों तथा विश्व विद्यालयों और नाटक प्रेमी व्यक्तियों द्वारा हुई। इनका रंगमंच अंग्रेजी तथा संस्कृत दोनों रङ्गमंचों के समन्वयात्मक रूप को लिए हुए था। काशी, प्रयाग तथा कानपुर इस प्रकार की रङ्गशालाओं के प्रधान केन्द्र थे। काशी की नागरी नाटक मण्डली तथा कलकत्ते का हिन्दी नाट्य परिषद्, प्रयाग की रामलीला नाटक मण्डली, भारतेन्दु नाटक मण्डली का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन मण्डलियों के द्वारा साहित्यिकता, नाटकीय सुरुचि तथा हिन्दी प्रचार भावना को प्रचुर प्रोत्साहन मिला। इसका कारण यह था, इसके संस्थापको तथा संरक्षकों में शिष्ट पढ़े लिखे नेता, नागरिक तथा नाटक प्रेमी व्यक्ति थे। स्कूल, कालेजों के विद्यार्थियों ने भी स्वांतःसुखाय साहित्यिक नाटकों का रङ्ग-मंच पर अभिनय करके नाटकीय सुरुचि तथा शिष्टता का परिचय दिया है। प्रयाग के हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस के छात्रों के अभिनय में एक समय प्रभूत आकर्षण था। चलचित्रों की व्यापकता यदि न हुई होती तो निस्संदेह इन अव्यवसायी मण्डलियों रङ्गमंचीय मौलिकता तथा नाटकीय सुरुचि की वृद्धि हुई होती।

अवाक तथा सवाक चलचित्र

ये भी पाश्चात्य वैज्ञानिक आविष्कारों की देन है, जिनसे रङ्गमंच तथा शास्त्रीय नाटकीय कला को काफी धक्का पहुंचा है। १८९० ई० में अमेरिका के टामस एलवा एडिसन ने सिनेमेटोग्राफ का आविष्कार किया, जिससे नाट्य-जगत में एक महान् क्रान्ति उपस्थित हुई। मशीनों तथा विद्युत प्रकाश की सहायता से चलते फिरते दृश्य परदे पर दिखाये जाने लगे। पहले ये दृश्य

अवाक थे, जिसमें कथानक तथा वातावरण के बोध के लिये पर्दे पर संकेत अङ्कित हो जाते थे, जिससे दर्शकों को कथा सूत्र समझने मे सुविधा होती थी। परन्तु इन गूँगे चित्रो से अस्वाभाविकता का वातावरण उत्पन्न हो जाता था। उसके कुछ पहिले ग्रामोफोन का आविष्कार हो चुका था जिसके द्वारा किसी संगीतज्ञ के संगीत या व्याख्यानदाता के व्याख्यान को रिकार्ड पर अंकित करके उसी रूप में सुनाया जा सकता था। सवाक् चलचित्रों के निर्माण में इसके कारण बहुत सहयोग प्राप्त हुआ। अब नाटक के कठिन से कठिन दृश्य जो रङ्गमंच पर आसानी से दिखाये जा सकते थे, फोटोग्राफी विद्युत प्रकाश के आधार पर चलचित्रों द्वारा पर्दे पर प्रदर्शित किये जाने लगे। सिनेमा में कला चाहे कम हो, पर वास्तविकता का वातावरण आसानी से उत्पन्न किया जा सकता है। रङ्गमंच पर टकराती हुई मोटर या रेल, डूबते हुए जहाज, घूमती हुई पृथ्वी और आकाश, वायुयान की यात्रा तथा आधुनिक युद्ध का दृश्य दिखाना अत्यन्त कठिन है, परन्तु सिनेमा द्वारा इस प्रकार के दृश्य आसानी से दिखाये जा सकते हैं। पर्दे पर चित्रों के प्रयोग के कारण अधिक से अधिक दृश्य दिखाये जा सकते हैं। एक ही समय सिनेमा का एक चित्र कई स्थानों पर दिखाया जा सकता है। ये सब सुविधाएँ रङ्गमंचीय नाटकों द्वारा नहीं प्रदर्शित की जा सकती है।

सबसे प्रथम सवाक चलचित्रों का आगमन भारतवर्ष मे १८३० के लगभग हुआ। इसके चार पाँच वर्ष उपरान्त यहाँ सवाक् चलचित्र तैयार होने लगे। भारत मे चलचित्रों के अन्दर कुशल अभिनेता है जिसमे पृथ्वीराज, अशोककुमार दिलीप, राजकपूर, सहगल तथा भारतभूषण अधिक प्रसिद्ध हैं। स्त्री अभिनेत्रियों में शान्ता आप्टे, लीला देसाई, नरगिस, लीला चिटनिस, देविका रानी तथा वैजयन्तीमाला, मीना, निम्मी और श्यामा की अधिक ख्याति है। संगीत तथा नृत्य की शैली मे नवीन प्रयोग आज दिन हो रहे है। सैकड़ों चलचित्रों को विदेशो से पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। मिनवी मूवीटोन, प्रभात, बाम्बे टाकीज, न्यू थियेटर्स जैमिनी ने अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के चित्रों का निर्माण किया है।

इन सब सुविधाओं के होते हुए भी सिनेमा शास्त्रीय रङ्गमंच का रूप नहीं ग्रहण कर सकता। आखिर वह वास्तविक अभिनय की छाया है, या चित्रमात्र है, वास्तविक वस्तु और उसके चित्र या उसकी छाया में बहुत भेद होता है। नाटक भी वास्तविकता की नकल है, परन्तु सिनेमा नकल की नकल है। सिनेमा मे अभिनय की कला को सुन्दरतम और कलापूर्ण बनाने का श्रेय फोटोग्राफी और ध्वनि यंत्र को है। चरित्र का व्यक्तित्व या उसका अभिनय

यदि बिगड भी गया तो इन साधनों से उसका आकर्षक रूप सामने आ जायगा। अतः चरित्रों के अभिनय को कोई विशेष श्रेय नहीं दिया जा सकता। दूसरे शब्दों में सिनेमा का अभिनय पर्दे के पीछे होता है। उसका परिचय वास्तविक जगत को नहीं दिया जाता, दर्शक तो उसके बने बनाये चित्रों को ही देख सकते है। रङ्गमंच का अभिनय दुनियां के सामने पर्दे के बाहर होता है, जहां वास्तविक अभिनय को देखकर हम प्रशंसा या प्रोत्साहन भी दे सकते हैं। चाहे उसकी कला मे कितनी ही उन्नति क्यों न हो जाय सिनेमा के छाया चित्र नाटक के हाड़ माँस के स्त्री पुरुषों की समता कदापि नही कर सकते।

यूरोप के विभिन्न देशों में सिनेमा की चरम उन्नति होते हुए भी थियेटर गृहों के नाटकों का आदर होता है। नाटक देखने के लिये इतनी भीड़ होती है कि पहले से बैठने का स्थान सुरक्षित कराना होता है। फलतः सिनेमा और रङ्गमंच दोनो का विकास एक साथ विदेशों में चल पड़ा है।[1] नाटक प्रेमी अच्छे से अच्छे कलाकार रङ्गमंच को अनेक आधुनिक उपादानों तथा सुविधाओं से पूर्ण करने में लगे हैं। विज्ञान के अनेक आविष्कारों को रङ्गमंच ने अपनाकर अपनी कला में यथेष्ट उन्नति की है। अभी तक नाटक और सिनेमा एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी समझे जाते हैं। सिनेमा को सस्ता मनोरंजन समझ कर नाटककार उसकी उपेक्षा करते है। धीरे-धीरे यह अन्तर घटता जा रहा है क्योंकि अब सिनेरियों के लिए नाटक भी लिखे जा रहे है। रंगमंचीय अभिनय में भी सिनेमा के अभिनय, वेश-भूषा, चाल-ढाल, भाषा का अनुकरण हो रहा है। जब तक दोनों का पारस्परिक सहयोग नही होगा रंगमंच के उन्नति की सम्भावना नहीं है। परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि रंगमंच के निर्माण में सिनेमा द्वारा विशेष आघात पहुंचा है।

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है, हिन्दी रंगमंच कोई स्थिति ही नहीं थी जिस समय हिन्दी नाटकों का जन्म हुआ। फलतः या तो उन्हें बङ्गला रङ्गमंच का मुंह जोहना पड़ा या पारसी या अंग्रेजी रङ्गमंच का। बङ्गला और पारसी रंगमंच पर भी अंग्रेजी रंगमंच का प्रभाव था इसकी स्पष्ट व्याख्या की जा चुकी है। फलतः संस्कृत और अंग्रेजी की परम्पराओं से युक्त रंगमञ्च पर ही हिन्दी के नाटकों का अभिनय प्रारम्भ हुआ। जहाँ एक ओर हम पारसी रंगमञ्चों के कुरुचिपूर्ण भद्दे तथा सस्ते नाटकों की चर्चा करते है, वहीं दूसरी ओर हमें कई नाटकों की प्रशंसा भी करनी पड़ती है, जिन्होंने पारसी रंगमञ्च के द्वारा अभिनेय नाटकों से हिन्दी के नाटक भंडार की वृद्धि

---

१. ब्रिटिश ड्रामा, ए निकोल, चतुर्थ सस्करण, पृ० ४५५

की। इन नाटककारों का प्रभाव प्रसाद युग के नाटककारों तक पड़ा। शेक्स-पीयर की व्यापकता और प्रचार अंग्रेजी तथा पारसी रंगमञ्च के ही द्वारा हुई। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में रंगमञ्च की यही व्यवस्था थी। कई एक दुखान्त नाटकों का भी अभिनय इस युग में हुआ।

प्रसाद ने अपने नाटको में संस्कृत तथा अंग्रेजी नाट्यशैलियों की समन्वित परम्परा रखी। उनके नाटको में एलिजाबेथ कालीन रंगमञ्च का स्पष्ट प्रभाव है, यद्यपि संस्कृत रंगमञ्च की परम्परा से वे एकदम उन्मुक्त नहीं हुए। एलिजा-बेथ कालीन रंगमञ्च की भाँति स्वगत भाषण, चरित्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, रंगमञ्च पर युद्ध, हत्या तथा मृत्यु के दृश्यों को उन्होंने दिखाया। पूरे प्रसाद युग में इसी समन्वित रंगमञ्च की परम्परा का अनुकरण किया गया। मोलियर के अनुवादों के अभिनय पर फ्रांसीसी रंगमञ्च का प्रभाव स्पष्ट था। मोलियर की भाँति जी० पी श्रीवास्तव भी अभिनेता के रूप में रंगमञ्च पर उतरे थे।

प्रसाद युग के पश्चात् हिन्दी के समस्या और सामाजिक नाटकों का अभि-नय पश्चिम के यथार्थवादी रंगमञ्च के आधार पर हुआ। इसका ढांचा और वाह्य विधान एकदम सरल हो गया। सरल और संक्षिप्त कथानक, नित्य का घरेलू वातावरण, नित्य के व्यवहार में आने वाली वेश-भूषा और भाषा जिसमें पद्य का स्थान गद्य ने लिया, आदि इस यथार्थवादी रंगमञ्च की विशेषताएं थीं। लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, पृथ्वीनाथ शर्मा, अश्क आदि के नाटक इसी रंगमञ्च पर खेले गये।

पश्चिम के आधुनिक रंगमञ्च की विशेषताओं को भी हिन्दी रंगमञ्च मे ग्रहण किया गया है। पश्चिम की देखादेखी सेठ गोविन्ददास ने मोनोड्रामा लिखा हैं। अश्क, धर्मवीर भारती, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, माथुर ने पश्चिम के प्रतीकवादी रंगमञ्च को विशेषताओं को अपनाया है। साम्यवादियों के खुले रंगमञ्च को भी हिन्दी ने ग्रहण किया है। एकांकी नाटको का अभिनय तो एकदम अंग्रेजी रंगमञ्च के आधार पर हुआ है। हिन्दी में एकांकी की उत्पत्ति और विकास पश्चिमं की ही देन है। इधर काव्य रूपकों तथा स्वप्न नाटकों के अभिव्यंजनावादी रंगमञ्च की परम्परा का भी अनुकरण किया जा रहा है।

हिन्दी के मौलिक रंगमञ्च निर्माण की ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान अवश्य गया था परन्तु दुर्भाग्यवश वे थोड़ी ही आयु मे कालकवलित हो गये। यदि वे कुछ दिनों के लिये जीवित रहते तो बहुत कुछ आशा थी कि हिन्दी रंगमञ्चे का निर्माण तो अवश्य कर जाते।

हिन्दी रंगमंच की संभावनाएँ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हिन्दी में नाटकों के भंडार की वृद्धि

करने के साथ ही साथ भारतेन्दु जी ने हिन्दी रंगमञ्च निर्माण की ओर भी ध्यान दिया। वे पारसी रंगमञ्च के सस्ते और कुरुचिपूर्ण अभिनय से हिन्दी नाटकों को बचाना चाहते थे। उनके कई नाटक उनके द्वारा खेले गये थे। बलिया मे बडी सफलता के साथ सत्य हरिश्चन्द्र का अभिनय हुआ था। पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी का 'जानकी मंगल', बनारस थियेटर्स मे धूम धाम से खेला गया। कानपुर में रणधीर प्रेममोहिनी तथा सत्य हरिश्चन्द्र का सफल अभिनय हुआ। परन्तु ये सब प्रयत्न किसी स्थायी रंगशाला में नहीं हुए। हिन्दी रंगमञ्च की कोई रूपरेखा भारतेन्दु जी अवश्य निश्चित कर लिये होते, परन्तु वे असमय ही में काल कवलित हो गये। अतः हिन्दी रगमञ्च जन साधारण की वस्तु नहीं बन सका। इस प्रकार के छिटपुट प्रयत्न अवश्य होते रहे।

भारतेन्दु तथा द्विवेदी काल के नाटकों का अभिनय इसी अविकसित रंगमञ्च पर हुआ जिस पर अंग्रेजी और पारसी का प्रभाव था। प्रसाद जी को हिन्दी में रंगमञ्च का अभाव बहुत कष्टप्रद प्रतीत हुआ। भाषा की दुरुहता के सम्बन्ध में उनका यह मत था कि अच्छे अभिनेताओं के हाथ में भाषा दुरूह नहीं रह जाती अतः नाटकों के अनुसार उन्होंने रंगमञ्च निर्माण का सुझाव दिया।

'रंगमञ्च के सम्बन्ध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमञ्च के लिये लिखे जायँ। प्रयत्न तो यह होना चाहिये कि नाटक के लिए रगमञ्च हो जो व्याव-हारिक है। हाँ, रंगमञ्च पर सुशिक्षित नेता और कुशल अभिनेता तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यकता है।'

प्रसाद जी ने हिन्दी रंगमञ्च की असफलता का एक कारण यह भी बत-लाया है कि हिन्दी रंगमञ्च को स्त्रियों और शिक्षित पुरुषों का सहयोग न प्राप्त हो सका। भारतीय घरों मे विशेषकर उत्तरी भारत में नाचना-गाना स्त्रियो के लिये घृणा की वस्तु समझी जाती है। अशिक्षा के प्रचार तथा पर्दे की प्रथा के कारण स्त्रियां साधारण पुरुषों के सम्मुख रंगमंच पर नहीं उतर सकती थीं। दूसरे कलात्मक रुचि की कमी के कारण हमारे देश के शिक्षित युवकों का भी कम सहयोग रंगमञ्च और अभिनय की ओर है। शौकिया नाटक खेलने वालों की हमारे उत्तरी भारत में तो अधिकतर कमी रही। बंगाल, गुजरात तथा महाराष्ट्र मे संगीत, नृत्य तथा अभिनय को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, इसलिए वहाँ का रंगमञ्च काफी उन्नतिशील है।

प्रसाद युग के पश्चात् अभिनेय नाटको का सृजन पर्याप्त संख्या मे हुआ है। इधर पृथ्वीनाथ शर्मा- लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचन्द्र माथुर, भारती, डा० लक्ष्मीनारायण लाल तथा अनेक आधुनिक एकांकीकारो ने अभिनय को दृष्टि मे रखकर अपने नाटकों को

लिखा है। आधुनिक हिन्दी रंगमञ्च की क्या रूपरेखा हो और जो पूर्वी तथा पश्चिमी रंगमञ्चों की समन्वित विशेषताओं को लिए हुए हो इस पर भी सेठ गोविन्ददास, जगदीशचन्द्र माथुर तथा डा० रामकुमार वर्मा ने अपने व्यावहारिक सुझावों को प्रस्तुत किया है। सेठ गोविन्ददास ने अपने तीन नाटक की भूमिका में पश्चिम के घूमने वाले (रिवाल्विंग स्टेज) का समर्थन किया है। उन्होंने रजत पट की बहुत सी विशेषताओ को अपनाने का भी सुझाव दिया है। जिससे युद्ध, चुनाव तथा मेले के दृश्य नवीन ढंग से दिखाए जा सकें। आधुनिक हिन्दी के अधिकांश नाटककार अभिनेता भी हैं और अभिनय में उनकी स्वाभाविक रुचि रही हैं। हिन्दी रंगमञ्च के निर्माण की आशा ऐसे ही अभिनय प्रेमी लोगों से है।

हिन्दी रंगमञ्च निर्माण के लिए चलचित्रों के साथ पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है। इधर रजत पटों के कुछ अभिनेता भी हिन्दी रंगमञ्च को एक सक्रिय रूप देने में सचेष्ट हैं। ऐसे लोगों मे पृथ्वीराज कपूर का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने पृथ्वी थियेटर की स्थापना इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया है। इस थियेटर की स्थापना १५ जनवरी १९४४ को बम्बई में रगमञ्च में नवीन चेतना संचार करने के लिये तथा उसे भारतीय रूप देने के उद्देश्य से हुई है। केवल धनोपार्जन इसका उद्देश्य नहीं है। इस थियेटर के रंगमञ्च पर 'आहुति', 'गद्दार' 'दीवार', पठान और शकुन्तला ये पांच सामाजिक समस्या नाटक अभिनीत हुए है। जगह जगह अपने कलाकारों के समूह के साथ भी पृथ्वीराज कपूर ने इन नाटकों का सफलता के साथ अभिनय किया है। इन नाटकों द्वारा उन्होंने राजनीतिक एकता, सांप्रदायिक सद्भाव तथा सहयोग का आदर्श जनता के सम्मुख रक्खा है।

उदयशङ्कर के उदात्तवादी नृत्य तथा मूक अभिनयों की भारत में ही नहीं, विदेशों में भी पर्याप्त सराहना हुई है। उन्होने नृत्य तथा कला मन्दिर की स्थापना करके अभिनय के क्षेत्र मे महान् आदर्श उपस्थित किया है और हिन्दी रगमञ्च को कलात्मक रूप देने में विशेष हाथ बटाया है।

हिन्दी रंगमञ्च पर पर्याप्त विदेशी प्रभाव होते हुए भी उपर्युक्त प्रयत्न स्वतन्त्र रूप से इसके निर्माण में संलग्न है। हिन्दी का नाटक साहित्य ही नहीं, रंगमञ्च भी पाश्चात्य रंगमञ्च के संपर्क में आने से अधिक समृद्धिशाली तथा कलापूर्ण हुआ है। उसमें विविधता तथा अनेकरूपता का विकास हुआ है। हमारा देश स्वतन्त्र है। राष्ट्र-निर्माण के लिये अनेक योजनाओं में, जिस प्रकार देश का अपार धन व्यय हो रहा है, उसी तरह, हिन्दी रंगमञ्च के निर्माण की ओर भी देश के कर्णधारों का ध्यान जाना आवश्यक है। क्योंकि रंगमञ्च केवल

अभिनय का ही स्थान नहीं है, वरन् वह एक राजनीतिक या सामाजिक कला-त्मक सस्था भी हैं। देश में सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक आदर्शों की स्थापना रंगमञ्च के द्वारा ही सम्भव है। आज पश्चिमी देशों के राष्ट्र-निर्माण मे, रंगमञ्च इसी रूप में कार्य कर रहा है। हिन्दी रंगमंच भी उसी पथ का अनुकरण करते हुए बहुत शीघ्र चरमोन्नति को प्राप्त होगा, ऐसी आशा प्रत्येक भारतीय के मन में होनी चाहिए।

— ० —

उपसंहार

पूर्व तथा पश्चिम दोनों देशों में संस्कृत तथा ग्रीक साहित्य की नाट्य परम्परा अत्यंत प्राचीन और समृद्धशाली है। अपने अपने क्षेत्र में दोनों का स्वतंत्र और पूर्ण विकास हुआ है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र तथा अरस्तू का काव्यशास्त्र दोनों नाट्यशास्त्र के प्राचीन ग्रंथ है। यद्यपि इनके रचनाकारों को एक दूसरे से प्रेरणा नहीं मिली, फिर भी नाट्य नियमों में दोनों देशों में बहुत सी समानतायें प्राप्त होती हैं। दोनों देशों मे नाटक की उत्पत्ति धार्मिक कृत्यों के रूप मे हुई। सहगायन, मंगलाचरण या देव स्तुति नाटकों के प्रारम्भ मे दोनों देशों में थी। प्रारभिक अवस्था मे केवल मनोरंजन के लिये नाटकों का अभिनय न ग्रीक देश में हुआ न हमारे ही देश में। नायक उदात्त गंभीर व्यक्ति देवता या राजा महाराजा दोनों देश के नाटकों में पाये जाते हैं। जिस प्रकार धनंजय ने अवस्था की अनुकृति को ही नाटक माना है, उसी तरह अरस्तू ने भी अनुकरण को कला का मूल स्रोत निर्धारित किया है। इन समानताओं के होते हुए भी दोनों देशों में नाट्य परम्परा का स्वतंत्र विकास हुआ।

संस्कृत- नाट्य परंपरा यद्यपि अत्यंत समृद्धशाली थी' फिर भी ईसा की सातवीं शताब्दी के पश्चात् उसका विकास रुक सा गया। इसका प्रधान कारण था मुसलमानों का भारत में आगमन और भारतीय राजाओं की राज्य शक्ति का ईर्ष्या और पारस्परिक कलह के कारण तितर-वितर हो जाना। फलतः

राज दरबार तथा देव मन्दिर जो अभिनय के प्रधान केन्द्र थे, दोनों की शक्ति विदेशी आक्रमण से क्षीण हो जाने से नाटक का विकास अवरुद्ध हो गया। जनता के मनोरंजन तथा धार्मिक और वीर पूजा की भावना को तृप्ति करने के लिये लोक-नाटकों की परम्परा अवश्य प्रवहमान थी, परन्तु हम उन्हें शास्त्रीय नाटकों की कोटि में नहीं रख सकते।

दो जातियों के सम्पक से एक नवीन संस्कृति की उत्पत्ति होती है, ऐसा विश्व के इतिहास में देखा गया है। आर्यो और द्रविणों के सम्पर्क ने ही आर्य सभ्यता को जन्म दिया। उन्नीसवी शताब्दी में भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ। पहले वे व्यापारी के रूप में आये, धीरे-धीरे वे यहाँ के शासक बन बैठे। भारतवासियों का अंग्रेजों से निकट संपर्क स्थापित हुआ। विदेशियों के आचार-विचार, सभ्यता, भाषा, साहित्य का विशेष प्रभाव शासित भारतीयों पर पड़ा क्योंकि वे शासक थे। फलतः भारत में नवोत्थान का आरम्भ हुआ। दोनों के विचारों और संस्कृतियों का आदान-प्रदान हुआ। पाश्चात्य विद्वानो की अभिरुचि भी भारतीय साहित्य के अध्ययन की ओर हुई। उसी परम्परा का अनुसरण करते हुए भारतवासियों ने भी अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन आरम्भ किया। अंग्रेजों तथा अन्य यूरोपीय जातियों ने अपने मनोरंजन के लिये कलकत्ता और बम्बई जैसे बड़े नगरो में नाट्यशालाओं का निर्माण किया, जिनमें पाश्चात्य विशेपकर शेक्सपीयर के नाटकों का अभिनय होता तथा उन्हीं की देखादेखी पारसी रंगमंच की भी स्थापना हुई। अंग्रेजी नाट्यशास्त्र तथा शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव बंगला साहित्य पर सबसे पहले पड़ा।

हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से कुछ तो बंगला के माध्यम से आया और अधिकांश प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा-संस्थाओं, पारसी कंपनियों तथा पाश्चात्य विद्वानों के माध्यम से आया। प्रारंभिक काल मे यह प्रभाव शेक्सपीयर तथा अंग्रेजी के कुछ अन्य नाटककारों तक ही सीमित था। बाद में ज्यों-ज्यो पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन भारतीयों द्वारा विशेष रूप से होने लगा और जनतन्त्रीय शासन का विकास हुआ त्यों-त्यों हिन्दो नाटक पर अन्य योरोपीय नाटककारो का भी जिनमें फ्रेंच, जर्मन, रूसी, नारवे, वेलजियम तथा अमेरिका के नाटकार मुख्य हैं, विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। भारतेन्दुकाल में शेक्सपीयर की कृतियों तथा उसकी नाट्यकला का विशेष प्रभाव हिन्दी नाटकों पर पड़ा क्योंकि उस समय तक पाश्चात्य नाटककारों में शेक्सपीयर तक ही लोगों का अध्ययन सीमित था, क्योंकि यूरोपीय थियेटरों तथा पारसी रंगमंचों पर उसी के नाटकों के अभिनय की प्रधानता थी। कुछ समय बाद शिक्षा संस्थाओं में पाठ्य ग्रन्थों के रूप में हमारा परिचय बेन जान्सन, गोल्डस्मिथ,

एडिसन, ब्यूमान्ट, फ्लेचर, शेरिडन, शा, गाल्सवर्दी, टी० एस० इलियट तथा जान ड्रिंकवाटर के नाटकों से भी हुआ, क्योंकि उनकी कृतियों का भी व्यापक अध्ययन भारतीय कालेजों और विश्वविद्यालयों में किया गया। अध्ययन के अतिरिक्त उनकी विशेषताओं को अपनाने का भी प्रयत्न हिन्दी नाटककारों द्वारा हुआ।

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय राजनीति और साहित्य का केन्द्र फ्रांस में पेरिस नगर हुआ, इसके परिणामस्वप यूरोपीय नाटकों पर फ्रेंच नाटकों का विशेषकर मोलियर, कारनेली और रेसीन का प्रभाव पड़ा। हिन्दी नाटककारों पर भी मोलियर के हास्य नाटकों का प्रभाव अधिकांश अंग्रेजी माध्यम से भी पड़ा। उसकी कृतियों का अनुवाद जी० पी० श्रीवास्तव तथा अन्य लेखकों द्वारा हुआ। प्रो० लक्ष्मण स्वरूप वर्मा ने फ्रांस में बहुत दिन तक रहकर फ्रेंच साहित्य विशेषकर मोलियर का अध्ययन किया था, मूल फ्रेंच से भी उसके एक नाटक का अनुवाद किया गया है।

औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप यूरोपीय साहित्य तथा नाट्य-जगत में यथार्थवाद का प्रबल तूफान आया। फ्रांस की क्रान्ति ने जनतन्त्रीय सत्ता के विकास के लिये वातावरण पहले ही से तैयार किया था। इधर रूस की क्रान्ति ने सामंतवाद की अवशेष जड़ों को भी आमूल उखाड़ फेंका। फलतः नाटक साहित्य में यथार्थवादी धारा के प्राबल्य से यूरोप में इब्सन, शा, सन्डर मैन, हाप्ट्समैन, जोला, चेखव तथा गोर्की की कृतियाँ अत्यंत चाव से पढ़ी तथा रंगमंच पर खेली गई। प्रथम महायुद्ध के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीयता की स्थापना से भारतीय विद्वानों ने भी इब्सन, शा, स्ट्रिन्डवर्ग, जर्मनी के गेटे, लेसिग, रूस के टालस्टाय, चेखव, गोर्की, बेलजियम के मेतरलिंक, इटली के पिरेन्डेलो तथा अमेरिका के ओनील और काफमैन के नाटकों का न कि अध्ययन किया, परन्तु हिन्दी नाटकों के निर्माण में उनकी कृतियों तथा नाट्यकला से प्रभावित भी हुये।

भारतेन्दु काल से ही शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद प्रारम्भ हो गया था, जिसका सूत्रपात भारतेन्दु जी ने स्वयं किया था। लाला सीताराम, गोपीनाथ पुरोहित तथा कई एक अन्य विद्वानों ने शेक्सपीयर के प्रायः सभी नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किया। द्विवेदी युग में मोलियर के नाटकों के अनुवाद कई विद्वानों द्वारा हुए, जिनमें जी० पी० श्रीवास्तव का हाथ अधिक था। मोलियर के अतिरिक्त इब्सन, शा, आस्कर वाइल्ड, रूसी नाटककार टालस्टाय, बेलजियम के मैतरलिंक, जर्मनी के सेलिंग, गेटे तथा शिलर के नाटकों के भी अनुवाद-

हुए, जो इस बात के स्पष्ट परिचायक है कि हिन्दी नाटककारों का ध्यान शेक्सपीयर के अतिरिक्त यूरोप के विभिन्न देशों की नाट्य शैलियों और नाटकों की ओर प्रबल रूप से आकर्षित हुआ है। फलतः हिन्दी नाटकों पर शेक्सपीयर की स्वच्छन्दतावादी शैली, मोलियर की हास्य प्रधान शैली, इब्सन तथा शा की यथार्थवादी शैली, मैतरलिक तथा स्ट्रिन्डवर्ग की प्रतीकवादी शैली और अभिव्यंजनावादी नाट्य शैली का भी विशेष प्रभाव पड़ा।

इधर भारतीय विद्यालयों में पश्चिमी अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन तथा समाजशास्त्र का भी गहरा अध्ययन हुआ क्योंकि भारतीय शिक्षा प्रणाली का संम्पूर्ण आधार पाश्चात्य ढाँचे पर ही निर्मित था। फलस्वरूप अनेक पश्चिमी विचारधाराओं तथा सिद्धातों का भी प्रभाव समस्त हिन्दी साहित्य पर पड़ा। इससे नाटकसाहित्य कैसे अछूता बच सकता था। इन विचारधाराओं में यूरोपीय जनतन्त्रवाद, डार्विन के विकासवाद, वैज्ञानिक आविष्कारों से उत्पन्न बुद्धिवाद बेन्थम, मिल तथा हक्सले के उपयोगितावाद, मार्क्स तथा लेनिन के साम्यवाद, टालस्टाय और रस्किन के अहिंसा, शान्ति तथा मानवतावाद, फ्रायड, एडलर तथा युंग के मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है, जिसकी व्याख्या पिछले अध्यायों में की जा चुकी है।

भारतेन्दु ने अपने नाटकों के निर्माण में संस्कृत-नाट्य शैली का विशेष अनुकरण करते हुए भी उसका अन्धानुकरण नहीं किया, प्रत्युत् बङ्गला तथा अंग्रेजी नाट्य शैली की विशेषताओं को भी ग्रहण करके अपनी स्वच्छन्द तथा मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। परिणामतया हिन्दी नाट्यशैली के निर्माण में उन्होंने अपनी समन्वयात्मिकता तथा भविष्यदर्शिता की प्रवृत्ति का परिचय दिया। उनके 'नाटक' नामक निबन्ध से यह स्पष्ट है कि उनका पाश्चात्य नाटकों तथा नाट्यशैलियों से पूर्ण परिचय था। दूसरे वे संस्कृत नाट्य शैली की जटिलताओं और सूक्ष्म नियमों के पूर्ण समर्थन को हिन्दी नाटकों के विकास के लिए बाधा स्वरूप मानते थे, फलतः यत्रतत्र अपने नाटकों में उन्होंने इन नियमों की अवहेलना भी की। वे नवोत्थान काल के सच्चे प्रतीक थे, अतः अपनी नाट्य शैली को उन्होने युगानुकूल बनाने की प्रबल चेष्टा की। समाज सुधार, नव जागरण तथा सांस्कृतिक चेतना के विकास के लिए पाश्चात्य नाटकों की यथार्थवादी परम्परा ही को उन्होने आदर्श रूप में ग्रहण किया। दूसरे संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रस्तावना, विष्कंभक, अवस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों, सन्धियों और भरतवाक्य के शास्त्रीय जटिलताओं में, हिन्दी नाटक को न उलझाकर उसे उन्मुक्त वातावरण में रख कर, उसके स्वाभाविक विकास को, वे रोकना नहीं चाहते

इसलिए अधिकांश बङ्गला के माध्यम से और कुछ अंग्रेजी के माध्यम से उन्होंने पाश्चात्य प्रभाव को अपनाया।

भारतेन्दु काल के अन्य नाटककारों ने नाटकों के निर्माण में उनके ही पद-चिह्नों का अनुसरण किया। संस्कृत नाट्यशैली के ही आश्रम में हिन्दी के नाटककार अपने नाटकों का विकास पूर्ण रूप से नहीं करना चाहते थे। अतः पाश्चात्य नाट्य परंपरा का अनुसरण धीरे धीरे प्रबल होने लगा। ट्रैजेडी का सूत्रपात नीलदेवी तथा 'भारत दुर्दशा' में भारतेन्दु जी ने पहले ही कर दिया था। उसी परंपरा पर लाला श्रीनिवास दास जी ने 'रणधीर प्रेम मोहिनी' लिखी, जिसमें शेक्सपीयर के 'रौमियो' तथा जूलियट 'की स्पष्ट छाप है। भारतेन्दु काल में इनके अतिरिक्त और भी कई दुखान्त नाटक इसी परंपरा में लिखे गये। लाला जी के 'परीक्षा गुरु 'नामक उपन्यास में दिए गए अनेक पाश्चात्य उदारणों से यह स्पष्ट है कि शेक्सपीयर के अतिरिक्त उन्होंने पाश्चात्य और कई लेखकों का अध्ययन किया था। उनके अन्य नाटकों में भी शेक्सपीयर का व्यापक प्रभाव था। लाला जी के समकालीन केशव राम भट्ट ने अपने 'सज्जाद सम्बुल'में प्राच्य तथा पाश्चात्य के संघर्ष निदर्शन में डार्विन के विकासवाद की चर्चा भी की है। उनके नाटकों पर सत्रहवीं तथा अट्ठारहवीं सदी के शेरिडन, गोल्डस्मिथ ब्यूमाट तथा फ्लेचर आदि आचार प्रधान (कामेडी आफ मैनर्स) नाटक कारों की कृतियों की स्पष्ट छाया है।

द्विवेदी युग में मौलिकता के दृष्टिकोण से नवीन नाट्य परंपरा का सूत्रपात नहीं हुआ उसी भारतेन्दुकालीन परपरा का अनुसरण होता रहा। हां, अनुवादों की संख्या भारतेन्दु काल से भी इस युग में अधिक रही। बंगला से टैगौर तथा डी०यल० राय के नाटकों के रूपान्तर हुए। मोलियर तथा जर्मनी के लैसिंग, गेटे तथा शिलर और रूस के टालस्टाय की कृतियों के अनुवाद हुए। नैतिकता तथा सुधारवाद की प्रवलता के कारण संस्कृत के पोराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों के अनुवाद की ओर भी लेखकों का ध्यान गया। परन्तु संस्कृत नाट्य परंपरा से विमुक्त होने की चेष्टा क्रमशः वढ़ती ही रही। जी० पी० श्रीवास्तव ने मौलियर के आधार पर भारतीय सामाजिक रूढ़ियों, परंपराओं तथा संस्थाओं की खिल्ली उड़ाई। उनकी 'हास्य रस' नामक पुस्तक से स्पष्ट है कि मौलियर के अतिरिक्त अरस्तू, कांट, हैजलिट तथा वर्गसां के भी हास्य संबंधी सिद्धान्तों से वे परिचित थे। यह सत्य है कि अपने अनुवादों तथा मौलिक नाटकों में वे मौलियर की ऊँचाई को नहीं पहुँच सके, परन्तु हिन्दी नाटक साहित्य में उन्होंने एक बड़े अभाव की पूर्ति की जिसका आधार पाश्चात्य नाट्य-साहित्य था। पारसी रंगमंचों के सस्ते नाटकों के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रसाद ने अपने

नाटकों में शेक्सपीयर की स्वच्छन्दतावादी नाट्य शैली को अपनाया। इस शैली की झलक उन्हें बंगला के डी०यल० राय के नाटकों से पहिले ही मिल चुकी थी। प्रसाद ने अपने नाटकों के सृजन में संस्कृत तथा पाश्चात्य दोनों नाट्य शैलियों का समन्वय किया। कवि होने के नाते संस्कृत नाटक के रस सिद्धान्त को वे अन्त तक अपनाये रहे, इधर शेक्सपीयर से नाटकों के प्रभाव से शील वैचित्र्य, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, नियतिवाद तथा स्वगत कथनों का उपयोग अपने नाटकों में किया। युद्ध, आत्महत्या तथा मृत्यु के दृश्य जो भारतीय रंगमंच पर नहीं दिखाये जाते थे, उनको आवश्यकतानुसार अपने नाटकों मे दिखाकर उन्होंने अपनी स्वतंत्र तथा स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का परिचय दिया। उनके नारी पात्र शेक्सपीयर के नारी चरित्रों के समान अधिक सजीव तथा स्वस्थ हैं, जो नाटक में एक प्रबल व्यापकता का परिचय देते हैं।

प्रसाद युग के अन्य नाटककारों ने भी प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी परम्परा का अनुसरण किया। इस समय पश्चिम में जनतंत्रीय शासन की प्रवलता थी, जिसकी प्रतिच्छाया हिन्दी नाटकों पर भी पड़ी। 'प्रेमी' जी के स्वप्न भंग, तथा उद्धार में पश्चिमी साम्यवादी विचार धारा की स्पष्ट झलक है। 'छाया और बन्धन में गाल्सवर्दी के स्ट्राइफ का स्पष्ट प्रभाव है। 'उद्धार' में औरंगजेब के चरित्रचित्रण मे शील वैचित्र्य पाश्चात्य नाटकों के आधार पर है। प्रेमी जी के हिन्दू मुसलिम एकता की भावना पर गांधीवाद के माध्यम से पश्चिमी मानवतावाद तथा टालस्टाय के शांति और अहिंसावाद का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। इस युग के अन्य नाटककारों पर भी टालस्टाय की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। गोविन्दवल्लभ पंत, के 'अंगूर की बेटी' में टालस्टाय के 'फर्स्ट डिस्टिलर' की स्पष्ट छाया है। उनके राजमुकुट की शीतल सेनी लेडी मेकबेथ की भाँति रक्तपात प्रिय तथा महत्वाकांक्षी है। जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के 'समर्पण' में गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' का स्पष्ट प्रभाव है। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक नाटकों का वातावरण (लोकलकलर) वाल्टर स्काट के उपन्यासों जैसा है टेकनीक की दृष्टि से भी प्रसाद जी के अधिकांश नाटकों में पाश्चात्य नाटकों की टेकनीक का अनुकरण हुआ है। सरल रंगमंच विधान, संस्कृत नाट्य नियमों की अवहेलना, पाँच के स्थान पर तीन या चार अंकों की योजना, ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों के स्थान पर सामाजिक नाटकों का बाहुल्य इस युग के नाटकों की विशेषताएँ हैं। प्रसाद तथा प्रेमी जी ने संस्कृत नाटकों की इस रस शैली तथा पाश्चात्य नाटकों के शील वैचित्र्य दोनों को समन्वित अपने नाटकों मे लिया है, इसका समर्थन शुक्ल जी ने अपने इतिहास में भी किया है।

प्रसादोत्तर युग में इब्सन्. शा, हाप्ट्समैन तथा सन्डरबैन आदि नाटककारों के प्रभाव से यथार्थवादी समस्या तथा विचार प्रधान नाटकों का सृजन हुआ। जिस तरह यूरोप मे शेक्सपीयर के रोमेन्टिक नाटकों के विरोध मे इब्सन के समस्या प्रधान सामाजिक नाटक लिखे गये, उसी प्रकार हिन्दी में प्रसाद तथा द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों के प्रतिक्रियास्वरूव लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या नाटकों का सूत्रपात पश्चिम की देखादेखी हिन्दी मे किया। भारतीय सामाजिक वातावरण भी, जो पाश्चात्य वातावरण के अनुकूल था, इन नाटकों के उपयुक्त कथानक निर्माण मे सहयोग देने लगा। उन्मुक्त प्रेम, दहेज, विवाह, धर्म तथा ईश्वर के स्थान पर तर्क, बुद्धिवाद, व्यक्तिगत समानता, नारी स्वतन्त्रता के विषय इन नाटकों के उपयुक्त कथानक बने। लक्ष्मीनारायण मिश्र का बुद्धिवाद पश्चिम की देन है जिसको उन्होंने 'मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ' नामक अपने लेख में स्पष्ट किया है। सेठ गोविन्ददास के नाटकों में गान्धीवादी तथा टालसटाय के अहिंसावाद का प्रभाव स्पष्ट है। उनके इस प्रकार के नाटकों में 'महत्व किसे', 'बड़ा पापी कौन', 'दुख क्यों' का नाम निशेष रूप से लिया जा सकता है। 'दुःख क्यो' में इब्सन के 'द पिलर्स आफ सोसाइटी' की स्पष्ट छाप है। त्याग या ग्रहण में रूसी साम्यवाद का प्रभाव है। प्रसादोत्तर काल के नाटककार संस्कृत नाट्य शैली से एकदम विमुक्त तथा पाश्चात्य नाट्य शैलो को पूर्ण रूप से अपनाते हुए दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए इन नाटकों में संस्कृत नाट्य नियमों की तनिक भी चर्चा नहीं है। इनमें पद्य के स्थान पर गद्य, सरल रंगमंच विधान, तीन अंकों की योजना का परिपालन, रगमंच संकेतों का प्रयोग पाश्चात्य नाटककारों के आधार पर किया गया है। संस्कृत नाटकों के सामन्तवादी उच्च वर्ग के स्थान पर समाज के मध्यम तथा निम्न वर्ग के संघर्षों तथा उनकी समस्याओं का चित्रण पश्चिमी आदर्श पर ही हुआ है। पाश्चात्य नाट्यशैली की अनेक विशेषताओं को हम सेठ जी के नाटकों में पाते हैं। पाश्चात्य नाटकों के प्रोलोग तथा इपीलोग से स्थान पर उपक्रम तथा उपसंहार का प्रयोग, इब्सन तथा स्ट्रिन्डवर्ग के आधार पर समस्या नाटकों में प्रतीक शैली का परिपालन, मूक अभिनय तथा मोनोलोग की परम्परा इसके स्पष्ट रूप से उदाहरण हैं।

विषय तथा शैली दोनो दृष्टियों से आधुनिक नाटककारों ने पाश्चात्य विचारधारा तथा नाट्य शैली को पूर्ण रीति से अपनाया है। इब्सन और शा के पश्चात का यूरोपीय नाट्य जगत् विभिन्न शैलियों तथा प्रयोगों का क्षेत्र रहा है। प्रकृतिवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद तथा अति यथार्थवाद और मनोविश्लेषणवाद इनमें से मुख्य हैं। सेठ जी के 'विकास' में मैतरलिंक तथा स्ट्रिन्डवर्ग की स्वप्न चित्रण शैली का पूर्ण प्रभाव है। 'षट दर्शन' में ओ नील

की अभिव्यंजनावादी तथा प्रकृतिवादी शैली को अपनाया गया है। अश्क के कैद और उड़ान, अलग-अलग रास्ते अंजो दीदी, डा० लक्ष्मीनारायण लाल के 'अन्धा कुआँ', 'तीन आँखो वाली मछली' भगवतीचरण वर्मा के 'रुपया तुम्हें खा गया', मोहनलाल महतो के 'कसाई', हीरानन्द वात्सायन के 'मुकुट' में प्रकृतिवाद तथा अभिव्यंजनावादी शैली का विशेष रूप से प्रभाव है। वात्सायन के मुकुट पर गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइफ' की पूर्ण छाप है। दोनो के कथानक में अनेक समानतायें प्राप्त होती है। अश्क व्यंग्य की प्रधान शैली पर काफमेन की शैली का प्रभाव है। अश्क के अंजो दीदी, कैद और उड़ान में मैतरलिंक के संकेत प्रधान वैवाहिक समस्या प्रधान नाटकों की छाया है। अश्क ने फैंटेसी तथा स्वप्न दृश्यों की योजना भी स्ट्रिन्डवर्ग से ही ग्रहण की है। पाश्चात्य मनोविश्लेषण सम्बन्धी खोजों का प्रभाव शायद ही किसी आधुनिक हिन्दी नाटककार पर न पड़ा हो। सेठ गोविन्ददास के 'नया समाज' तथा 'पतित सुमन' नामक नाटकों में आडिप्स कामप्लेक्स तथा सेक्स सम्बन्धी मानसिक रोगों का चित्रण है। पृथ्वीनाथ शर्मा के 'साध' में उन्मुक्त प्रेम तथा स्वच्छन्द रोमांस की चर्चा की गई है। अश्क ने नाटकों में मानव मन की पीड़ा तथा सेक्स सम्बन्धी दमित अतृप्ति की भावनाओं का जो अनेक मानसिक रोगों को उत्पन्न करती है, चित्रण किया है। वैवाहिक प्रेम, स्वतन्त्रता तथा तलाक के चित्रण मे भी इन नाटककारों पर पिनरो तथा सन्डर मैन के नाटकों का प्रभाव है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात योरप नाट्य साहित्य मे बेकारी, निराशा, मानसिक कुण्ठा, अवसाद तथा दुःखवाद का चित्रण अधिक हुआ है। जिसके चित्रण में सात्रे के अस्तित्ववाद तथा ओ नील के नाटकों से विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई है युद्ध का वही प्रभाव भारत पर भी पड़ा है। अँग्रेजों के जाने के बाद बेकारी, अनैतिकता, चोरबाजारी, मुनाफाखोरी, निराशा, नास्तिकता तथा अवसाद का वातावरण में हमारे देश में भी फैल गया है। फलतः यूरोप की देखादेखी उपन्यास तथा नाटक साहित्य में इनका चित्रण होने लगा है। अश्क, धर्मवीर भारती, माथुर, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, विनोद रस्तोगी के नाटकों मे अनैतिकता, धार्मिक अनास्था, निराशा, आत्महत्या, मृत्यु और पागलपन का चित्रण इटली के पिरेन्डेलो तथा अमेरिका के ओनील और काफमैन के नाटको की परम्परा में हो रहा है। इन्हीं नाटककारों की देखादेखी द्विव्यक्तित्व तथा बहुव्यक्तित्व का आरम्भ भी चरित्र चित्रण के क्षेत्र में हिन्दी के नाटककार आधुनिक युग में करने लगे हैं। चरित्रो के मानसिक अव्यवस्थित विचारधारा उन्माद तथा अवचेतन मन के संघर्षों का चित्रण, सेठ गोविन्ददास, भारती तथा अश्क ने स्ट्रिन्डवर्ग तथा ओ नील और सात्रे के नाटकों के आधार पर किया

है। भारती के 'अन्धा युग' पर सार्त्र के 'ल मोचे' की छाप है।

आधुनिक एकांकी तो पूर्णतः पश्चिम की देन है। संस्कृत नाट्य साहित्य में भी रूपक के दस और उपरूपक के अठारह भेदों में से एक अङ्क वाले नाटक अनेक है, परन्तु हम उन्हें आधुनिक एकांकी का मूल स्रोत नहीं मान सकते। क्योंकि इन नाटकों में रस या काव्य तत्व की प्रधानता तथा चरित्र चित्रण की कमी है। आधुनिक एकांकी जो पश्चिम से आया है, उसकी आत्मा मनोविज्ञान तथा अन्तर्द्वन्द है। प्रथम महायुद्ध के बाद थियेटर गृहों में लम्बे नाटकों के पूर्व दिखाये जाने वाले पट-उत्थानको ने ही एकांकी का रूप धारण किया। १९२० ई० मे पहला एकांकी 'बन्दर का पंजा' लिखा गया। एकांकी नाटकों का वास्तविक विकास जे० एस० मेरियट ने १९२४ से किया। इसके पूर्व हिन्दी में एकांकी नहीं लिखे गये क्योंकि वे पश्चिम में ही नहीं लिखे गये थे। अतः हिन्दी के कुछ आलोचकों ने भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों में एकांकी नाटक का विकास दिखाने की चेष्टा की है उससे हम सहमत नहीं हैं। प्रसाद के 'एक घूंट' को भी हम आधुनिक हिन्दी एकांकी का मूल रूप नहीं मान सकते, क्योंकि उसमें काव्यात्मकता की प्रधानता है। वस्तुतः पश्चिम के ढंग के एकांकियों का सूत्रपात डा० रामकुमार वर्मा ने किया। इसस पश्चात् भुवनेश्वर प्रसाद के कारवाँ पर विषय तथा टेकनिक दोनों दृष्टियों से पाश्चात्य एकांकी का प्रभाव है। पाश्चात्य देशों की भाँति हिन्दी एकांकी द्वारा भी व्यक्ति तथा समाज की समस्याओं तथा अन्तर्मन के संघर्षों का चित्रण हो रहा है। सेठ गोविन्ददास, अश्क, धर्मवीर भारती, विष्णु प्रभाकर, रेवती रमन, गणेश प्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा, विमला, लूथर, विनोद रस्तोगी के एकांकी नाटकों पर विषय तथा टेकनीक दोनों दृष्टियों से पाश्चात्य एकांकी कला का प्रभाव है। इधर हिन्दी मे पश्चिम की देखादेखी रेडियो नाटकों की वृद्धि हो रही है। रेडियो नाटकों के फीचर, फैन्टेसी, रूपान्तर तथा रिपोटार्ज और डाक्यूमेंटरी आदि अनेक रूप जिन पर हिन्दी में पर्याप्त साहित्य की वृद्धि हो रहा है उनका निर्माण पाश्चात्य नाटकों के ही आधार पर है।

गीति तथा नाट्य रूपकों की परम्परा संस्कृत में भी थी। पर जिस रूप हिन्दी में उसका पल्लवन हो रहा है, उस पर निश्चय पाश्चात्य प्रभाव दिखाई पड़ता है। विषय की दृष्टि से उसमें नवीनता चाहे प्राप्त हो जाय, पर शैली पर विदेशी प्रभाव स्पष्ट है। इसदिशा के निर्माण में अधिकांश नाटककारों ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे पाश्चात्य नाटककारों से प्रभावित हुए हैं। पन्त जी की ज्योत्स्ना पर मैतरलिंक के 'ब्लू बर्ड' का स्पष्ट प्रभाव है। उनके अन्य गीति नाट्यों में भी पाश्चात्य टेकनीक का अनुसरण किया गया है। धर्मवीर भारती,

सिद्धनाथ कुमार तथा अन्य रेडियो गीति-नाटककार स्पष्टतः पाश्चात्य टेकनीक को अपनाते हुए देखे जा रहे है । हिन्दी के आधुनिक नाट्य रूपकों में संस्कृत नाट्य रूपकों का सा दार्शनिक तथा धार्मिक विवेचन न होकर पाश्चात्य विचार धारा के अनुसार मनोवैज्ञानिक, यथार्थवादी तथा लौकिक विवेचन अधिक हैं । उनमें पाश्चात्य समाजवाद, मानवतावाद, बौद्धिकता तथा विकासवाद के सिद्धान्तों की चर्चा हो रही है । धर्मवीर भारती का अन्धा युग, वाजपेयी जी की छलना, तथा शम्भूनाथ सिंह का धरती और आकाश इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । इब्सन स्ट्रिन्डवर्ग तथा सन्डरमैन के नाटकों भाति हिन्दी समस्या नाटकों में भी प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग हो रहा है ।

हिन्दी रंगमंच की स्थापना अब भी नाटक साहित्य के विकास होते हुए भी नहीं हो सकी है । यद्यपि उसके लिये अनेक प्रयत्न हो रहे है । भारतेन्दु काल में हिन्दी रंगमंच पर अँग्रेजी रंगमंच की बिशेषतायें बंगला तथा पारसी रंगमंच के द्वारा गृहीत हुईं । ऐलिजावेथ कालीन रंगमंच का प्रभाव प्रारम्भ में अधिक था । इधर चलचित्रों के प्रासार ने अनेक विशेषताओं को जन्म दिया है जिससे रंगमंग को काफी धक्का लगा है । प्रसाद युग के पश्चात हिन्दी नाटकों का अभिनय पाश्चात्य यथार्थवादी रंगमंच के आधार पर हुआ है । इधर मोनोड्रामा तथा प्रतीकवादी रङ्गमच की विशेषताओं को भी अश्क, भारती आदि लेखकों ने अपनाया है । जिस प्रकार पाश्चात्य नाटको की प्रेरणा से हिन्दी नाटक साहित्य का प्रचुर विकास हुआ है उसी तरह हिन्दी रङ्गमंच निर्माण में भी पाश्चात्य रंगमच से प्रेरणा प्राप्त होगी ऐसी आशा है ।

— :o: —

सहायक-ग्रंथ-सूची

१—नाट्यशास्त्र	भरत मुनि	चौखंबा प्रकाशन, १६२६ ई०
२—दशरूपक	आचार्य धनंजय हिन्दी टीका-भोलाशंकर व्यास	
३—साहित्य दर्पण	आचार्य विश्वनाथ शालिग्राम शास्त्री कृत टीका	मृत्युंजय औषधालय, एवर रोड, लखनऊ
४—रूपक रहस्य	डा० श्यामसुन्दरदास	का० ना० प्र० सभा
५—काव्य के रूप	बाबू गुलाबराय	द्वि० सं०, १६५०
६—अरस्तू का काव्यशास्त्र	डा० नगेन्द्र	प्र० सं०, हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली ।
७—साहित्यालोचन	डा० श्यामसुन्दरदास	
८—हिन्दी नाट्य साहित्य	बाबू ब्रजरत्नदास	द्वि० सं०, स० २००१

९—प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा	प्र० सं०, सरस्वती मंदिर जतनबर, बनारस।
१०—हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास	डा० सोमनाथ गुप्त	तृतीय सं०, सन १९५१ ई०
११—हिन्दी-नाट्य-विमर्श	बाबू गुलाबराय	
१२—नाटक की परख	डा० यस० पी० खत्री	
१३—हिन्दी नाटककार	जयनाथ नलिन	१९५२, आत्मा-राम एंड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली—६
१४—आधुनिक हिन्दी नाटक	डा० नगेन्द्र	
१५—हिन्दी नाटक, उद्भव और विकास	डा० दशरथ ओझा	परिवर्द्धित सं०, १९४७ ई०
१६—आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	
१७—हिन्दी नाट्य चिन्तन (भाग १,२)	शिखरचंद जैन	साहित्यरत्न भंडार, आगरा, १९४१ ई०
१८—नाट्यकला मीमांसा	सेठ गोविन्ददास	
१९—हिन्दी के तीन प्रमुख नाटककार	शिखरचद जैन	
२०—अभिनव नाट्यशास्त्र	प० सीताराम चतुर्वेदी	
२१—समीक्षा शास्त्र	"	
२२—हिन्दी साहित्य का इतिहास	पं० रामचन्द्र शुक्ल	प्र० सं०, सं० २००३, का० ना० प्र० सभा
२३—साहित्य संदेश (नाटक विशेषांक)	जुलाई अगस्त, १९५५	
२४—हास्य रस	जी० पी० श्री वास्तव	
२५—नया साहित्य—नये प्रश्न	नंददुलारे वाजपेयी	
२६—संतुलन	प्रभाकर माचवे	
२७—हास्य की रूपरेखा	डा० यस० पी० खत्री	
२८—हिन्दी नाटको का विकास	शिवनाथ एम० ए०	

२९—भारतेन्दु ग्रंथावली (पहला भाग)	ब्रजरत्नदास	का० ना० प्र० सभा प्र० सं०, सं० २००७
३०—हिन्दी एकाङ्की	डा० सत्येन्द्र	द्वि०सं० १९५३ई०
३१—एकाङ्की कला	डा० रामकुमार वर्मा	
३२—नया हिन्दी साहित्य	डा० प्रकाशचंद्र गुप्त	
३३—हमारे नाटककार	राजेन्द्रसिह गौड़	
३४—हमारी नाट्य परपरा	दिनेशनारायण उपाध्याय	
३५—एकाङ्की कला	रामयत्न 'भ्रमर'	
३६—हिन्दी नाटक और नाटककार	रामचरण महेन्द्र	प्र० सं० १९५५ई०
३७—आदि मार्ग की भूमिका (मैं नाटक कैसे लिखता हूँ)	सेठ गोविन्ददास	
३८—मुक्ति का रहस्य (मैं बुद्धिवादी क्यों हूँ)	लक्ष्मीनारायण मिश्र	
३९—कैद और उड़ान	अश्क (भूमिका धर्मवीर भारती)	
४०—कोणार्क	जगदीशचंद्र माथुर (भूमिका सुमित्रानन्दन पंत)	
४१—कांग्रेस का इतिहास	डा० पट्टाभि सीतारमैया	
४२—हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव	रवीन्द्रसहाय वर्मा	

—:o:—

ENGLISH BOOKS

—Theory of Drama ...	A. Nicoll, 1st Edition, 1931.
2—World Drama	,, ,, Reprinted 1954, George Harrap & Co. Ltd., London, Toronto, Sydney.
3—British Drama ...	A. Nicoll, Fourth Edition
4—European Theory of ... Drama	Barret H. Clark
5—Art of Drama ...	Bentilley and Millet
6—Aspects of Modern Drama	F. W. Chandler, The Macmillan Company, 1920.
7 —The Sanskrit Drama in its Origin, Development Theory and practice.	Dr. A. B. Keith, Geoffrey cumbberlege Oxford University Press Reprinted. 1954.
8—Aristotle Theory of Fine Arts	pro. S. H. Butcher.
9—Drama From Ibson to Eliot	Raymond William, 1954, Chatto & Winds, London
10—The Indian Stage ..	Dr. Hemendra Nath Das Gupta, Vol. 1.

11—The Theatre of the Hindus — H. H. Wilson, 1st Edition, Raghvan Susil Gupta 35, Pisharoti Chittrangan Avenue Vidya Bhushan Calcutta.

12—Encyclopedia Britanica — Vol. VI, Vol. VIII

13—Quit Essence of Ibsenism — G. B. Shaw

14—The Position of Shaw in European Drama and Philosophy — Martin Ellehauge

15—The Craftmanship of one Act play — Perceval Wilds

16—The Construction of one Act Play — Walter Eaton

17—You are on the — Lional Gambelin

18—The Dark Tower and other Broad Cast Plays — Louis Macnee

19—Shakespearese, The Complete Work, The Home Library Club, The Times of Indian Publication, 1942.

20—The Complete Plays of B. Saw — Ottam Press Limited, Long Acre, London.

21—Poetry and Drama ... T. S. Eliot, The Theodore Spencer Memorial Lecture No. 1250, Faber and Limited 24 Russel Square, London.

22—English Critical Essays Chap. 'The Function of Poetry in Drama. Lascelles Abercrombie — (Twenteith Century) The World Classic Series, London Oxford University Press

23—Later Moghals ... William Irvine, Vol. II (1719- London Luzac and Co

24—Studies of European Realism — George Lukacs, London Hill Way Publishing.

25—The Meaning of Art ... Herbert Read.

26—Modern Painters ... John Ruskin. Every Man Library Series, vol. 1.

27—History of Modern India	Dr Iswary Prasad & S. K. Subedar, Scond Edition, 1951.
28—An Advanced History of India	R. C. Majumdar, H. C. Ray Choudhary, Kalikinker Dutt, Second Edition, London Macmillan & Co. Ltd. New York.
29—British rule in India and After	R. R. Sethi, V. D. Mahajan, Chand & Co. Publisher and Book seller Foutain Delhi
30—The English Utilitarians Vol. I, II and III.	Leslie Stephens, London Duckworth and Co., 1912.
31—An Outline of Psycho-Analysis	Sigmund Freud, 3rd Edition, 1940, London. The Hogarth Press.
32—Indian Religion and Western Thought.	Dr. S. Radha Krishnan.
33—Drama and Dramatic of Non European race.	William Ridge way
34—Hindu Dramatic Literature	H. H. Wilson
35—Drama	A. Duke
36—Play-Making	William Archer
37—Dramatic values	C. E. Montague
38—Dramatic Technique	G. P. Baker

पत्र-पत्रिकाएँ

१—अजन्ता	...	जुलाई सन् १९५३ ई०
२—आलोचना	...	'नाटक विशेषांक' जुलाई ई०
३—साहित्य सन्देश	...	'संयुक्त प्रांतीय नाटकांक' जुलाई-अगस्त १९५५ ई०
४—हिन्दी प्रदीप	...	सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, १८९५
५— ,,	...	फरवरी, १८९२ ई०
६— ,,	...	जुलाई, १९०५ ई०
७— ,,	...	मई, १९०७ ई०
८—सार सुधानिधि	...	१८ अगस्त, १८७९ ई०
९—राष्ट्रभारती	...	नवम्बर, १९५२ ई०
१०—इण्डियन ट्रिब्यून	...	इलाहाबाद, शनिवार फरवरी २३,
११—विश्व-भारती	...	खण्ड १ अंक ३

—:०:—

नाटक-सूची

नाटक	लेखक या संपादक
	अ
१—अंधेर नगरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२—अबला विलाप	रुद्रदत्त शर्मा
३—अपनी अपनी रुचि	लाला सीताराम
४—अचला यतन	टैगोर
५—अजातशत्रु	जयशङ्कर प्रसाद
६—अशोक	लक्ष्मीनारायण मिश्र
७—अष्टदल	सेठ गोविन्ददास
८—अधिकारलिप्सा	,,
९—अलग अलग रास्ते	उपेन्द्रनाथ अश्क
१०—अंजो दीदी	,,
११—अपराधी	पृथ्वीनाथ शर्मा
१ —अछूत	आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव
१३—अम्बपाली	रामवृक्ष बेनीपुरी
१४—अमर ज्योति	,,
१५—अजनबी	रामनरेश त्रिपाठी

१६—अंधेरे में उजाला (टालस्टाय)	क्षेमानन्द राहत
१७—अपना पराया	राधिकारमण सिंह
१८—असहयोग	ठाकुर लक्ष्मणसिंह

अं

१३—अंधा कुआं	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
२०—अंधा युग	डा० धर्मवीर भारती
२१—अंगूर की बेटी	गोविन्दवल्लभ पन्त
२२—अंत.पुर का छिद्र	,,

आ

१—आदर्श हिन्दू विवाह	जीवानन्द शर्मा
२—आहुति	हरिकृष्ण प्रेमी
३—आधी रात	लक्ष्मीनारायण मिश्र
४—आहुति	पृथ्वीनाथ कपूर
५—आवाज का नीलाम	धर्मवीर भारती
६—आदिम युग	उदयशंकर भट्ट
७—आपस का समझौता	उपेन्द्रनाथ अश्क
८—आजादी के बाद	विनोद रस्तोगी
९—आवारा	बेचन शर्मा 'उग्र'
१०—आवागमन	विमला लूथर
११—आत्मा की खोज	देवीदयाल सामर
१२—आलकेमिस्ट	बेन जानसन

इ

१—इन्दर सभा	अमानत
१—इन्द्र धनुष	डा० रामकुमार वर्मा
३—इन्द्र धनुष	रांगेय राघव

ई

१—ईश्वरीयन्याय	रामदास गौड़
२—ईद और होली	सेठ गोविन्ददास

उ

१—उस पार	द्विजेन्द्रलाल राय
२—उलट फेर	जी० पी० श्रीवास्तव
३—उद्धार	हरिकृष्ण प्रेमी

४—उत्सर्ग	चतुरसेन शास्त्री
५—उ मुक्त	सियाराम शरण गुप्त

ए

१—एक एक के तीन तीन	देवकीनन्दन त्रिपाठी
२—एक घूँट	जयशङ्कर प्रसाद
३—एकादशी	सेठ गोविन्ददास
४—एकला चलो रे	उदयशङ्कर भट्ट
५—एक ही रास्ता	दशाक्षङ्कर पांडेय
६—ए मुए अखबार वाले	केशवचन्द्र वर्मा
७—एक साम्यहीन साम्यवादी	भुवनेश्वर मिश्र
८—एप्रिल फूल	प्रभाकर माचवे

ऐ

१—ऐज यू लाइक इट	विलियम शेक्सपीयर
२—ऐंटीगान	सोफोक्लीज
३	

ओ

१—ओथेलो	विलियम शेक्सपीयर
२—ओ मेरे सपने	जगदीशचन्द्र माथुर

औ

१—और वह वहाँ पहुँचे	केशवचन्द्र वर्मा
२—औरङ्गजेब की आखिरी रात	डा० रामकुमार वर्मा

क

१—कृष्णाकुमारी	माइकेल मधुसूदन दत्त
२—कुरु बन दहन	बद्रीनाथ भट्ट
३—करुणालय	जयशङ्कर प्रसाद
४—कल्याणी परिचय	जयशङ्कर प्रसाद
५—किंग लियर	विलियम शेक्सपीयर
६—लियर	प्रतापनारायण मिश्र
७—कसाई	मोहनलाल महतो वियोगी
८—काश्मीर का कांटा	वृन्दावनलाल वर्मा
९—केवट	,,
१०—कनेर	,,

११—कर्वला	प्रेमचन्द
१२— कौमुदी महोत्सव	डा० रामकुमार वर्मा
१३—कबूतरखाना	जगदीशचन्द्र माथुर
१४—क्रेडीटरस	स्ट्रिन्डवर्ग
१५—कोणार्क	जगदीशचन्द्र माथुर
१६—कारवां	भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र
१७—कैद से पहले	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
१८—कलवार की करतूत (टालस्टाय)	
१९—कह कहा	सरजू पंड्या
२०—कामरेड	गणेशप्रसाद द्विवेदी
२१—कंगाल नहीं	सेठ गोविन्ददास
२२—कृषि यज्ञ	,,
२३—कैद और उड़ान	उपेन्द्रनाथ अश्क
२४—कैसा साव कैसी आया	,,
२५—कसबे के क्रिकेट क्लब का उद्घाटन	,,
२६—कलाकार और नारी	विमला लूथर
२७—कास्मोपालिटन क्लब	,,
२८—कसम कुरान की	विनोद रस्तोगी
२९ – किरण और कुहासा	विष्णु प्रभाकर
३०—कारकुन	,,
३१—कुमार संभव	गिरिजाकुमार माथुर
३२—कनवेसिंग	विंध्याचलप्रसाद गुप्त

ख

१—खां जहाँ	क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद
२—खिलौने की खोज	वृन्दावनलाल वर्मा
३—खून की याद	रामवृक्ष बेनीपुरी
४—खिड़की	उपेन्द्रनाथ अश्क
५—खूबसूरत कोढ़	शिवसागर मिश्र
६—खाई बढ़ती गई	भारतभूषण अग्रवाल
७—खिलौनों की नगरी	बालकराम नागर

ग

१—गंगोत्री	बालमुकुन्द पांडेय
२—गौ संकट	प्रतापनारायण मिश्र
३—गौ रक्षा न्याय	जगतनारायण
४—गङ्गा जमुनी	जी० पी० श्रीवास्तव
५—गड़बड़झाला	,,
६—गाँव का देवता	रामवृक्ष बेनीपुरी
७—गुड़िया का घर (इब्सन)	लक्ष्मीनारायण मिश्र
८—गांधीजी का रामराज्य	उदयशङ्कर भट्ट
९—गम का फसाना किसको सुनायें	केशवचन्द्र वर्मा
१०—गृहलक्ष्मी	विमला लूथर

घ

१—घोष्टस्	इब्सन
२—घोंसले	उपेन्द्रनाथ अश्क
३—घर आई लक्ष्मी	विमला लूथर

च

१—चन्द्रावली	भारतेन्दु हरिश्चंद्र
२—चंद्रगुप्त	बद्रीनाथ भट्ट
३—चुंगी की उम्मीदवारी या मेम्बरी की धूम	,,
४—चौपट चपेट	किशोरीलाल गोस्वामी
५—चाँदी की डिबिया (गाल्सवर्दी)	प्रेमचन्द्र
६—चुम्बन	बेचन शर्मा, उग्र
७—चाल बेढब	जी० पी० श्रीवास्तव
८—चड्ढा गुल खैरू	,, ,,
९—चंद्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद
१०— ,,	द्विजेन्द्रलाल राय
११—चारुमित्रा	डा० रामकुमार वर्मा
१२—चतुष्पद	सेठ गोविन्ददास

१३—चरवाहे	उपेन्द्रनाथ अश्क
१४—चुम्बक	,,
१५—चिलमन	,,
१६—चमत्कार	
१७—चट्टानें	,,

छ

१—छाया	हरिकृष्ण प्रेमी
२—छलना	भगवतीप्रसाद वाजपेयी
३—छठाँ बेटा	उपेन्द्रनाथ अश्क

ज

१—जूलियस सीजर	विलियम शेक्सपीयर
२- जयनार सिंह	देवकीनन्दन त्रिपाठी
३—जनमेजय का नागयज्ञ	जयशंकर प्रसाद
४— जंगल में मंगल	लाला सीताराम
५—जवानी बनाम बुढ़ापा	जी० पी० श्रीवास्तव
६—जस्टिस	गाल्सवर्दी
७—ज्वाला और ज्योति	सुधीन्द्र
८—जहाँदार शाह	वृन्दावनलाल वर्मा
९—जय पराजय	उपेन्द्रनाथ अश्क
१०—जोंक	,,
११—ज्योत्सना	सुमित्रानन्दन पंत
१२—जिंदा लाश (टाल्सटाय)	क्षेमानन्द राहत
१३—जीवन संगिनी	दयाशंकर पांडेय
१४—जोंक	राहुल सांकृत्यायन
१५—जनता बेचारी	विमला लूथर

झ

१—झाँसी की रानी	वृन्दावनलाल वर्मा

ट

१—टकराहट	जैनेन्द्रकुमार
२—टारटफ	मोलियर
३—टु ट्रू टु बी गुड	बर्नार्ड शा

ठ

१—ठोस आजादी किसे	गौरीशंकर मिश्र

ड

१—डाकघर	(टैगोर)
	रायचन्द्र प्रभासचन्द नाँदी
२—डिमोक्रेसी	जयनाथ नलिन

त

१—तैमूर की हार	डा० रामकुमार वर्मा
२—ताजमहल के आँसू	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
३—तूफान के पहले	उदेन्द्रनाथ अश्क
४—तौलिये	,,
५—तथागत	रामवृक्ष बेनीपुरी
६—तिरंगा झण्डा	विराज
७—त्याग या ग्रहण	सेठ गोविन्ददास
८—तुलसी	श्रीराम शर्मा

द

१—दुर्लभ बंधु	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२—दुखिनी बाला	राधाकृष्णदास
३—देसी कुत्ता बिलायती बोल	राधाकान्त
४—दुमदार आदमी	जी० पी० श्रीवास्तव
५—दुविधा	पृथ्वीनाथ शर्मा
६—दुर्गादास	द्विजेन्द्रलाल राय
७—देश भर के दुश्मन (इब्सन)	राजनाथ पांडेय
८—दो किनारे	विष्णु प्रभाकर
९—दरिन्दा	,,
१०—दस मिनट	डा० रामकुमार वर्मा
११—दीपदान	,,
१२—द वे आफ द वर्ल्ड	कांग्रीव
१३—देवताओं की छाया में	उपेन्द्रनाथ अश्क
१४—दशाश्वमेध	लक्ष्मीनारायण मिश्र
१५—दिया तले अन्धेरा	मधुकर खेर

ध

१—ध्रुवस्वामिनी	जयशंकर प्रसाद
२—धीरे धीरे	वृन्दावनलाल वर्मा
३—धोखाधड़ी (गाल्सवर्दी)	ललिताप्रसाद शुक्ल

४—धुएँ के नीचे	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
५—धोखेबाज	सेठ गोविन्ददास
६—धूम शिखा	उदयशंकर भट्ट
७—धर्म की धूरि	राधिकारमण सिंह
८—धरती और आकाश	डा० शम्भूनाथ सिंह

न

१—नील देवी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२—नागरी विलाप	रामगरीब चौबे
३—नूरजहाँ (द्विजेन्द्रलाल राय)	रूपनारायण पांडेय
४—नेत्रोन्मीलन	मिश्रबन्धु
५—नटी की पूजा (टैगोर)	भगवतीप्रसाद चंदोला
६—नाक में दम	जी० पी श्रीवास्तव
७—नीलकण्ठ	वृन्दावनलाल वर्मा
८—नया समाज	उदयशंकर भट्ट
९—नया समाज	रामवृक्ष बेनीपुरी
१०—नव रस	सेठ गोविन्ददास
११—नारद की बीणा	लक्ष्मीनारायण
१२—नातन (लेसिंग)	अबुलफजल
१३—न्याय (गालसवर्दी)	प्रेमचंद
१४—नया पुराना	उपेन्द्रनाथ अश्क
१४—नदी प्यासी थी	धर्मवीर भारती
१६—नीली झील	धर्मवीर भारती
१७—नई इमारत	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
१८—नवयुग का प्रारम्भ	राजेन्द्र सक्सेना
१९—नइकी दुनियाँ	राहुल साँकृत्यायन
२०—नीम हकीम	विमला लूथर
२१—नील दिशायें	नरेशकुमार मेहता
२२—नींद की घाटियाँ	भारतभूषण अग्रवाल
२३—न्याय	वीरदेव वीर
२४—नोबुल पुरस्कार	केशवचंद्र वर्मा

१—प्रेम योगिनी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२—पाखंड विडम्बन	,,

३—पतिव्रता	गिरीशचन्द्र घोष
४—प्रफुल्ल	,,
५—प्रायश्चित	जमशंकर प्रसार
६—पूर्व की ओर	वृन्दावनलाल वर्मा
७—प्रतापप्रतिज्ञा	जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द
८—पाताल विजय	हरिकृष्ण प्रेमी
९—प्रकाश स्तम्भ	,,
१०—प्रतिशोध	,,
११—पीले हाथ	वृन्दावनलाल वर्मा
१२—प्रेम की वेदी	प्रेमचंद
१३—प्रेम प्रपंच (लेसिंग)	रामलाल अग्निहोत्री
१४—प्रायश्चित और उन्मुक्ति का बंधन (मैटरलिंक)	पदुमलालपुन्नालाल बख्शी
१५—पाप और प्रकाश (टालस्टाय)	जैनेन्द्रकुमार
१६—प्रेम की पराकाष्ठा (आस्कर वाइल्ड)	सत्यजीवन वर्मा
१७—प्रेखन	रामनरेश त्रिपाठी
१८—पैसा परमेश्वर	,,
१९—पक्का गाना	उपेन्द्रनाथ अश्क
२०—पहेली	,,
२१—पगध्वनि	चतुरसेन शास्त्री
२२—पतित सुमन	सेठ गोविन्ददास
२३—पर्वत के पीछे	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
२४—प्रलय के पंख पर	लक्ष्मीनारायण मिश्र
२५—प्रकाश और परछाईं	विष्णु प्रभाकर
२६—पुराने चावल	,,
२७—पागलखाने में	,,
२८—प्रतिभा का विवाह	भुवनेश्वर मिश्र
२९—पुरुष का पाप	विनोद रस्तोगी
३२—पृथ्वीराज की आँखें	डा० रामकुमार वर्मा
३१—पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ	उपेन्द्रनाथ अश्क
३२—पैंतरे	,,

३३—पापी	उपेन्द्रनाथ अश्क
३४—पार्टी नहीं जमी	अरुणमित्र
३५—पचपन का फेर	विमला लूथर
३६—प्रोफेसर साहब	,,
३७—प्रीत के गीत	,,
३८—पत्थर की शिकायत	बालकराम नागर
३९—पिकनिक	गिरिजाकुमार माथुर
४०—पंचभूत	सेठ गोविन्ददास
४१—पायल	वृन्दावनलाल वर्मा
४२—पंजाब मेल	अंबिकादत्त व्यास

फ

१—फास्ट (गेटे)	भोलानाथ शर्मा
२—फूलों की गोली	वृन्दावनलाल वर्मा
३—फूल और परछाईं	भारत भूषण अग्रवाल
४—फिलास्फर	जयनाथ नलिन

ब

१—विषस्य विषमौषधम्	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२—वैधव्य कठोर दंड है या शांति	(गिरीशचन्द्र घोष) रूपनारायण पांडेय
३—बलिदान	,,
४—बादलों के पार	हरिकृष्ण प्रेमी
५—बगुला भगत (शेक्सपीयर)	लाला सीताराम
६—बादामसिंह शर्मा	जी पी० श्रीवास्तव
७—बिलायती उल्लू	,,
८—बादल की मृत्यु	डा० रामकुमार वर्मा
९—बाँस की फाँस	वृन्दावनलाल वर्मा
१०—बीरबल	,,
११—ब्लू बर्ड	मेटरलिंक
१२—वितस्ता की लहरें	लक्ष्मीनारायण मिश्र
१३—वत्सराज	,,
१४—बफाती चाचा	रामनरेश त्रिपाठी
१५—बिपता (जान मेसफिल्ड)	उमा नेहरू

१४—मिना अथवा प्रेम प्रतिष्ठा (लेसिंग)	डा० मंगलदेव शास्त्री
१५—मग्दालिनी	जैनेन्द्रकुमार
१६—मैन एन्ड सुपर मैन	वर्नार्ड शा
१८—मड़वे का भोर	डा० लक्ष्मीनारायण लाल
१८—मकान की मुसीबत	केशवचन्द्र वर्मा
१९—मानव मन	सेठ गोविन्ददास
२०—महत्व किसे	,,
२१—मैत्री	,,
२२—मायोपिया	उदयशंकर भट्ट
२३—मस्के बाजों का स्वर्ग	उपेन्द्रनाथ अश्क
२४—मेहरारुन के दुर्दशा	राहुल सांकृत्यायन
२५—महिला मण्डल	बिमला लूथर
२६—महाश्वेता	चिरंजीत
२७—मृत्यु के उपरान्त	देवीदयाल सामर
२८—मशीनोत्सव	गिरिजाकुमार माथुर

य

१—यह स्वतन्त्रता का युग	विष्णुप्रभाकर
२—युग संधि	
३—यह भी वह भी	अरुणमित्र

र

१—रत्नावली	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२—रणधीर प्रेममोहिनी	लाला श्रीनिवासदास
३—रोमियो एण्ड जूलियट	शेक्सपीयर
४—राखी की लाज	वृन्दावनलाल वर्मा
५—राज्यश्री	जयशंकर प्रसाद
६—राव बहादुर (मौलियर)	लल्लीप्रसाद पाण्डेय
७—राजमुकुट	गोविन्द वल्लभ पंत
८—राजयोग	लक्ष्मीनारायण मिश्र
९—राक्षस का मन्दिर	,,
१०—रेशमी टाई	डा० रामकुमार वर्मा
११—रिमझिम	,,
१२—रोमांच या रोमाँस	भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र
१ —रपट	गणेशप्रसाद द्विवेदी

१४—रजत रश्मि	डा० रामकुमार वर्मा
१५—रीढ़ की हड्डी	विष्णु प्रभाकर
१६—रंगा सियार	हीरादेव चतुर्वेदी
१७—रेलगाड़ी के डिब्बे	अरुणमित्र
१८—रुपया तुम्हे खा गया	भगवतीचरण वर्मा
१९—रेत और सीमेंट	विमला माथुर
२०—राम भरोसे	प्रभाकर माचवे
२१—राख और कलियाँ	हरिश्चन्द्र खन्ना

ल

१—लीयर	शेक्सपीयर
२—लाल कनेर (टैगोर)	हजारीप्रसाद द्विवेदी
३—लो भाई पंच...	वृन्दावनलाल वर्मा
४—लायल्टीज	गाल्सवर्दी
५—लाल बुझक्कड़	जी० पी० श्रीवास्तव
६—लम्बी दाड़ी	,,
७—लबड़ धौं धौं	बद्री नाथ भट्ट
८—लक्ष्मी का स्वागत	उपेन्द्रनाथ अश्क
९—लिपस्टिक की मुस्कान	विष्णु प्रभाकर
१०—लूप होल	विनोद रस्तोगी
११—लाइन क्लीयर	विमला लूथर
१२—लौह देवता	सिद्धनाथ कुमार

व

१—विशाख	जयशंकर प्रसाद
२—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
३—विद्यासुन्दर	,,
४—विंटर्स टेल	शेक्सपीयर
५—बनिया चला नवाब की चाल (मौलियर)	डा० लक्ष्मणस्वरूप
६—वीवर्स	हाप्ट्समैन
७—वार्गेन	उदयनारायण भट्ट
८—बतसिया	उपेन्द्रनाथ अश्क
९—विवाह के दिन	,,
१०—वह न जा सकी	विष्णु प्रभाकर

श

१—शिक्षा दान या जैसा काम वैसा परिणाम	प्रतापनारायण मिश्र
२—शाहजहाँ (द्विजेन्द्रलाल राय)	रूपनारायण पाण्डेय
३—शमशाद सौसन	केशवराम भट्ट
४—श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना	भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र
५—शैतान (शा)	,,
६—शाप और वर	सेठ गोविन्ददास
७—शफाखाना	हीरादेवी चतुर्वेदी
८—शिक्षा का सवाल	प्रो० गोविन्दलाल माथुर
९—	

ष

१—षट्दर्शन	सेठ गोविन्ददास

स

१—सत्य हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
२—सती प्रताप	,,
३—सज्जाद सम्बुल	केशवराम भट्ट
४—सर्राफी	गौरीदत्त
५—संग्राम	प्रेमचन्द
६—सिंबलीन या सती परीक्षा (शेक्सपीयर)	लाला सीताराम
७—स्वप्न भंग	हरिकृष्ण प्रेमी
८—स्वर्ण विहान	,,
९—सती नाटक	मनमोहन वसु
१०—समाज के स्तम्भ	लक्ष्मीनारायण मिश्र
११—सन्यासी	,,
१२—सिन्दूर की होली	,,
१३—सप्त रश्मि	सेठ गोविन्ददास
१४—स्पर्धा	,,
१५—सन्तोष कहाँ	,,
१६—स्त्री का हृदय	उदयशंकर भट्ट
१७—समस्या का अन्त	,,

१८—सूखी डाली	उपेन्द्रनाथ अश्क
१९—सयाना मालिक	,,
२०—सूखे सन्तरे	सेठ गोविन्ददास
२१—सभ्यता का शाप (टाल्सटाय)	राजबहादुर सिंह
२२—सीमा रेखा	विष्णु प्रभाकर
२३—समरेखा विषम रेखा	,,
२४—संगमरमर पर एक रात	धर्मवीर भारती
२५—सुबह होगी	डा० लक्ष्मीनारायणलाल
२६—सुहाग बिन्दी	गणेशप्रसाद द्विवेदी
२७—सप्त किरण	डा० रामकुमार वर्मा
२८—ससुराल की होली	सरजू पण्ड्या
२९—सौन्दर्य का प्रायश्चित	विनोद रस्तोगी
३०—स्कन्दगुप्त	जयशंकर प्रसाद
३१—सीमान्त का संतरी	विराज
३२—स्वर्ग में बापू का समारोह	हरिशंकर शर्मा
३३—स्वर्ग में गाँधी	देवीदत्त अटल
३४—सगुन	वृन्दावनलाल वर्मा
३५—सिन्दूर की बिन्दी	गोविन्दवल्लभ पंत
३६—समाज	घनानन्द बहुगुणा
३७—स्वर्गभूमि का यात्री	रांगेय राघव
३८—सृष्टि की साँझ	सिद्धनाथ कुमार
३९—सुबह के घण्टे	नरेश मेहता
४०	

ह

१—हंस मयूर	वृन्दावनलाल वर्मा
२—हड़ताल (गाल्र्सवर्दी)	प्रेमचन्द
३—हः हः हः (गोल्डस्मिथ)	रामकृष्ण शिलीमुख
४—हिरोइन	विमला लूथर
५—होरी	विष्णु प्रभाकर

— :o: —